View metadata, citation and similar papers at core.ac.uk

brought to you by CORE

provided by Etheses - A Saurashtra University Library Service

Saurashtra University

Re – Accredited Grade 'B' by NAAC
(CGPA 2.93)

Pandya, Jagrutiben N., 2010, *समसामयिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में कमलेश्वर के उपन्यासों का अध्ययन*, thesis PhD, Saurashtra University

http://etheses.saurashtrauniversity.edu/id/eprint/165

Copyright and moral rights for this thesis are retained by the author

A copy can be downloaded for personal non-commercial research or study, without prior permission or charge.

This thesis cannot be reproduced or quoted extensively from without first obtaining permission in writing from the Author.

The content must not be changed in any way or sold commercially in any format or medium without the formal permission of the Author

When referring to this work, full bibliographic details including the author, title, awarding institution and date of the thesis must be given.

Saurashtra University Theses Service
http://etheses.saurashtrauniversity.edu
repository@sauuni.ernet.in

© The Author

“ समसामयिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में कमलेश्वर के उपन्यासों का अध्ययन ”

(SAMSAMYIK CHETNA KE PARIPREKSHYA ME KAMLESHWAR KE UPANYASON KA ADHYAYAN)

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय की पीएच.डी.(हिन्दी) की
उपाधि के लिए
प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध

: प्रस्तुत कर्ता :
प्रा.जागृति एन. पंडया
व्याख्याता,हिन्दी विभाग
म्युनिसिपल महिला आर्टस,कॉमर्स
एण्ड होमसायन्स कॉलेज,
गोंडल

: निर्देशक :
डॉ.संजय बी. आसोदरिया
अध्यक्ष,हिन्दी विभाग,
श्रीमती आर.आर.पटेल महिला कॉलेज,
राजकोट

वर्ष-२०१०

<u>प्रमाणपत्र</u>

प्रमाणित किया जाता है कि **प्रा.जागृति एन.पंडया** द्वारा सौराष्ट्र विश्व विद्यालय-राजकोट की पीएच.डी.उपाधि हेतु- **‘‘ सम सामयिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में कमलेश्वर के उपन्यासों का अध्ययन ’’** विषय पर प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध मेरे निर्देशन एवं निरीक्षण में तैयार किया गया है । इस शोध-प्रबन्ध में इन्होंने उक्त विषय का यथाशक्ति अध्ययन, अनुशीलन एवं शोध परक विश्लेषण विवेचन करके वैज्ञानिक ढंग से मौलिक निरूपण किया है ।

साथ ही यह शोध-प्रबन्ध अथवा इसका कोई अंश न तो प्रकाशित हुआ है और न ही इसका कोई अन्य उपयोग हुआ है ।

दिनांक :

निर्देशक

स्थल : राजकोट

डॉ.संजय.बी.आसोदरिया

अध्यक्ष,हिन्दी विभाग

श्रीमती आर.आर.पटेल महिला कॉलेज

राजकोट

भूमिका

साहित्य और समाज का अविच्छिन्न सम्बन्ध है, जो परस्परावलंबित है । समाज यदि शरीर है तो साहित्य उसकी आत्मा है । समाज के वातावरण की नींव पर ही साहित्य का प्रासाद खड़ा होता है । जिस समाज की जैसी परिस्थितियाँ होगी, उसका साहित्य भी वैसा ही होगा । साहित्य समाज की प्रतिध्वनि, प्रतिच्छाया और प्रतिबिम्ब है । साहित्यकार एक सामाजिक प्राणी होता है, उनका पालन पोषण समाज में ही होता है । वह अपने साहित्य के लिए विषय-सामग्री समाज से ही ग्रहण करता है । साहित्यकार की प्रतिभा और कल्पना समाज से ही अपने साहित्य के लिए उपकरण जुटाती है । केवल यही नहीं, राष्ट्र के उत्थान एवं पतन में भी साहित्य तथा समाज दोनों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है ।

जब हम साहित्य के संदर्भ में अवलोकन करते हैं तो ज्ञात होता है कि साहित्य मूलतःकाव्य में ही लिखा जाता रहा था, परन्तु समय परिवर्तनशील है और उस परिवर्तनशील कालचक्र का प्रभाव सदा मानवजीवन पर पड़ता रहा है । जो संवेदनशील सर्जक रहे हैं, वे मानव की संवेदना से संवेदित होकर साहित्य-सर्जन करते रहे हैं । इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल के मध्य तक मूलतः साहित्य सर्जना कविता में ही होती रही है । साहित्य सर्जन के मूल में सदा मानव कल्याण की भावना रही है । इसीलिए संस्कृत में इसका उल्लेख मिलता है-''हितेन सहितम् साहित्यम्''तथा ''सहितस्य भावः साहित्यम् '' अर्थात् जिसमें मानव की सर्वमंगल कामना निहित हो वही साहित्य है । इस प्रकार साहित्य और मानव का सदा अटूट सम्बन्ध रहा है । मानव या समाज विहीन साहित्य की परिकल्पना संभव नहीं हो सकती, अर्थात् साहित्य में किसी न किसी रूप में मानव जीवन सन्निहित है ।

कथा-साहित्य के अंतर्गत या गद्य-साहित्य के अंतर्गत कहानी और उपन्यास की ही प्रधानता रही है । डॉ. गुलाबराय ने इस तथ्य को उजागर करते हुए लिखा है- '' कहानी अपने पुराने रूप में उपन्यास की अग्रजा है और नये रूप में उसकी अनुजा है ।'' इसका तात्पर्य यह है कि विकास क्रम की दृष्टि से आज उपन्यास साहित्य कहानी की अपेक्षा मे बहुत आगे निकल चुका है ।

हिन्दी उपन्यास के बारे में यह आम धारणा है कि उसका विकास मात्र बीसवीं सदी की देन है । किन्तु यह सच है कि बीसवीं सदी से पूर्व की एक लम्बी साहित्य-गाथा हमें आज भी अपने विविध रूपों में निरन्तर विकसित होती हुई दिखाई देती है ।

बीसवीं सदी में प्रेमचन्द ने इस कथा-धारा को सर्वप्रथम यथार्थ मानव-जीवन से जोड़ ने का कार्य किया। उन्हों ने अपने कथा-साहित्य के माध्यम से समाज की सारी विसंगतियों, अन्याय, अनीति, शोषण, दुराचार,नारी-शिक्षा, विधवा-विवाह जैसे अनंत प्रश्नों और समस्याओं को प्रस्तुत किया। उन्होंने केवल समस्याओं को उठाया ही नहीं है, बल्कि अपने आदर्शवादी मूल्यों के आधार पर उसका सुखद समाधान भी प्रस्तुत किया। प्रेमचन्द के समकालीन जयशंकर प्रसाद जैसे महान रचनाकार ऐतिहासिक-सांस्कृतिक बोध की स्थापना में उन्हीं पुरातन आदर्शों की खोज में संलग्न थे। प्रेमचन्द ने 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम','कर्मभूमि' जैसे उपन्यासों से हिन्दी उपन्यास जगत में प्रवेश कर 'गोदान' जैसे उत्कृष्ट उपन्यास की रचना की। 'गोदान' को भारतीय किसान जीवन का महाकाव्य माना जाता है। प्रेमचन्द के पश्चात् यथार्थवाद की यह साहित्यिक परम्परा क्रमशः विलुप्त होती गई और मनुष्य के अंतरमन को साहित्य के माध्यम से खोजने का प्रयत्न किया जाने लगा। फ्रायड के मनोविज्ञान से प्रभावित होकर अज्ञेय, इलाचन्द जोशी, जैनेन्द्र कुमार जैसे लेखकों ने उपन्यासों के वे आयाम प्रस्तुत किये जो प्रेमचन्द की यात्रा से विपरित एक दूसरी कथा-धारा चित्रित कर रहे थे।

कालान्तर देश आज़ाद हुआ। स्वतंत्रता के बाद कथा-साहित्य का विकास अधिक हुआ है। स्वतंत्रता के साथ नवक्रान्ति और नवोत्थान का जो स्वप्न जुड़ा हुआ था, वह चूर चूर हो गया। सामान्य जनता ने आज़ादी के साथ खुशहाल जीवन की जो परिकल्पना की थी, वह स्वप्न बनकर रह गई। आज़ादी के बाद बेकारी, भूखमरी, मूल्य-विघटन आदि समस्याएँ जहरीले नाग के समान फन फैलाकर सामने आई। समय परिवर्तन के साथ साहित्य जगत में पुनः एक परिवर्तन आया। प्रेमचन्द की जो यथार्थवादी परम्परा टूट चुकी थी,वह सन् १९६० के आसपास नई पीढ़ी के कथाकारों द्वारा पुनर्जीवित हुई। इन कथाकारों में कमलेश्वर, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, भीष्म साहनी, कृष्णा सोबती,उषा प्रियंवदा,फणीश्वरनाथ 'रेणु' आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। देश-विभाजन के पश्चात् जो अराजकता चारों तरफ व्याप्त थी उसका बड़ा ही हृदय-द्रावक चित्र इन कथाकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

स्वतन्त्रता के बाद की बदली परिस्थितियों एवं बदले जन जीवन को सही मात्रा में प्रस्तुत करनेवालें साहित्यकारों में कमलेश्वर का नाम आदर से लिया जाता है। कमलेश्वर नई कहानी के प्रमुख शिल्पी है। एक सच्चे शिल्पी की भाँति वह अपने उपन्यासों में निरन्तर प्रयोग करते, उसे तोड़ते, बदलते एवं संशोधित करते रहे हैं।

कमलेश्वर सदैव अपने युग की समस्याओं के मानवी पक्षों को अपनी कथाकृतियों का आधार बनाते आये हैं । उन्हें अपने उपन्यासों में युगीन सत्य को उद्‌घाटित करने में अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई है । इनके उपन्यासों में वास्तविकता का स्वर उभरा है । संघर्ष के जिस दौर से कमलेश्वर गुजरे है, उससे उनकी प्रतिभा और भी अधिक निखरी है ।

ऐसे ही एक प्रगतिशील, मानवतावादी, वैश्विक संवेदना से संवेदित और दायित्वबोध से जुड़े उपन्यासकार के उपन्यासों का अनुशीलन करने का मैं ने विनम्र प्रयास किया है ।

◈ प्रेरक भावभूमि एवं विषय-चयन

किसी भी शोध-कार्य की प्रेरक भावभूमि के रूप में शोधार्थी की जिज्ञासावृत्ति ही उत्तरदायी होती है । विचार मनुष्य की वह उर्वरभूमि है जो किन्हीं विशेष परिस्थितियों में एक निश्चित दिशा तय करने लगता है और शोध-कार्य का स्वरूप भी वहीं से आकर ग्रहण करने लगता है । समूची साहित्यिक विधाओं में कथा-साहित्य ने मुझे अधिक प्रभावित किया है । बचपन में सुनी दादी-नानी की काल्पनिक कहानियों से लेकर साहित्यिक उपन्यासों ने मेरे मन में आस्था का भाव पैदा किया होगा यह मैं मानती हूँ। अपनी कॉलेज की शिक्षा के दौरान मैं ने हिन्दी विषय को इसलिए प्रमुखता दी कि उसके माध्यम से मेरी यह अभिरुचि और भी बनी रहे । पहले अध्ययन और बाद में अध्यापन के दौरान उपन्यास पढ़ने का सिलसिला चलता रहा । इसी दौरान मैं ने कमलेश्वर का ‘समुद्र में खोया हुआ आदमी ’ उपन्यास पढ़ा और मैं प्रभावित हुई । मैं ने उसी दिन से तय कर लिया कि मैं इस पर शोध-कार्य करूँ ।

अपनी जिज्ञासापूर्ति के प्रारंभिक प्रयास में मधुकरसिंह द्वारा संपादित ‘कमलेश्वर’ पुस्तक मे कमलेश्वर के जीवन से सम्बन्धित बेहद निजी शब्द-चित्र को पढ़ा । इस में कमलेश्वर के जीवन और कर्म का मार्मिक तथा यथार्थ चित्रण रेखांकित किया गया है । इसी संदर्भ में आगे गायत्री कमलेश्वर लिखित ‘कमलेश्वर मेरे हमसफर’ पुस्तक पढ़ी । इस से कमलेश्वर के व्यक्तित्व की जटिलता और उनकी रचनाओं की रोचक जानकारी प्राप्त हुई । इन दो पुस्तकों से कमलेश्वर के जीवन और साहित्य के विषय में जो भी जानकारी प्राप्त हुई उसने मुझे कमलेश्वर के जीवन और साहित्य के विषय में और अधिक जानने के लिए आकृष्ट किया । फिर इसी सिलसिले में आगे कमलेश्वर की कहानियाँ, उपन्यास, नाटक, यात्रा साहित्य, आलोचना आदि

के साथ-साथ कमलेश्वर के साहित्य पर उपलब्ध आलोचनात्मक पुस्तकें भी पढ़ी । परिणामतः कमलेश्वर के व्यक्तित्व और कृतित्त्व के सम्बन्ध में जो सत्य और रोचक बाते सामने आयी वह किसी आश्चर्य से कम नहीं थी । कमलेश्वर को विमल मित्र ने ''स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्यकार ही नहीं विश्व साहित्यकार माना है ।'' कमलेश्वर की नितान्त यथार्थवादी दृष्टि, प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं चरम आत्मविश्वास भरे स्वर से प्रभावित होकर शोध-कार्य करने की मेरी जिज्ञासा बलवत्ती हुई ।

कमलेश्वर सन् १९६० के बाद के उपन्यासकारों में प्रमुख हस्ताक्षर हैं । प्रारंभ से ही उपन्यास विषय में रुचि होने के कारण मैं ने कमलेश्वर के उपन्यास साहित्य पर शोध-कार्य करने का निश्चय किया । शोध-कार्य का विचार परिपूर्ण करने के लिए मैं प्रथम मार्गदर्शक की खोज में लग गई । इसी सिलसिले में मैं सौराष्ट्र विश्व विद्यालय के भूतपूर्व रीडर श्री गिरीशभाई त्रिवेदी से मिली । उन्होंने मुझे डॉ. संजयभाई आसोदरिया (अध्यक्ष, श्रीमती आर.आर.पटेल महिला कॉलेज-राजकोट) से मिलने का सुझाव दिया । डॉ.संजयभाई आसोदरिया से प्रारंभिक विचार विमर्श के बाद मेरी जिज्ञासा और भी बलवत्तर हो गयी । उन्होंने बड़ी सरलता,सहजता और आत्मीयता से कमलेश्वर के सभी उपन्यासों को पढ़ जाने के लिए प्रेरित किया । डॉ.संजयभाई आसोदरिया हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ, प्रखर चिन्तक और विचारक है, जिनका मुझ पर सौहार्दपूर्ण व्यवहार हमेंशा बना रहा ।

डॉ. संजयभाई आसोदरिया ने मुझे हर कदम पर आलोच्य विषय 'कमलेश्वर के उपन्यासों में समसामयिक चेतना' से जुड़े शोध-कार्य को लेकर आगे बढ़ने का हौसला बढ़ाया और निरन्तर सकारात्मक रुख अपनाते हुए प्रेरित भी किया । इन्हीं से मुझे इस शोध-कार्य को यथा समय पूर्ण करने की शक्ति और दृष्टि भी मिली । आज मैं अपने शोध-कार्य की परिपूर्णता की स्थिति में पहुँचने पर हार्दिक सुख का अनुभव कर रही हूँ ।

◈ पूर्ववर्ती शोधकार्य

कमलेश्वर हिन्दी साहित्य के स्वातन्त्र्योत्तर साहित्यकार के रूप में बहुचर्चित रहे हैं । सामग्री संकलन के समय से ही कमलेश्वर पर जो शोध कार्य हुए हैं, उसके विषय में मुझे जानकारी मिलती गयी । मुझे अनुसंधान के दौरान कमलेश्वर के कथासाहित्य पर जो सामग्री प्राप्त हो पायी वह निम्नांकित है :

(१) 'कमलेश्वर का कथा साहित्य'-माधुरी शाह
(२) 'कमलेश्वर और उनका कथा साहित्य एक अनुशीलन'- डॉ. कुन्ता ठाकुर
(३) 'कमलेश्वर' : सम्पादक -मधुकर सिंह
(४) उपन्यासकार कमलेश्वर : संवेदना और शिल्प -डॉ.महेन्द्रकुमार देशाणी

इनमें प्रथम पुस्तक एक शोध-प्रबन्ध है, वह साहित्य रत्नालय कानपुर से मार्च १९८२ में प्रकाशित हुआ है ,जिसमें कमलेश्वर की कहानियों पर अधिक बल दिया गया है ।

द्वितीय पुस्तक भी एक शोध-प्रबन्ध है जो अप्रकाशित है । इसमें कमलेश्वर के कहानीकार एवं उपन्यासकार दोनों रूपों की चर्चा की गई हैं । परन्तु अद्यावधि प्रकाशित कमलेश्वर के सभी उपन्यासों का अनुशीलन नहीं किया गया है ।

तीसरा पुस्तक 'कमलेश्वर ' मधुकरसिंह द्वारा सम्पादित और शब्दकार प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित एक आलोचनात्मक रचना है जिसमें विविध विद्वानों द्वारा उनके विविध साहित्य-स्वरूपों पर संक्षिप्त लेख प्रकाशित किये गए है ।

चौथा पुस्तक भी एक शोध-प्रबन्ध है जो अप्रकाशित है । इसमें कमलेश्वर के उपन्यास की संवेदना और शिल्प पक्ष की चर्चा की गई है ।

ये सारे ग्रंथ मेरे लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं । इन ग्रंथों में उपलब्ध सामग्री ने मेरे शोध-कार्य में उपस्थित कठिनाइयों को सुलझाने में महदअंश में सहायता की हैं ।

सामग्री संकलन

शोध-कार्य एवं तत् सम्बन्धी सामग्री संकलन करना काफी कठिन कार्य है । साथ ही विश्वसनीय सामग्री ही शोध की आधारशिला है । सामग्री जितनी पूर्ण, प्रामाणिक एवं वैज्ञानिक हो, शोध-कार्य उतना ही ठोस व स्तरीय बनता है । कमलेश्वर पर अध्ययन कार्य प्रारंभ करने के साथ ही उनके समग्र साहित्य को एकत्र करने का प्रश्न उपस्थित हुआ । मैं ने विविध प्रकाशनों से सूची मंगवा कर उचित पुस्तकों को चुनकर मंगवाया ।

कमलेश्वर के उपन्यास सम्बन्धी आलोचनात्मक पुस्तकें मुझे म्युनिसिपल महिला आर्ट्स,कॉमर्स एण्ड होमसायन्स कॉलेज-गोंडल, एम.बी.आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज-गोंडल,महाराजा भगवतसिंहजी पुस्तकालय-गोंडल, बहाउदीन विनयन कॉलेज-जूनागढ, सौराष्ट्र विश्व विद्यालय-पुस्तकालय-राजकोट, गुजरात विद्यापीठ-अहमदावाद से प्राप्त हुई । कमलेश्वर के सभी उपन्यासों को प्राप्त करने के लिए मुझे काफी मेहनत करनी पड़ी । उनके कुछ उपन्यास मुझे प्रविण पुस्तक भण्डार-राजकोट से प्राप्त हुए । अधिकांश उपन्यास राजपाल एण्ड सन्स,कश्मीरी गेट-दिल्ली, लोकभारती प्रकाशन-इलाहाबाद से प्राप्त हुए ।

इसके बाद मैं ने राधाकृष्ण प्रकाशन-दिल्ली,राजकमल प्रकाशन- दिल्ली, साहित्य भारती-कानपुर आदि से दूरभाष व्यवहार करके कुछ पुस्तकें प्राप्त की । विषय सम्बन्धी सामग्री प्राप्त करके मैं ने उसका अध्ययन प्रारंभ किया । अध्ययन करते समय मेरे मन में अनेक कठिन सवाल उठे । अतः मेरे परम श्रद्धेय गुरुवर्य और अनेक विद्वानों से साक्षात्कार करके गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न किया । इस प्रकार सहृदयपूर्ण, सक्रिय तथा आत्मीय लोगों के सहयोग से मेरी सामग्री संकलन की कष्टप्रद यात्रा पुरी हुई और इसके परिणाम स्वरूप यह शोध-प्रबन्ध विद्वतजनों के करकमलों में आज मैं समर्पित करने जा रही हूँ ।

◈ प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की विशेषताएँ

(१) प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में हिन्दी कथा-साहित्य में कमलेश्वर की महत्ता को प्रतिपादित करने का विनम्र प्रयास किया गया है ।

(२) आलोच्य उपन्यासकार के अद्यावधि प्रकाशित उपन्यासों का सांगोपांग अध्ययन करने का यह सर्वप्रथम प्रयास है ।

(३) कमलेश्वर के जीवन, व्यक्तित्व और साहित्य के विषय में विस्तृत जानकारी देने का प्रयास है ।

(४) स्वातन्त्र्योत्तर साहित्यकारों में कमलेश्वर का स्थान निर्धारित करते हुए प्रासंगिक महत्त्व प्रतिपादित करने का विनम्र प्रयास है ।

(५) सातवें दशक के उपन्यासकारों में कमलेश्वर के प्रदान को स्पष्ट करना ।

(६) युग चेतना के प्रति साहित्यकार का दायित्व स्पष्ट करना ।

(७) कमलेश्वर के उपन्यासों को समसामयिक दृष्टि से एक साथ देखने का प्रथम प्रयत्न है ।

(८) कमलेश्वर के उपन्यासों को राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सभी परिप्रेक्ष्य में एक साथ विभिन्न समस्याओं का अवलोकन एवं परिशीलन करने का सर्वप्रथम प्रयास है ।

(९) आलोच्य उपन्यासों की समस्याओं, उदेश्यों और संदेशों को स्पष्ट करने का सर्वप्रथम प्रयास है ।

(१०) उपन्यास में अभिव्यक्त युग-चेतना के माध्यम से कमलेश्वर की युग-चेता दृष्टि का मूल्यांकन करना ।

(११) कमलेश्वर लिखित समग्र उपन्यासों में अभिव्यक्त युग-चेतना को स्पष्ट करना ।

◈ प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का महत्त्व

इस संसार की प्रत्येक वस्तु का अपने आप में महत्त्वपूर्ण स्थान है । इस दृष्टि से किसी विषय का शोध-परक अध्ययन और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है । वस्तुतः लेखक की रचनाओं को समझने के लिए उसकी भावनाओं का अध्ययन एवं मूल्यांकन पर्याप्त नहीं हो सकता । परन्तु इन भावनाओं के पीछे कौन-सी चेतना क्रियाशील है उसे जानना भी परम आवश्यक है । आधुनिक युग में कहानी-उपन्यास लिखनेवालें बहुत लेखक हैं, लेकिन युगीन चेतना का यथार्थ चित्रांकन करने में कमलेश्वर सफल रहे हैं ।

कमलेश्वर के उपन्यासों में स्वतंत्रतापूर्व और स्वातन्त्र्योत्तर भारत के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन का अत्यंत मार्मिक चित्रण हुआ है । लेखक के लेखन के केन्द्र में मध्यवर्गीय व्यक्ति और उसकी अनन्त समस्याएँ हैं । लेखक ने अपने कथा-साहित्य में विभिन्न रिश्तों को नये आलोक में देखा-परखा है, जिसका इस शोध-प्रबन्ध के माध्यम से पता लग सकता है ।

कमलेश्वर के कथा साहित्य में भले ही मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्गीय जीवन को चित्रित किया गया हो लेकिन वे जीवन की सच्चाई और सादगी की हिमायत करते है। लेखक अपनी रचना में भारतीय समाज का कटु सत्य और छोटे-छोटे ब्यौरे को संजो पाये हैं। कथाओं के बारीक रेशे भी लेखक की सूक्ष्म दृष्टि से छूट नहीं पाये हैं। प्रस्तुत बात का सांगोपांग वर्णन शोध-प्रबंध में किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध से महानगर और महानगर से जुड़े सभी तथ्यों का पता चलता है जैसे कि लैम्पपोस्ट, पब, शराब, सेक्स, संगीत, स्वच्छंद नारी, भूख, गरीबी, घुटन आदि .....

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध से युग की वास्तविक परिस्थिति का ज्ञान प्राप्त होता है। मानवीय सम्बन्ध किस प्रकार टूट रहे हैं ? सम्बन्धों में आत्मीयता नहीं रही है। स्वार्थ की कगार पर खड़ी इस दुनिया को इस शोध-प्रबन्ध के माध्यम से देखा-परखा और समझा जा सकता है।

मेरा यह शोध-प्रबन्ध शोधान्सु एवं युवावर्ग को नई राह प्रशस्त करेगा ऐसी मुझे आशा है।

◈ कृतज्ञताज्ञापन

किसी के प्रति आभार अथवा कृतज्ञता ज्ञापित करना वास्तव में अनुभूति का विषय होता है, अभिव्यक्ति का नहीं , परन्तु कभी-कभी अभिव्यक्ति अनुभूति को निरन्तर ताजगी देती है। इसके अतिरिक्त साहित्य में अभिव्यक्ति का भी अपना एक विशिष्ट मूल्य हुआ करता है। कृतज्ञता ज्ञापित करना भले ही एक औपचारिकता हो, परन्तु उसकी अनिवार्यता को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के विषय चयन के प्रारंभ से लेकर अनुष्ठान की पूर्णाहुति तक श्रद्धेय डॉ.संजयभाई आसोदरिया के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करती हूँ। उनकी प्रेरणा, प्रोत्साहन,स्नेह,धैर्य तथा सक्रिय सहयोग एवं निर्देशन में इस शोध-कार्य को मैं निश्चित समयावधि में पूर्ण कर सकी हूँ। उन्होंने लगातार तीन-वर्ष तक मुझे काफी कठिनाईयों के बीच निरन्तर आगे बढ़ने की प्रेरणा एवं शक्ति प्रदान की है। डॉ.संजयभाई आसोदरिया ने अपना मूल्यवान समय देकर विषय सम्बन्धी जिज्ञासाओं का निराकरण किया तथा महत्त्वपूर्ण जानकारी देकर अनजाने तथ्यों को

उद्घाटित किया । मैं डॉ.आसोदरिया साहब के प्रति श्रद्धान्वित हूँ और कृतज्ञता रूपी पुष्प गुरुवर के चरणों में अर्पित करती हूँ ।

मेरी इस शोध-यात्रा में मुझे कई विद्वानों का असीम स्नेह एवं मार्गदर्शन मिला है । उनमें डॉ. बी.के.कलासवा (अध्यक्ष, हिन्दी भवन,सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट) की मैं आभारी हूँ जिनकी ओर से मुझे यथा समय सुचारू मागदर्शन मिलता रहा । डॉ. एस. के.मेहता (रीडरश्री,हिन्दी भवन,सौराष्ट्र विश्वविद्यालय,राजकोट) की मैं आभारी हूँ, जिनके सुझावों से मेरे शोध-कार्य को गति मिली है । इसके अलावा डॉ.गिरीशभाई त्रिवेदी (पूर्व रीडर,हिन्दी भवन-राजकोट) एवं डॉ.एस.पी.शर्मा (पूर्व अध्यक्ष,हिन्दी भवन-राजकोट) का मैं आभार मानती हूँ उनके मागदर्शन एवं अनुभवों से में हंमेशा लाभान्वित एवं प्रोत्साहित होती रही हूँ ।

मैं अपने माता-पिता के प्रति अधिक कृतज्ञ हूँ जिनके अपार स्नेह और वात्सल्य से आज मैं इस स्थान पर पहुँच पाई हूँ ।

मैं परम आदरणीय मेरे ससुर और सास का आभार मानती हूँ कि जिन्होंने कभी भी समय-असमय का ध्यान न रखते हुए मेरे कार्य में सहयोग प्रदान किया है । मैं अपने जीवनसाथी संजय व्यास के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिन्होंने पारिवारिक एवं व्यावसायिक व्यस्तता के बावजूद हर कदम पर मेरा साथ दिया है और मेरी अभिव्यक्ति को टंकण-कार्य करके लिपिबद्ध किया है । मेरे पुत्र उत्सव ने अपनी सहृदयता व्यक्त करते हुए मुझे सदैव सहायता की है ।

मेरे चिंतन से निरन्तर जुड़े रहकर मेरा मार्ग प्रशस्त करनेवाले बन्धुवत प्रा. डॉ.मुकेशभाई तन्ना, प्रा.डॉ.कमलेशभाई देसाई, प्रा.डॉ.कपिलभाई त्रिवेदी की मैं तहेदिल से शुक्र गुजार हूँ ,जिन्होंने हर समय तत्परता दिखाकर मेरे कार्य में सहायता की है ।

मेरी कॉलेज के आचार्या महोदया डॉ.मिनाक्षीबहन भट्ट का मुझे कुशल मार्गदर्शन मिला है, एवं कॉलेज के सभी कर्मचारियों से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से उचित सहयोग प्राप्त हुआ है । भाषा साहित्य से जुड़े प्रा.डॉ.प्रविणाबहन रावल, प्रा.डॉ.स्मीताबहन पटेल,प्रा.डॉ.कुसुमबा जाडेजा,प्रा.डॉ.पारूलबहन मेहता,प्रा.डॉ.जयश्रीबहन जोशी, प्रा.डॉ.आशाबहन पंडया, प्रा.सुधाबहन भट्टी, प्रा.दर्शनाबहन व्यास की ओर से सार्थक समर्थन मिलता रहा । कॉलेज के ग्रंथपाल आशाबहन गांगुर्डे ने हर समय तत्परता के साथ मेरी आवश्यकताओं की पूर्ति करके मेरे शोध-कार्य में सहायता की है ।

मेरे इस शोध-प्रबन्ध को निश्चित समयावधि में पूर्ण करने में मुझे बहुत से अध्यापकों का समर्थन मिला है जो अपनी व्यस्तता के बावजूद भी हर समय, हर सम्भव प्रयास करके मेरे बोझ को हलका करते रहे । प्रा. दोमडीया साहब, प्रा.डॉ.दवे साहब, प्रा.जयश्रीबहन मेहता, प्रा. नीताबहन जसाणी, प्रा.बीनाबहन जोशी, प्रा.डॉ.ठक्कर साहब, प्रा.डॉ.पनारा साहब के साथ विचार विमर्श से मेरा संशोधन सर्वग्राही एवं समृद्ध बन सका है ।

इस अवसर पर मैं उन ग्रंथालयों एवं ग्रंथपालों के प्रति आभार व्यक्त करना चाहती हूँ जिन के सहयोग के बीना मेरा यह कार्य असम्भव ही था । जिन में म्युनिसिपल महिला आर्ट्स, कॉमर्स एण्ड होम सायन्स कॉलेज-गोंडल, श्रीमती जे.सी.धाणक कॉलेज-बगसरा, एम.बी.आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज-गोंडल, श्रीराम मंदिर पुस्तकालय-गोंडल, सौराष्ट्र युनिवर्सिटी-ग्रंथालय, राजकोट, बहाउद्दीन आर्ट्स कॉलेज-जुनागढ के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ। मेरे अध्ययन को विकसित एवं विस्तरित करने में उनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है । साथ ही उन तमाम लोगों के प्रति मैं कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ जिनकी सद्भावना मुझ से जुड़ी है और इस शोध-कार्य में प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से वे सहभागी रहे हैं ।

अंततः उस परम कृपालु परमात्मा इष्टदेव श्री एकलिंगजी तथा भगवती देवी गायत्री माँ एव कुळदेवी श्री खोडियार माँ के चरणों में अपनी श्रद्धा प्रकट करती हूँ । जिनके असीम आशीर्वाद से मैं शक्ति व सामर्थ्य जुटाकर इस शोध-यात्रा को पूर्ण कर पाई हूँ ।

स्थानः गोंडल — विनीत

दिनांकः / /२०१०

(प्रा. जागृति एन.पंडया)

अनुक्रमणिका

◈ **प्रथम अध्याय :-**

कमलेश्वर और उनका रचना संसार १-६६

(क) कमलेश्वर का व्यक्तित्त्व । ०४

(ख) कमलेश्वर का कृतित्त्व । २७

(ग) पुरस्कार और सम्मान । ५५

(घ) निष्कर्ष । ५६

◈ **द्वितीय अध्याय :-**

समसामयिक परिस्थितियाँ ६७-११५

(क) प्रस्तावना । ६९

(ख) समसामयिकता का अर्थ एवं परिभाषा । ७१

(ग) समसामयिक परिस्थितियाँ । ७५

(घ) निष्कर्ष । १०७

◈ **तृतीय अध्याय :-**

सातवें दशक के उपन्यासों में समसामयिक चेतना ११६-२१८

(क) प्रस्तावना । १२०

(ख) हिन्दी उपन्यासों का क्रमिक विकास । १२३

(ग) सातवें दशक के उपन्यास एवं उपन्यासकार । १७७

(घ) सातवें दशक में कमलेश्वर और उनका स्थान । १९०

(च) सातवें दशक के उपन्यासों में समसामयिक चेतना : १९२

(i) सामाजिक चेतना । १९२
(ii) राजनीतिक चेतना । २००
(iii) आर्थिक चेतना । २०३
(iv) धार्मिक चेतना । २०६
(v) सांस्कृतिक चेतना । २०८
(vi) साहित्यिक चेतना । २१०

(छ) निष्कर्ष । २१४

◈ **चतुर्थ अध्याय :-**
समसामयिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में कमलेश्वर के उपन्यासों का अध्ययन २१९-३७०

(क) प्रस्तावना । २२३

(ख) कमलेश्वर के उपन्यासों का वर्गीकरण एवं प्रवृतिगत विश्लेषण । २२६

(ग) कमलेश्वर के उपन्यासों का परिचयात्मक अध्ययन । २३०

(घ) कमलेश्वर के उपन्यासों मे समसामयिक चेतना : ३०५
- (अ) सामाजिक चेतना । ३०७
- (ब) राजनीतिक चेतना । ३२५
- (क) आर्थिक चेतना । ३४३
- (ड) सांस्कृतिक चेतना । ३५५

(च) निष्कर्ष । ३६१

पंचम अध्याय :-

उपसंहार ३७१-३८२

परिशिष्ट

-ग्रंथानुक्रमणिका ३८३-३९४
- (१). आधार ग्रंथ ।
- (२). सहायक संदर्भ ग्रंथ ।
- (३). शब्द कोश ।
- (४). पत्र-पत्रिकाएँ ।

प्रथम अध्याय

कमलेश्वर और उनका रचना संसार

अध्याय- १

कमलेश्वर और उनका रचना संसार

क्रमांक	विगत	पृष्ठ संख्या

(क) कमलेश्वर का व्यक्तित्त्व : १-२७

(१) प्रस्तावना । ०४

(२) जन्म एवं परिवार । ०५

(३) बाल्यकाल । ०६

(४) शिक्षा-दीक्षा संस्कार । ०८

(५) पारिवारिक जीवन । ११

(६) स्वभाव : १३

(अ) मैनपुरी के प्रति लगाव । १६

(ब) एक प्रतिबद्ध वामपंथी । १७

(क) दृढ़ संकल्पी । १९

(ड) व्यंग्य प्रकृति । २०

(इ) स्पष्टवादिता । २०

(ई) अभिरूचियाँ । २१

(७) वेशभूषा । २२

(८) रहन-सहन । २३

(९) आतिथ्य-भाव । २४

(१०) दिनचर्या । २४

(११) व्यवसाय । २५

(१२) निधन । २७

क्रमांक	विगत	पृष्ठ संख्या
(ख)	**कमलेश्वर का कृतित्व :**	२७-४७
(१)	कहानीकार कमलेश्वर ।	३०
(२)	उपन्यासकार कमलेश्वर ।	३३
(३)	पत्रकार और सम्पादक कमलेश्वर ।	३७
(४)	नाट्यरूपान्तरकार कमलेश्वर ।	४०
(५)	आलोचक कमलेश्वर ।	४१
(६)	दूरदर्शन और कमलेश्वर ।	४३
(७)	फिल्मजगत और कमलेश्वर ।	४७
(ग)	**पुरस्कार और सम्मान ।**	५५
(घ)	**निष्कर्ष ।**	५६
(च)	**कमलेश्वर की साहित्ययात्रा ।**	५८
(छ)	**संदर्भ ग्रन्थ सूची ।**	६३-६६

(क) कमलेश्वर का व्यक्तित्त्व :

(१) प्रस्तावना

किसी भी साहित्यकार के साहित्य की विवेचना करने से पहले उसके व्यक्तित्त्व का परिचय प्राप्त करना अनिवार्य होता है, क्योंकि वह जिन संस्कारों, परिस्थितियों, क्षणों एवं अनुभवों का साक्षात्कार करता है, उससे वह जाने अनजाने उन से प्रभावित भी होता है और उसका प्रभाव उसके साहित्य पर भी पड़ता है । अतः साहित्यकार की जीवनयात्रा के विविध पहलुओं को समझना आवश्यक हो जाता है ।

एक व्यक्ति की सही पहचान उसकी व्यक्तिगत रूचियों,आदतों, प्रतिक्रियाओं,परिवेश एवं सृजन के सहारे सम्भव होती है । व्यक्तित्त्व व्यक्ति के सम्पूर्ण मानसिक और शारीरिक संगठन का नाम है । हर व्यक्ति के व्यक्तित्त्व निर्माण में उसके परिवेश का बड़ा हाथ रहता है । इस सम्बन्ध में श्याम शर्मा का कथन है – ''परिवेश हर व्यक्ति को मिलता है ,किन्तु उसे भोगने की प्रकिया हर एक की अलग-अलग हुआ करती हैं । परिवेश के द्वारा ही व्यक्ति का निर्माण या विघटन सम्भव होता है । ''[१] वास्तव में एक व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्त्व निर्माण में उसके परिवार ,परिवेश और समाज का योगदान महत्त्वपूर्ण हैं ।

हिन्दी कथा साहित्य में कमलेश्वर का नाम बड़े आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है । हिन्दी के इस साहित्यकार ने अपने अनेक उपन्यासों एवं कहानियों के माध्यम से हिन्दी साहित्य भण्डार को समृद्ध किया है । जीवन की विषम परिस्थितियों से निरन्तर संघर्ष करने वाले ,अभावों में जीवन जीने वाले तथा दस-ग्यारह साल की उम्र से क्रान्तिकारियों के साथ सम्पर्क में आकर उनके सन्देश वाहक का कार्य करने वाले, जीवन से मुँह न मोड़ने वाले और हमेशा दलितों और पीड़ितों की समस्याओं के विषय में चिंतित रहने वाले कमलेश्वर लेखन कार्य में निरन्तर व्यस्त थे । ऐसे कथाकार के जीवन के विविध पक्षों और घटनाओं का ज्ञान कथा साहित्य के अध्येता और पाठक के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय हो सकता है । कमलेश्वरजी का सम्पूर्ण साहित्य उनकी निजी अनुभूतियों का दस्तावेज हैं । उन्होंने अपने जीवन में जो कुछ देखा और भोगा था, उसे ही लिपिबद्ध किया है । उनके साहित्य को समझने के लिए तथा उनके मर्म को उद्‌घाटित करने के लिए यह आवश्यक है कि हम कमलेश्वरजी के सर्जक व्यक्तित्त्व का परिचय प्राप्त कर लें, जिसकी अमिट छाप उनके व्यक्तित्त्व पर पड़ी थी ।

(२) जन्म एवं परिवार

सक्सेना कायस्थ कुल में उत्पन्न कमलेश्वर का नाम कमलेश्वरप्रसाद सक्सेना था। कालांतर में 'प्रसाद' अंश को अपने नाम से पृथक कर दिया और साहित्य जगत में वे कमलेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुए। वह बाल्यकाल में 'कैलाश' नाम से जाने जाते थे। कमलेश्वर का जन्म ६ जनवरी सन् १९३२ को उत्तरप्रदेश के मैनपुरी नामक कस्बे में हुआ था। उनकी माता का नाम शान्तिदेवी और पिता का नाम जगदम्बाप्रसाद था। कमलेश्वर की माँ उनके पिता की दूसरी पत्नी थी। उनकी माँ वैष्णव संप्रदाय में पली हुई औरत थीं। उनके तीन पुत्रों में कमलेश्वर सब से छोटे थे।

मैनपुरी कस्बा आगरा और इटावा नगरों के पास है। इस मैनपुरी को न शहर की संज्ञा दी जाती है न गाँव की। इसे इन दोनों के बीच के कस्बे के रूप में जाना जाता है। कस्बे में शहर और गाँव दोनों की मिली-जुली विशेषताएँ अल्पाधिक मात्रा में मिल जाती है। यह शहर और गाँव का मिलन बिन्दु है। जहाँ प्राचीन और नवीन दोनों प्रकार के लोग मिल झुलकर एक साथ रहते हैं।

वे लोग अधिक भाग्यशाली होते हैं जो अपने पितृपक्ष तथा मातृपक्ष दोनों ओर के पारिवारिक सुखों का आनन्द प्राप्त करते हैं, किन्तु कमलेश्वर ऐसे भाग्यशालियों में से नहीं थे। बालक कमलेश्वर पर उनके पैतृक गुणों तथा संस्कारों का प्रभाव पड़ना चाहिए था, किन्तु उनसे वे वंचित रह गये। पितामह की दुलार भरी गोद और आशीर्वाद उन्हें नहीं मिला। कमलेश्वर ने अपने पितामह को कभी नहीं देखा था। पिताजी की छत्रछाया भी उन पर ज्यादा समय तक न रही। कमलेश्वर ने अपनी छोटी सी आयु में ही अपने पिता को भी खो दिया था। इस प्रकार बालक कमलेश्वर पितृसुख से भी वंचित हो गये। पिता का संरक्षण, मार्गदर्शन और दुलार सब कुछ खो गया। माता ही इनके पिता और माता दोनों का उत्तरदायित्व निभाती थी।

कमलेश्वर के पिता के पिता माधवप्रसाद जिनका सम्बन्ध महाराजा चैतसिंह से था। माधवप्रसाद, भवन निर्माण में ओवरसियस थे। माधवप्रसाद को जमींदारी प्राप्त थी और अंग्रजों के खिलाफ उनमें विद्रोह की आग भी भड़क उठी थी। बाबा की यह स्वातंत्र्य प्रियता किसी रूप में बालक कमलेश्वर में भी उतर आई।

महाराजा चैतसिंह से माधवप्रसाद को जो पद और जमींदारी प्राप्त हुई थी वह उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र जगदम्बाप्रसाद को मिली। जगदम्बाप्रसाद ने पहली

पत्नी रामकुँवर की मृत्यु के पश्चात् दूसरा विवाह शान्तिदेवी के साथ किया था। पहली पत्नी से जो पुत्र हुआ उसका नाम रामेश्वरप्रसाद था। दूसरी पत्नी से दो पुत्र सिद्धार्थ और कमलेश्वर हुए थे। रामेश्वरप्रसाद को पिता जगदम्बाप्रसाद की मृत्यु के पश्चात् जमींदारी मिली। इनकी विमाता अर्थात् कमलेश्वर की माँ ने पारिवारिक मर्यादा को दृष्टि में रखकर जमींदारी के विषय में रामेश्वरप्रसाद से कभी कुछ नहीं कहा और घर की आर्थिक स्थिति बिगड़ती ही चली गई।

जगदम्बाप्रसाद साधु स्वभाव के तथा साहित्यिक प्रकृति के व्यक्ति थे। वे माँ दुर्गा के बड़े भक्त थे। जगदम्बाप्रसाद नित्य मन्दिर जाते और पूजा-अर्चना में अपना मन लगाते थे। वे शान्त चित्त और उदार थे। वह जरूरत पड़ने पर आधी रात को भी दौड़ पड़ते थे। उस समय के अन्य जमींदारों की तरह वे नहीं थे। यही कारण था कि उनके परिवार को गाँव में आदर एवं सम्मान की नजरों से देखा जाता था।

(३) बाल्यकाल

जीवनयात्रा का सब से मधुर अंश बचपन का होता है। भविष्य निर्माण के अनेक बीज यहीं अनजाने में अंकुरित होते हैं, जिन पर भविष्य पल्लवित, पुष्पित और फलित होता है। कहावत है कि ''सब दिन रहत न एक समान'' यदि बचपन आनन्द, वैभव का रहता है तो आगे का जीवन कहीं-न-कहीं इन वैभवों से रिक्त भी होता है, और तब बचपन की याद बड़ी रोमांचक प्रिय और मधुर लगती है। यदि बचपन दुःखों,अभावों और विवशताओं से पूर्ण रहा होता है तब जब कभी भविष्य में सुख, वैभव और आनन्द प्राप्त होता है तो बचपन की याद मन में एक त्रासदी छोड़कर रह जाती है। कमलेश्वर के बचपन ने मनुष्य को जीवन की प्रयोगशाला में खरा उतरने और पुरुषार्थ करने की प्रेरणा दी है।

कमलेश्वर का बचपन अभावों, दुःखों और संतापों के बीच गुजरा था। पितामह नहीं थे, पिता भी तीन-चार साल की आयु में ही चल बसे थे। आपदाओं का पहाड़ इस परिवार पर अचानक ही टूट पड़ा था,जिस के तले सब कुछ समाप्त हो गया था। घर के अभावों ने बालक कमलेश्वर को काफी जिम्मेदार बना दिया था। कमलेश्वर कहते है कि- ''एक अमीर कहे जाने वाले घर में गरीब की तरह रहना... खाना खाकर भी भूखा उठना, अकुलाहट भरे दुःखों के बीच भी हँस सकना, बच्चा होते हुए भी वयस्कों की तरह निर्णय ले सकना, यह मेरी आदत नहीं मजबूरी थी।''[२]

सामाजिक पहचान और आर्थिक सम्पन्नता सब कुछ नष्ट हो गई थी । जमींदारी का सुख भोगनेवाला श्री जगदम्बाप्रसाद सक्सेना का परिवार मात्र जमींदार कहलाने भर का रह गया था । थोक कपड़े की की दुकान अग्नि में भस्म हो गई थी और हजारों रूपयों के कर्ज ने सामाजिक प्रतिष्ठा को बहुत बड़ा घक्का पहुँचाया था । इन विपत्तियों में बालक कमलेश्वर के भविष्य का निर्माण हो रहा था । सिद्धार्थ इस परिवार के सदस्यों का पेट भरने का दायित्त्व लेकर शहर में नौकरी करने जाता है । सिद्धार्थ अपना पेट काटकर भी अपने घरवालों का पेट भरता था । सिद्धार्थ कभी-कभी अपने अखबार और दूध को बन्ध कर के बालक कमलेश्वर की लालसाओं की एक खिड़की भी खोल देता था । माँ अपनी साड़ियों की किनारियों को सहेजकर रखती थी, और स्कूल खूलने पर अपने बच्चों का नया बस्ता सिलती थी । ऐसे विषम समय में जब सिद्धार्थ की मौत असमय हो जाती है तो ऐसा लगता है कि मानों इस परिवार का अंतिम परीक्षा का समय आ गया हो । सिद्धार्थ की मौत ने सारे सपनों को तोड़कर रख दिया ।

वह लड़ाई का जमाना था । सर्वत्र अभाव ही अभाव दृष्टिगोचर होता था । कमलेश्वर का कथन है कि- ''सामन्ती घर बुरी तरह ढह चुका था । नौकर-चाकर बिदा हो चुके थे, गाय-भैंसे जिन्दा रह सकें इसलिए उन्हें गाँव भेज दिया गया था ! पर हम जिन्दा रह सकें-इसका कोई तरीका नजर नही आ रहा था । माँ रात ढाई तीन बजे उठकर हाथों में कपड़ा लपेट-लपेट कर चक्की से आटा पीसती, बर्तन धोती और सुबह होते-होते नहा धोकर 'पुराने जमींदार घराने की मालकिन' हो जाती । गरीब और टूटे हुए मुहल्लेवालों के घावों पर मरहम लगाती और रात को सूने कमरे में बैठकर चुपचाप रोया करती । सिद्धार्थ के कपड़े बक्से में से निकाल-निकाल कर देखती और बुरी तरह रोती... घर की ऊँचाई और ठोस दीवारें एक भी सिसकी बाहर न जाने देती और दोपहर में माँ सिद्धार्थ के उन्हीं कपड़ों को काट-काट कर मेरे नाप का बनाया करती ।.........मण्डियों में बेशुमार अन्न,घी,गुड़,आलू और कपास थे, पर माँ की धोती की खूँट में एक दो नोट और कुछ सिक्के थे.....और मैं जब अन्न लेने जाता था , तो दुकानदार बड़ा तराजू पीछे सरका कर सब से छोटेवाले तराजू से मेरे लिए चीजें तौलता था । दुनिया का यह व्यवहार मुझे अपमानित करता था । ''[३]

इतने घोर अपमानों और अभावों के बीच कमलेश्वर के व्यक्तित्त्व का निर्माण हो रहा था । उनके अन्दर विद्रोह का स्वर बुलबुला रहा था । विद्रोह के बारे में कमलेश्वर की सोच हैं - '' मेरी माँ के वैष्णव संस्कार मुझे विद्रोही होने से रोकते रहे और यह दबाया हुआ विद्रोह मेरी घोर अप्राकृतिक चेष्टाओं में फूटने लगा । वह दुःख का दौर था और उसके दौर में सहयोगी मेरे सहपाठी थे । ''[४]

कमलेश्वर के बचपन की एक मार्मिक घटना का दर्द उन्हीं के शब्दों में - '' चोटें लगती थी ,तो मैं दर्द से कराहता आैर रास्ते में बैठ-बैठकर अकेला अस्पताल पहुँचा करता था और मुझे अकेला देखकर वह जालिम कम्पाउण्डर बड़ी बेरहमी से घाव को दबा दिया करता था । मैं दर्द से बिलबिला कर सहारे के लिए कभी उसकी बाँह पकड़ लेता था, तो वह मेरा हाथ बुरी तरह झटककर डाँटता था और मैं अपने आँसू दबाये मरहम-पट्टी करवा लेता था । वहाँ से निकलकर मैं इमली के पेड़ के नीचे बैठकर रो-रोकर अपना दिल हलका कर लिया करता था । ''[५] कमलेश्वर के जीवन की यह कश्रण वास्तकिता को देखकर लगता है कि सचमुच आदमी अकेला हो, तो दुनिया बहुत बेरहम हो जाती है ।

ऐसी विषम परिस्थितियों के बीच कमलेश्वर का बचपन बीता । बचपन की यातनाओं ने बालक कमलेश्वर को घिस-घिस कर कुन्दन बना दिया । स्वर्णकार सोने की कसौटी काले पत्थर पर ही करता है । ये बचपन के दिन कमलेश्वर के काले-दिनों की कसौटी समान थे । शायद उसी की फलःश्रुति है कि वे मानवता के पक्षधर एक महान साहित्यकार बन गये ।

(४) शिक्षा-दीक्षा संस्कार

कमलेश्वर की प्रारंभिक शिक्षा मैनपुरी से प्रारंभ हुई । वह स्कूल के मास्टर के भेदभाव पूर्ण व्यवहार के भी शिकार हुए थे । इस सम्बन्ध में कमलेश्वर का कथन है -''कस्बे में जो अफसर आते थे, वे बड़ी ठसक से रहते थे.....उनके लड़कें गुलदस्तों की तरह सजे हुए दर्जे में आते थे और सरकारी स्कूल के हमारे मास्टर उन्हें हंमेशा मानीटर बनाया करते थे । यह तब होता था जब कि मैं अपनी सारी उदासीनता के बावजूद दर्जे में ज्यादातर अव्वल आया करता था । यह स्थितियाँ मुझ से बर्दाश्त नहीं होती थी । ''[६]

कमलेश्वर के परिवार की सम्पन्नता परिस्थितियों वश समाप्त हो चुकी थी और चारों ओर अभाव ही अभाव था । नई किताब खरीदना बालक कमलेश्वर के लिए कठीन था । पुरानी किताब लेते तो उसमें पृष्ठ नहीं होते थे । कमलेश्वर पुस्तक के बारे में कहते हैं कि- '' मुझे आज तक अफसोस है कि मैं अपने पढ़ने के लिए कभी नयी किताबें नहीं खरीद पाया । जब मेरे साथ के लड़के अपने पिता या बड़े भाई के साथ किताबों की दुकान पर जाकर कोर्स की नयी-नयी किताबें और कापियाँ खरीदते थे, तो मेरी आँखों में आँसू आ जाते थे.... मेरे साथ कोई नहीं होता था ।''[७]

आर्थिक अभाव के कारण कमलेश्वर पुस्तकें और कापियाँ खरीद नहीं पाते थे। स्कूल खुलता था तो वहाँ जाने का उत्साह भी मन में नहीं रहता था। इसके बारे में कमलेश्वर का लिखते हैं – '' गर्मी की छुट्टियों के बाद जब स्कूल खुलता था तो वहाँ जाने का कोई उत्साह मन में नहीं होता था। पुरानी किताबें.... वह भी पूरी नहीं कापियाँ खरीदने को पैसे नहीं होते थे, इसलिए भाई साहब के आने का इंतजार रहता था, कि वे आयेंगे तो सरकारी कागज के दस्ते-दो-दस्ते लायेंगे और तब मेरी बेनाप की कापियाँ बनेगी। ... एक आने की रबर या पटरी के लिए माँ से पैसे माँगते हुए मुझे दहशत होती थी, क्योंकि माँ बेबसी में झुँझलाया करती थी। तीन-तीन दिन मैं भूगोल की कक्षा में जा नहीं पाता था , क्योंकि बाबूराम जैन की दुकान से दुनिया का नक्शा खरीदने के लिए माँ से कुछ भी कहने की मेरी हिम्मत नहीं पड़ती थी।''[८]

स्कूल में प्राप्त होनेवाले इनाम दूसरों को दे दिये जाते थे, और फिस समय पर न चूकाने की वजह से कमलेश्वर का अपमान भी होता था। फिस के बारे में कमलेश्वर का बताते है -''जब तक सिद्धार्थ थे, मेरी आधी फिस माफ हो जाती थी। पर उसके चले जाने के बाद फिर कभी मेरी अर्जी मंजूर नहीं हुई। आखिर मैंने सालाना में अव्वल आकर वजीफा लेने की ठान ली थी – क्योंकि छःमाही में मैं अव्वल आ जाता था पर सालाना में तहसीलदार, कोतवाल साहब या इन्सपेक्टर का लड़का ही अव्वल आया करता था। अव्वल आना मेरे लिए पढ़ाई की दृष्टि से उतने संतोष की बात नहीं थी, जितनी की आर्थिक विवशता के दृष्टिकोण से थी। आखिर मैं अव्वल आया पर वजीफे के लिए सिद्धार्थ मुझे मरते तक खत लिखकर पूछते रहे कि ' मिले या नहीं' पर उनके मरने तक मुझे मेरा वजीफा नहीं मिल पाया था और जब मिला था तो 'वारफंड' में आधे रूपये काट लिए गए थे।''[९]

बच्चों की प्रारंभिक शिक्षा पर जितना प्रभाव शिक्षक का पड़ता है, उतना अन्य किसी का नहीं पड़ता। चरित्र-निर्माण से लेकर भविष्य-निर्माण तक एक अच्छे सहृदय और चरित्रवान शिक्षक की शिक्षा पर प्रायः निर्भर करता है। एक दौर था जब शिक्षकों की डंडे की मार से छोटे-छोटे बच्चों के कोमल शरीर असह्य पीड़ा भोगते थे। बालक कमलेश्वर ऐसे ही कुछ शिक्षकों की चपेट में आ गये थे,जिनमें से एक की मार सह लेने के लिए अपनी कमीज के नीचे कुर्सी की गद्दी बाँधकर उन्हें जाना पड़ता था। मास्टर साहब के बारे में कमलेश्वर बताते हैं -'' पढ़ने की ओर से मेरे उन मास्टर साहब ने मेरी रुचि हटा दी थी, जो मैनपुरी की तम्बाकू खाकर गुस्से होते थे, तो उनके मुँह से फव्वारा-सा छूटता रहता था और पीटते-पीटते वे लस्त कर देते थे। मैं हंमेशा कमीज़ के नीचे छोटी कुर्सी की गद्दी बाँधकर जाया करता था और काछी मास्टर को मार डालने की साजिशें किया करता था।''[१०]

मानसिक स्वास्थ्य के लिए अच्छा वातावरण अत्यंत आवश्यक है । अल्प वयस्क बच्चों के कोमल मस्तिष्क पर यदि बुराइयों का एक भी किटाणु आ बैठा तो वह आगामी जीवन में अपना दुष्प्रभाव अवश्य दिखलायेगा , किन्तु अपवाद तो सर्वत्र होते हैं और जो अपवाद होते हैं वह विशिष्ट बन जाते हैं । कमलेश्वर भी अपवाद थे, अतः विशिष्ट भी बन सके । तत्कालीन शिक्षक और स्वयं की आर्थिक स्थिति के संदर्भ में कमलेश्वर कहते हैं कि- ‘‘ कस्बे के स्कूल में बदचलन मौलवी और मुहल्लें के चबुतरों पर बैठे रूग्ण और कुण्ठित पहलवान थे , मोटर अड्डों पर बदमाश ड्रायवर और क्लीनर थे और था अँधेरा जो सरेआम होने लगता था । पूरा कस्बा अँधेरे की चादर में लिपट जाता था और लड़ाई के जमाने में पढ़ने के लिए भी हमें मिट्टी का तैल मयस्सर नहीं होता था । तब हम कुछे 'क दोस्त शीशियाँ और कीप लेकर रात को म्युनिसिपैलिटी की लालटेनों से तैल चुराने के लिए निकलते थे । ’’[११]

किसी प्रकार अभावों और विषमताओं से लड़ते हुए कमलेश्वर ने लगभग १४ वर्ष की आयु में सरकारी स्कूल मैनपुरी से १९४६ में हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की । हाईस्कूल के बाद आगे पढ़ने का प्रश्न उत्पन्न हुआ । इन पर सब से बड़े सौतेले भाई ने यह कहा कि..‘ ज्यादा पढ़ाने से लड़के हाथ से निकल जाते हैं ’ कमलेश्वर के सौतेले भाई को यह हरगीज पसंद नहीं था कि उन्हें दसवीं के बाद आगे पढ़ाया जाय । उनके भाई उन दिनों कानपुर छावनी में ‘योरोपियन इन्स्टीटयूट’ में मैनेजर थे, जहाँ अंग्रेजी और अमरीकन सिपाही मौजमस्ती करते थे । कमलेश्वर उस समय अपने भाई के पास कानपुर में रहते थे , ‘योरोपियन इन्स्टीटयूट’ के भोग-विलास और कुत्सित दृश्यों ने किशोर कमलेश्वर के मन पर बड़ा क्रान्तिकारी प्रभाव डाला । इन्हें लगा कि यह स्थान उनके लिए नहीं है । उनका मन यहाँ के हर रास्ते पर लगे ‘नो एन्ट्री ’ बोर्डो को देखकर आहत हो उठा । वह कानपुर महानगर को छोड़कर अपने कस्बे मैनपुरी की ओर चल पड़े । वहाँ उनका सम्पर्क समाजवादी पार्टी से हो गया । मैनपुरी से कमलेश्वर आगे की पढ़ाई के लिए इलाहाबाद आ गये । यहाँ वे समाजवादी पार्टी का काम करने लगे और साथ ही कायस्थ पाठशाला इन्टरमीडिएट कॉलेज में इन्टरमीडिएट की पढ़ाई भी करने लगे । पढ़ाई और क्रान्ति दोनों साथ-साथ चलती थीं ।

कमलेश्वर ने सन् १९५० ई. में के.पी.ईटर कॉलेज इलाहाबाद से एम.ए. की उपाधि ग्रहण की थी । कमलेश्वर ने भौतिकी, गणित, अर्थशास्त्र, रसायनशास्त्र, भूगोल, हिन्दी आदि विषयों का गहरा अध्ययन किया । श्री दुष्यन्तकुमार बी.ए. में कमलेश्वर के सहपाठी एवं मित्र रहे थे । दुष्यन्तकुमार कहते है कि -‘‘ कमलेश्वर में शुश्रु से ही साधारण से कहीं अधिक प्रतिभा सूझ-बूझ एवं सुश्रुचि थी । ’’[१२]

कमलेश्वर पहले विज्ञान के विद्यार्थी थे । उस समय जमालपुर रेलवे कारखानें में इंजिनियरींग के ऐप्रेंटिशिप के लिए उन्हें दाखिल किया गया, लेकिन ट्रेनिंग में उनका मन न लगा तो छोड़ दिया ।

कमलेश्वर सन् १९५२ में एम.ए. हिन्दी में दाखिल हो गए । बी.ए. में इनके साथियों में सुप्रसिद्ध कवि दुष्यन्तकुमार थे । उन्होंने कमलेश्वर के छात्र जीवन के सन्दर्भ में लिखा है कि – ‘‘ वह एक छकड़ा सायकल पर युनिवर्सिटी आया करता था और तलब लगने पर किसी झाड़ी के पीछे या एकान्त कोने में छुपकर बीड़ी–सिगरेट पिया करता था । शायद हर महीने उसका नाम फिस जमा न करनेवाले ‘डिफाल्टर’ छात्रों की लिस्ट पर रहा करता था, क्योंकि जेब खर्च नाम की कोई चीज उसके पास न होती थी इसलिए फिस के श्रुपयों में से कुछ न कुछ वह हमेशा खर्च कर लेता था और वक्त पर उसके पास पूरे पैसे नहीं होते थे । ’’[१३] कमलेश्वर के जीवनचरित्र से मालूम होता है कि उनका छात्र जीवन भी विविध यातनाओं से पूर्ण था ।

कमलेश्वर ने अपना एक वर्ष बचाने के लिए ही एम.ए. में हिन्दी विषय पसंद किया, उस वक्त शायद उन्हें ये मालूम नहीं था कि यही विषय उन्हें बाद में पहचान देगा । इस सम्बन्ध में कमलेश्वर का कथन है – ‘‘सन् १९५२ में मैं एम.ए. हिन्दी में दाखिला ले चूका था, क्योंकि मुझे देरी होने के कारण किसी और विषय में दाखिला नहीं मिला था । अपना एक वर्ष बचाने के लिए मैंने हिन्दी में दाखिला ले लिया था और जो दाखिला लिया तो फिर मैं हिन्दी का ही बनकर रह गया । मैं शुश्र से विज्ञान का विद्यार्थी था , पर हिन्दी ने पहचान दी । यह पहचान विज्ञान नहीं दे पाता । ’’[१४]

कमलेश्वर को बचपन से ही चित्र में श्रुचि थी । वे चित्र अच्छा बना लेते थे । यदि वे लेखक न होते तो संभवतः बहुत अच्छे चित्रकार हुए होते । यह बहुत बड़े सौभाग्य की बात है कि वे तुलिका से रंग भरनेवाले चित्रकार न होकर शब्दों से मानव जीवन के चित्र अंकित करनेवाले एक सबल और सफल साहित्यकार हुए ।

(५) पारिवारिक जीवन

कमलेश्वर का परिवार प्राचीन सामंती परिवार था । कमलेश्वर के पिता का नाम जगदम्बाप्रसाद सक्सेना था । जगदम्बाप्रसाद ने प्रथम पत्नी रामकुँवर की मृत्यु के पश्चात् शान्तिदेवी से दूसरी शादी की थी । जगदम्बाप्रसाद और प्रथम पत्नी रामकुँवर

का एक पुत्र रामेश्वरप्रसाद था । इसके पश्चात् शान्तीदेवी को दो पुत्र सिद्धार्थ और कमलेश्वर हुए ।

जगदम्बाप्रसाद के पिता माधवप्रसाद को राजा चैतसिंह से जमींदारी प्राप्त हुई थी वह उनकी मृत्यु के पश्चात् जगदम्बाप्रसाद को मिली । रामेश्वरप्रसाद जगदम्बाप्रसाद की प्रथम सन्तान होने के नाते जगदम्बाप्रसाद की मृत्यु के पश्चात् वह जमींदारी उसे मिली । कमलेश्वर के सौतेले बड़े भाई रामेश्वरप्रसाद अपने को ही सम्पन्न बनाने में लगे रहे । रामेश्वरप्रसाद का परिवार इतना बड़ा था कि उसके भरण-पोषण के लिए उन्हें पैतृक जमींदारी बेच देनी पड़ी । इस प्रकार कालान्तर में जमींदार माधवप्रसाद का परिवार अभावपूर्ण जीवन व्यतीत करने पर मजबूर हो गया ।

कमलेश्वर के परिवार का एकमात्र सहारा सिद्धार्थ था । परिवार का भविष्य सिद्धार्थ पर ही निर्भर था , लेकिन नियति को कोई न रोक सका । सिद्धार्थ की अचानक मौत ने परिवार के सपनों को बिखेर दिया था । आगे चलकर कमलेश्वर अपने पैरों पर खड़े हुए । किशोरावस्था में इन्होंने किसी बड़ी उम्र की युवती से प्रेम भी किया, किन्तु वह इनके प्रतिगामी मार्ग को अवरुद्ध न कर सकी ।

दसवीं कक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् कमलेश्वर की भेंट ट्रेन में उन यात्रियों से हो जाती है, जो वस्तुतः क्रान्तिकारी समाजवादी पार्टी के थे । कमलेश्वर पूरी तरह से पार्टी के सदस्य बन जाते हैं । इसी पार्टी के ‘ जनक्रान्ति अखबार ’ में क्रान्तिकारियों की जीवनियाँ लिखते थे । कालान्तर में क्रान्तिकारी समाजवादी पार्टी के जिम्मेदार व्यक्तियों ने कांग्रेस मे शामिल होना स्वीकार कर लिया था इसकी प्रतिक्रिया कमलेश्वर पर इस प्रकार हुई - “ इस बार मैं पहले से ज्यादा अपमानित और कहीं अकेला था । इस बार मेरी आस्था ध्वस्त हुई थी । ” [१५]

इस समय कमलेश्वर गम्भीरतापूर्वक कहानी लेखन में व्यस्त हो चुके थे । कमलेश्वर ने अपने जीवन-यापन के लिए मैनपुरी के ‘प्रकाश प्रेस’ में प्रूफरिडींग का काम भी किया तथा स्थानीय पत्र में लिखते भी रहते थे । इलाहाबाद में सबसे पहले ‘ पहाड़ ’ पत्रिका में सम्पादक के रूप में काम किया । जहाँ से उन्हें पच्चीस रूपया प्रति मास मिलता था । संध्या के समय एक स्थान पर वह पेंन्टिग करने भी जाते थे, जिससे और पैसे भी मिल सके तथा परिवार का गुजारा भी ठीक से हो सके । इन सबके साथ ‘ राजा आर्ट’ में कागज के डिब्बों तथा साबून, पाउडर के रैपर्स पर छोटी-छोटी डिजाइनें बनाते थे । तात्पर्य यह था कि हर स्रोत से पैसे प्राप्त करने का यत्न करते थे ।

कमलेश्वर इलाहाबाद से प्रकाशित 'बेहार' दिल्ली से प्रकाशित 'इंगित', 'कथायात्रा', 'गंगा' आदि पत्रिकाओं का सम्पादन कार्य करते थे । प्रत्येक कार्य के पीछे परिवार का जीवन-यापन ही मुख्य था । कमलेश्वर को अपने जीवन में निरन्तर संघर्ष करना पड़ा था । पाश्चात्य विद्वान निकल्सन ने लिखा है -" Personality is a State of Tenstion and can continue only if that state is Maintained." संघर्षों के बीच ही व्यक्ति का व्यक्तित्त्व निखरता है । कमलेश्वर ने बाल्यकाल से ही बड़े-बड़े संघर्षों का सामना किया था ।

कमलेश्वर की शादी सन् १९५८ ई. में गायत्रीजी से हुई । गायत्रीजी सुशील और शिक्षित महिला थीं । इन्होंने बम्बई विश्व विद्यालय से ' पण्डित माधवराव सप्रे. ' विषय पर पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की थी । कमलेश्वर की पहली पुत्री का निधन जन्म के कुछ समय बाद हो गया था । कमलेश्वर की दूसरी पुत्री का नाम मानु है । इसका विवाह हिन्दी के प्रसिद्ध गझलकार और कमलेश्वर के सहपाठी दुष्यन्तकुमार के बेटे आलोक त्यागी से हो चुका है । इस प्रकार बाल्यकाल में अनन्त पीड़ाओं को सहनेवाले कमलेश्वर का पारिवारिक जीवन खुशियों से परिपूर्ण था ।

इस प्रकार बहुविध अनुभवों को प्राप्त कर कमलेश्वर का जीवन एक पूर्ण अक्षय पात्र बन गया था । कहा जाता है कि-" Experience Makes a man Perfect " अनुभव ही मनुष्य को पूर्णता प्रदान करता है । घाट-घाट का पानी पीकर कमलेश्वर ने अनुभव की जो पूँजी संग्रहित की थी, वही उनके उपन्यासों में अभिव्यक्त हुई है । यह कमलेश्वर के जीवनानुभवों की सच्चाई थी ।

(६) स्वभाव

कमलेश्वर बचपन से ही संकोची स्वभाव के थे । वे अपनी माँ से दुबारा रोटी भी न माँगते थे । इस सम्बन्ध में एकबार दुष्यन्तकुमार से कमलेश्वर की माँ ने ही बताया कि -'' कैलाश इतना संकोच करता है कि दुबारा रोटी तक नहीं माँगता.... मुझे जिन्दगी में यह अफसोस हमेशा रहेगा कि मेरे बेटे ने मुझ से कभी रोटी या पैसा नहीं माँगा । ''[१६] वे अपने मन की बात किसी से नहीं करते थे । उनके जीवनानुभवों ने एक ओर उन्हें अन्तर्मुखी बना दिया तो दूसरी ओर विकट परिस्थितियों का सामना करने की क्षमता प्रदान की । कमलेश्वर के अन्तर्मुखी व्यक्तित्व के बारे में दुष्यन्तकुमार का कथन है कि -'' जिस जमाने में उसने लिखना शुरु किया था और जिस संघर्ष से वह निकलकर आया था, उसने कमलेश्वर को नितांत अन्तर्मुखी बना दिया था । ''[१७]

कमलेश्वर अत्यंत संवेदनशील,भावप्रवण एवं गंभीर व्यक्ति थे । उनके स्वभाव में न तो व्यंग्य है न हास्य, लेकिन उन्होंने अपनी विलक्षण मेघा द्वारा व्यंग्य-विनोद की प्रकृति को आत्मसात कर लिया था । कमलेश्वर में अपने विरोधियों को महात कर के दोस्त बनाने की अद्‌भूत क्षमता थी । दुष्यन्तकुमार के अनुसार- ‘‘ वह यह कि आप सौ फिसदी यह तय करके जाएँ कि उनसे लड़कर लौटेंगे पर आप लड़कर नहीं लौट सकते क्योंकि घोर विरोधी को वह अपने व्यक्तित्त्व की सहजता, सौजन्य, बुद्धि और अपनी आँखों के विश्वास से पराजित कर लेता है । वह अहंवादी नहीं है, कुंठित नहीं है, उसमें एक सहज अपनापन है । ’’[१८]

कमलेश्वर अपने आदर्शो एवं सिद्धान्तों में अड़िग रहते थे । जैसे-‘सुखा काठ टूट जाएगा,मुड़ेगा नही’ कहावत के अनुसार मुड़ना कमलेश्वर के लिए धृणित और समझौते का दूसरा नाम था । कमलेश्वर स्वभाव से स्वाभिमानी थे जो टूट सकते थे मगर झुक नहीं सकते, चाहे झुकानेवाला कितना बड़ा व्यक्ति या मंत्री क्यों न हो । इस सन्दर्भ में उन्होंने स्वयं ‘मेरा पन्ना’ में लिखा है -‘‘ कमलेश्वर नाम है निड़रता और स्वाभिमान का जो जनसामान्य के हित के लिए किसी से भी टकरा सकता है ।’’[१९] कमलेश्वर किसी भी प्रकार का समझौता करने के हक में नहीं थे । वह नापसन्द-गँवार घटनाओं से लोगों पर करारा व्यंग्य करने से भी नहीं चूकते थे । वक्त के हाथों कितने लोग अपना मार्ग बदल लेते हैं, किन्तु कमलेश्वर अपने रास्ते पर अटल थे ।

कमलेश्वर को समय-समय पर व्यवस्था एवं व्यक्ति के प्रति अपने विरोध को मुँह से एवं रचनाओं से प्रकट करने के कारण उन्हें कई बार नौकरी से इस्तीफा देना पड़ा । वे अपनी बातों को किसी के सामने भी खुलकर कहने में हिचकते नहीं थे । दूरदर्शन में काम करते समय दूरदर्शन में विस्तार के प्रस्ताव को लेकर ब्रह्मचारी के साथ कमलेश्वर का मत भेद हुआ था । ब्रह्मचारी के द्वारा प्रोजेक्ट को थोड़ा बदल देने का इशारा हुआ तो कमलेश्वर ने तत्काल ही इस्तीफा दे दिया था । ‘धर्मयुग’ में कमलेश्वर के साथ हुए ‘अभिमुख ’में कमलेश्वर ने कहा कि- ‘‘ दूरदर्शन में विस्तार का प्रस्ताव था । मैं भारतीय कौशल का हिमायती था । ब्रह्मचारी की पहुँच सीधे पी.एम. तक थी । वे लोग कार्यक्रम दिखाने का दबाव डाल रहे थे । मैं ने इन्कार किया ।..........सालभर बाद एक प्रोजेक्ट जो मेरे द्वारा रिकमेंडेड था । थोड़ा बदल देने का इशारा हुआ । मैं सचिव के कमरे में गया । सचिव मेरे बुजर्ग थे । उन्होंने समझाया कि बैठो और थोड़ा फेरबदल कर दो । मैंने उनसे एक सफेद कागज माँगा । उन्होंने सोचा कि मैं फेरबदल के लिए माँग रहा हूँ । मैंने तीन मिनिट में उसी कागज पर इस्तीफा लिखकर दे दिया । ’’[२०] व्यवस्था विरोधी कहानी ‘ जार्ज पंचम की नाक ’ लिखने का इल्जाम

लगाने पर एक बार फिर उन्होंने दूरदर्शन की नौकरी छोड़ दी थी ।

कमलेश्वर अत्यंत प्रतिभाशाली व्यक्ति थे । कमलेश्वर के दृढ़ संकल्प, आदर्शवादिता, सैद्धांतिकता, ज्ञान एवं प्रभावी व्यक्तित्त्व के कारण ही स्वर्गस्थ प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने उन्हें बुलाकर दूरदर्शन के 'डायरेक्टर जनरल ' जैसे उच्च पद पर नियुक्त किया । उन्होनें अत्यंत लगन एवं कुशलता के साथ सन् १९८० ई. से १९८४ ई. तक 'डायरेक्टर जनरल ' का कार्यभार संभाला था ।

कमलेश्वर के व्यक्तित्त्व में शील,संकोच,विनय आदि गुण अधिक मात्रा में थे । इसलिए ही उन्हें बाहरी जीवन में बहुत समझौते करने पड़ते थे । वे दूसरों की भावनाओं को मानते थे । लेकिन उनके विचारों में निषेध का स्वर गूँजता था । दुष्यन्तकुमार के मत में- '' यह अजीब विरोधाभास है कि विचारों में निषेधों और खास तौर से नैतिक सामाजिक निषेधों के विरूद्ध होते हुए भी आचरण और व्यवहार के स्तर पर वह बहुत हद तक उनकी मर्यादा का पालन करता है । ''[२१] इन विरोधाभासों में कमलेश्वर स्वयं रहते ही नहीं बल्कि उन्हीं से वे सीखते थे तथा लिखते भी थे । वे इतने संवेदनशील थे कि दूसरों के दुःख में दुःखी होते थे । कमलेश्वर अपने दुःखो में हँसते हुए दूसरों की परेशानियाँ सुलझाने में व्यस्त रहते थे । यह उनके व्यक्तित्त्व की सबसे बड़ी विशेषता थी ।

कमलेश्वर खुद अपनों से और अपने समय की विसंगतियों से लड़ते रहे । अपने को भोला प्रतीत कराने की कला में वे निपुण थे । एक बार कमलेश्वर ने दामोदर सदन से कहा - '' सदन, मुझ में राक्षस भी है और देवता भी । मुझ में से जो जैसा व्यवहार निकालना चाहें निकाल सकता है । ''[२२]

कमलेश्वर अत्यंत अभिमानी एवं वफादार भी थे । सदन का कमलेश्वर के बारे मे मन्तव्य है - '' उनके मन में प्यार का विशाल समुन्दर लहराता है । जो भी मिले, वह कब उसका हो गया पता ही नहीं चलता । वह प्यार बाँटता फिरता है, नफरत के लिए उनके दिल में कोई जगह नहीं है । इसलिए यदि कोई जान बूझकर उसका दुश्मन भी बन जाए तो भी वह अपनें संस्कारों के कारण उसके साथ कमीनजदगी और गलीच बर्ताव नहीं करता ,शायद कर भी नहीं सकता ।''[२३]

कमलेश्वर के व्यक्तित्त्व में शील,संकोच,विनय आदि गुणों की मात्रा अधिक थी । सब से स्नेहपूर्ण व्यवहार करनेवाले तथा औरों के प्रति मन में द्वेष न रखनेवाले ऐसे भलेमानस व्यक्ति ढूँढने पर भी बहुत कम मिल पाते हैं ।

(अ) मैनपुरी के प्रति लगाव

कमलेश्वर के मन में अपने कस्बे मैनपुरी से अत्यधिक लगाव था। वह कहीं भी जाएँ या रहें कस्बे की यादें उन्हें सताती रहती थी। वह जीवन में सदा भागते ही रहे थे। मैनपुरी से इलाहाबाद, इलाहाबाद से दिल्ही, दिल्ही से बम्बई, उनके जीवन का सफर रहा था। फिर भी मैनपुरी से मानसिक रूप में जितना जुड़े थे उतना किसी से नही जुड़ पाये। इस सम्बन्ध में कमलेश्वर के मित्र दुष्यंन्तकुमार का कथन है -'' वह अपने छोटे से कस्बे मैनपुरी से मानसिक रूप से इतना जुड़ा हुआ था कि इलाहाबाद में रहते हुए भी वह वहीं की बातें सोचा करता था। हर महिने भागकर मैनपुरी जाया करता था और तीन चार बौरे प्लॉट लाया करता था।''[२४]

कमलेश्वर के दिल में मैनपुरी से जो अटूट सम्बन्ध और लगाव था इसका जीता जागता सबूत तो उनकी कहानियाँ एवं कहानियों का दौर ही हैं। कमलेश्वर ने अपने गाँव मैनपुरी एवं इलाहाबाद के सम्बन्ध में कहा है - '' इलाहाबाद की भट्टी और मैनपुरी की मिट्टी ने जो कुछ मुझे दिया था वह हमेशा काम आया।''[२५]

कमलेश्वर ने गाँव-कस्बे के परिवेश से जुड़ी हुई कहानियों में उनके अपने गाँव मैनपुरी तथा उससे जुड़े प्रदेशों का भरपूर वर्णन किया था। उन्होंने कुछ कहानियों में गाँव का नाम 'मैनपुरी' ही दिया है। जैसे 'राजा निरबंसिया', 'मुर्दों की दुनिया', 'मानसरोवर के हंस'। इन तीनों कहानियों में कमलेश्वर ने अपनी मिट्टी मैनपुरी के परिवेश का मनोहर वर्णन किया है। 'राजा निरबंसिया' कहानी में कम्पाउण्डर बचनसिंह का तबादला मैनपुरी के सदर अस्पताल में हो गया। 'मुर्दों की दुनिया' कहानी में 'मैनपुरी' के एटा-कुरावली बस अड्डा तथा वहाँ सरकारी बसों के आगमन से आए परिवर्तनों का चित्रण किया गया है। इसप्रकार कमलेश्वर की कहानियों में भी अपने गाँव मैनपुरी के प्रति लगाव देखा जा सकता है।

मैनपुरी के प्रति लगाव का वर्णन कमलेश्वर ने 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' उपन्यास की भूमिका में किया है। कमलेश्वर ने अभाव के कारण इस उपन्यास को बेच दिया था। इस उपन्यास की भूमिका में कमलेश्वर ने लिखा हैं कि-'' मेरे लिए यह उपन्यास उतना ही प्रिय है जितनी प्रिय मेरे लिए मेरी माँ और मेरी जन्मभूमि मैनपुरी। इसे बेचकर करीब २० साल मेरी आत्मा दुखती रही- लग रहा था जैसे मैंने अपनी जन्मभूमि या माँ बेच दी हो ''[२६]

२० साल बाद कमलेश्वर की तकलीफ को उनके दोस्त जवाहर चौधरी ने समझा और इस उपन्यास के सर्वाधिकार कमलेश्वर को शालिनता और अपनेपन से वापस कर दिए । उपन्यास के अधिकार को प्राप्त करने पर 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ 'की भूमिका में कमलेश्वर का कथन है कि - '' मेरा शहर मैनपुरी तो मुझसे छूट गया पर श्री अमरनाथ ने मेरी मैनपुरी मुझे लौटा दी, तो मैं फिर से जीने लगा । उपन्यास बेच देने पर, मैनपुरी जाते अपराध का बोध होता था ।....मैं मैनपुरी नहीं जा पाया । गया भी तो रूक नहीं पाया । मेरे लिए मेरा शहर पराया हो गया ।''[२७]

कमलेश्वर ने 'समुद्र में खोया हुआ आदमी ' उपन्यास में मैनपुरी के बचपन के दोस्त बिब्बन का वर्णन भी किया । इस प्रकार कमलेश्वर को अपनी जन्मभूमि मैनपुरी के प्रति अधिक लगाव था ।

(ब) एक प्रतिबद्ध वामपंथी

कमलेश्वर में विद्रोह की भावना छोटी उम्र से ही विद्यमान थी । कस्बे की सरकारी स्कूल में सरकारी अफसरों के बच्चों को दिया जाने वाला विशेष सम्मान, साधारण छात्रों (कमलेश्वर जैसे) के प्रति स्कूल के अधिकारियों एवं अध्यापकों का बूरा व्यवहार आदि बालक कमलेश्वर बर्दाश्त नहीं कर सकता था । कक्षा में ज्यादातर अव्वल आ जाने पर भी कमलेश्वर को कभी सालाना इम्तहान में अव्वल न आने दिया जाता था । अतः बचपन से ही व्यवस्था एवं असमानता के प्रति कमलेश्वर के मन में विद्रोह की भावना अंकुरित हुई । कमलेश्वर के अनुसार उनकीं माँ के वैष्णव संस्कार ने ही उन्हें विद्रोही होने न दिया था ।

कमलेश्वर को सौतेले भाई की सिफारिश से कानपुर में नौकरी मिल गई थी । कानपुर में योरोपियन इन्स्टीट्यूट में नौकरी करते समय उन्हें लगता था कि यह दुनिया मेरी नहीं है । कानपुर में अमरीकन सिपाहियों का व्यवहार देखकर कमलेश्वर ने नौकरी छोड़ दी थी । इस बीच यात्रा के दौरान कमलेश्वर की मुलाकात क्रान्तिकारी समाजवादी पार्टी के नेता योगेश चटर्जी और केशव मिश्र से हुई । इसके बाद योगेश चटर्जी फिर कमलेश्वर के घर आए और वे क्रान्तिकारी समाजवादी पार्टी के सदस्य बन गए । क्रान्तिकारी समाजवादी पार्टी में शामिल होने के सम्बन्ध में कमलेश्वर का मन्तव्य है कि-'' मैनपुरी में गेंदालाल दीक्षित जैसे क्रांतिकारी पैदा हुए थे और चन्द्रशेखर आज़ाद

तथा रामप्रसाद बिस्मिल भी मैनपुरी में छुपने आया करते थे ।.... चन्द्रशेखर आज़ाद कई बार मैनपुरी आए थे । मैनपुरी के इतिहास ने ही समाजवादी क्रांन्तिकारी पार्टी से मुझे जोड़ा था । मेरी माँ ने मुझे पार्टी के लिए दान में दे दिया था ।''[२८] कमलेश्वर मैनपुरी से इलहाबाद पहुँचकर क्रान्तिकारी समाजवादी पार्टी का काम करते थे और साथ ही साथ पढ़ाई भी करते थे । कमलेश्वर फिर मार्क्सवाद की सक्रिय पाठशाला में शामिल हो गए । यहाँ कार्य करते हुए उन्होंने पार्टी अखबार 'जनक्रान्ति' में क्रान्तिकारियों की जीवनियाँ लिखना आरम्भ किया । उस वक्त उन्हें तमाम किताबें पढ़ने का तथा अपनी असली लड़ाई को पहचान ने का अवसर प्राप्त हुआ था ।

आजादी के साथ हिन्दुस्तान दो भागों में बँट गया । कमलेश्वर मौत का दरिया पार करके आनेवालों की दिन-रात सहायता करते रहते थे । साथ ही 'जनक्रान्ति' में वे जोरों से लिखते भी रहते थे । कमलेश्वर का राजनीतिक लगाव देखकर खुल्लम -खुल्ला कह सकते हैं कि वे एक प्रतिबद्ध वामपंथी ही थे । उन्होंने सारिका के समान्तर -८ (मई-१९७५) के अंक में 'मेरा पन्ना' में एक प्रतिबद्ध वामपंथी के रूप में साहित्य एवं साहित्यकार की भूमिका का सवाल उठाते हुए पूछा था .....'' आदमी अगर अपनी जिन्दगी का नक्शा बदलना चाहता है और एक व्यवस्था की मारक स्थितियों से उबरकर एक बेहतर व्यवस्था को निर्मित करना चाहता है तो उसके लिए साहित्य की कोई कारगर भूमिका क्यों नहीं रह जाती ? ''[२९] एक सक्रिय वामपंथी होते हुए भी कमलेश्वर ने अपनी मान्यताओं, विचारों एवं आस्थाओं को प्रगट करने के लिए कभी किसी राजनीतिक दल के मुखपत्र या मंच का उपयोग नहीं किया उन्होनें अपने संपादकत्व में प्रकाशित कहानी 'सारिका' पत्रिका को एक अस्त्र और माध्यम के रूपमें इस्तमाल किया ।

'टाइम्स ऑफ इन्डिया' संस्थान में काम करते वक्त कमलेश्वर एक इमानदार प्रतिबद्ध वामपंथी ही रहे । उन्होंने कभी अपनी भलाई के लिए अपनें आदर्शो को न छोड़ा न किसी प्रकार का समझौता किया । यह उनके मन की दृढ़ता एवं निष्ठा का द्योतक है । कमलेश्वर का कथन है कि -'' मैं तो नित्य अपनी जेब में इस्तीफा लेकर ' टाइम्स ओफ इन्डिया ' जाता हूँ । ''[३०]

दल-बदल की इस दुनिया में कमलेश्वर समचित्तता एवं दृढ़ संकल्प के साथ एक प्रतिबद्ध वामपंथी की भूमिका निभा रहे थे । सत्ता व्यक्ति या व्यवस्था के सामने वे अपने आदर्शो को कुरबान करने को तैयार नहीं थे ।

(क) दृढ़ संकल्पी

कमलेश्वर के जीवनानुभवों ने उन्हे दृढ़ संकल्पी बना दिया। उन्होंनें आर्थिक विपन्नता के बीच दसवीं पास हो जाने पर सौतेले भाई की सहायता से मिली हुई नौकरी को छोड़ दिया। उन्हें लगा कि यह दुनिया उनकी नहीं है और आखिरकार आत्मा की आवाज को स्वीकारते हुए साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण किया। इस सम्बन्ध में कमलेश्वर ने दुष्यन्तकुमार से कहा था कि –'' दुष्यन्त जिन्दगी में सब हाँसिल नहीं होता। चुनना तो होगा ही कि मैं क्या चाहता हूँ...।''[३१] इस संदर्भ में दुष्यन्तकुमार का कथन है कि–'' उसने अपने लिए साहित्य का रास्ता चुन लिया था। उसका लड़कपन का वह चुनाव आज सही साबित हो चुका था।''[३२]

कमलेश्वर निष्ठावान होने के कारण ही कई काम एक साथ कर सकते थे। जैसे वे एक साथ कहानियाँ लिखते थे, उपन्यास लिखते थे, टी.वी. पर कार्यक्रम देते थे , फिल्मों के लिए पटकथा एवं संवाद लिखते थे। कमलेश्वर के दृढ़ संकल्प की झलक उनके हर तौर–तरीके एवं रचनाओं में नजर आती है। जो कुछ वे लिखना चाहते थे चाहे वह व्यवस्था विरोधी, सत्ता विरोधी या व्यक्ति विरोधी हो उससे पीछे मुड़ते नही थे।'जार्ज पंचम की नाक ' टी.वी. सिरियल प्रसारण के बारे में सरकार ने नापसन्दगी व्यक्त की तब कमलेश्वर अपनी बात पर अड़े रहे। दूरदर्शन से उसे हटाया जाने लगा तो उन्होंनें सहर्ष स्वीकार किया, लेकिन झुके नहीं। वे स्वाधीन भारत के सभी नागरिकों को समान दर्जा देना चाहते थे। उनके विचार में यह भारत सभी भारतवासियों का है। इस सन्दर्भ में उन्होंने 'मेरा पन्ना' में स्वयं लिखा है कि –'' यह देश किसी जे.पी. किसी मोरारजी और किसी चरणसिंह का नहीं है, यह धनी किसानों, पूँजीपतियों,तस्करों, साम्प्रदायिक तत्त्वों या आर.एस.एस. का भी नहीं है। यह देश हमारा है और सर्वहारा तथा जनसामान्य का भी है।''[३३]

कमलेश्वर अपने विचारों से अड़ग थे। कमलेश्वर नौकरी भी अपनी मर्जी से करते थे। उसमें किसी की भी दखलअन्दाजी वे बर्दाश्त न कर सकते थे। 'सारिका' का सम्पादकत्व, 'टाइम्स ऑफ इन्डिया' की नौकरी एवं 'दूरदर्शन' की नौकरी आदि छोड़ ने के पीछे उनका दृढ़ संकल्प ही प्रमाण है। चाहे जमाना बदल जाये या दुनिया बदल जाये कमलेश्वर वही दृढ़ संकल्पी बने रहेंगे।

(ड) व्यंग्य प्रकृति

कमलेश्वर बचपन से ही अन्तर्मुखी थे, परन्तु कालान्तर में समय और परिवेश के प्रभाव स्वरूप उनमें व्यंग्य विनोद प्रकृति का आर्विभाव हुआ । इस सम्बन्ध में कमलेश्वर के मित्र दुष्यंन्तकुमार का कथन है कि-'' यह तो मात्र प्रासंगिक सत्य है कि अपनी विलक्षण मेघा द्वारा उसने अल्पकाल में इच्छा मात्र से व्यंग्य-विनोद की प्रवृत्ति को आत्मसात कर लिया ।''[३४]

दिपावली की रात को नए वर्ष की शुभकामनाएँ देते हुए बम्बई में एक लखपति कमलेश्वर को कहता है कि कमलेश्वरजी ! आज रात अपने घर का दरवाजा खूला रखियेगा....लक्ष्मीजी आएँगी !। इस सम्बन्ध में कमलेश्वर अपनी व्यंग्य प्रकृति से इस लखपति से कहते हैं कि- '' दोस्त आप महेरबानी कर के अपने घर का दरवाजा खोल दीजीएगा, नहीं तो लक्ष्मीजी कैसे निकल पाएँगी ।''[३५]

'टाइम्स ऑफ इन्डिया' में काम करते समय घटित एक घटना के सम्बन्ध में कमलेश्वर बताते है कि-'' एक शाम चार बजे दफ्तर से लिफ्ट से में उतर रहा था । तीसरे फ्लोर से उनके साथ 'टाइम्स ऑफ इन्डिया' के तत्कालीन जनरल मैनेजर भी आ गए । दुआ-सलाम हुआ । जनरल मैनेजर ने कमलेश्वर से कहा आप सम्पादक लोग ही मजे में हैं, जब मर्जी हुई तब आते हैं ! हमें देखिए....... .सुबह आठ-साड़े आठ बजे आते हैं,शाम को सात-साढ़े सात जाते हैं......आज बाहर एक एपोइंटमेंट है इसलिए चार बजे निकलना हो गया....। कमलेश्वर ने कहा कम-से-कम हम सम्पादक लोग आते और जाते तो हैं..... आपको हमने कभी न आते देखा न जाते देखा.... आज देख रहा हूँ कि आप जा रहे हैं ।''[३६]

इस प्रकार कमलेश्वर व्यंग्य विनोद-वृति करते थे । सत्ता विरोधी, व्यवस्था विरोधी और व्यक्ति विरोधी व्यंग्य वह शालिनता से करते थे ।

(इ) स्पष्टवादिता

ग्राम्य वातावरण में पले होने के कारण कमलेश्वर सरल,निर्मल एवं निष्कपट व्यक्ति बन पाये थे । उनकी कथनी और करनी में कोई अन्तर नहीं था । वह जैसा कहते

थे वैसा ही करते थे । वे स्पष्ट वक्ता भी थे । वे किसी की भी चाटुकारिता पसन्द नहीं करते और सच बोलने से कभी डरते नहीं थे । वे गरीब, शोषित और पीड़ित लोगों की ओर से खुद बोलते थे । सफलतम ख्याति पाने पर भी वे ईमानदारी से कहते थे कि गर्व करने लायक उसने कुछ नहीं लिखा ।

कमलेश्वर की सब से बड़ी विशेषता उनकी साफगोई थी । उन्होंने हर बात को अत्यंत सफाई के साथ पाठकों के सम्मुख रखने का प्रयास किया और जो कुछ कहा वह साफ-साफ कहा । जबकि जीवन के प्रति नितांत स्पष्ट दृष्टि होने के कारण ही उनमें यह साफगोई आई थी ।

(ई) अभिरुचियाँ

कमलेश्वर को खेल, खानपान, लेखन, चित्र आदि कार्यो में अभिरुचि होने के कारण ही वे एक साथ अनेकविध कार्यो को अंजाम देने में सक्षम थे ।

होकी कमलेश्वर का प्रिय खेल रहा है । वह कोई भी मैच हो देखते थे । खेल के साथ-साथ उनको खान-पान का शौक था । कमलेश्वर तरह-तरह के व्यंजन खाने के शौकिन थे । सब से ज्यादा चाईनीज डिश पसंद करते थे । तंदूर में तंदूरी रोटी को छोड़कर उन्हे तंदूर का नोनवेज बहुत पसंद था । अगर उन्हें खाना अच्छा न मिले तो पेट नहीं भरता था । व्यसन में उन्हें सिगरेट ज्यादा पसंद थी ।

कमलेश्वर को दिन के चोबीस घण्टों में से बारह घण्टे काम करना ज्यादा पसंद था । शाम को ज्यादातर अकेला रहना और लिखना रुचिकर लगता था । कस्बों में जाकर कहानी का प्लॉट ढूँढ लाते थे । उसके लिए बार-बार मैनपुरी जाते थे , इसमें उनका अधिक आनंद छिपा था । उनकी आदतों के बारें में दुष्यंन्तकुमार का कथन है कि-'' उनमें एक आदत के कारण उसके साथ सड़क पर चलना मुश्किल हो जाता है-रास्तें में से जो भी 'राहीजी', 'पण्डितजी','व्यथितजी' या 'गुमनामजी' मिलेंगे , वह सबके लिए एक मिनट दुष्यन्त कहकर अटक जाता है ।''[३७]

कमलेश्वर को चित्र बनाने का भी शौक था । वे एक अच्छे चित्रकार भी थे । इस सम्बन्ध में कमलेश्वर का कहते है कि-'' अगर मैं साहित्यकार न होता तो एक अच्छा पेन्टर जरूर होता ।'' [३८]

कमलेश्वर को देश-विदेश घूमने का बड़ा शौक था । उन्होंने इग्लैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, इटली, रूस, पाकिस्तान, चाईना, स्विट्जरलैण्ड आदि देशों का भ्रमण किया था । कुछ समाजवादी देशों में भी गये थे । उन्हें देश-विदेश की किसी भी लड़ाई या आन्दोलन में शामिल होना पसंद था । कमलेश्वर को ताश खेलना भी अच्छा लगता था । इसलिए वे क्लब जाते थे ।

नवोदित साहित्यकारों को प्रोत्साहन देने में भी कमलेश्वर की रुचि थी । वे उनकी प्रगति के लिए क्या कुछ नहीं करते ! कभी-कभी आर्थिक मदद भी करते थे ।

इस प्रकार कमलेश्वर का जीवन बहुरंगी अभिरुचियों से आच्छादित रहा था । रसायनशास्त्र से लेकर गृहशास्त्र तक उनकी रुचि रही थी । शायद इन बहुविध अभिरुचियों के कारण ही वे एक संवेदनशील कथाकार बन पाये और उनके सुख-दुःख से संवेदित होकर साहित्य-सृजन करते रहे थे ।

(७) वेशभूषा

जीवन की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के अनुसार मनुष्य के परिधान में अन्तर आता है । उस पर ऋतु, फैशन, वातावरण आदि का भी प्रभाव पड़ता हैं । कमलेश्वर की ताज़गी एवं स्फूर्ति का कुछ श्रेय उनकी सहज, सरल वेशभूषा को भी है । वह ज्यादातर पैन्ट-शर्ट और कुर्ता-पायजामा ही पहनते थे । उन्हें स्वच्छ बढ़िया धूले हुए कपड़े ज्यादा ताजगी एवं गरिमा देते थे । जब फिल्म क्षेत्र के साथ जुड़े हुए थे तब वे कोड्रोय का पेन्ट भी पहनते थे । रात को सिल्क का नाईट ड्रेस पहनते थे । कमलेश्वर को टाईट कपड़े पसंद नही थे , वे खूले कपड़े ज्यादा पसंद करते थे, जिनसे शरीर को आराम मिलता था । कमलेश्वर की पत्नी गायत्री का कथन है कि-'' उन्हें हल्के रंग के कपड़े ज्यादा पसंद है । सब से ज्यादा हरा और नीला रंग पसंद करते हैं । ''[३९]

कमलेश्वर आर्थिक अभाव के दिनों में पैन्ट से ज्यादा कुरता-पायजामा पसंद करते थे । जूते के बदले चप्पलें पैरों में आ गई थीं । इस सम्बन्ध में कमलेश्वर बताते है कि-'' हम दोनों की हालत बदतर थी । इतनी बदतर कि मैंने अपनी तीनों सूती पैन्टें और चार कमीजें तहाकर रख दी थी, क्योंकि उन्हें धोने में साबून ज्यादा लगता था और आयरन के पैसे भी ज्यादा पड़ते थे । जिसे मैं एफोर्ड नहीं कर पाता था । इसलिए पैजामा-कुरता सस्ता पड़ता था । जूतें भी एक कोने में टिका दिए थे और चप्पलें पैरों में आ गई थीं ।''[४०]

वेशभूषा के बारे में कमलेश्वर का विचार है कि-'' मैं समझता हूँ गरीबी की रेखा पर रहनेवाले हम जैसे लोगों के लिए कुरता-पैजामा एक बहुत ही संस्कारशील और गरीबी से उन्मुक्त रखनेवाला शानदार लिबास है... यह न खुद छोटा होता है और न किसी को छोटा होने देता है ।''[४१] इस प्रकार कमलेश्वर वेशभूषा में आम आदमी के ज्यादा नजदीक थे ।

(८) रहन-सहन

कमलेश्वर के दादाजी और पिताजी का सम्बन्ध राजा चैतसिंह के साथ था । राजा चैतसिंह ने मैनपुरी में दो खेत उनके खर्च के लिए दिये थे । इसलिए राजा के रहन-सहन का असर भी उन पर पड़ा था । किन्तु बाद में उनकी स्थिति नाजुक हो गई । कमलेश्वर के पिताजी की मौत के बाद जमींदारी का सुख भोगनेवाला जगदम्बा प्रसाद का परिवार जमींदार कहलाने भर का रह गया था । उस समय परिवार का रहन-सहन मध्यम वर्ग का था ।

कमलेश्वर पढ़ाई के साथ किसी पत्रिका के कार्यालय में भी काम करते थे । उसके बाद कमलेश्वर को पहले इलाहाबाद रेडियो स्टेशन में नौकरी मिली फिर दिल्ली दूरदर्शन में तबादला हो गया । दिल्ली दूरदर्शन में काम करते वक्त भी उनकी आर्थिक स्थिति सुधरी नहीं थी अत्यंत खेद की बात है कि वे 'अर्थ' के अभाव के कारण ही अपनी पहली बच्ची को न देख सके । कमलेश्वर लिखते है कि -'' घर से खबर आई थी कि मेरी पत्नी ने एक लड़की को जन्म दिया है । माँ ने घर भी बुलाया था । मैं अपनी पहली सन्तान को देखना भी चाहता था किन्तु छुट्टी मिलना असम्भव था । पास में पैसे नहीं थे । जाना दोनों तरह से मुश्किल था । तभी खबर मिली कि मेरी पहली बच्ची की मृत्यु हो गई । वह धरती में गाड़ दी गई....मैं उसका मुँह तक नहीं देख पाया । मेरे जीवन का सबसे बड़ा यह दुःख भी दूरदर्शन के उन दिनों से जुड़ा हुआ था ।.... अपनी पहली बच्ची को न देख पाने की तकलीफ ने जैसे मेरे सारे जीवन-सूत्रों को तोड़ दिया था ।'' [४२]

इस प्रकार बाल्यकाल और नौकरी के बाद पैसों के अभाव के कारण कमलेश्वर के जीवन का रहन-सहन मध्यम वर्ग का रहा था ।

(९) आतिथ्यभाव

भारतीय संस्कार के अनुरूप 'अतिथि देवो भवः' की भावना कमलेश्वर में फूट-फूटकर भरी थी। अतिथि उनके स्नेही और अपने थे। कमलेश्वर के आतिथ्य भाव को देखकर राजेन्द्र यादव कहते है कि-"..... यह कमबख्त सारे दिन इस तिकड़म या उस तिकड़म में लगा रहता है और यह सब लिख किस समय लेता है ? इसका कमरा क्या है ? अच्छा खासा वेटिंगरूम है ! कोई-न-कोई बैठा ही रहता है और हांडी जैसी ऐश-ट्रे में चारमीनार झाड़ते हुए आप उसे प्रवचन पिला रहे होते है। कभी वेटिंगरूम ऐसी धर्मशाला भी बन जाता है जहाँ खाना कपड़ा से लेकर हजामत का सामान जूता और जेब-खर्च सभी कुछ बिना 'आब्लीगेशन' मिलता हो। गुसलखाना साफ करनेवाला जमादार भी बिना किसी दुविधा संकोच के सिगरेट या ब्लेड खुद निकाल लेना अपना अधिकार मानता हो ! "[४३]

इस प्रकार कमलेश्वर खुद कठिनाइयाँ सहनकर औरों की सुविधा जुटाने में लगे रहते थे। इस के मूल में उनका संवेदनशील हृदय था। कमलेश्वर ने गरीबी में अभावपूर्ण जीवन जिया था। बुरे दिनों का बड़ी बारीकी से साक्षात्कार किया था। अतः इस प्रकार की आतिथ्यभावना का होना सहज बन गया था। मानवीय भावना से संवेदित हृदय ही दूसरे हृदय के दुःख दर्द को समझ सकता है। यह खूबी कमलेश्वर के जीवन की विशिष्टता बन गई थी।

(१०) दिनचर्या

कमलेश्वर की दिनचर्या की सामान्य बातों का उल्लेख करना तो यहाँ अनावश्यक होगा किन्तु एक साहित्यकार होने के नाते उनके लेखन सम्बन्धी दिनचर्या की चर्चा करना अत्यंत आवश्यक है। नौकरी करते समय की दिनचर्या के सम्बन्ध में दुष्यन्तकुमार बताते हैं कि-" इलाहाबाद में प्रायः रोज रात के ग्यारह-बारह बजे तक मेरे तथा अन्य दोस्तों के साथ गप्पें लड़ाया करता था। रात को देर तक लिखा करता था और सुबह फिर उसकी ताजगी और उत्साह से दिनचर्या शुरु हो जाती थी। उसी चुस्ती और उल्लास से वह अपनी छकड़ा साईकल उठाता, तीन मील उलटा चलकर मेरे पास आता, मेरे अहदीपन पर लानत भेजते हुए खुद चाय बनाता, फिर तीन मील युनिवर्सिटी का सफर तय करता, दोपहर को सेन्ट जोसेफ सेमिनरी में कैथोलिक पादरियों को पढ़ाने

जाता, शाम को एक खास रास्ते से गुजरकर अपनी प्रेमिका से आ मिलता । इस तरह रोज बीस-बाईस मील का चक्कर काटकर रात को घर पहुँचता तो उसके दिमाग में केवल दो बातें याद होती, भाई साहब की प्यार भरी डाँट और कहानी का प्लॉट ।''[४४]

नौकरी के पश्चात, कमलेश्वर की दिनचर्या के बारे में उनकी पत्नी गायत्रीदेवी कहती है कि-'' अब वे सुबह छः बजे उठते हैं और उठकर सीधे बाथरूम में जाते हैं । बाद में चाय पीते समय अखबार पढ़ते हैं । अखबार की एक-एक चीज जहाँ तक पढ़ न ले उसे छोड़ते नहीं । फिर नास्ता करते हैं बाद में नौ या साढ़े नौ बजे सोचे हुए प्लॉट के मुताबिक लिखने बैठ जाते हैं । लेखन कार्य करने के लिए उन्हें किसी विशेष वातावरण की जरूरत नहीं पड़ती, किन्तु शान्ति जरूर चाहिए, कोलाहल बिलकुल पसंद नहीं करते । वे अपने कमरे में ही बैठकर लिखते हैं । लेखन कार्य करते समय सबसे पहले प्लॉट के बारे में विचार करते हैं । यह लेखन कार्य दोपहर तक चलता है । बाद में खाना खाकर थोड़ा आराम करते है ,फिर हाथ-मुहँ धोकर मेगेजीन पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ते हैं । कभी दोपहर में सब्जी-मंडी जाकर हरी सब्जियाँ खरीद लाते हैं । शाम को अपनी मानू के बच्चों के साथ थोड़ी देर अपना वक्त गुजारते हैं । मकान की छत और बरामदे में लगे हुए पेड़-पौधों की वे शाम को देखभाल करते हैं । रात को डायरी लिखते हैं । कभी किसी को मिलने का कहा हो तो उसके लिए भी समय निकालते हैं । मैं कुछ लिख रही हूँ तो मुझे मदद भी करते हैं और रात को ग्यारह बजे सो जाते हैं । ''[४५]

इस प्रकार देखा जाए तो उनकी दिनचर्या बड़ी सहज-सरल और साहित्य सर्जन से ओतप्रोत थी । निरन्तर साहित्य सर्जन से जुड़े रहना एक सर्जनशील साहित्यकार की ही विलक्षणता हो सकती हैं ।

(११) व्यवसाय

कमलेश्वर खर्चा निकालने के लिए पढ़ाई के साथ-साथ नौकरी भी करते थे । कमलेश्वर सब से पहले दसवीं कक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् क्रान्तिकारी समाजवादी पार्टी के 'जनक्रान्ति अखबार' में क्रान्तिकारियों की जीवनियाँ लिखते थे । कालान्तर में क्रान्तिकारी समाजवादी पार्टी के जिम्मेदार व्यक्ति कांग्रेस में शामिल हो जाने पर जीवनी लेखन का कार्य समाप्त हो जाता है ।

कमलेश्वर कोई भी कार्य करने में हीनभावना को महसूस नहीं करते थे । हरहालत से पैसे प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे । कमलेश्वर अपने जीवन-यापन के लिए मैनपुरी के 'प्रकाश प्रेस' में प्रूफरीडिंग का काम करते थे तथा स्थानीय पत्र में यदा-कदा कुछ लिखते भी रहते थे । एक स्थान पर संध्या समय पेंन्टिग करने भी जाते थे, जिससे कुछ और पैसे भी मिल सके और परिवार का ठीक तरह से गुजर-बसर कर सके । इन सब के साथ-साथ वह ' राजा आर्ट ' में कागज के डिब्बों तथा साबून, पाउड़र के रैपर्स पर छोटी-छोटी डिज़ाइने बनाते थे । 'शहनाज आर्ट साइन बोर्ड पेन्टरर्स 'के यहाँ साइन बोर्ड पेन्टिंग अनियमित तनख्वाह पर काम करते थे । इसके बाद दूसरे नाम से ब्रुकबोन्ड चाय के गोदाम में रातपाली की चौकीदारी करते थे । प्रत्येक कार्य के पीछे घर का आर्थिक अभाव ही संलग्न था ।

कमलेश्वर छोटी-मोटी नौकरी के साथ लेखन कार्य और सम्पादन कार्य भी करते थे । इलाहाबाद में सबसे पहले 'पहाड़' पत्रिका के सम्पादक के रूप में कार्य करते थे इस पत्रिका के सम्पादक के रूप में उन्हें पच्चीस श्रपये प्रति मास मिलता था । इलाहाबाद से प्रकाशित 'बेहार ' मासिक पत्रिका में पचास श्रपये प्रतिमाह पर सम्पादन कार्य करते थे । बाद में उन्होंने 'कहानी' मासिक पत्रिका में एक सौ श्रपये माहवार पर नौकरी की थी । तत् पश्चात 'राजकमल प्रकाशन' में साहित्य सम्पादक के रूप में डेढ़-सौ श्रपये माहवार पर नौकरी स्वीकार की थी । तत्पश्चात् कमलेश्वर ने 'श्रमजीवी प्रकाशन' की शुश्रआत की किन्तु बत्तीस हजार का कर्जा हो जाने के कारण वह ठप्प हो गया । अन्य प्रकाशकों की पुस्तके सप्लाई करके पैसा न पा सकने के कारण भी उन्हें यह प्रकाशन बन्द करना पड़ा ।

कमलेश्वर को पहले इलाहाबाद रेडियो में नौकरी मिली फिर दूरदर्शन में तबादला हो गया । सन् १९५९ में दूरदर्शन में स्क्रिप्ट-राइटर के रूप में नौकरी मिली परन्तु सन् १९६१ में कमलेश्वर ने दूरदर्शन की नौकरी छोड़ दी और 'टाइम्स ऑफ इन्डिया' संस्थान में सम्पादक के रूप में काम करने लगे थे । इलाहाबाद में कमलेश्वर क्रिश्चियन सेमिनरी में पादरियों को पढ़ाते थे पचहत्तर श्रपये माहवार मिलते थे । इस प्रकार कमलेश्वर का व्यवसायिक क्षेत्र अलग-अलग था ।

कमलेश्वर ने जरूरत पड़ने पर अलग-अलग उपनामों जैसे 'विप्र', 'गौस्वामी', 'संजय', 'हरिचन्द्र', 'सौमित्र सिन्हा',आदि को धारणकर अपना व्यवसाय भी किया है ।

(१२) निधन

कमलेश्वर ऐसे विरल साहित्यकार थे, जो हरबार तोड़ दिये जाने पर भी अपने ही पाँवों पर चले और मानव जाति को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने का भरसक प्रयत्न करते रहे । कमलेश्वर दिल के दौरे की वजह से कई दिनों की नादुरस्त तबियत के कारण फरीदाबाद मे २७ जनवरी २००७ शनिवार को शाश्वत क्षणों की अथाह नीलिमा में हमेंशा के लिए विलीन हो गये । परन्तु वह अपनी फूल शब्द-पाती में हमेशा अमर रहेंगे । कमलेश्वर के इस रूपांतरण को उन्हीं के शब्दों में अगर कहे तो - वह व्यक्ति नहीं था, वह एक अभिव्यक्ति मात्र था, एक स्वर , एक संगीत जो हवाओं से उठा, दिलों से टकराया और धूल में सो गया परन्तु वह और उसकी कलम एक निर्मल और सशक्त माध्यम बन सके जिससे विराट जीवन,उसका सुख-दुःख उसकी प्रगति और उसका अर्थ व्यक्त हो सके तभी उसकी रचना सार्थक होगी और उसकी आत्मा को शान्ति भी मिलेगी ।

सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक एवं साहित्यिक जीवन के विविध क्षेत्रों में फैली हुई असंगति,अन्याय,अनाचार,विड़म्बना, छल, प्रपंच, भ्रष्टाचार, इत्यादि अनेक अनुभूतियों को युग की धड़कती साँसों पर नये अंदाज से धारदार शब्दों में अभिव्यक्त करने के लिए कमलेश्वर कर्तव्यबद्ध रहे हैं । जिन्दगी की बदसूरती और युग की विसंगतियों के बावजूद कमलेश्वर में थकान नहीं बल्कि मटियामेट हुए मानव मूल्यों को पुनः स्थापित करने का सपना था । इस सपने के कारण ही उनकी कलम युग के समूचे माहौल की सच्चाइयों का दस्तावेज लिखने में समर्थ रही थी ।

(ख) कमलेश्वर का कृतित्व

कमलेश्वर लेखक कैसे बने इस सम्बन्ध में डॉ. उषा चौहान लिखती है कि- '' कमलेश्वर के लिए रचनाएँ मूलतः असहमति का माध्यम हैं । बचपन में उन्होंने अपने कस्बे और शहर के आस-पास के लोगों की जिन्दगी को देखा-समझा । वे अपने पूरे परिवेश और पूरी परिस्थितियों के प्रति एक कसमसाहट और आकुलता अनुभव करते थे, कमलेश्वर के मनमें सवाल उठते थे,शंकाएँ उठती थीं । अपने इस ठहरे हुए परिवेश के प्रति उनके मनमें एक तीव्र प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने कलम का सहारा लिया यानी वे लेखक बने ।''[४६]

कमलेश्वर के मनमें जगी प्रतिक्रिया के स्तर और क्षेत्र के सम्बन्ध में कमलेश्वर का कथन है कि-'' जब से अपने चारों तरफ की दुनिया की ओर देखना शुरू किया तो पाया, कहीं कुछ भी बदल नहीं रहा था, इसलिए मुझे बदलना पड़ा। मुझे चारों ओर के कटु यथार्थ ने बदल दिया ।''[४७] कमलेश्वर दसवीं कक्षा पास होते ही क्रांतिकारी समाजवादी पार्टी के सम्पर्क में आए और माकर्सवाद की सक्रिय पाठशाला में शामिल हो गए। पश्चात् उन्होंने पार्टी पत्रिका ,'जनक्रान्ति' में शहिदों की जीवनियाँ लिखना आरम्भ किया। वहाँ से उन्हें लिखने की विधिवत् दीक्षा मिली। कमलेश्वर ने हर लेख में अपना निर्णय जोड़ दिया और उनकी रचनाएँ निर्णयों का पर्याय बनती गई। अपनी कहानियों के सम्बन्ध में कमलेश्वर का मत है कि- ''मेरे लिए कहानियाँ समय की धुरी पर घूमती सामान्य सच्चाइयों के प्रति और पक्ष के लिए किए गए निर्णयों की कहानियाँ हैं। ''[४८]

कमलेश्वर को लेखन की प्रेरणा अपने आसपास के माहौल और मैनपुरी से मिलती रहती थी। कमलेश्वर ने लेखन के लिए विषय वस्तु सीधे जन-जीवन के अनुभवों से ली थी। कमलेश्वर का अपने पात्रों के सम्बन्ध में विचार है कि-'' मेरे पात्र अपने माहौल की ,अपने सुख-दुःखों की कहानी अपने आप कहते चलते हैं। मैं उनके निर्माण में परिश्रम नहीं करता।'' [४९] कमलेश्वर बिना प्रत्यक्ष अनुभव अथवा अनुभूति के कभी कुछ नहीं लिखते।

कमलेश्वर ने लेखन के लिए कभी कोई चार्ट नहीं बनाया। कहानी लेखन के बारे में कमलेश्वर कहते है -' मैं सोच-सोचकर कभी नहीं लिखता। जब कभी-भी मुझे शिद्दतके साथ महसूस हुआ कि इस विषय पर लिखना चाहिए, तो उसे मैंने लिखा और जो लिखा, वह स्वयं कहानी बनती चली गई ।''[५०] कमलेश्वर एक ही सिटींग में कहानियाँ लिखते थे। अपने कहानी लेखन के बारे में कमलेश्वर बताते है कि-'' मैं अगर एक सिटींग में कहानी को खत्म न कर सका तो वह कहानी मुझसे फिर कभी पूरी नहीं हो पाती। चाहे आठ-दस घण्टे लगे मगर एक ही सिलसिला लगातार होता है। कोई आये तो बातचीत भी हो जाएगी, मगर बाहर नहीं आता। जब कहानी पूरी हो जाती तब निकल पाता है। ''[५१]

इसलिए कमलेश्वर की लेखन प्रक्रिया कथात्मकता का निर्वाह कर सकने के लिए लेखन क्षणों में लेखकीय चेतना, स्थितियों, घटनाओं, क्षणों, मनःस्थितियों का सुन्दर चुनाव करती चलती थी।

कमलेश्वर एक सफल कहानीकार के रूप में स्थापित हुए हैं । उन्होंने कहानी के उपरान्त उपन्यास क्षेत्र में भी अपना योगदान दिया हैं । कमलेश्वर के उपन्यास बस सात-आठ बैठकों में पढे जाये इतने छोटे हैं । कमलेश्वर ने अपने लेखन के लक्ष्य और उदेश्य के सम्बन्ध में अपना मत खुलकर व्यक्त किया है -'' मैं उन्हीं मुसीबतजदा लोगों की कहानी कहना चाहता हूँ, जिन्हें मैंने अपने चारों ओर पाया और अनुभव किया है । इसे ही मेरे लेखक का लक्ष्य कह सकते हैं ।''[५२]

अतः कमलेश्वर साधारण लोगों की मुसीबतों के साथ-साथ उनके सपने भी उन्हीं के सामने प्रस्तुत करते हैं । यही उनके लेखन का उदेश्य है । लेखन का उदेश्य और उनकी सार्थकता को अपने अन्दाज से कमलेश्वर कहते है -'' मैं कहूँ यदि लेखन सामाजिक आर्थिक विषमताओं के प्रति लोगों की आँखें खोलता है और लोग यह जान पाते कि जिस समाज में वह रह रहे हैं उसकी असलियत और उसकी हालत क्या है ? तो मैं समझता हूँ कि मेरा लेखन सार्थक है ।''[५३] उनका लेखन प्रकिया सम्बन्धी वक्तव्य इन बातों का प्रमाण है । कमलेश्वर की रचनाएँ तत्कालीन समाज या देश की हालत का एक सच्चा आईना है ।

कमलेश्वर लेखन को कभी यातनापूर्ण नही मानते , लेकिन उनके लिए लेखन के कारण यातनापूर्ण जरूर हैं । कमलेश्वर लेखन के लिए अपना मत प्रकट करते है कि-'' लिखना मेरे लिए यातना नहीं है यातनापूर्ण हैं वे कारण जो मुझे लिखने के लिए मजबूर करते हैं यह मजबूरी तभी होती है जब मेरा अपना संकट दूसरों के संकट से सम्बद्ध होकर असह्य हो जाता है ।''[५४]

कमलेश्वर के लिए लेखन एक नशा था । उस नशे के लग जाने पर वे समय, स्थान एवं तन की परवाह न कर के सब कुछ भूलकर लिखा करते थे । लेखन के दिनों को याद करते हुए वह कहते है कि -'' घर में सब लोग रहते थे तो रात को बिजली जलाकर लिखना सम्भव नहीं होता था । मुझे बरसात के वे चिपचिपाते दिन अच्छी तरह याद हैं, जब मैं सीढ़ियों के लैंडिंग पर बैठकर लिखा करता था, नंगे बदन को पतंगे और कीड़े काटते रहते थे ....जगह-जगह गर्दन और पीठ चिलचिलाती रहती थी, पर लिखने का नशा इतना गहरा होता था, कि कभी-कभी सुबह तक लिखना जारी रहता था । लिखने से मैं कभी थकता नहीं था । एक कहानी के बाद दूसरी शुश्र करने में मुझे वक्त नहीं लगता था और फिर एक बैठक में उसे समाप्त करने की लेखकीय लाचारी भी थी ।''[५५]

कमलेश्वर की लेखन प्रकिया के सम्बन्ध में दुष्यन्तकुमार का मत है कि- ‘‘ वह तो तब लिखता है जब निभृत एकान्त हो और उस पर दबाव हो वैचारिक, मानसिक या आर्थिक। छोटी-से-छोटी घटना भी कब और क्यों उसकी चेतना पर हावी हो जाएगी, यह कहना मुश्किल हैं। जब वह ऐसे दबावों में होता है तो अनदेखी, अनजान दिशाओं की काल्पनिक यात्राएँ करता है। अनुपलब्ध और अप्रस्तुत पीड़ाओं के बारे में सोचता है और पीड़ित होता है। उँगलियाँ चटखाता है कसमसाता है, और ऊपर से सरल दिखाई देनेवाली उसस्थिति को उसकी सारी उलझनों, कुण्ठाओं और तकलीफों से भरकर भोगता है और लिखता है।’’[५६] अतः कमलेश्वर लेखन को जीवन के प्रति प्रतिबद्ध होना अनिवार्य मानते थे।

कमलेश्वर लेखन को परीक्षा मानते थे। कमलेश्वर के मत में -‘‘यह कठिन परीक्षा का समय होता है और मैं कागज के सामने उसे कतराने की कोशिश करता रहता हूँ। तमाम तकलीफे मुझे उसी वक्त सताती है और भागता रहता हूँ- यह भागना तब तक चलता रहता है, जब तक अनुभव अनुभूति में आत्मसात नहीं हो जाता। उसके बाद लिखना मेरी मुक्ति का प्रयास बन जाता है, बिना लिखे फिर मुक्ति नहीं मिलती।’’[५७]

इस प्रकार कमलेश्वर लेखन को एक चुनौती मानते थे। कमलेश्वर का कथा साहित्य में काफी योगदान रहा है। उन्होंने कहानी, उपन्यास, आलोचना, नाट्यरूपान्तर, संपादन, फिल्में आदि विभिन्न विधा पर अपनी कलम चलाकर हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है।

(१) कहानीकार कमलेश्वर

कमलेश्वर स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर थे। उनकी कहानीयात्रा ‘नई कहानी’ से आरम्भ होकर समान्तर से गुजरते हुए वर्तमान तक पहुँच जाती है। ‘ कहानी ’ के सम्बन्ध में कमलेश्वर कहते है कि-‘‘ कहानी एक ऐसी विधा है, जो बड़ी सहजता और आडंबरहीनता से अपने समय की बड़ी सहजता और विचारात्मक विविधता को प्रस्तुत करती चलती है।’’[५८]

कहानीजगत में कमलेश्वर का विशेष स्थान रहा है। अब तक उनके निम्नलिखित कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं इनमें -

क्रम	कहानी संग्रह	प्रकाशित वर्ष
१.	'राजा निरबंसिया'	१९५५
२.	'कस्बे का आदमी'	१९५७
३.	'खोई हुई दिशाएँ '	१९६३
४.	'माँस का दरिया'	१९६३
५.	'बयान'	१९६३
६.	'जार्ज पंचम की नाक'	१९६४
७.	'मेरी प्रिय कहानियाँ'	१९६५
८.	'कमलेश्वर की श्रेष्ठ कहानियाँ'	१९६९
९.	'जिन्दा मुर्दे'	१९६९
१०.	'इतने अच्छे दिन'	१९७०
११.	'कथा-प्रस्थान'	१९९०
१२.	'कमलेश्वर की प्रेम कहानियाँ'	१९९५
१३.	'कोहरा'	१९९६
१४.	'श्रेष्ठ आँचलिक कहानियाँ'	१९९७
१५.	'चर्चित कहानियाँ'	१९९७
१६.	'दस प्रतिनिधि कहानियाँ '	१९९८
१७.	'कमलेश्वर की समग्र कहानियाँ' (दो खण्डों में)	१९९८
१८.	'कमलेश्वर की पच्चीस कहानियाँ ' (देश-परदेश)	२००४

कमलेश्वर की कहानियाँ मध्यम वर्गीय एवं निम्न मध्यवर्गीय लोगों के यथार्थ जीवन से जुड़ी हुई है । कमलेश्वर के जीवन के अनेक दौर रहे है । उसी प्रकार उनकी कहानियों के भी अनेक दौर हैं । यह दौर मैनपुरी गाँव-कस्बे से होकर नगर, महानगर में पहुँच जाता है ।

कमलेश्वर के कहानी साहित्य के तीन दौर हैं । उनकी कहानियों का पहला दौर सन् १९५२ ई. से सन् १९५८ ई. तक का है । उनकी पहली कहानी 'कामरेड़' है जो 'अप्सरा पत्रिका ' में प्रकाशित हुई थी । कमलेश्वर के पहले दौर की कहानियों में 'सीखचें', 'मुर्दो की दुनिया','आत्मा की आवाज' ,'अकाल', 'राजा निरबंसिया', 'देवा की माँ', 'भटके हुए लोग', 'कस्बे का आदमी' ,'गर्मियों के दिन' ,'एक अश्लील कहानी','पीला गुलाब' आदि प्रमुख हैं । इस दौर में कमलेश्वर पुरानी और नई कहानी में संगति बिठाने का प्रयत्न कर रहे थे । लेकिन जिन्दगी के निकट आ जाने

पर उन्हें महसूस हुआ कि पुरानी कहानी जिन्दगी के सन्दर्भ में बेईमानी और आदर्शवादी है। कमलेश्वर की कहानियाँ कोरी कल्पना पर आधारित नहीं हैं, बल्कि वे आधुनिक युग के व्यावहारिक एवं वास्तविक जीवन की यर्थाथ अभिव्यक्ति ही हैं।

पहले दौर में उन्होंने मनुष्य के छल को, निरन्तर परिवर्तित होने वाली निर्णय प्रकिया को टूटते जीवनमूल्यों को परिवेश की भयावहता को अभिव्यक्त किया है। गाँव-कस्बा और वहाँ के जीवन का यर्थाथ चित्रण ही इस कहानियों की विशेषता हैं। इस दौर की अन्तिम कहानी 'नीली झील' है। कस्बाई जीवन की विशिष्टता एवं परिवर्तन की सशक्त अभिव्यक्ति इस दौर की कहानियों की प्रधान विशेषता हैं।

कमलेश्वर अपने कस्बे 'मैनपुरी' को छोड़कर सन १९५९ ई. में दिल्ली आ गए थे। यहाँ से दूसरे दौर की कहानियाँ शुरु होती हैं। कमलेश्वर की दूसरे दौर की कहानियों का समय सन् १९५९ ई. से सन् १९६६ ई. तक का रहा है। दूसरे दौर की कहानियों का केन्द्र 'शहर' रहा था। कमलेश्वर ने पहले दौर में कस्बाई जीवन की विशिष्टता और परिवर्तन को जिस सशक्तता एवं सहजता से अंकित किया है उसी ढंग से ही दूसरे दौर में 'शहरी जीवन' को भी व्यक्त किया हैं। दूसरे दौर की कहानियों में - 'जार्ज पंचम की नाक', 'दिल्ली में एक मौत', 'खोई हुई दिशाएँ', 'तलाश', 'दुःख भरी दुनिया', 'जो लिखा नही जाता', 'एक थी विमला', 'अपने देश के लोग', 'माँस का दरिया' एवं 'युद्ध' आदि प्रमुख हैं। दूसरे दौर की कहानियों के पात्र जिन्दगी से जुड़े हुए हैं। ये पात्र विविध स्तर के और कतिपय समस्याएँ लिए हुए हैं। इनके पास अपनी समस्याओं का समाधान नहीं हैं। वे समस्याओं से जूझ रहे हैं। इस प्रकार देखो तो कथापात्रों का केन्द्रिकरण संक्षिप्तता, कथापात्रों की संवेदना तथा जीवन की प्रतिबद्धता, दूसरे दौर की कहानियों की विशेषता हैं।

तीसरे दौर की कहानियों की शुरुआत दिसम्बर सन् १९६६ ई. में कमलेश्वर के बम्बई आगमन से हुई। तीसरे दौर की कहानियों का समय सन् १९६६ ई. से सन् १९७७ ई. तक का माना जा सकता है। कमलेश्वर को बम्बई में ही महानगरीय सभ्यता एवं संस्कृति को अधिक निकटता से जानने-पहचानने का अवसर प्राप्त हुआ। इस दौर की कहानियों के कथ्य की अपेक्षा परिवेश और व्यक्ति आंतरिक (मानसिक) संघर्ष को ही प्रमुखता दी गई हैं। अतः इस दौर की कहानियों में व्यक्ति की असहायता एवं मानसिकता की सूक्ष्म अभिव्यक्ति हुई है। तीसरे दौर की कहानियाँ पूर्णतः जीवन से जुड़ी हुई हैं। तीसरे दौर की कहानियों में - 'या कुछ और', 'नागमणि', 'लड़ाई', 'बयान', 'जोखिम', 'रातें' 'लाश', 'मैं', 'अपना एकान्त', 'उस रात वह मुझे ब्रीचकैण्डी में मिली थी' एवं 'कितने पाकिस्तान' आदि प्रमुख हैं।

कमलेश्वर की कहानियाँ मानव अस्तित्व की चिन्ता से जुड़ी होती हैं और हर कहानी इन्सानियत को बचाये रखने की लड़ाई में कोई बयान देती नजर आती हैं । प्रेमचन्द के बाद कमलेश्वर की कहानियों में वह मुखर पक्षधरता है जिसके कारण कोई लेखक समय के बदलाव के बावजूद प्रासंगिक बना रहता है । कस्बे के आम आदमी की पीड़ा से अपने लेखन की शुरुआत करनेवाले कमलेश्वर ने कालान्तर में अपनी संवेदना का विस्तार विश्व समाज तक किया । उनकी कहानियों में समुचे विश्व में फैले आतंकवाद, साम्राज्यवाद, नस्लवाद और सामाजिक विखंडन के विरूद्ध स्पष्ट प्रतिरोध हैं ।

कमलेश्वर की कहानियों के विश्लेषणात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि उनकी सभी कहानियों में निम्न मध्यवर्ग एवं मध्यवर्ग के यथार्थ जीवन का उद्घाटन हुआ है । उन्होंने समस्त दबावों के बीच जी रहे आम आदमी के दुःख-दर्द को अनेक कोणों से उभारने का प्रयास किया है । कमलेश्वरने खास तौर से अपनी कहानियों में पारिवारिक विघटन,शहरीकरण से गाँव-कस्बों में हुए दुष्परिणामों, महानगरीय जीवन की विडम्बनाओं, भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था तथा उसके शिकार आम आदमी की परेशानियों, धार्मिक एवं नैतिक मूल्यों की च्युति आदि सभी समसामयिक समस्याओं पर प्रकाश डाला है । इसकी सशक्त अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने व्यंग्य का भी सहारा लिया है ।

राजनारायण ने कमलेश्वर को एक पैदायशी किस्सागो कहा था । राजनारायण कहते है -''कमलेश्वर एक पैदायशी किस्सागो है- एक सही 'कलाकार' वे ' नयी कहानी ' के प्रमुख हस्ताक्षर ही नहीं, आज की कहानी के एक प्रमुख प्रवक्ता तथा शिल्पी भी हैं । एक सच्चे शिल्पी की तरह निरंतर प्रयोग करना, उसे तोड़ना-बदलना या संशोधित को छाँटना-नकारना उनके कथाकार को भला लगता है और शायद इसलिए वे आज भी अपने समकालीनों में नये है - एकदम ताजा ! '' [५९]

कमलेश्वर की कहानियों में समय की समस्त सच्चाइयाँ अपने ऐतिहासिक सत्यों के साथ सम्प्रेषित होती है । ये कहानियाँ सामाजिक विसंगतियों, आर्थिक विषमताओं तथा टूटते-हारते और संघर्ष करते इन्सान का सही दस्तावेज है ।

(२) उपन्यासकार कमलेश्वर

कमलेश्वर ने अपनी संवेदना को विविध विधाओं के जरिए अभिव्यक्त किया है । कमलेश्वर एक कहानीकार के साथ-साथ उपन्यासकार भी है । कमलेश्वर

ने उपन्यासों के द्वारा हिन्दी उपन्यास जगत में अपना विशिष्ट स्थान बनाया ,अब तक उनके निम्नलिखित उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं -

क्रम	उपन्यास साहित्य	प्रकाशन वर्ष
१.	'एक सड़क सत्तावन गलियाँ'	१९५७
२.	'डाक बंगला'	१९६२
३.	'लौटे हुए मुसाफिर '	१९६३
४.	'समुद्र में खोया हुआ आदमी'	१९६५
५.	'काली आँधी'	१९७४
६.	'तीसरा आदमी'	१९७६
७.	'आगामी अतीत'	१९७६
८.	'वही बात'	१९८०
९.	'रेगिस्तान'	१९८८
१०.	'सुबह दोपहर शाम'	१९९२
११.	'कितने पाकिस्तान'	२०००
१२.	'अनबीता व्यतीत'	२००४
१३.	'पति,पत्नी और वह'	२००६
१४.	'अम्मा'	२००६

कमलेश्वर ने अपने उपन्यास लेखन की यात्रा का प्रारंभ उस समय किया जब देश को स्वतंत्र हुए लगभग एक दशक बीत चुका था। कमलेश्वर का पहला उपन्यास ' एक सड़क सत्तावन गलियाँ ' पुस्तकाकार रूप में सन् १९५७ ई. में प्रकट हुआ किन्तु उनसे काफी पहले सन् १९५६ ई. में पूरा का पूरा 'हंस' में प्रकाशित हुआ था। प्रकाशक ने भूल के कारण 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ 'का नाम 'बदनाम बस्ती ' रख दिया था। कमलेश्वर को एक उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय प्रस्तुत उपन्यास को जाता है। कमलेश्वर को 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ ' उपन्यास प्रिय था ,किन्तु विपरित परिस्थिति के कारण इस उपन्यास को बेच देना पड़ा।

कमलेश्वर के सभी उपन्यास सोद्देश्य लिखे गए हैं। उन्होंनें उपन्यासों में किसी न किसी समस्या को उठाया है। उपन्यासों की समस्याओं में आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि प्रमुख हैं। कमलेश्वर ने कस्बाई और महानगरीय जीवन की समस्याओं को अपने उपन्यासों में उद्घाटित किया है। आम आदमी की जिन्दगी की

संगति-विसंगतियों को उन्होंने अपने अन्दाज में प्रभावशाली ढंग से उद्‌घाटित किया है । उनके उपन्यासो में मध्य वर्ग का यथार्थ जीवन अंकित है । मध्य वर्गीय पात्रों की मानसिकता का चित्रण कमलेश्वर के उपन्यासों का मूल कथ्य है ।

कमलेश्वर के उपन्यासों में बड़ी सूक्ष्मता और सांकेतिकता के साथ नये सामाजिक यथार्थ को निरूपित किया गया था । वे एक घोषित प्रगतिशील कथाकार थे । कस्बाई एवं महानगरीय निम्न-मध्यवर्ग के वर्ग वैषम्य, शोषण और सामाजिक असमानता का चित्रण उन्होंने प्रगतिशील विचारधारा के आधार पर किया था । जीवन के संघर्षों से उत्पन्न उनकी यह विचारधारा हर मध्य वर्गीय बुद्धिजीवी की थी । आधुनिक संचेतना को कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों के जरिए व्यक्त किया था । कमलेश्वर सदा अपने परिवेश से जुड़कर रहे, इसलिए उनके उपन्यासों में आम हिन्दुस्तानी की जिन्दगी उद्‌घाटित हुई है । कमलेश्वर के उपन्यासों में रोजी-रोटी, पति-पत्नी कलह, प्रेम-शंकाएँ, आस्था-अनास्था आदि सब कुछ अपने यथार्थ रूप में ही आते हैं । इस सम्बन्ध में अमर प्रसाद जायसवाल का कथन है कि-'' सर्व सामान्य व्यक्ति के जीवन को ही कमलेश्वर ने अपनी कलम से चित्रित किया है । उनकी कथा-कृतियाँ आम आदमी के दैनिक जीवन के मसले, जैसे रोजी-रोटी, मजदूरी एक ओर है तो दूसरी ओर आस्था-अनास्था, प्रेम, कलह आदि यथार्थ रूप में चित्रित हुए हैं । कस्बों तथा महानगरों मे रहनेवाला मध्य एवं निम्न वर्ग उनकी रचनाओं का प्रतिपाद्य हैं ।'' ६०

कमलेश्वर की कथाकृतियों को अपने अन्दाज से देखकर घनश्याम मधुप कहते है कि-'' मैनपुरी कस्बे से जुड़े हुए कमलेश्वर ने अपनी प्रारम्भिक कहानियों और लघु-उपन्यास एक निश्चित वर्ग को केन्द्र मानकर लिखे हैं । कस्बाई निम्न-मध्यवर्ग वैषम्य, शोषण और सामाजिक असमानता का चित्रण लेखक ने अपनी प्रगतिशील विचारधारा के आधार पर किया है । लेकिन यह प्रगतिशीलता यशपाल तथा नागार्जुन जैसी राजनीतिक सिद्धांत प्रधान नहीं है । जीवन के संघर्षों से उत्पन्न उनकी यह विचारधारा हर मध्य वर्गीय बुद्धिजीवी की हैं । '' ६१

कमलेश्वर को अपने उपन्यासों मे युगीन सत्य को उद्‌घाटित करने में अत्यन्त सफलता प्राप्त हुई थी । उनकी मानव-मन की पकड़ बहुत ही मजबूत थी । उनके उपन्यासों में वास्तविकता का स्वर उभरा है,रोमान्स की भूलभूलैया को कहीं भी कोई स्थान नहीं है । उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से मध्य एवं निम्न वर्गीय पात्रों का मनोवैज्ञानिक रेखांकन किया हैं । डॉ.रेखा शर्मा कमलेश्वर के पात्रों की विशेषता के

संदर्भ में लिखती है कि- ''इनके पात्रों में अचेतन में द्वन्द्व की स्थिति निरन्तर चलती रहती है । लेकिन उपन्यास के अंत में पात्रों का द्वन्द्व मुक्ति प्राप्त हो जाता है वह जीवन से समझौता करके अपने भीतरी द्वन्द्व से सामंजस्य उत्पन्न कर लेते हैं । उनके उपन्यासों में विकृत मानसिकता वाले पात्र नहीं है । '' [६२] कमलेश्वर की कथाकृतियों में मनोविज्ञान अपना अलग महत्व रखता है । इनके पात्र अचेतन जगत में जीते जरूर हैं किन्तु सामाजिकता को नकारते नहीं हैं ।

कमलेश्वर की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता उनकी साफगोई है । जीवन के प्रति नितान्त स्पष्ट दृष्टि होने के कारण उनमें यह साफगोई आई है । समर्थ भाषा तथा यथार्थ जीवन की सबल अभिव्यक्ति कमलेश्वर की कथाओं की विशेषताएँ हैं । कमलेश्वर के कथाओं की विशेषताओं के बारे में डॉ. सुरेश सिन्हा अपना मत प्रकट करते हुए कहते है कि-'' कमलेश्वर के लघु उपन्यासों की एक प्रमुख विशिष्टता उनकी साफ-सुथरी भाषा का प्रवाह एवं यथार्थता है । चित्रात्मक भाषा संजोना एवं यथार्थ वातावरण निर्माण करने में वे पूर्ण सफल रहे हैं । आसपास के परिचित परिवेश के छोटे-छोटे ब्योरे एवं बारीक रेशे भी उनकी सूक्ष्म दृष्टि से छूट नहीं पाये हैं । सामाजिक दायित्व का निर्वाह एवं सोद्देश्यता उनके उपन्यासों की दूसरी प्रमुख विशेषता हैं ।'' [६३]

कमलेश्वर की रचनाओं में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध पूर्ववर्ती उपन्यासकारों की तुलना की दृष्टि से पूर्णतः भिन्न रूप में चित्रित हुए है । हिन्दी के अधिकांश उपन्यास बहुत ही अस्वाभाविक, संत्रास तथा पीड़ा से भरे हुए हैं । लेकिन कमलेश्वर के उपन्यास इससे विपरीत है । इस सम्बन्ध में रेखा शर्मा का कथन है कि-'' कमलेश्वर के उपन्यासों की नायिका अहंवादिनी है । वे अचेतन मन में पश्चाताप करती है ,लेकिन चेतन स्तर पर डरकर निर्णय लेती है और नायक के समक्ष झुकती नहीं है । पुरुष पात्र स्थितियों से पलायन करते है और स्त्री पात्र समझौता । यह समझौते की स्थिति कहीं अलगाव के रूपमें प्रकट करती हुई तो कहीं महत्वाकांक्षा के रूप में । ''[६४] फलतः स्वाधीनता के बाद के उपन्यासकारों में कमलेश्वर बेहद सफल उपन्यासकार सिद्ध हुए थे ।

कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों में युगीन समाज को पूरे यथार्थ के साथ चित्रित किया है । इसके साथ ही उन्होंने व्यक्ति की मानसिक चेतना को सशक्त रूप से चित्रित किया है । इस सम्बन्ध में कृष्ण कुरड़िया का मत है -''व्यापक मानवीय संवेदना, वातावरण और चरित्रों का आत्मीय परिचय और निकटता की व्यक्तिगत

संवेदना नितान्त भिन्न स्वर पर प्रकट हुई, जो उन्हें अपने समकालीन उपन्यासकारों से पृथक करती है । ''[६५]

कमलेश्वर के चार उपन्यास पुस्तककार के रूप में छपने से पहले पत्रिकाओं में छपे थे । 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ ',हंस पत्रिका में , ' समुद्र में खोया हुआ आदमी ' और 'काली आँधी ' साप्ताहिक हिन्दुस्तान में और 'आगामी अतीत' धर्मयुग में छपा था । कमलेश्वर के 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ', 'डाक बंगला' 'काली आँधी' और ' आगामी अतीत' आदि उपन्यासों पर फिल्में भी बन चुकी हैं ।

(३) पत्रकार और सम्पादक कमलेश्वर

कमलेश्वर हिन्दी जगत में एक सशक्त कहानीकार, उपन्यासकार के रूप में ही नहीं बल्कि सशक्त पत्रकार और सम्पादक के रूप में भी जाने जाते थे । वे बहुमुखी प्रतिभा के सर्जक थे अतः उनकी लेखनी हिन्दी साहित्य जगत की सभी विधाओं पर सर्जनात्मक कार्य करती रही थी । कमलेश्वर का सम्पादित कार्य निम्नलिखित हैं ।

क्रम	सम्पादित रचना	प्रकाशन वर्ष
१	'संकेत' (बृहद साहित्यिक संकलन)	१९५५
२.	'नईधारा' (समकालीन कहानी विशेषांक)	१९६५
३.	'समान्तर-१'	१९७०
४.	'मेरा हमदम मेरा दोस्त'	१९८०
५.	'गर्दिश के दिन'	१९८०
६.	'आद्य कथाकार'	१९८१
७.	'मराठी कहानियाँ' (दो खण्ड)	१९८६
८.	'तेलुगु कहानियाँ'	१९८७
९.	'पंजाबी कहानियाँ'	१९८८
१०.	'उर्दू कहानियाँ' (दो खण्ड)	१९८९

कमलेश्वर ने निम्नलिखित पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन कार्य किया था ।

कम	पत्र-पत्रिका सम्पादन	प्रकाशन वर्ष
१.	'विहान'	१९५४
२.	'इंगित' (साप्ताहिक)	१९६१-६३
३.	'नई कहानियाँ' (मा)	१९६३-६६
४.	'सारिका' (मा / पा)	१९६७-७८
५.	'कथा यात्रा' (मा)	१९७८-७९
६.	'श्री वर्षा '(सा)	१९७९-८०
७.	'गंगा' (मा)	१९८४-८८
८.	'दैनिक जागरण'	१९९०-९२
९.	'दैनिक भास्कर'	१९९७

कमलेश्वर ने सर्वप्रथम हिन्दी 'संकेत ' में सम्पादक रूप में कार्य किया था। सन् १९५४ में इलाहाबाद से 'कहानी ' पत्रिका का प्रकाशन हुआ। कमलेश्वर आरम्भ से ही उसके सहयोगी सम्पादक रहे। कमलेश्वर ने इसके बाद दिल्ली से निकलने वाले साप्ताहिक पत्र 'इंगित' के सम्पादक का भार ले लिया था। 'इंगित' साहित्यिक पत्र मात्र न होने के कारण उन्होंने इस पत्र में तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विषयों पर सार्थक टिप्पणियाँ और लेख भी लिखे थे । कमलेश्वर ने अनेक उपनामों से इन विषयों पर सार्थक टिप्पणियाँ एवं निबन्ध लिखे। कमलेश्वर इस पत्र में 'तीसरी दुनिया के देशों की आर्थिक संयोजना' पर ' पर्यवेक्षक' उपनाम से टिप्पणियाँ लिखते थे। 'फासिस्ट विरोधी ' लेख 'संजय' उपनाम से लिखे थे। 'हरिश्चन्द्र' के उपनाम से सम्प्रदायवाद अँध-राष्ट्रीयतावाद और हिन्दूवाद की व्याख्या को उघेड़ते रहे थे। 'सौमित्र सिन्हा' के उपनाम से वे पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था, युद्ध उन्माद, तथा भारतीय बुर्जवादी की साजिशों को बेनकाब करते रहे थे।' विप्र गौस्वामी 'के उपनाम से प्रतिकियावादी, सेक्सवादी और स्वच्छन्दतावादी प्रवृतियों के विरूद्ध उन्होनें काफी लेख लिखे थे।

कमलेश्वरने 'इंगित' छोड़ने से पहले 'नई कहानियाँ' का संपादन कार्य सम्भाला था। 'नई कहानियाँ' साहित्यिक पत्रिका द्वारा उन्हें साहित्यिक समस्याओं को उजागर करने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। कमलेश्वर ने ' मेरा हमदम मेरा दोस्त 'जैसे कालम से स्थापित लेखकों के जीवन के अंतरंग संदर्भों को पाठकों के सम्मुख रखते हुए नये लेखकों की वैचारिक समस्याओं को मुखर किया था। इसी समय से कमलेश्वर के साहित्यिक सम्पादन का व्यक्तित्त्व उभरकर लोगों के सामने आया था।

कमलेश्वर ने 'नई धारा 'के 'समकालीन कहानी विशेषांक' मे नए-पुराने

सभी लेखकों को जोड़ा था । कमलेश्वर ने ही इस विशेषांक का सम्पादन किया था । कमलेश्वर ने सन् १९६७ ई. में 'सारिका' का सम्पादन कार्य सम्भाला । इस पत्रिका में कमलेश्वर ने ' मेरा पन्ना ' नाम से सम्पादकीय वक्तव्य लिखना आरम्भ किया था । कमलेश्वर के सम्पादन लेखन के बारे अजित पुष्कल कहते है कि- '' कमलेश्वर ने सबसे पहले सम्पादक बनने के बाद सातवें दशक की समाप्ति और पहले पाठक की वापसी की बात उठाई और 'बाँझ बौद्धिकता' और 'दम्भ पीड़ित दार्शनिकता'को नकारकर अर्थ शब्दों को छिनने का आहवान किया । गढी हुई नकली भाषा से विद्रोह किया और घोषित किया कि आदमी की पक्षधरता का दायित्व कहानी ही उठाएगी । साथ ही उसके यथार्थ को पहचान ने उसकी तलाश की उत्कृष्ट तत्परता पर बल दिया ।''[६६] इसके अतिरिक्त कमलेश्वर ने छोटी-छोटी पत्रिकाओं में ' बातचीत ' कालम भी आरम्भ किया, क्योंकि साहित्य निर्माण में लघु पत्रिकाओं का योगदान महत्त्वपूर्ण था ।

पत्रिका को जीवंत एवं रोचक बनाने का दायित्व सम्पादक के हाथों में रहता है । कमलेश्वर 'सारिका' के सम्पादक होने के बाद भी जान बुझकर अपने विचारों को 'सारिका के पन्नों ' में अभिव्यक्त किया करते थे । इस प्रकार उन्होंने सारिका को विशिष्ट बना दिया । कमलेश्वर ने बदलती हुई परिस्थितियों से जो संकट और समस्याएँ देश-विदेश में उत्पन्न हुई उनका वैज्ञानिक चिन्तन अनेक लेखों द्वारा प्रस्तुत किया था । कमलेश्वर विभिन्न भारतीय भाषाओं के लेखकों को साहित्यिक चिन्तन तथा सृजन प्रकिया में सक्रिय सहयोग दे रहे थे । कमलेश्वर ने पाठकों की जिज्ञासा की तृप्ति के लिए 'गर्दिश के दिन ' और 'अन्तर्कथा' आदि कालम आरम्भ किये थे । कमलेश्वर ने अक्टुबर १९७४ से जुलाई १९७५ तक 'सारिका' के माध्यम से दस 'समान्तर कहानी विशेषांक' प्रसिद्ध किये थे , जिनमें सम्पादक के रूप में उन्होनें ' मेरा पन्ना ' के अंतर्गत सम्पादकीय टिप्पणियों में अपनी मान्यताओं, विचारधाराओं तथा आस्थाओं को अभिव्यक्त किया था । इस सम्बन्ध में ललित मोहन अवस्थी अपनी विचारधारा प्रकट करते हुए लिखते है - '' 'सारिका' के समान्तर- १ से समान्तर-१० तक के सम्पादकीय हिन्दी साहित्य के वर्तमान समान्तर नव लेखन एवं आन्दोलन के घोषणा पत्र माने जा सकते हैं, उनमें वर्तमान दौर के आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, नैतिक प्रश्नों तथा अन्तराष्ट्रीय सन्दर्भों पर समान्तर लेखकों के अभिमत की व्याख्या प्रस्तुत की गई है..... इस दृष्टि से उनका विशेष महत्त्व है ।''[६७]

सम्पादक कमलेश्वर फतवेबाजी के लिए कभी कालम चलाते नहीं थे । साहित्यिक कार्य के लिए पूरी धुन के साथ वे फिल्ड-वर्क भी करते थे । सम्पादक

कमलेश्वर के सम्बन्ध में अजित पुष्कल बताते है -''सम्पादक के रूप में भारतीय चिन्तन और सम्मिलित भारतीय साहित्य के स्वरूप को भाषाई सीमाओं से उपर ले जाकर एकात्म करने का जो ऐतिहासिक दायित्व कमलेश्वर ने निभाया है वह यथार्थवादी सोच और प्रगतिशील चिन्तन परम्परा की अगली कड़ी है।''[६८] असल में कमलेश्वर सामायिक परिवर्तशील चेतना को विकसित करनेवाले सम्पादकों में अग्रणी थे।

कमलेश्वर समकालीन लेखकों के जन जीवन को सही अर्थ में जोड़ने के उदेश्य से प्रयत्नशील रहे थे। कमलेश्वर की मानवतावादी दृष्टि के संदर्भ में नवारूण वर्मा लिखते है-''कमलेश्वर की यही मानवतावादी दृष्टि उसे सर्व भारतीय भी बना देती हैं कारयित्री प्रतिभा का वह खोजी रहा है। इसलिए हिन्दी-अहिन्दी भेदभाव बगैर उसने प्रत्येक क्षेत्र के नवोदित लेखकों को उचित मर्यादा दी ही है , अपने सम्पादन काल में भारत की विभिन्न भाषाओ में हो रहे साहित्यिक आन्दोलनों, साहित्यिक कृतियों को हिन्दी के माध्यम से जोड़ने का काम उसने किया है, जो हजारो संगोष्ठियों या भाषणों से नहीं हो सकता था। कमलेश्वर की यही व्यापक दृष्टि उसे अन्य सम्पादकों से विशिष्ट बना देती है। अपने सम्पादन काल में उसने 'नई कहानियाँ ' को भारतीय कथाकारों का मंच बना दिया था , आज ' सारिका' को भी उसने वही भूमिका प्रदान की है। भारतीय साहित्य इसके लिए सदा कमलेश्वर का कृतज्ञ रहेगा।''[६९]

इस प्रकार देखा जाए तो कमलेश्वर एक पत्रकार और सम्पादक के रूप में भी हिन्दी की सेवा करते रहे थे। कमलेश्वर की ये सेवाएँ वेतन भोगी सर्जक की नहीं, बल्कि आत्म-समर्पित एक ऐसे सर्जक की रही थी, जिसने जीवनभर आम आदमी की कथा, व्यथा से संवेदित होकर समाज जीवन के सत्य उद्घाटन में अपनी सर्जना मनिषा को खपा दिया था। जिसमें मानवता की पुकार थी, राजनीति का छल-छद्म नहीं।

(४) नाट्यरूपान्तरकार कमलेश्वर

नाटक एवं नाट्यरूपान्तर के क्षेत्र में भी कमलेश्वर ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था। कमलेश्वर ने कतिपय मौलिक एवं अनुदित नाटकों की रचना की थी। कमलेश्वर ने कहानी,उपन्यास के माध्यम से तो पीड़ित शोषित वर्ग का चित्रण किया ही है, लेकिन नाट्यरूपान्तर के रूप में भी ऐसी कहानी चुनी जो पीड़ित, शोषित वर्ग का दायित्व निभा रही हो।

कमलेश्वर ने भारतीय भाषाओं की चुनी हुई कहानियों का नाट्य रूपान्तर

बहुत ही सहज और सरल भाषा में किया है । कमलेश्वर के ' दर्पण' नाट्यरूपान्तर में भारतीय भाषाओं की आठ कहानियों के आलेख दिये गये थे, उसमें हमें अपनी ही छबी देखने को मिलती थी । ऐसे सामान्य दर्पण तो समय बीतने पर धूल धूसरित हो जाता है किन्तु यह कमलेश्वर का ऐसा दर्पण था जिसमें जितनी बार देखे उतनी बार वह नया रूप सामने लाता था । 'दर्पण' नाट्य रूपान्तर में मध्यम वर्ग के गरीब पीड़ित और शोषित वर्गों की कहानी थी । कमलेश्वर ने भारत की सिंधी, उर्दू, गुजराती, कन्नड, पंजाबी, मलयालम, बंगला और हिन्दी भाषाओं का नाट्य रूपान्तर किया था ।

कमलेश्वर ने मौलिक नाटकों की रचना भी की थी । उनके मौलिक नाटक- 'अधूरी आवाज ' तथा ' रेगिस्तान' है, तो उनका अनुदित नाटक 'खड़िया का घेरा' है । 'खड़िया का घेरा' नाटक के मूल लेखक ' ब्रेख्त ' है । उन्होनें प्रेमचंद के गोदान, गबन, निर्मला तथा रविन्द्रनाथ कृत चारूलता का नाट्यरूपान्तर किया हैं । लेकिन ये कृतियाँ अप्रकाशित एवं अप्राप्य हैं । कमलेश्वर को बच्चों के प्रति विशेष लगाव था । उन्होंने बच्चों को ध्यान में रखकर चार बाल नाटक संग्रह लिखे हैं । बाल नाटकों की कृतियों में से कुछ प्राप्त है और कुछ अप्राप्त ।

इस प्रकार कमलेश्वर ने नाटक एवं नाट्यरूपान्तरकार के रूप में भी अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है । इस में लेखक ने शोषित ,पीड़ित, आम आदमी की संवेदना को अभिव्यक्त किया है ।

(५) आलोचक कमलेश्वर

रचनाकार आलोचक का कार्य छायावाद-युग से ही करते आये है । सुमित्रा नन्दन पन्त के 'पल्लव' की भूमिका से चली आती हुई इस परम्परा को 'सप्तकों ' के कवियों ने प्रस्तुत किया था और फिर नई कहानियों को प्रस्थापित करने का कार्य राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश एवं कमलेश्वर जैसे कथाकारों ने किया ।

आलोचना का क्षेत्र सामान्यतः साहित्यकारों के पहुँच की दुनिया नही है । फिर भी कमलेश्वर ने आलोचनात्मक रचनाएँ लिखकर अपने व्यक्तित्त्व का परिचय दिया है । कमलेश्वर की आलोचनात्मक रचनाएँ - 'नई कहानी की भूमिका ' ' नई कहानी' के बाद 'मेरा पन्ना : समान्तर सोच' आदि है ।

कहानी रचना के साथ-साथ कमलेश्वर ने नई कहानी की व्याख्या और पक्षधरता के बारे में बहुत कुछ लिखा था । उन्होंने नई कहानी के आलोचक के रूप में जिम्मेदार भूमिका निभाई थी । उन्होंने अपने विभिन्न लेखों और 'नई कहानी की भूमिका' पुस्तक में नई कहानी के विभिन्न पक्षों को बखुबी पेश किया था । 'नई कहानी की भूमिका' के अंतर्गत जिन मुद्दों की चर्चा हुई है इनमें प्रमुख रूप से देखें तो 'पुरानी कहानी ' की जड़ता के कारण ही है । कमलेश्वर की सोच है कि-'' पुरानी पीढ़ी के पास संचित ज्ञान की कमी नहीं थी , पर वह ज्ञान जीवन्त अनुभवों और संवेदनाओं के बदलते हुए मानों द्वारा निरन्तर परिपोषित नहीं हुआ । ऐसे ही समय में ,जब कि पुराने लेखकों के सृजन-स्रोत सुख रहे थे और नया पाठक-वर्ग बदलते हुए मान-मूल्यों की अभिव्यक्ति चाह रहा था , नई कहानी का उदय हुआ ।''[७०]

कमलेश्वर ने कहानी में नया क्या है ? इस बात की चर्चा की थी । कमलेश्वर ने 'नई कहानी की भूमिका' में कहा है कि कुछ लोग सतह पर देखने के आदी हैं अतः उन्हें सिर्फ यह लगता हैं कि कहानियाँ कस्बे,शहर और गाँव मे बह गई हैं और परिवेश की नवीनता को नयापन कहकर चलाया जा रहा हैं । किन्तु वस्तुतः बात इतनी ही नहीं है, नई कहानी ने भौगोलिक परिधि को ही नहीं तोड़ा उसकी आन्तरिक दृष्टि में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है ।

कमलेश्वर ने इसके अलावा भी 'नई कहानी की भूमिका' पुस्तक में अनेक पहलुओं पर प्रकाश डाला है , जैसे.....शाश्वत मूल्यों का आग्रह और नई कहानी' नई कहानी पुरानी कहानी ' समकालीन कहानी, लघु कहानी ,'नई कहानी में जीवित विचार' 'नई कहानी की अपनी अन्वेषित कुछ दिशाएँ, 'आधुनिकता और प्रामाणिकता के सन्दर्भ में 'नई कहानी ' नई कहानी का स्वरूप और व्यक्तित्त्व, 'नई कहानी और प्रमाणिकता का प्रश्न, जैसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नों की चर्चा इसमें विस्तार से हुई है । 'नई कहानी ' को लेकर की गई समस्त आलोचनाओं का प्रत्युत्तर देने का सफल प्रयास इस पुस्तक में किया है । इसके साथ ही इसके प्रकाशन वर्ष (१९६६) तक १५-१६ वर्षों में प्रकाशित समस्त महत्त्वपूर्ण और चर्चित कहानियों का मूल्यांकन भी इस पुस्तक में हुआ । इन सभी दृष्टियों से 'नई कहानी की भूमिका' नई कहानी की पहचान में सहायक एक अच्छी आलोचनात्मक रचना सिद्ध हुई ।

इसी प्रकार 'समांतर' आन्दोलन की पक्षधरता में लिखे गए लेखों, 'सारिका' मे 'मेरा पन्ना ' के सम्पादकीय लेखों आदि में कमलेश्वर के आलोचक व्यक्तित्त्व का परिचय मिलता है । समान्तरकालीन उनके लेखों में आन्दोलन का जोश और एक विशिष्ट प्रकार का अंदाज पाया जाता है । कमलेश्वर का आलोचना से मत वैभिन्य होते

हुए भी यह स्वीकार करना होगा कि उन्होंने कहानी के एक समर्थ आलोचक की भूमिका निभाई थी ।

कमलेश्वर की प्रशंसा और उनके विरोध में बहुत कुछ लिखा गया था । अगर प्रशंसात्मक लेखन को एक तरफ रखकर जालंधर से लेकर कलकत्ता तक से छपनेवाली किसी भी प्रतिक्रिया वाही या भावुक उग्रपंथी छोटी-बड़ी 'साहित्यिक' पत्रिका के पन्ने उलटने की तकलीफ कोई निष्पक्ष व्यक्ति उठायें तो अन्य बातों से पहले वह इस निष्कर्ष तक पहुँचेगा कि बम्बई में एक कुख्यात शख्स है । जो 'सारिका' नाम की पत्रिका का 'सम्पादक' है और जिसने इन पत्रिकाओं में छपनेवाले सैकड़ों 'साहित्यकारों' की रातों की नींद हराम कर रखी है । दर असल प्रशंसकों और विरोधियों का यह बेपनाह हूरम ही कमलेश्वर की सबसे बड़ी ताकत है और यह ताकत अपने साथ एक जादुई प्रभाव भी लिये हुए है । इसी संदर्भ में लिखा गया है कि -'' निस्संदेह आज कमलेश्वर साहित्य में एक बेहद यथार्थ व्यक्ति है । जब तथा कथित 'गेर-व्यावसायिक' और मुक्त लेखक 'व्यावसायिक ' पत्रिकाओं के खिलाफ जेहाद छेड़ते हैं, तो पहला राउन्ड कमलेश्वर की ही तरफ दागा जाता है और जब व्यापक सामाजिक और साहित्यिक प्रतिबद्धता की बात उठती हैं तो सबसे पहले पुष्पहार के हकदार भी 'मेरा पन्ना' के लेखक कमलेश्वर ही बनते हैं । गरज यह कि हिन्दी साहित्य में आप कमलेश्वर से वास्ता रखे बगैर नहीं गुजर सकतें ।''[७१]

इस प्रकार इस संक्षेप विवेचन से यह ज्ञात होता है कि कमलेश्वर ने एक स्पष्टवादी, तटस्थ निष्पक्ष, आलोचक की भूमिका अदा की थी । उन्होंने भले ही किसी सैद्धान्तिक आलोचना ग्रन्थ,मानक आलोचना ग्रन्थ की रचना न की हो पर जिस प्रकार उन्होंने किसी रचना या कृति की विवेचना प्रस्तुत की थी वह अपने आप में प्रसंशनीय है ।

(६) दूरदर्शन और कमलेश्वर

कमलेश्वर सन् १९५८ ई. में दूरदर्शन में नियुक्त हो गए । पहले इन्हें इलाहाबाद रेडियों में 'स्टाफ आर्टिस्ट ' के रूप में नियुक्त किया गया । फिर एक महिने बाद दूरदर्शन केन्द्र दिल्ली में तबादला कर दिया गया । दूरदर्शन उन दिनों ही शुरु हुआ था । उस समय दूरदर्शन में केवल कमलेश्वर ही हिन्दी लिखने वाले थे, बाकी सब केवल बोल सकते थे । कमलेश्वर दूरदर्शन में तरह-तरह की 'स्क्रिप्ट' लिखते तथा विविध कार्यक्रम पेश करते रहे थे । उसके साथ ही साथ लेखन कार्य भी वे जारी रखा

करते थे । कमलेश्वर ने सन् १९६१ ई. में 'जार्ज पंचम की नाक' कहानी लिखी और 'नई कहानी' पत्रिका में छाप दी थी । इस पर कमलेश्वर से सरकार विरोधी कहानी लिखने का लिखित खुलासा माँगा गया । उन दिनों कमलेश्वर अपनी पहली बेटी की मृत्यु के आघात से तन-मन से पीड़ित थे । निर्देशक कृष्णमूर्ति ने समझाकर कहा कि-'' परेशान क्यों होते हो ? .... तुमने अभी अपना कैरियर शुरू किया है । लम्बे और ब्राइट फयुचर तुम्हारे सामने है ।....तुम जो कुछ लिटरेचर के लिए लिखना चाहते हो, लिखते रहना, सिर्फ दूरदर्शन का पता उस पर मत देना । ''[७२]

निर्देशक के लाख समझाने पर भी कमलेश्वर अड़िग रहे और उन्होनें दूरदर्शन की नौकरी छोड़ दी । कमलेश्वर के मतानुसार-'' मुझे पता नहीं था कि सरकारी नौकरो पर यह नियम भी शायद होता था । मेरे पास कोई उत्तर नहीं था ।... मैंने तय कर लिया कि मैं अगले दिन से नहीं आऊँगा । दूसरे दिन दफ्तर पहुँचा तो मुझे सब कुछ पराया सा लगने लगा ।.... मैं अड़िग था । सर ! मुझे यह मेहरबानियाँ नहीं चाहिए । मैं कल से नहीं आऊँगा । आप मुझे पुलिस से पकड़वा के मँगवा लीजिएगा ! कहकर मैं उनके (कृष्णमूर्ति) कमरे से बाहर आया ।''[७३]

सन् १९८० ई. में श्रीमती इन्दिरा गाँधी के बुलाने पर कमलेश्वर फिर दूरदर्शन में 'डायरेक्टर जनरल' के पद पर आ गए । दिल्ली दूरदर्शन में काम करते समय कमलेश्वर को ब्रह्मचारी के साथ थोड़ा मतभेद हुआ । एक बार ब्रह्मचारी द्वारा कमलेश्वर को रिकमेंडेड प्रोजेक्ट को जब थोडा बदल देने का इशारा हुआ तो कमलेश्वर को अच्छा न लगा । उन्होनें तत्काल ही इस्तीफा लिखकर सचिव को दे दिया ।

कमलेश्वर बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे, ऐसे व्यक्ति की सब से नयी तथा निराली विशेषता यह है कि यह टेलिविजन स्टार भी थे । दूरदर्शन के लिए लगभग ढ़ाई सौ 'स्क्रिप्ट्स' का लेखन कमलेश्वर ने ही किया था । टेलिविजन दिल्ली के लिए उन्होंने समाचार और अन्य कार्यक्रमों का प्रस्तुतिकरण भी किया था । दूरदर्शन में साहित्यिक कार्यक्रम 'पत्रिका' की शुरूआत कमलेश्वर ने की थी । भारतीय टेलिविजन के लिए पहली फिल्म 'पन्द्रह अगस्त' निर्माण का सम्मान उन्हें प्राप्त हुआ था । कमलेश्वर ने भिवण्डी (बम्बई) में हुए हिन्दू-मुस्लीम दंगों पर भारतीय टेलिविजन के लिए फिल्म का निर्माण भी किया था ।

कमलेश्वर बम्बई दूरदर्शन से प्रसारित 'परिक्रमा' कार्यक्रम के संचालक रहे थे । 'परिक्रमा' इन्टरव्युओं का कार्यक्रम होने पर भी उस समय बम्बई दूरदर्शन के

सबसे लोकप्रिय एवं सफल कार्यक्रमों में से एक था । प्रसिद्ध अंग्रेजी कवि और विचारक निसीम इजीकेल का कथन है कि-''कमलेश्वर के कार्यक्रम (परिक्रमा) भारतीय टेलिविजन की उपलब्धि है । वे कार्यक्रम है ही नही घटनाएँ हैं । अब बार-बार कमलेश्वर के कार्यक्रमों के बारे में लिखने और कहने को कुछ शेष नहीं रह गया है । ''[७४]

'परिक्रमा' कार्यक्रम की लोकप्रियता को देखते हुए प्रसिद्ध संगीतज्ञ और अंग्रेजी लेखक सुन्दरसिंह कहते है कि-'' कमलेश्वर की 'परिक्रमा' अद्वितीय है ! टेलिविजन पर कमलेश्वर जिस तरह से मामूली लोगों का इन्टरव्यू लेते हैं और उनकी मजबूरियों को उगलवा लेते हैं -और संगीत कथ्य को रेखांकित कर देते हैं , वह अपने में एक अनुभव हैं, कमलेश्वर ने इन्टरव्यू करने के तरीके को 'कला ' बना दिया हैं । ''[७५]

कमलेश्वर ने जब 'परिक्रमा' प्रोग्राम शुरु किया तो पहले पढ़े लिखे को दिखाया । उनकी सामाजिक समस्याओं पर उन्हें बोलने का मौका दिया और उनसे वाद-विवाद किया । सवाल ऐसे किये की कपट का पर्दा हट गया और हमें अपने समाज की रूपरेखा इन पात्रों में दिखाई देने लगी । 'परिक्रमा' कार्यक्रम केवल ऊँच-नीच विषमता और विरोधाभास ही नहीं दिखाते, बल्कि उनके बारे में हमारी जानकारी भी बढ़ाते हैं । यह टेलिविजन की सामाजिक व सोशलिस्ट परिकल्पना थी जो कमलेश्वर के 'परिक्रमा' प्रोग्रामों से उजागर हुई ।

जो काम साहित्य लिखकर कर सकते थे पर कितने लोग साहित्य पढ़ते ? कमलेश्वर ने वह काम इन पात्रों को हमारे सामने ला करके उनसे ऐसे-ऐसे सवाल करके किया जो पूरे दौर के आर्थिक और सामाजिक प्रश्नों पर रोशनी डालते हैं । कमलेश्वर ने कहा कि -'' जो काम मैं साहित्य के सुस्त माध्यम से पच्चीस वर्षों में नही कर पाया था वह काम अब मैं दूरदर्शन के माध्यम से प्रति सप्ताह करता था ।''[७६]

अखबार हर हप्ते 'परिक्रमा' की चर्चाओं से भरे रहते थे । दुकानों और प्राइवेट संस्थानों में काम करनेवाले कर्मचारी एकजुट होकर परिक्रमा वाले दिन साढे छः बजे शाम से छुट्टी की पेशकेश कर रहे थे .. क्योंकि वे बसों और लोकल ट्रेनों से 'परिक्रमा' शुरु होने से पहले अपने घरों पर पहुँच जाना चाहते थे । इसी प्रोग्राम के बारे में दादा मुनि (अशोककुमार) का बयान छपा था कि लोग हमें देखते है, हम कमलेश्वर को देखते हैं ।

'परिक्रमा' कार्यक्रम दिनों-दिन सफल, महत्त्वपूर्ण और लोकप्रिय होता जा रहा था । बम्बई, महाराष्ट्र और पूरा देश कमलेश्वर को टी.वी. के 'परिक्रमा' प्रोग्राम के कारण पहचानता था । दूरदर्शन पर प्रसारित होनेवाला उनका साप्ताहिक प्रोग्राम 'परिक्रमा' सच्चाई ईमानदारी और निम्नवर्गों के दुःखों और यातनाओं का दस्तावेज बन चुका था । कमलेश्वर को हर प्रदेश के लोग अपने प्रदेश का साबित करने की होड़ किया करते थे । 'परिक्रमा' कार्यक्रम की प्रसिद्धि के बारे में कमलेश्वर ने कहा कि -'' बम्बई की लोहारचाल की दुकानों के सत्रह सौ सेल्समैनों ने हड़ताल की थी कि हर मंगलवार उन्हें शाम छह बजे छुट्टी दी जाए, ताकि अपने घरों तक पहुँच पाएँ और सवा आठ बजे प्रसारित होनेवाले 'परिक्रमा' कार्यक्रम को देख पाएँ। ''[७७] यही कारण है कि गम्भीर और गैर-फिल्मी विषयों पर एक ही तरह से बैठकर लिये गये इन्टरव्यूओं का कार्यक्रम होने के बावजूद 'परिक्रमा' बम्बई दूरदर्शन के सब से लोकप्रिय और सफल आयोजनों में से एक है ।

कमलेश्वर की सुझ का नतीजा है कि उसने अपने विशेष कार्यक्रम में सामाजिक दायित्व को भूलाया नहीं था । कमलेश्वर को जनसाधारण में दिलचस्पी थी और एक प्रमुख तरक्की पसन्द लेखक होने के नाते वह उस वर्ग का न केवल चित्रण करना चाहते थे साथ ही उसके उत्थान हेतु अपनी कलम का इस्तेमाल करना भी चाहते थे । परिक्रमा के जरिए कमलेश्वर ने कई लोगों का जीवन समाज के सामने रखा जैसे कि-''परिक्रमा' के माध्यम से उसने जीवन के हर पहलू को देखा-परखा है । साहित्य हो या सिनेमा ,कला हो या कामकाजी जीवन, दो वक्त की रोटी जुटा पाने के चक्कर में पिसते नर-नारी हो या स्वर्ग स्वप्न के व्यापारी संत सभी को कमलेश्वर ने चित्रित किया हैं, कही हँसते हुए, कहीं उनके दुःख में शरीक और कभी-कभार बड़े प्यारे ढंग से उनकी टाँग खींचते हुए, उन्होनें हमारे समाज का चित्रण भी किया है, उस पर टिप्पण भी ।''[७८]

कमलेश्वर के 'परिक्रमा' कार्यक्रम में अक्सर ऐसे लोगों को लाया जाता था, जिन्हें समाज का धनिक वर्ग देखता तो हंमेशा हैं पर कभी उनके दिल की आवाज नहीं सुनता और जहाँ तक हो सके केवल नजरअन्दाज ही करता है । प्रातः घंटी बजानेवाला दूधवाला, घर की मरम्मत करनेवाला मिस्त्री, वर्दी पहने उसके बिल्डिंग की रक्षा करनेवाला गुरखा और शायद कभी न दिखनेवाली कामकाजी स्त्रियाँ, इन सबके अस्तित्त्व का एक धुँधला सा एहसास तो हमें हैं परन्तु कमलेश्वर को इस बात की दाद देनी पड़ती है कि उसने हमें उनकी महत्त्वाकांक्षाओं और स्वप्नों से परिचित करवाया हैं । यही 'परिक्रमा' की एक विशेष उपलब्धि हैं ।

कमलेश्वर ने दूरदर्शन के सशक्त माध्यम से बम्बई के 'महालक्ष्मी पुल' के दो ओर बस रही अमीर और गरीब दुनिया का परिचय करवाया है । 'परिक्रमा' के कारण न केवल धनाढय वर्ग को कामकाजियों के दिलों की चाह मिली हैं, बल्कि यह भी साबित हुआ है कि हमारे धनी लोग शत-प्रतिशत पत्थर दिल नहीं होते । कमलेश्वर के सभी कार्यक्रमों से प्रभावित होकर बहुत से लोगों ने कामकाजी वर्ग की सहायता करने के लिए अपनी सेवाएँ अर्पित की थी । कमलेश्वर को एक बैंक मैनेजर ने कहा था कि -'' हम सरकारी नीति के अन्तर्गत पिछड़े वर्ग के लोगों को कर्जा देते तो पहले भी थे परन्तु तब केवल आदेश पालन ही हमारा ध्येय था । परन्तु जब से आप के कार्यक्रम देखें हैं अब हम यह समझते हैं कि हम सच में ही एक महत्त्वपूर्ण काम कर रहे हैं ! ।''[७९] कमलेश्वर की नज़र एक ही वर्ग पर केन्द्रित हो, ऐसा नहीं था । उन्होंने कला , संगीत काव्य-प्रतिभा, धर्म, राजनीति सभी को देखा-परखा था और समय-समय पर एक से एक खूबसूरत कार्यक्रम दिये थे ।

कमलेश्वर दूरदर्शन जैसे सशक्त माध्यम को भारतीय साहित्य और भारतीय रंगमंच से जोड़ना चाहते थे । कमलेश्वर की यह कोशिश जब सन् १९५९ ई. में प्रथम स्क्रिप्ट राईटर थे, तब से चल रही थी । कमलेश्वर बीस साल बाद सन् १९८०-८२ ई. में एडिश्नल डायरेक्टर जनरल बनकर दूरदर्शन में दुबारा पहुँचे तब भी उनकी यह कोशिश जारी रही । इस स्थिति में उन्होंने जो कार्य किये वे सर्वविदित हैं । उनका यह अवसर बहुत-बहुत महत्त्वपूर्ण था क्योंकि इसी दौर में भारतीय दूरदर्शन ने 'श्याम-श्वेत' युग को छोड़कर 'कलर' के युग में प्रवेश किया था ।

कमलेश्वर ने दूरदर्शन के लिए 'बंद फाईल' तथा 'जलता सवाल' जैसे सामाजिक सरोकारों के वृत्त चित्रों का भी लेखन निर्देशन और निर्माण किया । भारतीय दूरदर्शन शृंखलाओं के लिए दर्पण, चन्द्रकान्ता, बेताल पच्चीसी, विराटयुग तथा भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम पर आधारित इतिहास परक पहली प्रामाणिक जनमंचीय मीड़िया कथाः 'हिन्दोस्तां हमारा' का निर्माण किया ।

इस प्रकार दूरदर्शन के प्रारम्भ से लेकर विकास तक में कमलेश्वर की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही थी ।

(७) फिल्मजगत और कमलेश्वर

आज फिल्म अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है । विश्व के शीर्षस्थ

फिल्मविदो का मत है कि फिल्म बहुत तेजी के साथ तकनीकी विकास की उस चरमसीमा की ओर बढ़ रहा हैं । जहाँ अभिव्यक्ति की दृष्टि से उसे अन्य कलाओं के सहयोग और सहायता की अपेक्षा नहीं के बराबर रह जायेगी । फिल्म अपनी अभिव्यक्ति और सम्प्रेषणीयता के एक स्वतन्त्र मुहावरें की तलाश की ओर अग्रेसर है । यह फिल्म के कलागत या तकनीकी विकास का पक्ष हैं, फिल्म एक व्यावसायिक (कमर्शियल आर्ट) कला हैं । लेकिन दुर्भाग्यवश भारत में हिन्दी फिल्म उद्योग केवल व्यवसाय ही नहीं बल्कि व्यवसाय का अति व्यावसायिक रूप सट्टा ही रहा हैं । अपवाद रूप में यदा-कदा किये गये कुछ प्रयास फिल्मों के इस रूप में कोई परिवर्तन नहीं ला सके हैं । कुछ दिनों से शुभ लक्षण इतना ही है कि अब कुछ फिल्म व्यवसायी फिल्म कथ्य-पक्ष के महत्त्व को न सही लेकिन इसकी जरूरत को पहचानने लगे हैं । हिन्दी फिल्मों में इस परिवर्तन का कुछ श्रेय उन साहित्यकारों को भी दिया जायेगा जिनकी कृतियों पर लींक से हटकर फिल्में बनी हैं । इस श्रेय के वास्तविक हकदार वे लेखक हैं जो फिल्मों से सम्बद्ध रहकर हिन्दी फिल्मों की अति व्यावसायिकता को आज की प्रासंगिकता और नये कथ्य की ओर खींचने का सफल प्रयत्न करते रहे थे और कर रहे हैं ।

कमलेश्वर हिन्दी फिल्मों से सम्बद्ध ऐसे साहित्यकारों में सबसे प्रबल नाम था । कमलेश्वर की कहानियों ने फिल्म रूप में फिल्म व्यवसाय को कथ्य का महत्त्व दिया था । कमलेश्वर ने साहित्यकार को फिल्म उद्योग में एक सर्वथा नया मूल्य और नयी प्रतिष्ठा दी । कमलेश्वर ने फिल्मों को नया वैचारिक धरातल देने का सफल प्रयास किया यह सबसे महत्त्वपूर्ण बात थी ।

कमलेश्वर का नाम सिनेमा के परदे पर बड़ी तेजी से उभरने लगा था । पिछले दो दशक से साहित्य की गतिविधियों से जो परिचित थे, उन बुद्धिजीवियों के लिए यह नाम नया नहीं था । कमलेश्वर ने रेडियों, दूरदर्शन की नौकरी से लेकर फिल्मों में कथा-पटकथा और संवाद लिखने तक की एक लम्बी दौड़ लगायी थी । कमलेश्वर से अभिव्यक्ति का इतना बड़ा माध्यम अछूता कैसे रह जाता । यह एक चैलेंज थी जिसका कमलेश्वर ने स्वीकार किया ।

कमलेश्वर संपादक - मधुकरसिंह ‘‘ कमलेश्वरः हिन्दी फिल्मों की ताकत ’’ पृष्ठ-३५० के अंतर्गत यह प्रश्न उठाया गया है कि पता नहीं क्यों हिन्दी का लेखक अपने सीमित दायरे बाहर नहीं निकलता ? मेरी समझ से इसकी वजह है उसका आलसीपन । आप हिन्दी के लेखक और खास तौर से कमलेश्वर बुरा न माने मैं यह जोर देकर कहना चाहता हूँ, कि हिन्दी फिल्मों और हिन्दी साहित्य को सबसे ज्यादा नुकसान

खुद हिन्दी का लेखक पहुँचा रहा हैं, वह डरपोक है, अहंवादी है (लेखक के अहं की मैं इज्जत करता हूँ अहंकार की नहीं) दकियानुस और साहसदीन हैं । क्या वजह है कि उर्दू की पुरानी पीढ़ी के मुमताज अदीब फिल्मों मे आ गये, क्या वजह है कि बंगला का कोई साहित्यकार फिल्मों से अछूता नहीं रहा, मलयालम का लेखक फिल्मों से परहेज नहीं कर सका, कन्नड़, मराठी, गुजराती के लेखकों ने लगातार अपनी फिल्मों को सहयोग दिया- सिर्फ हिन्दी का लेखक हैं जो फिल्मों को अछूत समझता हैं, बल्कि यह कहना ज्यादा सही होगा कि हिन्दी फिल्म इन्डस्ट्री आज हिन्दी के लेखक को अछूत समझने लगी है ।

हिन्दी फिल्मों के इतिहास को अगर हम थोड़ा पीछे जाकर देखें तो पता चलेगा कि फिल्मों में कमलेश्वर का आना अनायास नहीं हुआ था । जिस विधा का जन्म कभी मात्र मनोरंजन के लिए हुआ था वह अभिव्यक्ति का माध्यम बन जायेगा इसकी कल्पना कभी किसी ने शायद नहीं की होगी । एक ओर जहाँ विदेशो में फिल्म को कलात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम माना गया, वहाँ भारत में खासकर हिन्दी फिल्मों में उसे मात्र सस्ते मनोरंजन का ही एक मात्र साधन बनाकर रख दिया गया । ऐसा रूप धारण करने के पीछे बहुत सारे सामाजिक और राजनैतिक कारण भी हैं, इसे झुठलाया नहीं जा सकता । साथ ही साथ इस देश का बौद्धिक वर्ग फिल्मों की ऐसी अवस्था को देखकर सिर्फ अपनी बेबसी का इजहार कर सकता था और कुछ नहीं । लेकिन यह बेबसी, और कुछ कर डालने की अकुलाहट बहुत दिनों तक छिपी न रह सकी । इसका विस्फोट हुआ और उसका प्रारम्भ कमलेश्वर की कहानियों और मार्ग-निर्देश से ही हुआ । सवाल यह उठा कि ऐसी फिल्मों को क्या कहा जाय ? किस नाम से सम्बोधित किया जाय ? यह अलग फिल्में थी, अलग किस्म की फिल्में थी, जिसमें जीवन का सच्चा रूप था । वह चाहे 'बदनाम बस्ती' हो या 'डाक बंगला' ! उनमें जीवन का एक अछूता रूप था जिसे सिनेमा के परम्परावादी दृश्यों या कथानकों से अलग माना गया । जिसे आज हम 'न्यूवेव' या 'समान्तर सिनेमा' कहते हैं ।

फिल्मों एवं फिल्मीलेखन कमलेश्वर का शौक ही नहीं था ,परन्तु इसके द्वारा वह ७० प्रतिशत निरक्षर आबादी तक पहुँचना चाहते थे । अपनी दृष्टि से फिल्मों और टेलिविजन के महत्त्व के बारे कमलेश्वर की विचारधारा कुछ ऐसी है -''फिल्मों और फिल्मी लेखन को मैं ने कभी हेय दृष्टि से नहीं देखा । मैं मानता था और मानता हूँ कि ७० प्रतिशत निरक्षर आबादी तक पहुँचने का माध्यम टेलिविजन, रेडियो और फिल्में ही है । मेरे साहित्यकार साथी अपनी जिद के कारण इन माध्यमों की उपेक्षा बड़ी लालची मानसिकता से करते रहे हैं । वे इन संचार साधनों से सघन अवैद्य रिश्ता तो चाहते रहे हैं ,परन्तु वैद्य रिश्ता बनाने से दूर भागते रहे हैं । उनमें इतना साहस ही नहीं कि वे इस

रिश्ते को मंजूर कर सकें..... पर चोरी छिपे वे इस अवैद्य सम्बन्ध के लिए हमेशा उत्सुक पाये गए हैं....बंगला, मलयालम और मराठी साहित्य ने अपनी फिल्मों को कितना प्रभावित किया हैं, यह एक खुली बात हैं - पर हिन्दी में ऐसा नही हो पाया..... इसके लिए मैं हिन्दी लेखकों को ही दोषी पाता हूँ। जब लेखक खुद किसी भी लेखन का या उसके तथ्यों का सामना नहीं कर पाता तो वह बड़े आराम से उस लेखन पर फिल्मी लेखन का ठप्पा लगाकर अपनी कमजोरी को छुपाता हैं । यदी फिल्म लेखन इतना हैय रहा तो प्रेमचन्द, अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, सुदर्शन, फणीश्वरनाथ रेणु, निरज, नरेन्द्र शर्मा, नेपाली आदि इस तरफ क्यों आकर्षित हुए ? ''[८०]

बम्बई के अक्षय जैन ने कमलेश्वर से प्रश्न किया कि -''क्या फिल्मों के संवादलेखन से लेखक बालिग होता है ?'' कमलेश्वर ने जवाब में अक्षय जैन को बताया कि-''आप जैसे तथाकथित जनवादी एक तरफ जनता तक पहुँचने की लमतरानिया हाँकते हैं और अपनी लाचारी में फिल्मों को हिकारत से देखने का ढ़ोंग करते हैं और अपने पिटे हुए दम्भ को लेकर जनता तक सीधे पहुँचनेवाली फिल्मी माध्यम को गालियाँ देने लगते हैं । जी हाँ ! अपने समय की वह जनता जिसे पढ़ने लिखने की सुविधा यह सत्ता और समाज नहीं दे सका है - उस तक पहुंचने और उसे समझने से भी लेखक बालिग होता है । क्योंकि वह जनता जिसे साक्षर होने का अवसर नहीं मिला है जो खुद लिखना या कहना चाहती है -वही अपने लेखकों के द्वारा लिखा जाकर सुनना भी चाहती हैं । हाँ, स्तरीय फिल्मी लेखन की ओर लेखक आप हमलावर दिखने की ओर वाहवाही लूटना चाहते हो तो कोई आप से भी पूछ सकता है कि आपकी कविताओं और पटरियों पर बिकनेवाली पीली किताबों के गंदे गीतो में क्या फर्क है ?

आज का जो लेखक फिल्म जैसे जनसामान्य के सशक्त माध्यम की उपेक्षा अपनी लाचारी और उस लाचारी से उत्पन्न दम्भ में करता है, वह नपूसंक भी है और झूठा तथा कुण्ठित भी ।

आपकी जानकारी के लिए बता दूँ कि फिल्मी लेखन के क्षेत्र में बालिग होने के लिए (यानी अपनी निरक्षर जनता तक पहुँच पाने के लिए) प्रेमचंद भी आये थे । भगवती चरण वर्मा, अमृतलाल नागर, सुदर्शन, फणीश्वरनाथ 'रेणु', राजेन्द्रसिंह बेदी, अश्क, इसमत चुगताई, अमृता प्रीतम, नीरज, विरेन्द्र, नरेन्द्रशर्मा, मन्नू भण्डारी, निर्मल वर्मा,राकेश मोहन, कृष्ण चंदर, जैनेन्द्रकुमार आदि सभी लेखक आये थे और आज भी भारती, लक्ष्मीनारायण लाल, राही मासूम राजा, शरद जोशी, भैरवप्रसाद गुप्त, मार्कण्डेय, राजेन्द्र यादव, राजेन्द्र अवस्थी, राजकुमार भ्रमर, ज्ञानदेव अग्निहोत्री, मनमोहन कुमार 'तमन्ना' विजय तेंडुलकर जैसे तमाम लोग बालिग होने के लिए घूम रहे हैं.....

फिल्म मामूली माध्यम नहीं है – पर दोस्तों इसमें बालिग होने के लिए कलेजा चाहिए और अपनी परम्परा की ताकत । आप जैसे नाबालिग सिर्फ फिल्में देखते हैं – लिख सकते और लिखकर इस दुनिया को जनहित में बदलने के लिए ही हाथ बँटाने का न आपको सलीका है न हिम्मत । आवारा होकर गंदे इशारे करते हुए फिल्मी पोस्टरों पर जैसे पत्थर मारते हैं – आप भी अपनी ईर्षा के गंदे इरादों को सहलाते हुए फिल्मी लेखक को गालियाँ देने के सिवा और क्या कर सकते हैं ? ''[८१]

एक गरीब स्पोटबोय से लेकर करोड़पति वितरक तक फिल्मों ने दुनियाभर में लाखों लोगों को रोजगार दिया है । भारतीय फिल्म उद्योग की पारंपारिक आर्थिक संरचना दिखाती है कि इसके सभी क्षेत्रों को मिलाकर कुल निवेश ३०,००० करोड़ श्रुपियों का हैं । 'उदभावना ' के सम्पादक अजेयकुमार कहते है कि–'' भारत विश्व में सबसे ज्यादा फिल्में बनाने वाला देश है – १९९६ में ८०० फिल्में बनी जिसमें से ३०० हिन्दी में थी ।''[८२]

कमलेश्वर अपने फिल्म जगत में पदार्पण का श्रेय 'टाइम्स ओफ इन्डिया' की प्रख्यात सिने पत्रिका 'माधुरी' के संपादक अरविन्दकुमार को देते हैं । अरविन्दकुमार ने 'माधुरी' के माध्यम से फिल्मी पत्रकारिता को नया और सुसंस्कृत स्तर देने की पहल की थी और वह लगातार इसी चिन्ता में रहते थे कि हिन्दी कोमर्शियल सिनेमा का सम्बन्ध हिन्दी साहित्य और अन्य कलाओं के साथ कैसे जोड़ा जाये । इन्हीं चिन्ताओं को लेकर अरविन्दकुमार ने एक छोटी–सी अन्तरंग समिति बनाई थी । इसमें अरविन्दकुमार और मित्रों की कुछ नया करने की साझी इच्छा थी । साहित्यिक कृतियों की खोजबीन के लिए अरविन्दकुमार ने इसमें कमलेश्वर को भी शामिल किया था । इस समिति ने तमाम भाषाओं और खास तौर से हिन्दी की उन कृतियों का चुनाव शुश्र हुआ, जो फिल्मांकन के योग्य भी हो और साहित्य की गरिमा से मंड़ित भी । साहित्य और रंगमंच से जोड़कर हिन्दी फिल्म को समृद्ध करने का यह एक प्रयोग था । आज सिनेमा जनता से जुड़ने का सब से सशक्त माध्यम बन चुका है और सामाजिक परिवर्तन में इसकी भूमिका असंदिग्ध है ।

कमलेश्वर अच्छी तरह सोच समझकर ही फिल्मों से जुड़े । क्योंकि हमने बहुत दिनों तक संस्कृति के हांसिए पर सिनेमा को खड़ा रखा । 'वाणप्रस्थम' के मोहनलाल, जिन्हें राष्ट्रीय पुरस्कार मिला है उन्होंने 'आउटलुक' में दिये साक्षात्कार में कहा है कि–'' आप अच्छा सिनेमा चाहते है तो आप अच्छे सिनेमा का निर्माण कीजिए दूसरा कोई विकल्प नहीं है ।''[८३]

कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि फिल्मों से अपनी भारतीयता पर खतरा हैं । इस सन्दर्भ में विष्णुखरे ने दिये साक्षात्कार में कहा है कि– ''आप इसे जितनी भी प्रतिक्रियावादी बात कहें लेकिन वाकई अगर कहीं हिन्दुत्व या भारतीयता बची है तो उसमें एक बहुत बड़ा योगदान भारतीय फिल्मों का है और इसे मैं दोहरा कर कहूँगा कि भा.ज.पा., आर.एस.एस.,विश्व हिन्दू परिषद या बजरंगदल ये एक हजार साल काम करते रहें तो भी ये उतना काम नहीं कर सकते जितना सही हिन्दुत्व के लिए लोकप्रिय एक सफल फिल्म कर सकती हैं ।''[८४]

राजेन्द्र यादव के 'सारा आकाश ' की पटकथा और संवाद कमलेश्वर ने लिखे और फिल्म के टाइटल में कमलेश्वर का नाम तक न था । यह एक तरह की ज्यादती थी जिसे कमलेश्वर ने सहा, सिर्फ इसलिए कि 'समान्तर फिल्म' का आन्दोलन आपसी मतभेद और झगड़ों में समाप्त न हो जाये । ऐसी और भी कितनी ही फिल्में है जिनके संवाद से लेकर फिल्म की पूरी योजना तक में कमलेश्वर ने बिना किसी भी तरह की उम्मीद के सहयोग और परामर्श दिये । निर्माता–निर्देशकों ने यह महसूस किया कि कमलेश्वर ही एक ऐसा व्यक्ति, एक ऐसा लेखक था जो फिल्मों की भाषा समझकर कुछ नयी दिशा देने की क्षमता रखता था और तब जो व्यावसायिक फिल्मों के संवेदनशील निर्देशक थे, जो पुरानी परम्परा से अलग हटकर व्यवसायिकता को भी ध्यान में रखकर निर्माण के पक्षपाती थे वे कमलेश्वर की ओर भागे । कल तक जो हिन्दी के लेखकों को मात्र 'मुन्शी' का दरज्जा दिया करते थे वे पूरे सम्मान के साथ कमलेश्वर के पास दौड़ आये । कमलेश्वर के उपन्यास 'काली आँधी' पर गुलझार ने 'आँधी' और 'आगामी अतीत 'पर 'मौसम' फिल्में बना डाली । 'आँधी' फ़िल्म इतनी विवादास्पद बनी कि फिल्म रीलीज होने के बाद इस पर कुछ महीनों के लिए प्रतिबन्ध लगा दिया गया । राजनैतिक व्यंग्य के साथ ही यह फिल्म जीवन के मानवीय मूल्यों का खुला दस्तावेज थी ।'मौसम' फिल्म की संवेदना आम आदमी की संवेदना थी । पूरा फिल्मजगत 'कमलेश्वर' के नये नाम से जैसे चौंक सा उठा । लोगों को ताज्जुब हुआ कि कमलेश्वर क्या कथाकार भी है ? जब लोगों ने जाना कि कमलेश्वर पहले कथाकार हैं और उसके बाद और कुछ, तो सब अपनी आगामी योजना को लेकर कमलेश्वर के पास हाजिर हो गये । कोई कहानी लेने आता तो कोई संवाद लिखवाने कई तो फिल्म लेखन का पूरा जिम्मा कमलेश्वर के कंधो पर डालने के लिए आतुर हो उठे । कमलेश्वर की कहानियाँ और उपन्यास शुद्ध साहित्यिक कृतियाँ थीं । बंगला के कई उपन्यासकारों की तरह उन्होंने फिल्म को ध्यान में रखकर साहित्य की रचना नहीं की थी । अतः दूसरों की कहानियों पर उन्होंने पटकथा और संवाद लिखने का भार ले लिया । कमलेश्वर ने अमानुष, घड़ी के दो हाथ, पति–पत्नी और वह, आनन्द आश्रम, वही बात, मृगतृष्णा, राम–बलराम फिल्म की पटकथा तथा संवाद लेखन का कार्य किया था ।

कमलेश्वर के मनमें फिल्मी लेखन को लेकर हल्का-सा पश्चाताप हो जाता फिर एक तरह का उत्ताप भी जागता आखिर वह हिन्दी साहित्य और सिनेमा को पास लाने की कोशिश भी कर रहे थे और अपनी तकनीकी जानकारियो का आर्थिक लाभ भी उठा रहे थे । कमलेश्वर के साहित्यक अहं को बी.आर.चोपड़ा, शक्ति सामंत, सावनकुमार और ताराचंद बड़जात्या की बाते सहला देती ।

बी.आर.चोपड़ा भी कमलेश्वर की कल्पना और भाषा की तारीफ करते थे -'' यह दौर सलीस उर्दू से आमफहम हिन्दी की तरफ जाने का दौर है... वह दौर जो प्रेमचन्द, सुदर्शन और नागरजी के जाने के बाद रूका रह गया था लगता है कि लौट सकता है ।''[८५]

'अमानुष' के लेखन के समय शक्ति सामंत का कथन है कि-'' यह हिन्दी सिनेमा में पहली बार हो रहा है कि ओरिजनल स्क्रिप्ट हिन्दी में लिखी जा रही है और इसका अनुवाद बंगला में होगा ।''[८६] 'अमानुष' की अपार सफलता के बाद कमलेश्वर के लिए फिल्मों का महाद्वार खुल चुका था । बी.आर.चोपड़ा ने बड़े विश्वास के साथ तीन फिल्मों का अनुबंध किया था । शक्ति सामंत की दो और फिल्में उनके पास थी । देवानंद ने एक फिल्म दे रखी थी । रामानन्द सागर की एक फिल्म थी । जे.ओमप्रकाश की एक फिल्म थी । मल्लिकार्जुन राव की दो फिल्में आ चुकी थी । विजय आनंद की दो फिल्में लिखने का अनुबंध हो चुका था । सावनकुमार की 'साजन बिना सुहागिन' धुमधाम से चल चुकी थी और सावन कुमार की तीन अगली फिल्में लिखने के लिए वह अनुबंधित थे । कमलेश्वर ने अब तब कुल मिलाकर ९९ फिल्म की पटकथा,संवाद और निर्देशन में योगदान दिया । उनकी तत्कालीन महिला प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी पर लिखी 'मीसीस इन्दिरा गाँधी' १०० वीं फिल्म थी । जिसका दिग्दर्शन,कथा-संवाद आदि कमलेश्वर ने लिखा । ऐतिहासिक फिल्म के लिए कमलेश्वर का मानना था कि - ऐतिहासिक यथार्थ का ही वर्णन होना चाहिए । कमलेश्वर ने हिन्दी के कथाकार होने के नाते हिन्दी को ही नहीं हिन्दी फिल्मों को भी एक मर्यादा दी थी । जो सिर्फ कमलेश्वर के व्यक्तित्त्व से सम्भव हो सकती थी ।

फिल्म इन्डस्ट्रीजवालों का कहना है कि -''हमे फक्र इस बात का है कि हमें हिन्दी से जो कमलेश्वर नाम का लेखक मिला है - वह अपनी जनता को प्यार करता है और उस जनता को अहंकार से नहीं प्यार से बात समझाना चाहता है - यहीं पर फिल्म उस के कंधों-से-कंधा मिलाकर खड़ी हो जाती हैं । ताज्जुब होता है कि इस शख्स को कितना कुछ आता है -इस आदमी का नजरिया वसीह है, दुनिया -जहान की

जानकारी इसे है किरदारों को समझने और उनकी नस को पकड़े रहने की बड़ी चीज जबरदस्त याददास्त इसके पास है और सबसे बड़ी चीज कि हमारा लेखक कुन्दन की तरह तपा हुआ और ओरिजनल हैं । भाषा पर इसका अख्तियार देखकर अचम्भा होता है, भाषा के रोड्स को जिस तरह यह लेखक पकड़ता है उससे एकाएक हमें अपनी मिट्टी, अपने लोगों की महक मिलने लगती है । अपने वक्त की जानकारी झलकने लगती है । कमलेश्वर जब स्क्रिप्ट लिखकर लाते हैं तो आसमान पर चढ़े हुए हमारे दिमागों को धरती की सच्चाईयों की तरफ देखने के लिए मजबूर कर देते हैं ।''[८७]

कमलेश्वर का फिल्म के लेखन के बारे में बताते है कि-'' फिल्में लिखते हुए मैंने कभी यह महसूस नहीं किया कि मुझे अपने साहित्यिक संस्कारों से अलग हटकर कुछ लिखना पड़ता है । बस अन्तर यही था कि साहित्य की गरिष्ठ भाषा को तोड़कर आमफहम बनाना पड़ता था और विचारों को अमूर्त न छोड़कर उन्हें दृश्यों और घटनाओं में बदलना पड़ता था । इसमें अतिरेक भी करना पड़ता था, क्योंकि हमें फिल्म के माध्यम से उन लोगों तक पहुँचना पड़ता था, जो अण्डर टोन (मित-कथन) की भाषा नहीं समझ पाते ।''[८८]

कमलेश्वर की क्षमता,ईमानदारी की वजह से ही लोग उनके हाथ में फिल्म सौंपकर बेफिक्र रहते थे । कमलेश्वर किसी दूसरे साहित्यकार से डरते नहीं, क्योंकि उन्हें अपनी क्षमता,मेहनत, ताकत और वक्त का अन्दाज था । यह भी नहीं इन सबका सही इस्तेमाल करने में वे सिद्ध हस्त थे । कमलेश्वर फिल्म इन्डस्ट्री के सबसे चर्चित लेखक थे । कमलेश्वर के बारे में मधुकरसिंह कहते है- ''पर मैंने कभी पार्टियों नहीं देखा, कहीं बैठकर गप्पे लड़ाते नहीं देखा, जब भी देखा तो उसे सिर्फ काम करते देखा ।''[८९]

इसी वजह से ही प्रोडयुसर-डायरेक्टर कमलेश्वर के लिए इन्तजार करने को तैयार थे । वे सदा व्यस्त रहते थे और सही फिल्मों की तलाश में लीन रहते थे । कमलेश्वर की बहुचर्चित फिल्म इस प्रकार है -

कम	फिल्म	लेखन/कार्य/आधारित
१	'बदनाम बस्ती'	'एक सड़क सत्तावन गलियाँ'उपन्यास आधारित
२	'आँधी'	'काली आँधी' उपन्यास आधारित
३	'मौसम'	'आगामी अतित'उपन्यास आधारित
४	'डाक बंगला'	'डाक बंगला'उपन्यास आधारित

५	'फिर भी'	'तलाश' कहानी पर आधारित
६	'अमानुष'	संवाद लेखन
७	'घड़ी के दो हाथ'	पटकथा और संवाद लेखन
८	'आनन्द आश्रम'	संवाद लेखन
९	'तुम्हारी कसम'	पटकथा और संवाद लेखन
१०	'वही बात'	कहानी, पटकथा और संवाद लेखन
११	'मृगतृष्णा'	संवाद लेखन
१२	'राम बलराम'	पटकथा एवं संवाद लेखन
१३	'सारा आकाश'	पटकथा एवं संवाद लेखन
१४	'अम्मा'	'अम्मा' उपन्यास आधारित (सिने उपन्यास)
१५	'पति,पत्नी और वह'	उपन्यास आधारित

इस प्रकार कमलेश्वर उपन्यासकार, कहानीकार नाटककार, आलोचक, टी.वी. स्टार के साथ-साथ फिल्म लेखनकार भी थे। कमलेश्वर ने अपने कर्मरत जीवन में सतत संघर्ष किये थे। परिवर्तन की कामना रखनेवाला व्यक्ति केवल एक ही क्षेत्र में परिवर्तन नहीं चाहता, वह जीवन के विभिन्न अंगों को अपनी गहन अनुभूतियों से परखता है। कमलेश्वर इन्हीं लोगों में से एक थे ,जिन्हों ने जीवन के विविध पहलुओं तक पहुँचने के लिए लम्बी दौड़ लगाई थी। इस प्रकार फिल्म जगत के माध्यम से भी कमलेश्वर अपनी बात जनता तक पहुँचाते रहे।

(ग) पुरस्कार-सम्मान

कमलेश्वर एक लेखक भी थे और आलोचक भी। उनका जीवन बहुआयामी था ,जिसे पूरी तरह समझ पाना आसान नहीं।

कमलेश्वर को विविध-पुरस्कार एवं सम्मान भी प्राप्त थे। एक बार 'राजा निरबंसिया' कहानी 'कहानी' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। इनाम के तौर पर उस पर इनको २०० श्रुपये का पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

कमलेश्वर को बिहार के 'राष्ट्रभाषा शिखर सम्मान' हिन्दी अकादमी के 'शलाका सम्मान ' उत्तरप्रदेश के 'भारत-भारती पुरस्कार' आदि से सम्मानित किया गया था। कमलेश्वर को सन् २००३ में 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास के लिए 'साहित्य अकादमी' द्वारा पुरस्कृत किया गया था। सन् २००५ में उन्हें 'पद्मविभूषण'से सम्मानित किया गया था।

(घ) निष्कर्ष

हिन्दी जगत में कमलेश्वर एक ऐसा नाम था जो ‘राजा निरबंसिया’ ‘जार्ज पंचम की नाक ’ जैसी कहानियों से जनता के बीच सुपरिचित हो उठा। इसके बाद नयी कहानी के कथाकार के रूप में वे लगातार चर्चित होते रहे थे। उन्होंने अपनी जिन्दगी की शुरुआत पत्रकारिता से आरंभ की और ‘इंगित’ ‘श्री वर्षा’ ‘नई कहानियाँ ’ ‘सारिका’ ‘कथायात्रा’ ‘गंगा’ ‘दैनिक जागरण’ और ‘दैनिक भास्कर’ तक के सम्पादन में उन्होंने पत्रकारिता की एक लम्बी यात्रा तय की थी। कमलेश्वर ने दूरदर्शन के लिए ‘परिक्रमा’ कार्यक्रम का संचालन किया और दूरदर्शन के महानिर्देशक के रूप में उन्होंने न केवल इस देश में टेलिविजन की स्थापना की, बल्कि उसे जनमानस में लोकप्रियता के शिखर तक ले गये। कमलेश्वर ने ‘मौसम’ और ‘आँधी’ जैसी फिल्मों से कला फिल्मों की आँधी शुरू की, जिसने फिल्म उद्योग को झकझोर कर रख दिया। कमलेश्वर ने ‘एक सड़क सत्तावन गलियाँ ’ से ‘पति, पत्नी और वह ’ तक की औपन्यासिक यात्रा की।

इस प्रकार कह सकते है कि कमलेश्वर बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे। वह कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार, सम्पादनकार, फिल्मकार, टी.वी.स्टार आदि थे। कमलेश्वर के साहित्य का सफर देखकर ऐसा प्रतित होता है कि ‘कवि’ का लिबास उन्हें अच्छा न लगा होगा। इन विभिन्न कोणों से कमलेश्वर का सर्जक मन उस आदमी की संवेदना को सर्वाधिक वाणी देने में अन्याय की दुनिया से सतत घिरता चला गया और जिसके लिए न्याय की मांग मनुष्यता की सबसे बड़ी मांग थी। कमलेश्वर ने अपनी विविध विधा में अपने समय और समाज को जाँचने-परखने का काम किया था।

कमलेश्वर की सबसे बड़ी ताकत उनकी मौलिकता थी। उससे भी बड़ी ताकत थी ....उनकी ताजगी। कमलेश्वर के लिए विमल मित्र बताते है कि-‘‘मेरे निरपेक्ष विचार में कमलेश्वर साहित्य के ‘डिकेन्स’ है। कमलेश्वर के किसी भी लेखन में पुनरावृत्ति नहीं पायी जाती। सूर्य एक होने पर भी हर रोज प्रत्येक सुबह नव-जन्म लेता है। कमलेश्वर एक लेखक होने पर भी हर लेखन में नव जन्म लेता है।’’[९०]

कमलेश्वर का जीवन-दर्शन किसी से प्रभावित न होकर अपने अनुभवों से बने व्यक्तित्त्व का सहज प्रस्तुतिकरण था। तमिल एवं हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार शौरि राजन का विचार है कि-‘‘.....कमलेश्वर तेज तर्रार हरफनमौला है, सही लेखक आला दर्जे का है, सही व गहरा नजरिया रखता है। इन्सानियत का पुरअसर पैरवीकार है, हर

बात को सामान्य जन के हित में पाना चाहता है, भाषा पर बेहद बढ़िया दखल है, उसके पास वर्तमान का सही बोध है, अतीत के बारे में अड़िग धारणा है, भविष्य के प्रति निर्णायक स्थान है । उसका हर कदम नया और मिशाल पैदा करता है । वह एक ओर अबूझ पहेली है, तो दूसरी ओर साफ-पन्ना भी है । उसका हर बर्ताव अगल-बगल के लोगों को भली-बुरी हरकतों का पुख्ता जवाब हैं ।''[९१]

साहित्यकार कमलेश्वर के बारे में विमल मित्र आगे बताते है कि- '' कमलेश्वर साहित्य में एक Voice of Dissent हैं । कमलेश्वर परम्परा के शत्रु हैं । यह साहित्य का शुभ लक्षण भी है ।... कमलेश्वर कभी एक स्थान पर स्थिर बैठ सकते नहीं । मैं साहित्य को साहित्य मानता हूँ। जैसे फ्रेंच केमिस्ट्री,जर्मन केमिस्ट्री,इंग्लीश केमिस्ट्री या हिन्दी केमिस्ट्री कोई अलग चीज नहीं होती , वैसे ही फ्रेंच साहित्य, जर्मन साहित्य, इंग्लिश साहित्य, बंगला साहित्य या हिन्दी साहित्य कोई अलग-अलग चीज नहीं है । इसलिए मैंने लिखा है साहित्य-साहित्य ही होता है । उसी साहित्य की दृष्टि में मैं कह सकता हूँ कि कमलेश्वर सचमुच सिर्फ हिन्दी साहित्यकार ही नहीं, विश्व साहित्यकार हैं ।''[९२]

(च) कमलेश्वर की साहित्ययात्रा

कहानी साहित्य :

क्रम	कहानी संग्रह	प्रकाशित वर्ष
१	'राजा निरबंसिया'	१९५५
२	'कस्बे का आदमी'	१९५७
३	'खोई हुई दिशाएँ'	१९६३
४	'माँस का दरिया'	१९६३
५	'बयान'	१९६३
६	'जार्ज पंचम की नाक'	१९६४
७	'मेरी प्रिय कहानियाँ'	१९६५
८	'कमलेश्वर की श्रेष्ठ कहानियाँ'	१९६९
९	'जिन्दा मुर्दे'	१९६९
१०	' इतने अच्छे दिन '	१९७०
११	'कथा -प्रस्थान'	१९९०
१२	'कमलेश्वर की प्रेम कहानियाँ'	१९९४
१३	'कोहरा'	१९९६
१४	'श्रेष्ठ आँचलिक कहानियाँ'	१९९७
१५	'चर्चित कहानियाँ'	१९९७
१६	'दस प्रतिनिधि कहानियाँ'	१९९८
१७	'कमलेश्वर की समग्र कहानियाँ' (दो खंण्डों में)	२०००
१८	'कमलेश्वर की पच्चीस कहानियाँ' (देश-परदेश)	२००४

उपन्यास साहित्य :

क्रम	उपन्यास साहित्य	प्रकाशन वर्ष
१.	'एक सड़क सत्तावन गलियाँ'	१९६१
२.	'डाक बंगला'	१९६२
३.	'लौटे हुए मुसाफिर'	१९६३
४.	'समुद्र में खोया हुआ आदमी'	१९६५
५.	'काली आँधी'	१९७४

६.	'तीसरा आदमी'	१९७६
७.	'आगामी अतीत'	१९७६
८.	'वही बात '	१९८०
९.	'रेगिस्तान'	१९८८
१०.	'सुबह दोपहर शाम'	१९९२
११.	'कितने पाकिस्तान '	२०००
१२	'अनबीता व्यतीत'	२००४
१३.	'अम्मा'	२००६
१४.	'पति,पत्नी और वह'	२००६

पत्रकार और सम्पादक :

क्रम	सम्पादित रचना	प्रकाशन वर्ष
१	'संकेत' (बृहद साहित्यिक संकलन)	१९५५
२.	'नईधारा' (समकालीन कहानी विशेषांक)	१९६५
३.	'समान्तर-१'	१९७०
४.	'मेरा हमदम मेरा दोस्त'	१९८०
५.	'गर्दिश के दिन'	१९८०
६.	'आद्य कथाकार'	१९८१
७.	'मराठी कहानियाँ' (दो खण्ड)	१९८६
८.	'तेलुगु कहानियाँ'	१९८७
९.	'पंजाबी कहानियाँ'	१९८८
१०.	'उर्दू कहानियाँ' (दो खण्ड)	१९८९

पत्र-पत्रिका संपादन :

क्रम	पत्र-पत्रिका संपादन	प्रकाशन वर्ष
१.	'विहान'	१९५४
२.	'इंगित' (साप्ताहिक)	१९६१-६३
३.	'नई कहानियाँ' (मा)	१९६३-६६
४.	'सारिका' (मा / पा)	१९६७-७८
५.	'कथा यात्रा' (मा)	१९७८-७९

६.	‘श्री वर्षा ’(सा)	१९७९-८०
७.	‘गंगा’ (मा)	१९८४-८८
८.	‘दैनिक जागरण’	१९९०-९२
९.	‘दैनिक भास्कर’	१९९७

नाट्य साहित्य :

कम	नाट्य संग्रह
१	‘अधूरी आवाज’
२	‘बाल नाटकों के चार संग्रह’
३	‘ रेत पर लिखें नाम’
४	‘हिन्दोस्ताँ हमारा’

नाट्य रूपान्तर :

कम	नाट्य रूपान्तर	आधारित
१	‘चारूलता’	रवीन्द्रनाथ ठाकुर कृत ‘नष्टनीड़ ’आधारित
२	‘खड़िया का धेरा’	ब्रेस्ट लिखित

आलोचना साहित्य :

कम	आलोचना साहित्य	प्रकाशन
१	‘नई कहानी की भूमिका’	अक्षर प्रकाशन प्रा.लि.-१९६६
२	‘नई कहानी के बाद’	शब्दकार प्रकाशन-दिल्ली
३	‘मेरा पन्ना : समान्तर सोच’ (दो खंण्ड)	दिल्ली-१९६७

आत्म परक संस्मरण :

कम	संस्मरण	प्रकाशित वर्ष
१	‘जो मैंने जिया’ (आधार शिलाएँ-१)	१९९२
२	‘यादों के चिराग’ (आधार शिलाएँ-२)	१९९७
३	‘जलती हुई नदी’ (आधार शिलाएँ-३)	१९९९

यात्रा विवरण :

क्रम	यात्रा- साहित्य
१	'खण्डित -यात्राएँ'
२	'कश्मीर : रात के बाद'

विविध रचनाएँ :

क्रम	विविध रचनाएँ	प्रकाशन वर्ष
१	'देश देशान्तर '(डायरी)	
२	'घटना चक्र'	१९९७
३	'सिलसिला थमता नहीं'	१९९९
४.	'आखों देखा पाकिस्तान '	२००५
५.	'तुम्हारा कमलेश्वर'	२००१

दूरदर्शन :

क्रम	कार्यक्रम
१	'परिक्रमा' (इन्टरव्युओं का कार्यक्रम)
२	'चन्द्रकान्ता'
३	'बैताल पच्चीसी'
४	'विराट युग'
५	'हिन्दोस्ताँ हमारा' (जन मंचीय मीड़िया कथा)
६	'जलता सवाल'
७	'बंद फाईल'

कमलेश्वर की बहुचर्चित फिल्में

फिल्म जगत :

क्रम	फिल्म	लेखनकार्य/आधारित
१	'बदनाम बस्ती'	'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' उपन्यास आधारित
२	'आँधी'	'काली आँधी' उपन्यास आधारित
३	'मौसम'	'आगामी अतित' उपन्यास आधारित
४	'डाक बंगला'	'डाक बंगला' उपन्यास आधारित
५	'फिर भी'	'तलाश' कहानी पर आधारित
६	'अमानुष'	संवाद लेखन
७	'घड़ी के दो हाथ'	पटकथा और संवाद लेखन
८	'आनन्द आश्रम'	संवाद लेखन
९	'तुम्हारी कसम'	पटकथा और संवाद लेखन
१०	'वही बात'	कहानी, पटकथा और संवाद लेखन
११	'मृगतृष्णा'	संवाद लेखन
१२	'राम बलराम'	पटकथा एवं संवाद लेखन
१३	'सारा आकाश'	पटकथा एवं संवाद लेखन
१४	'अम्मा'	'अम्मा' उपन्यास आधारित (सिने उपन्यास)
१५	'पति,पत्नी और वह'	उपन्यास आधारित

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

क्रम	संदर्भ ग्रन्थ	पृष्ठ नं
१.	आधुनिक हिन्दी नाटकों में नाटक - डॉ. श्याम शर्मा	पृ-६४
२	कमलेश्वर(आईने के सामने)- संपादक- मधुकरसिंह	पृ-७७
३.	कमलेश्वर(आईने के सामने)- संपादक- मधुकरसिंह	पृ-७८-७९
४.	कमलेश्वर(आईने के सामने)- संपादक- मधुकरसिंह	पृ-७९
५.	कमलेश्वर(आईने के सामने)- संपादक- मधुकरसिंह	पृ-७९
६.	कमलेश्वर(आईने के सामने)- संपादक- मधुकरसिंह	पृ-८०
७.	कमलेश्वर(आईने के सामने)- संपादक- मधुकरसिंह	पृ-७९
८.	कमलेश्वर(आईने के सामने)- संपादक- मधुकरसिंह	पृ-८०
९.	कमलेश्वर(आईने के सामने)- संपादक- मधुकरसिंह	पृ-८१
१०.	कमलेश्वर और उनका कथा साहित्य : एक अनुशीलन श्रीमती कुन्ता वाय ठाकुर	पृ-७
११.	कमलेश्वर : संपादक- मधुकरसिंह	पृ-७९
१२.	कमलेश्वर (दुष्यन्तकुमार की निगाहमें)- संपादक- मधुकरसिंह	पृ-८७
१३.	कमलेश्वर संपादक- मधुकरसिंह	पृ-८७
१४.	कमलेश्वर -जो मैं ने किया (आईने के सामने कमलेश्वर)	पृ-७८
१५.	कमलेश्वर और उनका कथा साहित्य : एक अनुशीलन श्रीमती कुन्ता वाय ठाकुर	पृ-१२
१६.	कमलेश्वर (दुष्यन्तकुमार की निगाहमें)- संपादक- मधुकरसिंह	पृ-८९
१७.	कमलेश्वर (दुष्यन्तकुमार की निगाहमें)- संपादक- मधुकरसिंह	पृ-८८
१८.	कमलेश्वर (दुष्यन्तकुमार की निगाहमें)- संपादक- मधुकरसिंह	पृ-८८
१९.	कमलेश्वर के उपन्यासों में मनोविज्ञान-डॉ. रेखा शर्मा	पृ-४५
२०.	धर्मयुग-१६ से ३१ अगस्त (हाशियों पर बातचीत)	पृ-३२
२१.	धर्मयुग-१६ से ३१ अगस्त (हाशियों पर बातचीत)	पृ-३२-३३
२२.	कमलेश्वर (दुष्यन्तकुमार की निगाहमें)- संपादक- मधुकरसिंह	पृ-९४
२३.	कमलेश्वर (एक शक्ति-पुंज : कमलेश्वर-दामोदर सदन) संपादकः मधुकर	पृ-२९०

क्रम	संदर्भ ग्रन्थ	पृष्ठ नं
२४.	जो मैं ने जिया (आधार शिलाएँ-१)- कमलेश्वर	पृ-२५
२५.	जो मैं ने जिया (आधार शिलाएँ-१)-कमलेश्वर	पृ-२५
२६.	एक सड़क सत्तावन गलियाँ- (भूमिका)- कमलेश्वर	पृ-०३
२७.	एक सड़क सत्तावन गलियाँ- (भूमिका)- कमलेश्वर	पृ-०४
२८.	कमलेश्वर(आईने के सामने)- संपादक- मधुकरसिंह	पृ-७९
२९.	जो मैं ने जिया (आधार शिलाएँ-१)-कमलेश्वर	पृ-४०
३०.	कमलेश्वर :(कमलेश्वरः एक प्रतिबद्ध वामपंथी -ललित मोहन अवस्थी)- संपादक- मधुकरसिंह	पृ-२३८
३१.	कमलेश्वर (कमलेश्वर : दुष्यन्तकुमार की निगाहमें) संपादक- मधुकरसिंह	पृ-८८
३२.	कमलेश्वर (कमलेश्वर : दुष्यन्तकुमार की निगाहमें) संपादक- मधुकरसिंह	पृ-८८
३३.	कमलेश्वर के उपन्यासों में मनोविज्ञान-डॉ. रेखा शर्मा	पृ-५४
३४.	कमलेश्वर (कमलेश्वर : दुष्यन्तकुमार की निगाहमें) संपादक- मधुकरसिंह	पृ-८८
३५	कमलेश्वर (बम्बई : दिपावली)संपादक- मधुकरसिंह	पृ-२३८
३६.	कमलेश्वर (लिफट में :बम्बई)संपादक- मधुकरसिंह	पृ-८९
३७.	कमलेश्वर संपादक- मधुकरसिंह	पृ-८८
३८.	कमलेश्वर और उनका कथा साहित्य : एक अनुशीलन श्रीमती कुन्ता वाय ठाकुर	पृ-३०
३९.	कमलेश्वर और उनका कथा साहित्य : एक अनुशीलन श्रीमती कुन्ता वाय ठाकुर	पृ-२७
४०.	जो मैं ने जिया (आधार शिलाएँ-१)-कमलेश्वर	पृ-२५
४१.	यादों के चिराग- कमलेश्वर	पृ-११
४२.	कमलेश्वर (कमलेश्वर : दुष्यन्तकुमार की निगाहमें) संपादक- मधुकरसिंह	पृ-८७
४३.	मेरा हमदम- मेरा दोस्त : कमलेश्वर (राजेन्द्र यादव के लेख से)	पृ-७५
४४.	कमलेश्वर संपादक- मधुकरसिंह	पृ-९०
४५.	कमलेश्वर और उनका कथा साहित्य : एक अनुशीलन श्रीमती कुन्ता वाय ठाकुर	पृ-३३

क्रम	संदर्भ ग्रन्थ	पृष्ठ नं
४६.	नये कहानीकारों की आलोचनात्मक दृष्टि डॉ. उषा चौहान	पृ-१४१
४७.	मेरी प्रिय कहानियाँ (भूमिका) - कमलेश्वर	पृ-०५
४८.	कमलेश्वर (भूमिका) संपादक- मधुकरसिंह	पृ-०७
४९.	कमलेश्वर से देवेश ठाकुर की बातचीत- आजकल फरवरी -१९८०	पृ-१०
५०.	आजकल फरवरी १९८० -द्रोणवीर कोहली	पृ-०८
५१.	धर्मयुग-१६ से ३१ अगस्त १९९४	पृ-३२
५२.	आजकल फरवरी १९८० -द्रोणवीर कोहली	पृ-०९
५३.	माँस का दरिया (भूमिका) - कमलेश्वर	पृ-०६
५४.	जो मैं ने जिया (आधारशिलाएँ-१)-कमलेश्वर	पृ-१९९
५५.	माँस का दरिया (भूमिका) - कमलेश्वर	पृ-०८
५६.	कमलेश्वर (कमलेश्वर : दुष्यन्तकुमार की निगाहमें) संपादक- मधुकरसिंह	पृ-९१/९२
५७.	माँस का दरिया (भूमिका) - कमलेश्वर	पृ-११
५८.	नई कहानी की भूमिका -कमलेश्वर	पृ-२९
५९.	कमलेश्वर -संपादक- मधुकरसिंह	पृ-१४०
६०.	हिन्दी के बहुचर्चित उपन्यास और उपन्यासकार -डॉ. अमरप्रसाद जायसवाल	पृ-३७
६१.	हिन्दी के लघु उपन्यास- घनश्याम मधुप	पृ-१६०
६२.	कमलेश्वर के उपन्यासों में मनोविज्ञान-डॉ. रेखा शर्मा	पृ-५५
६३.	हिन्दी उपन्यास उद्‌भव और विकास-डॉ. सुरेश सिन्हा	पृ-५५८
६४	कमलेश्वर के उपन्यासों में मनोविज्ञान-डॉ. रेखा शर्मा	पृ-५५
६५.	कमलेश्वर : सम्पादक-मधुकर सिंह	पृ-२१०
६६.	कमलेश्वर -संपादक- मधुकरसिंह (कमलेश्वरः चिंतन पत्रकारिता और सम्पादक के संदर्भ में) -अजित पुष्कल	पृ-३३९
६७.	कमलेश्वर : सम्पादक-मधुकर सिंह	पृ-२२५
६८.	कमलेश्वर : सम्पादक-मधुकर सिंह	पृ-३४२
६९.	कमलेश्वर : सम्पादक-मधुकर सिंह	पृ-३५६
७०	नई कहानी की भूमिका -कमलेश्वर	पृ-३६
७१.	कमलेश्वर : सम्पादक-मधुकर सिंह	पृ-३११/३१२

क्रम	संदर्भ ग्रन्थ	पृष्ठ नं
७२.	जो मैं ने जिया (आधारशिलाएँ-१)-कमलेश्वर	पृ-२२
७३.	जो मैं ने जिया (आधारशिलाएँ-१)-कमलेश्वर	पृ-२१-२२
७४.	कमलेश्वर : (टेलिविजन और कमलेश्वर) सम्पादक-मधुकर सिंह	पृ-३०५
७५.	कमलेश्वर : (टेलिविजन और कमलेश्वर) सम्पादक-मधुकर सिंह	पृ-३०५
७६.	यादों के चिराग- कमलेश्वर	पृ-३७
७७.	जलती हुई नदी - कमलेश्वर	पृ-३७
७८.	कमलेश्वर -संपादक- मधुकरसिंह	पृ-३२४
७९.	कमलेश्वर : (परिक्रमाः समाजचेतना का हथियार) सम्पादक-मधुकर सिंह	पृ-३२५
८०.	यादों के चिराग (फ़िल्मी दुनियाने मुझे लिखाया कि...) - कमलेश्वर	पृ-६१.
८१.	घटनाचक्र - कमलेश्वर	पृ-१६५-१६६
८२.	उद्भावना संपादक- अजेयकुमार वर्ष १६ अंक ५६ जुलाई-२०००	पृ-०३
८३.	उद्भावना संपादक- अजेयकुमार वर्ष १६ अंक ५६ जुलाई-२०००	पृ-०३
८४.	उद्भावना संपादक- अजेयकुमार वर्ष १६ अंक ५६ जुलाई-२०००	पृ-०३
८५.	जलती हुई नदी - कमलेश्वर	पृ-१०३
८६.	जलती हुई नदी - कमलेश्वर	पृ-१०३
८७.	कमलेश्वर : (कमलेश्वरः हिन्दी फ़िल्मों की ताकात) सम्पादक-मधुकर सिंह	पृ-३५१
८८.	यादों के चिराग - कमलेश्वर	पृ-९४.
८९.	कमलेश्वर : (कमलेश्वरः हिन्दी फ़िल्मों की ताकात) सम्पादक-मधुकर सिंह	पृ-३५२
९०.	कमलेश्वर संपादक- मधुकरसिंह	पृ-३६७
९१.	कमलेश्वर संपादक- मधुकरसिंह	पृ-३६८-३६९
९२.	कमलेश्वर संपादक- मधुकरसिंह	पृ-३६६

द्वितीय अध्याय

समसामयिक परिस्थितियाँ

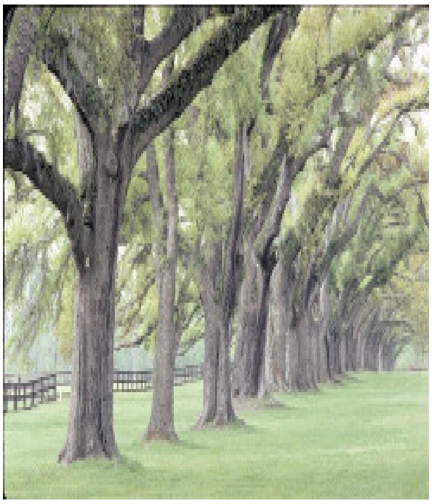

अध्याय - २
समसामयिक परिस्थितियाँ

क्रमांक	विगत	पृष्ठ संख्या
(क)	**प्रस्तावना ।**	६९
(ख)	**समसामयिकता का अर्थ एवं परिभाषा ।**	७१
(ग)	**समसामयिक परिस्थितियाँ :**	७५
	१. राजनीतिक परिस्थितियाँ ।	७६
	२. सामाजिक परिस्थितियाँ ।	८१
	३. आर्थिक परिस्थितियाँ ।	८९
	४. धार्मिक परिस्थितियाँ ।	९६
	५. सांस्कृतिक परिस्थितियाँ ।	९९
	६. साहित्यिक परिस्थितियाँ ।	१०५
(घ)	**निष्कर्ष ।**	१०७
(च)	**संदर्भ ग्रन्थ सूची ।**	११२

(क) प्रस्तावना

साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। साहित्य और समाज एक दूसरे के पूरक भी है। साहित्यकार साहित्य कृति विषयक मूल चेतना या भाव समाज से ग्रहण करता है। साहित्यकार समाज से ग्रहित रचना सामग्री को अपने विशिष्ट सर्जनात्मक बोध से सम्पृक्त कर अभिव्यक्त करता है। साहित्यकार सामान्यतः जिस परिवेश से सम्बन्धित होता है, उस परिवेश के संस्कार,रूढ़ियों एवं विचारों का प्रभाव उस पर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में अवश्य पड़ता है। साहित्य मनुष्य की उसके परिवेश के प्रति रचनात्मक प्रतिक्रिया है, जिसके मूल में युग चिंतन की अजस्त्रधारा विद्यमान होती है इस भावना को अभिव्यक्ति प्रदान करने के कारण साहित्यकार अपने युग का प्रतिनिधि समझा जाता है।

साहित्यकार की चेतना युगीन मूल्यों से संचालित होती है। साहित्य को जीवन की अनुकृति माननेवाले साहित्यकार जगत से अपनी उपजीव्य सामग्री का संग्रहण करते हुए अपने कला कौशल्य से उन्हें विशिष्ट भाव सम्पन्नकर, नवीन साहित्य निर्माण की ओर उन्मुख होता है। साहित्यकार शून्य में रचना नहीं करता। स्वयं जगत का एक महत्त्वपूर्ण अंग होने के कारण साहित्यकार पर युग की परिस्थितियों का प्रभाव पड़ना निश्चित है। साहित्यकार सामान्य जन की अपेक्षा अधिक संवेदनशील प्राणी होने के कारण युग परिवर्तन एवं विविध विचारधाराएँ साहित्यकार के मस्तिष्क को अधिक गहराई से प्रभावित करती है। इन्हीं युग-परिवर्तन की क्रियाओं की प्रतिक्रिया ही साहित्य के रूप में परिणत होती है। इस संदर्भ में कविवर पंत का मानना है कि - ''साहित्य मानव जीवन की गंभीर व्याख्या है। उसमें मानवचेतना की ऊँची चोटियों का प्रकाश, मन की लम्बी-चौड़ी घाटियों का छायातप और जीवन की आकांक्षाओं का गहरा रहस्यपूर्ण अंधकार संचित है।''[१] स्पष्टतः कवि साहित्य का जीवन से सीधा सम्बन्ध घोषित करता है और जीवनानभुवों के सर्जनात्मक स्वरूप की श्रेष्ठ साहित्य निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका स्वीकारता है।

साहित्य, समाज और लेखक के अन्तः सम्बन्ध का उल्लेख करते हुए डॉ.नामवरसिंह लिखते हैं -'' कोई भी व्यक्तित्त्व इतना महान नहीं होता कि वह पूर्णतः युग निरपेक्ष हो। व्यक्ति में कितनी परंपराए आत्मसात होकर अपना विकास करती है। इस प्रकार समाज, लेखक तथा साहित्य एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। साहित्यरचना की प्रकिया में समाज, लेखक और साहित्य परम्परा एक दूसरे को इस तरह प्रभावित करते

है कि इनमें से प्रत्येक परिवर्तित एवं विकसित होता रहता है ,समाज से लेखक - लेखक से साहित्य और साहित्य से पुनःसमाज ।'' [२] स्पष्टतः नामवरसिंह साहित्य, लेखक और समाज को एक अविच्छिन्न कड़ी के रूप में देखते हैं और तीनों ही एक दूसरे को प्रभावित करते हुए युग बोध से सम्पृक्त साहित्य निर्माण में अपनी भूमिका निभाते हैं ।

साहित्य का विषय मानव है और मानव समाज का एक विशेष अंग है । इस प्रकार साहित्य दृश्यमान जगत अथवा चारों ओर के जीवन तथ्यों अनुभवों की सारगर्भित अभिव्यक्ति है । जिस प्रकार साहित्य समाज से सम्पृक्त है उसी प्रकार युग से भी सम्पृक्त है । युग की प्रवृत्ति और प्रक्रिया की प्रतिक्रिया साहित्य पर बड़े वेग से होती है । युग- परिवर्तन साहित्य में नए मोड़ का सूचन होता है । युग-परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य में संवेदना और शिल्प भी नवीन राह तलाशते हैं । साहित्यकार समाज की महत्त्वपूर्ण इकाई है और समाज समय की इकाइयों में जीता हैं । प्रकारांतर से साहित्यकार का समाज और युग दोनों से सम्बद्ध रहता है । दोनों की स्वीकृति उसके साहित्य में होती है ।

बाबू श्यामसुंदरदास साहित्यकार पर प्रमुख तीन बातों का प्रभाव स्वीकार करते हुए लिखते हैं -''कवि या ग्रंथकार पर तीन मुख्य बातों का प्रभाव पड़ता है । वे ही उसके कृति जन्य रूप को स्थिर करने में सहायक होती है । वे तीन बाते हैं-जाति,स्थिति और काल। जाति से हमारा तात्पर्य किसी जनसमुदाय के स्वभाव से है । स्थिति से हमारा तात्पर्य सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और प्राकृतिक अवस्था से हैं । जो उस समुदाय पर अपना प्रभाव डालती है ।''[३]

युग-परिवर्तन के साथ-साथ साहित्यकार का मानस भी उसी दिशा में विचरण करने लगता है और परिवर्तित युग की नवीन मान्यताओं,धारणाओं एवं विचारों की नाड़ी पर हाथ रखकर तद्‌युगीन विकारों के उपचार का मार्ग प्रशस्त करता है । समाज में आए नवीन परिवर्तनों के प्रति तटस्थता का भाव साहित्यकार के लिए असंभव तो नहीं , दुष्कर अवश्य है । सच्चा साहित्यकार युग की बदलती करवट को पहचान लेता है । इसी युग परिवर्तन को साहित्य के माध्यम से विविध विधाओं में ढालकर अभिव्यक्ति देते हुए साहित्यकार तद्‌युगीन चेतना से एकाकार होने का स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करता है । साहित्यकार अपनें देशकाल से प्रभावित होता है । यहाँ देशकाल से प्रभावित होने का अर्थ है -विशिष्ट कालावधि में मान्य सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों से प्रभावित होना ।

समसामयिकता युग बोध का अंश है। लेखक समसामयिक गतिविधियों से आँखें मुँदकर बैठ नहीं सकता । वह उन पर तत्काल प्रतिक्रिया व्यक्त करता है । समसामयिक परिस्थिति व्यक्ति चेतना को अधिक वेग से झकझोरती है और उनका प्रभाव भी अधिक तीव्र और स्थायी होता है।

अतः युग बोध में समसामयिकता प्रचुर मात्रा में विद्यमान रहती है । समसामयिकता युग बोध का पर्याय कदापि नहीं हैं क्योंकि कोई वस्तु या समस्या समसामयिक तो हो सकती है, पर आवश्यक नहीं। युग की समकालीन समस्याओं का निरूपण 'समसामयिकता' है। समसामयिक परिस्थितियों का परिचय प्राप्त करने से पहले समसामयिकता का अर्थ जानना आवश्यक है।

(ख) समसामयिकता का अर्थ एवं परिभाषा

समसामयिकता का अर्थ जानने से पहले 'युग बोध ' का अर्थ जानना जरूरी है। 'युग बोध ' 'युग' और 'बोध' नामक दो शब्दों के संयोग से निष्पन्न युग्म है । 'युग' का सामान्य अर्थ है - काल और बोध का अर्थ है - ज्ञान, अर्थात 'युग बोध ' का सामान्य अर्थ तो काल का ज्ञान होता है । युग की कल्पना नई नहीं है । पुराण, महाभारत, मनुस्मृति में 'युग ' का उल्लेख मिलता है। वहाँ 'युग ' की कल्पना आज के युग की कल्पना से अधिक व्यापक है। पुराणों में सतयुग , त्रेतायुग , द्वापरयुग और कलियुग के रूप में युग का विभाजन मिलता है। 'युग' शब्द का कोशगत अर्थ है कि-'' समय, काल, जमाना, सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुग । ''[४]

मानक हिन्दी कोशकार ने आगे विस्तार से चर्चा करते हुए लिखा है-काल गणना के विचार से कल्प के चार उप-विभागों में से प्रत्येक सत्य,त्रेता द्वापर और कलियुग। वह समय विभाग जिसमें कुछ विशिष्ट प्रकार की घटनाओं, प्रवृत्तियों आदि की बहुलता रहती है। जैसे भारतेन्दु युग, गाँधी युग, लौह युग आदि । हिन्दी मानक कोश में ' युग बोध ' का अर्थ है -'' सम सामयिक परिस्थितियों का परिज्ञान।''[५]

' युग बोध 'से सामान्यतः युग की मान्यताओं, स्थितियों एवं संदर्भो का बोध प्राप्त होता है। प्रत्येक देश एवं समाज का अपना बोध होता है। युग के परिवर्तनों के साथ उसका बोध भी बदलता एवं विकसित होता रहता है।

जर्मन भाषा में युग बोध का समानार्थी शब्द 'सीजिस्ट' है । जिसका अर्थ है युग-भावना किसी कालान्तर की भावनाओं एवं विचार करने की प्रकृति । युग बोध का अर्थ किसी युग की वैचारिक शक्ति से है । इस प्रकार युग बोध का समन्वित अर्थ होता है कि-'' युग की विवेकपूर्ण पहचान स्पष्टतः कालविशेष के बोध से सम्पृक्त रचना युग बोध से युक्त मानी जाती है ।''[६]

डॉ.भोलानाथ तिवारी ने हिन्दी पर्यायवाची कोश में समसामयिक शब्द का अर्थ इस प्रकार दिया है - ''उपस्थित, चालू, तात्कालिक, मौजूद, वर्तमान, विद्यमान ।''[७] इस कोश में डॉ.भोलानाथ तिवारी ने उन शब्दों का चयन किया है जो व्यावहारिक दृष्टि से अधिक उपादेय रहे हैं ।

गोंडल के श्री महाराजा भगवतसिंहजी ने अपने विश्वकोश 'भगवद् गो मंडल' एवं भव्य भाषा संग्रह,अखूट ज्ञान भंण्डार एवं गुजराती भाषा की अस्मिता के एक महान शब्दकोश में समसामयिक शब्द का अर्थ देते हुए कहा है कि-'' एक ही समय में आनेवाले या उत्पन्न होनेवाले अर्थात् समकालीन ।''[८]

राजवल्लभ सहाय और मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव लिखित एवं कालिका प्रसाद संपादित बृहद् हिन्दी शब्दकोश में समसामयिक का अर्थ इस प्रकार दिया है -'' जो एक ही समय में हुए हो या विद्यमान रहे हो ।''[९]

आचार्य रामचन्द्र वर्मा ने अपने लोकभारती बृहत् प्रामाणिक हिन्दी कोश में समसामयिक शब्द का अर्थ देते हुए कहा है कि-'' जो आदि से अन्त तक प्रायः एक-सा चला गया हो, जिसमें कहीं बहुत उतार-चढ़ाव या हेर-फेर न हो । समय से सम्बन्ध रखनेवाला,वर्तमान समय का, समय को देखते हुए उचित, उपयुक्त या ठीक । ''[१०]

इस प्रकार प्रत्येक शब्दकोश एवं विद्वानों के मत को देखते हैं तो समसामयिक शब्द का अर्थ समकालीन अथवा तो वर्तमान समय का होता है । यहाँ समसामयिक शब्द में युग बोध का ही अंश देखने को मिलता है । प्रत्येक युग का बोध भी बदलता रहता है । प्रेमचन्द महेश्वरी ने बदलते युग बोध के परिप्रेक्ष्य में कहा है कि- '' युग सामायिक जनमानस की आंतरिक चेतना की विकास प्रक्रिया का अवबोधक है ।''[११]

युग काल की दीर्घ परिव्याप्ति का सूचक है । किसी विशिष्ट कालावधि में जब बहु संख्यक वर्ग का झुकाव नवीन जीवन मूल्यों, मानदण्डों की ओर बढ़ता है और

नवीन प्रवृत्तियाँ उभरकर उन पुरानी धारणाओं, मान्यताओं का स्थानापन्न कर लेती है तब इन्हीं बदलती परिस्थितियों से नवीन युग का सूत्रपात होता है अथवा यही बदलती परिस्थितियाँ युग की संज्ञा धारण कर लेती है । डॉ. श्याम सुन्दरदास ने पूर्व उल्लेखित परिभाषा में इन्हीं बदलती परिस्थितियों को ही जातीय विकास की अवस्था कहा है । जिसमें जन समुदाय का स्वभाव, पूर्ववर्ती रूप को त्यागकर विशिष्ट दिशा की ओर उन्मुख हो रहा होता है । इस अर्थ में युग की अवधारणा काल सापेक्ष है जिसमें एक निश्चित समयावधि को लिया जाता है ।

प्रत्येक साहित्यकार अपनी निजी समझ एवं प्रतिभा से युगविशेष की विभीन्न प्रवृत्तियों का उद्घाटन अपनी रचनाओं में करता है । डो.मुकुन्द द्विवेदी ने 'युग बोध ' की परिभाषा इस प्रकार दी है -'' किसी युग विशेष में अधिकांश लोगों के मनमें प्रछन्न रूप से चलते रहनेवाले जीवनलक्ष्यों और मूल्यों का बोध ही 'युग बोध' है । ''[१२] अर्थात् 'युग बोध' एक विकासमान क्रमिक प्रक्रिया है जो व्यक्ति एवं परिवेश में संचरित रहती है । युग बोध काल सापेक्ष है , उसकी भाव चेतना मनुष्य, समाज और परिवेश से जुड़ी हुई है । इसलिए ही प्रत्येक युग का बोध भिन्न होता है । युग बोध की अवधारणा आधुनिकता से सम्बन्धित है ।

आधुनिक और युग बोध को प्रायः एक समझ ने की भूल की जाती है । युग बोध सामयिक होता है । इसलिए प्रत्येक युग का बोध भी अलग-अलग होता है । आधुनिक युग का बोध आधुनिकता से सम्पन्न है । इसलिए आधुनिकता को आधुनिक युग बोध समझ लिया जाता है । आधुनिकता के कुछ तत्त्वों को हम आधुनिक युग बोध में समाहित कर सकते है, लेकिन यह आवश्यक नहीं कि आधुनिकता के सभी तत्त्वों को आधुनिक युग बोध में ग्रहण किया जा सके । आज मानव की बेबसी, विक्षोभ, झल्लाहट, निराशा और अविश्वास की प्रवृतियाँ आधुनिक युग बोध का अंग बन गई है । आशापूर्ण चिन्तन और आस्था वर्णन भी आधुनिकता के अंतर्गत आता है, लेकिन यह आधुनिक युग बोध के अंतर्गत नही आ पाता । इससे स्पष्ट है कि 'आधुनिकता' और 'युग बोध ' अलग-अलग भाव के सूचक है । प्रत्येक युग अपने में आधुनिक रहता है । युग बोध का सम्बन्ध समसामयिकता एवं आधुनिकता से है । युग की समकालीन समस्याओं का निरूपण समसामयिकता है और स्थापित मूल्यों का नवीकरण आधुनिकता है ।

साहित्यकार समाज से सम्पृक्त रहता है । जिस युग में वह जी रहा है उसकी आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक गतिविधियों से वह पूर्णतः

जुड़ा हुआ रहता है । इसलिए प्रत्येक युग का साहित्यकार युग बोध के अनुसार ही साहित्य रचना करता हैं । युग बोध के निर्माण में उस युग की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों का बड़ा हाथ रहता हैं । डॉ.पुष्पपालसिंह के अनुसार - ''प्रत्येक युग की परिस्थितियाँ और परिवेश युग बोध का नियमन करती है । ''[१३] अर्थात युगीन विशेषताओं का बोध ही युग बोध है । जिस रचना में उस युग का बोध नहीं होता, वह उस युग का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती ।

साहित्य मनुष्य की उसके परिवेश के प्रति रचनात्मक प्रतिक्रिया है, जिसके मूल में युग चिंतन की अजस्त्र धारा विद्यमान होती है । इसी काल सापेक्ष चिंतन को 'युग बोध ' की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है । राजेन्द्र यादव ने लेखकीय अनुभूति व अभिव्यक्ति के विषय में लिखा है कि -'' साहित्यकार समय और समाज के संदर्भ में अनुभव को अर्थ देता है । ''[१४]

वस्तुतः युग बोध, युग विशेष के अधिकांश लोगों के मनमें प्रच्छन्न रूप से चलनेवाले जीवन लक्ष्यों व मूल्यों का बोध है । जिसकी भाव चेतना मनुष्य ,समाज, उसके परिवेश से निर्मित होती है । देश की परिस्थितियों, गतिविधियों के साथ वहाँ के साहित्य में भी आमूल परिवर्तन होता है । इसलिए किसी रचना एवं रचनाकार का मूल्यांकन उस युग की पृष्ठभूमि के संदर्भ में किया जाना ही अधिक न्याय संगत प्रतीत होता है ।

संक्षेप में 'युग' एक ऐसी कालवाचक अमूर्त इकाई है, जिसका निर्माण सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों घटनाओं तथा विचारधाराओं से होता है । समय सापेक्ष होते हुए भी युग की समय मर्यादा निश्चित नहीं होती, परिस्थितियों के अनुसार युग परिवर्तित होता रहता है । प्रत्येक युग की अपनी अलग पहचान होती है , जिसका बोध साहित्यकार को रहता है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के कथनानुसार-'' प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है । ''[१५] साहित्यकार अपने युग का प्रतिनिधि होता है युग की यथार्थ पृष्ठभूमि से प्रभाव ग्रहण करके उन्हें रचनात्मक संगति प्रदान करता है ।

इस प्रकार आधुनिक युग का विकास जिन घटनाओं व परिस्थितियों से हुआ हैं, इसका परिचय पाना नितान्त आवश्यक है ।

(ग) समसामयिक परिस्थितियाँ

साहित्य और साहित्यकार के विशेष अध्ययन के लिए तत्कालीन परिवेश का अध्ययन आवश्यक हो जाता है । साहित्यकार अपने युग विशेष की समस्याओं से प्रभाव ग्रहण करता है तथा बाद में कृति के रूप में अन्यों को प्रभावित करता है । साहित्यकार प्रमुख समकालीन समस्याओं, मान्यताओं व विचारों को प्रस्तुत करता है और जो लेखक अपने परिवेश का चित्रण जितनी स्पष्टता से कर पाता है, वही युग दृष्टा कहलाता है । इसी संदर्भ में मुन्शी प्रेमचंद ने लिखा है – ‘‘ साहित्यकार बहुधा अपने देशकाल से प्रभावित होता है । जब कोई लहर देश में उठती है, तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असंभव हो जाता है और उसकी विशाल आत्मा अपने देश बन्धुओं के कष्टों से विकल हो उठती है और इस तीव्र विकरालता में वह रो उठता है, पर उसके रूदन में भी व्यापकता होती है । वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक रहता है ।’’ [१६]

आधुनिक युग कई नई समस्याएँ, नई मान्यताएँ व नए विचार लेकर प्रस्तुत हुआ है । यहाँ व्यक्ति की स्वतंत्रता पर अधिक बल दिया गया । साहित्यिक क्षेत्र में उपन्यास विधा प्रमुख रही है । उपन्यास का विषय व्यक्ति है । यह समाज के विरुद्ध, प्रकृति के विरुद्ध, व्यक्ति के संघर्ष का महाकाव्य है और यह केवल उसी समाज में विकसित हो सकता है । जिसमें व्यक्ति और समाज के बीच संतुलन नष्ट हो चुका हो और जिसमें मानव का अपने सहयोगी साथियों और प्रकृति से युद्ध न हुआ हो । डॉ. त्रिभुवनसिंह के अनुसार –‘‘ साहित्यिक क्षेत्र में उपन्यास ही एक ऐसा उपकरण है, जिसके द्वारा सामूहिक मानव जीवन अपनी समस्त मानवभावनाओं एवं चिन्ताओं के साथ सम्पूर्ण रूप से अभिव्यक्त हो सकता है । मानवजीवन के विविध पक्षों को चित्रित करने का जितना अधिक अवकाश उपन्यासों में मिलता है, उतना अन्य साहित्यिक विधाओं में नहीं । ’’[१७]

रैल्फ फोक्स ने इसी संदर्भ में कहा है –‘‘ मनुष्य के जीवन को सर्वांगीण रूप से जितना उपन्यास चित्रित कर सकता है , उतना साहित्य का दूसरा अंग नहीं कर सकता । ’’[१८] स्वतंत्रता प्राप्ति भारतीय जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना है जिसके फलस्वरूप भारतीय जीवन में असंख्य नूतन परिवर्तनों का श्री गणेश हुआ था । इस सम्बन्ध में नरेन्द्र मोहन का कथन है – ‘‘ किसी भी देश के लिए स्वतंत्रता प्राप्ति महज एक घटना नहीं होती ,यह उस देश के लोगों की अदम्य मुक्ति कामना,संघर्ष और

सामूहिक चेतना का प्रतिफल होती है । स्वतंत्रता के पीछे एक लम्बे संघर्ष का इतिहास रहता है और यह संघर्ष उस देश की मानसिकता को एक नया अर्थ और आयाम देता है । ''[१९]

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य की प्रवृत्तियों की सही पहचान के लिए तत्कालीन परिस्थितियों का परिचय पाना आवश्यक है ।

१. राजनीतिक परिस्थितियाँ

राजनीति शब्द ' राज ' तथा ' नीति ' दो शब्दों के योग बना है । ' राज' से अभिप्राय राज्य से है और ' नीति ' का अर्थ नियम से है । हिन्दी शब्द सागर में 'राजनीति ' की परिभाषा इस रूप में मिलती है - '' राजनीति वह नीति है जिसका सहारा लेकर शासक अपने राज्य की रक्षा और शासन पद्धति को दृढ़ करता है । ''[२०] राजनीतिक चेतना के विविध रूपों ने मानव समाज को प्रारंभ से ही प्रभावित करते हुए तत्कालीन युग बोध के निर्माण में सहयोग दिया ।

हिन्दी साहित्य की उर्वराभूमि पर खड़ा 'उपन्यास' ऐसा कथा साहित्य है, जो अपने परिवेश में व्याप्त वैयक्तिक,सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों से खाद्य ग्रहण कर विशाल वट वृक्ष में परिणत हो चुका है । इसकी जड़ें जहाँ एक ओर अतीत में आदिकाल में व्याप्त हैं, वहीं शिराएँ आधुनिक काल में पहुँचकर द्रुत गति से अपने प्रसार के लिए नवीन रूप, नवीन भाव,विचार स्थल खोज रही हैं ।

आदिकाल राजनीतिक दृष्टि से अस्थिरता का काल था । राजा-महाराजा अपनी सत्ता को बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील थे । 'बरस अठारह क्षत्रिय जीवै, आगे जीवन को धिक्कार' मानने वाले सामंतों का वैयक्तिक अहं तलवारों की टंकार से ही तुष्ट होना जानता था । अपने शौर्य और विलासिता के प्रदर्शन हेतु आमंत्रित युद्ध ही जीवन की गतिविधि को संचालित करते थे । ऐसे युद्धमय वातावरण से वीरता और शृंगार को इस युग की प्रमुख प्रवृत्ति मान लेना अनुचित नहीं जान पड़ता ।

१५ अगस्त सन् १९४७ ई. को भारत स्वतंत्र हुआ । भारत के स्वतंत्र होने की घोषणा से ही भारतीय जनता का मन एक नये उत्साह और उल्लास से भर उठा । सदियों से परतंत्र भारतीय जनता ने स्वशासन के सम्बन्ध में सुनहरें सपनें देखना आरंभ किया । स्वतंत्रता के लिए देश को बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी । स्वतंत्रता के साथ

ही देश का विभाजन हो गया । यह बँटवारा देश के धार्मिक और राजनीतिक क्षेत्रों को क्षत-विक्षत करनेवाली भीषण आँधी ही थी ।

विभाजन की विभीषिका सम्बन्धी नरेन्द्र मोहन का कथन है कि -'' भारत विभाजन इस उप महाद्वीप के जीवन की सब से भयंकर त्रासदी है । इस के अप्रत्याशित आघात ने सदियों से अर्जित संस्कृति जातीयता,भाषा और प्रकृति तथा मानवीय सम्बन्धों को एक झटके से नष्ट कर डाला । इस त्रासदी की मिसाल दुनिया में दूसरी नहीं है । इतना बड़ा नरसंहार पहले भी हुआ, किन्तु एक ही भूभाग में निवास करनेवाली समान जातीय भावों एवं संस्कृति से बंधी जातियों का ऐसा देशान्तरण अभुतपूर्व है । इस घटना ने भारतीय राजनीति और संस्कृति के स्वरूप को जितना प्रभावित किया, उतना शायद ही किसी अन्य ने किया हो ।'' [२१] इन दुर्दशाओं और दुर्घटनाओं का असर राजनीति से लेकर जीवन के हर क्षेत्र में द्रष्टव्य है ।

भारत के स्वतंत्र होते ही व्यक्ति अपने आप में शरणार्थी बन गया । सांप्रदायिकता के कारण युगों से स्वीकृत मानवीय मूल्यों का ह्रास हो गया । पीड़ित शरणार्थियों की समस्या भी सर्वनाश के इस क्षण में जुड़ गई । शरणार्थियों की समस्याओं का चित्र अंकित करते हुए मीरा सिकरी ने लिखा है -'' असंख्य प्राणी, नर-नारी ,आबाल वृध्ध अपने भाग्य को कोसते, रक्त की नदियों को पार करते अपनी आँखों के समक्ष अपने बन्धु बान्धवों को लूटते-पीटते असंख्य दुःख को भोगते,निराश, हताश, वेदनाग्रस्त दुःखी विवश पाकिस्तान से भारत की दहलीज में प्रवेश कर रहे थे । '' [२२]

देश विभाजन की दुर्दशा तथा सांप्रदायिक दंगों के कारण सभी जगह राजनीतिक उथल-पुथल और अस्थिरता का वातावरण था । इस बीच स्वतंत्र भारतका नव निर्माण करना था और अन्य अनेक समस्याओं का समाधान ढूँढना था । सरदार वल्लभभाई पटेल ने देशी रियासतों को भारतीय संघ में मिलाकर भारतीय एकता का तथा अपनी प्रतिभा और दूरदर्शिता का अभुतपूर्व उदाहरण प्रस्तुत किया । स्वतंत्रता का मद उतरा भी न था कि भारत ने ३० जनवरी, १९४८ को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को खो दिया । मानव मूल्यों के समर्थ वक्ता और सत्य, अहिंसा के पुजारी की नृशंस हत्या राष्ट्र के लिए गहरा आघात थी । स्वतंत्रता के पश्चात् भारतवासियों को अपने आचार-विचार के अनुकूल संविधान की आवश्यकता महसूस हुई । सन् १९४९ में नया संविधान स्वीकृत हुआ । समता, स्वतंत्रता, धर्म निरपेक्षता आदि तत्त्वों का स्वीकार कर

के भारतीय संविधान २६ जनवरी, सन् १९५० में लागू होकर भारत को एक 'जनतांत्रिक गणतंत्र राज्य' घोषित किया गया ।

भारत २६ जनवरी, १९५० को गणतंत्र बना तथा देश में नया संविधान लागू हुआ । संविधान में देश को धर्म निरपेक्ष, लोक तंत्रात्मक गणराज्य घोषित किया गया । सन् १९५२ में प्रथम आम चुनाव हुए और कांग्रेस के नेतृत्त्व में सरकार बनी इस से पूर्व - जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्त्व में सरकार काम कर रही थी । सरकार के सामने अनेक समस्याएँ थी, जिनमें आर्थिक समस्या प्रमुख थी । पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से देश के नव-निर्माण की प्रक्रिया का आरंभ किया गया । सन् १९५७ में दूसरे आम चुनाव हुए तथा कांग्रेस ने फिर सत्ता प्राप्त की । परतंत्रता के दिनों में जनता को स्वतंत्रता के जो स्वप्न दिखाये गए थे, अब उसे पूरा होने का समय आ गया था । नेहरू के शासन काल में भारत धर्मनिरपेक्षता के समर्थक और शांतिदूत के रूप में उभरा ।

स्वतंत्रता से देश के मानस ने सुखद, सुन्दर स्वप्न आशाएँ और अभिलाषाएँ बाँध रखी थी वे पूरी नही हुई । सन् १९५२ में 'हिन्दी चीनी भाई-भाई ' का नारा बुलंद करनेवाले चीनी राष्ट्रने जब भारतीय सीमा पर आक्रमण किया तो भारतीय जन-मानस इन नारों के खोखलेपन पर हतप्रभ रह गया । इस चीनी आक्रमण ने भारतीय राजनीति में मोह भंग की स्थिति उत्पन्न की । जनता को अपने राजनेताओं की राजनीतिक दूरदर्शिता, कूटनीतिज्ञता से विश्वास उठ गया । लोग,भय ,निराशा, संशय और आतंक से ग्रस्त हो गए । युद्ध ने पूरे राष्ट्र को हिला दिया । उस समय की स्थिति को स्पष्ट करते हुए डॉ. देवीशंकर अवस्थी ने लिखा है - '' चीनी आक्रमण ने देश के मानस को बदला अवश्य था एक बार फिर से अपने संदर्भ और परिवेश को परिभाषित करने की आकांक्षा जागी थी । युद्ध के सीमित और विराट अर्थो के द्वन्द्ववालें संदर्भ ने तमाम चीजों को उलटने-पुलटने विवश किया था । ''[२३] इस आक्रमण के पश्चात् अंतर्राष्ट्रीयता के प्रति जनता का मोह भंग हुआ । इसने देश के स्वाभिमान को कुचल दिया तथा भारतीयों का मनोबल तोड़ दिया ।

२७ मई, १९६४ को प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू की असामयिक मृत्यु देशवासियों के लिए एक त्रासद घटना थी । भारतवासियों ने नेहरूजी का विकल्प लालबहादुरशास्त्री में देखा । सन् १९६५ में पाकिस्तान के साथ हुए युद्ध में विजय हॉसिल करके शास्त्रीजी ने अपनी क्षमता और मनोबल का परिचय दिया । शास्त्रीजी ने अदम्य साहस और आत्म विश्वास का परिचय देते हुए ' जय जवान जय किसान ' के नारे से देश गुंजायमान कर सभी धर्मावलंबियों को एक झंडे के नीचे भारतीय अस्मिता

बचाने के लिए आमंत्रित किया । चीनी हार में खोया भारतीय आत्म विश्वास और आत्म सम्मान पुनःलौट आया । भारत ने ताशकंद समझौते में शास्त्रीजी को भी खो दिया । स्पष्टतः राजनेताओं की असामयिक मृत्यु भारतीय राजनीति में अस्थिरता पैदा करती रही ।

१९ जनवरी, १९६६ भारतीयों ने पुनः नेहरू परिवार में आस्था व्यक्त करते हुए सर्व सम्मति से श्रीमती इन्दिरा गाँधी को संसदीय दल का नेता चुनकर प्रधान मंत्री के रूप में स्वीकार किया । इन्दिराजी के काल में अनेक समस्याएँ मुँह खोले खड़ी थी । जो देशवासी कभी स्वतंत्रता संग्राम में निःस्वार्थ भाव से लड़े थे वही अपने बलिदान की कीमत माँग रहे थे । कुर्सी की दौड़ में नैतिक मूल्यों का हनन इस काल का राजनीतिक चरित्र बन गया । इसीलिए इस काल में राजनीति प्रेरित क्षुब्ध व्यंग्यात्मक साहित्य की भरमार दिखाई देती है ,जो युगीन राजनीतिक चरित्र को रूपायित करती है । इस काल में भारत की विदेश नीति को सद्दढ़ता एवं स्पष्टता प्रदान कर अंतर्राष्ट्रीय सम्मान दिलाने का श्रेय श्रीमती इन्दिरा गाँधी को ही है । राजनीतिक हलचलों बलात् थोपे गए युद्धों, के परिणाम स्वरूप भारत में बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, भुखमरी का साम्राज्य व्याप्त हो गया । सत्ता लोलुप नेताओं ने इन परिस्थितियों का लाभ सत्ता हस्तगत करने के लिए उठाया । डॉ. राममनोहर लोहिया भारतीय राजनीति में अपने सिध्धांतों के कारण छाए रहे थे । वे समाजवाद के पक्षधर थे । डॉ.राममनोहर लोहिया की मान्यता थी कि - '' सत्ता का परिवर्तन ही पर्याप्त नहीं है व्यवस्था का परिवर्तन भी निश्चित है । ''[२४] ऐसे राजनीतिक माहौल का प्रभाव साहित्य पर पड़ना निश्चित था । इसलिए इस युग के साहित्य में राज-विरोध का स्वर मुखरित होता दिखाई देता है ।

स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीति और प्रशासन में दल बदल का बोल-बाला, भ्रष्टाचार और बेईमानी के कारण सामान्य जन की यातनाएँ बढती जा रही थी । अब लोकतंत्र के प्रति जन साधारण में आस्था भी कम हो गई थी । इस काल में प्रशासन और राजनेताओं द्वारा जनतांत्रिक मूल्यों का धीरे-धीरे अवमूल्यन होता गया । उसकी चरम परिणति 'आपात्काल' के रूप में प्रकट हुई । आज के राजनीतिज्ञों की कथनी और करनी मे कोई मेल नहीं हैं ।

इस समय तक भारतीय राजनीति में भ्रष्टाचार प्रवेश कर चुका था । राजनेताओं को अपने ही स्वार्थो से छुट्टी नहीं मिलती थी । वे जन सेवा को चुनाव जीत ने का नारा मात्र मानने लगे थे । उनके कार्य भाई-भतीजावाद को बढ़ावा दे रहे थे । सत्ता-प्राप्ति हेतु अपने ही नागरिकों के कत्ल होने लगे । कुर्सी की लड़ाई में सभी तरह

की नैतिकता को भुला दिया गया । राजनेता अपने चहरे पर मुखौटा लगाकर घूमते रहे । कभी जेल गए थे , तो अब अपने आपको स्वतन्त्रता संग्राम का नायक घोषित करने में पीछे नहीं रहते थे । अपने राजनीतिक लाभ के लिए समाज को साम्प्रदायिकता की अग्नि में झोंकने से पीछे नहीं रहते थे । भारतीय राजनीति जो सिद्धान्तहीन बनती जा रही थी उसके पीछे केवल समकालीन परिस्थितियाँ ही नहीं थी अपितु इसकी पृष्ठभूमि काफी समय पहले से बन रही थी । इस सम्बन्ध में शिवशंकर पाण्डेय का कथन है कि-''छठे दशक का उत्तरार्द्ध और सातवें दशक का पूर्वार्ध अवसरवाद का स्वर्णयुग रहा यों आज भी उसके खूनी पंजे सक्रिय है ।'' [२५] आम नागरिक अब राजनेताओं की कुटिल चालों के प्रति कुछ-कुछ सजग हो रहा था ।

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीति अपने आदर्शो और जीवन मूल्यों से रोज दूर हटती गई । राजनेताओं के लिए अब राजनीति व्यवसाय और व्यापार बन गई । अतः वे व्यक्तिगत स्वार्थसिद्धि को अधिक महत्त्व देने लगे । इसके फल स्वरूप राजनीतिक परिवेश में अवसरवादिता,स्वरति,स्वार्थान्धता,बेईमानी और भ्रष्टाचार ने गहरी अव्यवस्था पैदा कर दी । समाजवाद और गरीबी हटाओ के नारे खोखले हो गए । चारो ओर अव्यवस्था, अनुशासनहीनता,दायित्वहीनता कार्यअकुशलता,खोखली नारेबाजी ने गाँधीजी के रामराज्य को स्वप्न बना दिया । इसी परिवेश ने प्रत्येक व्यक्ति को संकीर्ण बना दिया ।

आठवें, नवें दशक में भारतीय राजनीति भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता और परिवारवाद की चपेट में आ चुकी थी जिसके कारण समाज में हर तरफ असंतोष का वातावरण बनता जा रहा था । इसी असंतोष के कारण बार-बार राजनीतिक अदला-बदली, सत्ता बदलाव हो रहे थे । यह असंतोष सभी सीमाएँ लाँध कर जन-जन को विफल किए हुए थे । इस विकलता , अधिकारबोध , एवं जागरण के कारण बार-बार केन्द्रीय सरकार बन बिगड़ रही थी, जिसके कारण देश की आर्थिक व्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ा था । इसी दौर में दलित-पिछड़ी जातियों की राजनीति में भूमिका स्पष्ट दिखाई देने लगी थी । साथ-साथ एक अन्य उदारीकरण प्रकृति ने भारतीय राजनीति को बहुत प्रभावित किया था । जिसके व्यापक प्रभावों के कारण किसान,मजदूर तथा घरेलु उद्योगों पर विपरीत मार पड़ रही थी ।

भारतीयों ने अपनी स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए अंग्रेजी साम्राज्य से दीर्घकालीन संघर्ष किया और कांग्रेस के नेतृत्त्व में उन्हें राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त की । इस स्वतंत्रता के सुख में कुछ विषमताएँ निरंतर बनी रही, जैसे हिन्दू-मुस्लीम के मध्य साम्प्रदायिक

भेदभाव । यह स्थिति सुधरी ही नहीं, निरंतर बिगड़ती ही रही हैं । इसके फलस्वरूप अन्य सम्प्रदायों में भी भेदभाव बढ़ा ही है । जैसे दलितों को समुचित न्याय प्राप्त नहीं हो सका इसलिए उनके भीतर भी आक्रोश की एक लहर उठी है ।

निष्कर्षतः १९५० से १९९० तक की दीर्घावधि में भारतीय राजनीति में अनेक उतार चढाव आए । भारत को अनेक युद्धों का सामना करना पड़ा । अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वयं को स्थापित करने के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने पड़े । इन राजनीतिक निर्णयों ने देश की आम जनता के जीवन को दूर तक प्रभावित किया । नवीन आर्थिक, सामाजिक स्थिति भी स्वातंत्र्योत्तर राजनीति में आए बदलाव का परिणाम है । स्वातंत्र्योत्तर राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार, भाई-भतिजावाद, स्वार्थपरता, अवसर वादिता, राजनीतिक पतन को इंगित करते हैं और इसका प्रमुख कारण है - स्वतंत्रता से पूर्व की राष्ट्रीय चेतना का अभाव, उदेश्यों की असमानता और धर्म और अर्थ का राजनीति में प्रवेश । देश के महान नेताओं ने देश की स्वतंत्रता के लिए जिस त्याग,बलिदान और तपस्या का आदर्श प्रस्तुत किया था उन सब को स्वतंत्र भारत के कर्णधारों एवं नेताओं ने अपने स्वार्थसिद्धि तमाम कर दिया ।

इस प्रकार आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भ्रष्ट राजनीति प्रवेश कर चुकी है । राजनीतिक सिद्धान्तहीनता, सत्ता प्राप्ति हेतु विरोधियों का चुनाव जीतने के लिए अपनाए जाने वाले अवैध तरीके इत्यादि अनेक तत्त्वों के माध्यम से भारतीय राजनीति को समझा जा सकता है । दल-बदल की राजनीति तथा इसी के साथ ही सत्ता प्राप्ति हेतु जन प्रतिनिधियों की खरीददारी भारतीय राजनीति में गहराई तक प्रवेश कर चुकी है । कमलेश्वरजी ने अपने तत्कालीन राजनीतिक परिवेश को देखा, समझा और बखूबी से उसको उनके उपन्यासों में चित्रित किया है ।

२. सामाजिक परिस्थितियाँ :

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में भारत की सामाजिक स्थिति और भी बदतर हो गई । एक नयी भौतिक सभ्यता की शुरुआत हुई । यांत्रिक पाशविकता, सामाजिक अराजकता, जर्जरित अर्थ व्यवस्था, युद्ध की विभीषिका,पाश्चात्य संस्कृति का बढ़ता हुआ प्रभाव इत्यादि बाह्य परिवेश ने मनुष्य को बौना कर दिया । उधर ग्रामीण जीवन की नीरसता और कठोर नियंत्रित जीवन से तंग आकर लोग गाँव और खेत को छोड़कर शहर में ही रहना पसंद करते थे ।

औद्योगीकरण के परिणाम स्वरूप ही डॉ.बच्चनसिंह ने लिखा है – ''हमारा धैर्य टूट गया और जिन्दगी उखड़ गयी है,जीवन के अनगिनत तौर-तरीके जिनकी जड़े दूर तक धरती में गड़ी हुई थी, आज अंतिम रूप से टूट चूकी है । ''[२६] जड़ों के टूटने से मनुष्य हिल गया, आत्मीयता गायब हो गयी, भाईचारें की भावना में दरार पड़ गयी और समाज में मूल्य हीनता एवं चारित्रिक अराजकता फैल गयी, कूर समय-चक्र में मानवीय संवेदना सिसक रही थी । एक ओर पुरानी विषाक्त परंपराएँ, तो दूसरी ओर यांत्रिक भयावहता युद्ध की नृशंसता, उस पर अंग्रजों का अत्याचार,पूँजीपतियों का शोषण, इन सारी गहमा-गहमी ने आंदोलन का रूख अपनाया । पुराने संस्कारों, अंधविश्वासों, कुरीतियों एवं कुप्रथाओं तथा ऊँच-नीच का भेदभाव दूर करने के लिए, नारी के सामाजिक स्तरों को ऊँचा उठाने के लिए राजा राममोहनराय तथा गाँधीजी जैसे प्रबुद्ध विद्वानों ने समाज सुधार के भरसक प्रयत्न किये । रामगोपाल सिंह 'चौहान' के मतानुसार – '' विदेशी साहित्य और उसका विकसित जीवन तथा संसार के अन्य देशों की स्थितियों, सभ्यताओं, संघर्षों और साहित्य के संपर्क से और देश में अंग्रेजी शासन और उसके राजनीतिक परिणाम-शोषण और सांस्कृतिक विशृंखलताओं एवं उस काल की हमारी सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक रूढ़ियों इन सबके मन्थन से हमारी नवीन चेतना का विकास हुआ, जो अपने दृष्टिकोण में सामाजिक थी । ''[२७]

जन चेतना की महान शक्ति से देश स्वतंत्र हुआ । स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए । स्वतंत्रता से पूर्व भारतीयों का उदेश्य स्वाधीनता प्राप्ति था, समाज सुधार जैसे विचार आजादी के प्रश्न के सम्मुख नगण्य थे । स्वतंत्रता के पश्चात् समाज सुधार मुख्य लक्ष्य के रूप में उभरा । भारतीय मनीषियों ने समाज में व्याप्त जाति, धर्म वर्ण से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान हेतु महत्त्वपूर्ण प्रयास किए। स्वातंत्र्योत्तर समाज में जाति, धर्म पर आधृत समाज छिन्न-भिन्न हो गया, और 'अर्थ ' के आधार पर उच्च, मध्य और निम्न वर्ग के रूप में पहचाना जाने लगा । किन्तु जाति पर आधारित वर्गीकरण पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ,वह चर्तुवर्ग व्यवस्था भी समाज में विशेष रूप से गाँवो में समानांतर रूप से चलती रही । इसी तथ्य को दृष्टि में रखकर सन् १९५० में भारत सरकार ने भारतीय संविधान के अंतर्गत अश्पृश्यता को कानूनी अपराध घोषित किया । आगे चलकर इन अश्पृश्य समझी जानेवाली जातियों, पिछड़ी जातियों के उत्थान हेतु मूफ्त शिक्षा और नौकरियों में आरक्षण की सुविधा उपलब्ध करवाई गई ।

स्वतंत्र भारत ने सुख एवं संपन्न,वर्ग हीन, शोषण मुक्त समाजवादी व्यवस्था का लक्ष्य जनता के सामने रखा । लक्ष्य प्राप्ति के लिए अनेक योजनाएँ भी

बनाई गई । किन्तु विकास और सुधार की प्रकिया बहुत धीमी गति से हो रही थी । जनता को अपने देखे हुए स्वप्न साकार होते नजर नहीं आ रहे थे । स्वतंत्र भारत के प्रधानमंत्री नेहरूजी विदेशयात्रा और औद्योगीकरण में ही उलझे रहे । पंचशील सिद्धान्त सिर्फ सिद्धान्त बनकर रह गया । ग्रामीण जनता स्वतंत्रता के बाद भी अधिकारों के दल दल में फँसी रही । नेहरू न तो राष्ट्रीय समस्याओं से जुड़ पाये और न समाजवाद कायम कर सके । '' एक पूँजीवादी नेतृत्त्व के रूप में पंडित नेहरू तथा उसके सहयोगियों और उत्तराधिकारियों ने अपनी साम्राज्य विरोधी, सामंत विरोधी भूमिका पूरी नहीं की । ''[२८]

स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज में अनेक परिवर्तन आये । परिवर्तन की यह प्रक्रिया स्वतंत्रता पूर्व ही आरंभ हो गई थी । भारतीय समाज में परिवर्तन और उसकी परिस्थितियों की जानकारी के लिए परिवार, गाँव, नगर , जाति, धर्म व्यवस्था व्यक्ति और समाज के परस्पर सम्बन्ध राजनीति, आधुनिकीकरण तथा औद्योगीकरण का व्यक्ति और समाज पर प्रभाव, आदि के बारे में जानना आवश्यक है । व्यक्ति, परिवार और समाज तीनों का अटूट सम्बन्ध है । परिवार समाज की एक महत्त्वपूर्ण इकाई है । परिवार और समाज के परस्पर मेल से व्यक्ति का विकास होता है ।

भारतीय पारिवारिक व्यवस्था तो संयुक्त पारिवारिक व्यवस्था है । आधुनिक युग में नगरीकरण और आर्थिक दबाव ने संयुक्त पारिवारिक व्यवस्था को विघटित किया । इसका एक कारण छोटे परिवार को सुख का आधार मानना है । इस प्रकार पुराने जीवन मूल्यों के प्रति विद्रोह की भावना जाग उठी । गाँव भी इस से अछूता न रहा । वैज्ञानिक विकास और पश्चिमी संपर्क ने भारत के सामाजिक जीवन को काफी प्रभावित किया । पाश्चात्य शिक्षा से व्यक्ति भौतिकवादी बन गया । इस सम्बन्ध में कृष्णा अग्निहोत्री का कथन है -'' मानव के सामने नई समस्याओं ने एक नई सामाजिक स्थिति संवार कर रख दी । वैज्ञानिक आविष्कारों, वर्षों की गुलामी और उसके प्रभाव ने हमारे सामाजिक रहन-सहन और जीवन के मानव मूल्यों को झकझोर डाला ।''[२९] इसके फलस्वरूप भारतीय अपनी सामाजिक व्यवस्था और गठन को हेय समझने लगे । व्यक्ति के जीवन के हर क्षेत्र में पाश्चात्य सभ्यता और विचारों ने दखल देना शुरू किया ।

आधुनिक युग में पारिवारिक वातावरण में अलगाव की स्थिति का जन्म हुआ है । अलगाव की यही स्थिति पारिवारिक विघटन का कारण बनती है । डॉ. सीताराम जायसवाल कहते हैं कि - '' कोई भी परिवार उसी समय तक गठित रह सकता है, जब तक उसके सदस्यों में सामाजिक मूल्यों, आदर्शों, अभिवृत्तियों आदि की

दृष्टि से एकता पायी जाती है । जब परिवार के सदस्यों में जीवन मूल्यों, आदर्शों आदि को लेकर मतभेद उत्पन्न हो जाते हैं तब परिवार का विघटन होना स्वाभाविक है । ''[३०]

इसके साथ-साथ भारतीय समाज पर विदेशी प्रभाव तथा व्यक्ति स्वातंत्र्य की बढ़ती भावना ने संयुक्त परिवार को विघटित किया है । अनेक परिवार ऐसे भी है जहाँ संयुक्त परिवार होते हुए भी सम्बन्धों में टूटन नहीं है ,लेकिन फिर भी कहीं-न-कहीं संयुक्त परिवार व्यवस्था के विरोधी नजर आते हैं । विशेषकर शिक्षित वर्ग अपना स्वतंत्र अस्तित्त्व चाहता है । गाँवों में जहाँ कृषि मुख्य व्यवसाय है, वहाँ पर आज भी यह व्यवस्था चल रही है , क्योंकि वे इसे सामाजिक प्रतिष्ठा का मान दण्ड मानते हैं । कुल मिलाकर उस समय के समाज में पारिवारिक सम्बन्धों में अलगाव और अजनबीपन व्यक्ति-परकता बढ़ जाने के कारण अधिक तनाव देखने को मिलता है ।

संयुक्त परिवार में आ रहे विघटन के कारणों को प्रस्तुत करती हुई डॉ.स्वर्णलता लिखती हैं -''आजकल आर्थिक क्षेत्र में हुई क्रान्ति तथा जनसंख्या के दबाव के कारण संयुक्त परिवार टूट रहे हैं । शिक्षा के प्रसार, औद्योगीकरण, राजनीतिक चेतना से प्रभावित, रोजगार की तलाश में संयुक्त परिवारों को छोड़कर अपने जीविकोपार्जन के स्थानों पर जा रहे हैं। परिवार अब उत्पादन की इकाई नहीं रह गए। व्यक्ति अपनी जीविका परिवार से दूर रहकर भी कमा पाता है। वर्तमान आर्थिक व्यवस्था ने व्यक्ति को आर्थिक स्वावलम्बन प्रदान किया हैं। इसलिए संयुक्त परिवार अनावश्यक बुराई के रूप में माने जाने लगे हैं ।''[३१]

स्वतंत्रता के बाद समाज में मूल्य संक्रमण की स्थिति भी तीव्र रूप से उभरकर सामने आई। व्यक्ति स्वातंत्र्य से व्यक्ति को जहाँ निज अस्तित्व की रक्षा के प्रति सचेत किया वहीं उसे एकाकीपन, घूटन, टूटन और संत्रास ही दिया। गाँवो से शहरों की ओर आकृष्ट वर्ग एक बार शहर आने पर पुनः गाँव की ओर मुड़कर नहीं देखता। शहरों में निवास की समस्या, परिवार से दूर रहने की यंत्रणा उसके जीवन के समस्त रस को चूस लेती है । पुरानी और नयी पीढ़ी के वैचारिक संघर्ष,आर्थिक विषमता,स्थानाभाव और आत्मिक सौहार्द के अभाव ने परिवार की संरचना में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। संयुक्त परिवार प्रथा का निरन्तर ह्रास स्वातंत्र्योत्तर समाज का उल्लेखनीय बदलाव है।

केन्द्र सरकार द्वारा पारित ' हिन्दू मेरिज एक्ट ' ने हिन्दुओं के सामाजिक संगठन में परिवर्तन उपस्थित किया, विशेष रूप से स्त्री के अधिकारों के विषय में -

जैसे बहूविवाह अवैद्य, एक पत्नी विवाह, विधवा विवाह, तलाक, कानून की सृष्टि और उत्तराधिकार के नियम । इन सुधारों के बाद स्त्री की स्थिति में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ । आर्थिक अभाव के कारण नारी को जीविका कमाने के लिए घर से बाहर जाना पड़ा । अपने अस्तित्त्व को बनाये रखने के लिए उसे परिस्थितियों से भी लड़ना था । एक ओर उसे घर-बाहर की जिम्मेदारियों से जूझकर जीना पड़ा, तो दूसरी ओर नये-पुराने संस्कारों का आघात भी सहन करना पड़ा अर्थात् नये परिवेश और परिस्थितियों ने नारी को दुविधाग्रस्त बना दिया । इस प्रकार अस्तित्त्व की रक्षा के लिए आर्थिक सम्पन्नता की चिन्ता ने पारिवारिक सम्बन्धों को हिला दिया था । पति-पत्नी, माता-पिता, भाई-बहन, माता-पुत्र, पिता-पुत्र आदि सभी के सम्बन्धों में स्पष्ट परिवर्तन आ गया । पति-पत्नी के पवित्र और घनिष्ठ सम्बन्धों में दरारें पड़ने लगी ।

स्वतंत्रता के बाद स्त्री की आर्थिक आत्मनिर्भरता ने जहाँ उसके परिवार के आर्थिक जीवन स्तर को सुधारकर अर्थाभाव की नारकीय स्थिति से उबारा हैं, वहीं सहज, सरल जीवन को ऋजु भी बना दिया है । आज वह घर और नौकरी के दो पाटों मे निर्दयता से पिस रही हैं । बच्चों की देखभाल में कमी भी स्वाभाविक है । घर से बाहर जाने में उसे अनेक खट्टे-मीठे अनुभवों से गुजरना पड़ता है । स्पष्टतः स्त्री की नौकरी ने दाम्पत्य जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है । स्थिति यहाँ तक पहुँच गई है कि स्त्री में विवाह और संतान के प्रति अरूचि पैदा हो गई है ।

नारी विशेषकर नगरीय क्षेत्रों में रहनेवाली नारी ने अपने अस्तित्त्व के लिए संघर्ष का रास्ता अपनाया है । डॉ.हेमेन्द्रकुमार पानेरी लिखते हैं -'' वर्तमान समाज में पुरूष के समकक्ष स्त्री को भी समान अवसर और स्थान मिलने लगे हैं । स्त्री पुरूष की अनुकर्ता मात्र न होकर अब अपने स्वतंत्र अस्तित्त्व के प्रति जागरूक है । वह पुरूष से स्वयं को किसी भी प्रकार हीन अनुभव नहीं करती । समाज के विभिन्न कर्म क्षेत्रों में आगे बढ़कर स्त्री ने परम्परागत अबला के मूल्य के स्थान पर सबला नारी के मूल्य की प्रतिष्ठा की है । आधुनिक नारी अपने प्रति समाज की परम्परागत धारणाओं को नष्ट करने के लिए पूर्ण सक्रिय हो चुकी है ।''[३२]

मध्य वर्गीय परिवारों में दहेज प्राप्ति की ओर विशेष लगाव रहता है । अगर विवाह में अनुकूल दहेज प्राप्त नहीं हो पाता तो नवागंतुक बहू को तंग किया जाता है । सास बहू को नौकरानी से ज्यादा नहीं समझती तो ज़िठानी भी उसे तंग करने में पीछे नहीं रहती । विवाह में सामाजिक दिखावे का चोला ओढ़कर वर पक्ष अधिक धन खर्च करता है । इस खर्च का प्रभाव तब देखने में आता है जब मनोवांछित दहेज नहीं

मिल पाता। ऐसी अवस्था में घर में दैनिक खर्चों को लेकर कलह होता है। यह समस्या उस समय और भी विस्फोटक बन जाती है जब युवक बेरोजगार हो। एक तो वह आर्थिक रूप से परेशान होता है ऊपर से विवाह कर दिया जाता है। इस प्रकार की स्थिति में मध्यम वर्गीय परिवारों की आर्थिक अवस्था डाँवाडोल हो जाती है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में नारी शिक्षा, तलाक बिल, नारी को समाज में समानता का स्तर मिलना, उसका आर्थिक स्वावलम्बन तथा पुरुष के साथ के सम्बन्धों में बदलाव आदि के कारण नारी आज अधिक सचेत आत्मनिर्भर और स्वतंत्र व्यक्तित्त्व संपन्न बन गई है। 'नारी स्वतंत्रता' का नारा बुलन्द हो गया। प्रेम विवाह और यौन सम्बन्धों के संदर्भ में उसका दृष्टिकोण बदल गया। पारिवारिक स्तर पर प्रेम विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, विधवा विवाह आदि को मान्यता मिलने लगी। असल में पारिवारिक सम्बन्धों के विघटन का मूल कारण आर्थिक अभाव ही होता है।

युग बदला, नये विचार आए तथा साथ ही नयी समस्याओं का जन्म हुआ। स्वतंत्र व्यक्ति ने जहाँ एक ओर पुराने निरर्थक विचारों को त्याग ने के लिए संघर्ष किया तो दूसरी तरफ नयी राह बनाने के लिए यत्न प्रारंभ किये। एक समय ऐसा भी आया जब वह सोचने लगा कि वह कहाँ पर है, लेकिन उसकी बुद्धि ने अपनी आवश्यकतानुसार और समयानुसार सामाजिक मान्यताओं में परिवर्तन किए।

स्वतंत्रता के पश्चात् समाज की जाति-वर्ण व्यवस्था में भी परिवर्तन आया। जाति के आधार कर्मक्षेत्र चुनने की परम्परा खत्म हो गई। स्वतंत्रता, आर्थिक दबावों,आधुनिकीकरण, औद्योगीकरण और शहरीकरण के कारण लोग परम्परागत कर्म क्षेत्र को छोड़कर नए कर्म क्षेत्र अपनाने लगे। अन्तर्जातीय खान-पान एवं विवाह आदि के सम्बन्धों में भी पर्याप्त उदारता आई। पाश्चात्य शिक्षा पद्धति ने एक ओर भारतीय समाज में उदार प्रजातांत्रिक तथा धर्मनिरपेक्ष मानसिकता को जन्म दिया तो दूसरी ओर व्यक्ति को स्वार्थी बना दिया। इसलिए आज व्यक्ति को पारिवारिक तथा सामाजिक स्तर पर द्वन्द्व के बीच जीना पड़ रहा है। स्पष्टतः स्वातंत्र्योत्तर समाज में जाति-प्रथा के बंधन ढीले हुए हैं और नारी मुक्ति का स्वर प्रबल। आज का मानव व्यक्ति स्वातंत्र्य की आड़ में स्वच्छंदता की और बढ़ा है।

व्यक्ति परिवार और समाज के सम्बन्धों में परिवर्तन ने स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को उच्छृंखल व अस्थिर बना दिया है। सामाजिक विघटन का सबसे प्रभावी एवं महत्त्वपूर्ण घटक परम्परागत मूल्यों के प्रति नकार की ध्वनि अथवा नैतिक शिक्षा का

अभाव है । शिक्षा का खोखलापन व्यावहारिक जगत से पूर्णतः कटाव ही चारित्रिक कारण है । स्वातंत्र्योत्तर साहित्य इस पारिवारिक विघटन, विवाह सम्बन्धी वैचारिक परिवर्तन, स्त्री पुरूष सम्बन्धों के बदलाव का उद्‌घाटन स्वातंत्र्योत्तर साहित्य का मूल स्वर है । सारांशतः समाज के साथ-साथ स्वअस्तित्त्व की चेतना स्वातंत्र्योत्तर समाज की उपलब्धि है, तो मानवीय मूल्यों का विघटन स्वातंत्र्योत्तर समाज की सबसे बड़ी त्रासदी ।

डॉ. शशिभूषण सिंहल ने उपन्यासकार की मानसिकता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है - ‘‘ उपन्यासकार पाठकों को सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूक कर उन में वर्तमान दशा के प्रति विद्रोह का भाव जगाता है और उन्हें वांछित जीवन दिशाओं में अग्रसर होने के लिए प्रेरित करता है । ’’[३३] स्वातंत्र्योत्तर युग में सामाजिक रूढ़ियों-अन्धविश्वासों के प्रति अकुलाहट दिखाई देती है । शिक्षा के फैलाव के बाद शिक्षित व्यक्ति इसीलिए इनका विरोध करता है कि इन्हीं रूढ़ियों ने समाज में अनेक वर्ग पैदा किए थे । जब तक जाति, धर्म-सम्प्रदाय विषयक सामाजिक रूढ़ियाँ विद्यमान रहेंगी, व्यक्ति अपना स्वतंत्र विकास नहीं कर सकता । धार्मिक दृष्टि से एक मतावलम्बी को दूसरे मतावलम्बी से पृथक कर दिया जाता है । भारत-पाकिस्तान विभाजन के समय हिन्दू और मुस्लिमों के बीच अपने-अपने बहुसंख्यक क्षेत्र में जाति को लेकर जो मारकाट हुई वह किसी से छिपी हुई नहीं है । शिक्षित व्यक्ति धार्मिक अन्धविश्वासों को नकार रहा हैं । धार्मिक दिखावा और झूठी रूढ़ियों पर सवाल उठा रहा हैं । मन्दिर-मस्जिद के विवादों ने सामूहिक मानवता को नुकसान पहुँचाया है । शिक्षित युवक विशेषकर समाजगत भ्रष्टाचार के शिकार वर्गों के रूढ़िगत सामाजिक ढाँचे के प्रति तीव्र विद्रोह कर रहे हैं । रूढ़िगत का अर्थ है वह पुराना जो अपनी सार्थकता खो बैठता है ।

जनता पूँजीवाद, सामंतवाद, साम्राज्यवाद का अंत कर समाजवाद की ओर बढ़ना चाहती थी । परंतु सांप्रदायिकता ,जर्जरित रूढ़ियों और अंधविश्वास तथा पुराने लोगों की जड़ता ने नयी पीढ़ी को बुरी तरह जकड़ रखा था । संस्कार ग्रस्त नयी पीढ़ी असमंजस के दौर से गुजर रही थी । मनुष्य की स्थिति का वर्णन इतिहास में करते हुए लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने कहा है कि- ‘‘ रूढ़ियों को तोड़ने की बलवती ईच्छा रखते हुए भी अपने को विवशता का शिकार बना हुआ पाता है,जिसके फलस्वरूप उसमें कुण्ठा, एकाकीपन, अजनबीपन, घुटन, निरूदेश्यता, नपुंसकता, आक्रोश आदि मानसिक स्थितियाँ उत्पन्न हुए बिना नहीं रहती ।’’[३४] पुरानी सड़ी-गली मान्यताओं को छोड़कर नये स्वस्थ जीवन मूल्यों को अपनाने के लिए बेचैन नयी पीढ़ी के साथ

संघर्ष करना पड़ रहा था । परंतु साहस के अभाव में उसका व्यक्तित्त्व विघटित होता जा रहा था उसमें अनास्था और क्षण वाद की प्रवृतियाँ जन्म लेने लगी ।

विघटन के इस युग में – '' आज का नवयुवक असंतोष और अस्वीकार का साक्षात प्रतीक बन गया है... पुराने जीवन मूल्य खंड़ित हो चूके थे और उसके स्थान पर नये पुष्ट जीवन मूल्यों की स्थापना हुई नहीं थी, जीवन के ऐसे वातावरण में नयी पीढ़ी का भ्रमित हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं । ''[३५] इन सामाजिक विषमताओं का सबसे अधिक शिकार मध्यमवर्ग हुआ क्योंकि......'' यह वर्ग है जिसके पास समाज के सारे संस्कारो की पूँजी है.....मानव का समस्त ज्ञान-विज्ञान समस्त अतीत वर्तमान इसका ऋणी है । ......आज की विषम परिस्थितियों में उसकी मेघा उच्च वर्ग द्वारा खरीद ली गई है -अपना शोषण यंत्र चलाने के लिए..... वह दोनों ओर से सीमित होकर सठिया सा गया है..... वह बाहर से मनुष्य रह गया है, भीतर से विवश पशु । ''[३६] इसके उपरांत रीति-रिवाज और संस्कार भी इस वर्ग के निराले हैं । समाज में अपना स्थान बनाये रखने के कारण ही यह वर्ग दिन-प्रतिदिन खोखला होता जा रहा हैं ।

व्यक्ति और समाज के परिवर्तनों का प्रभाव जीवन मूल्यों पर पड़ना स्वाभाविक है । जीवन के हर क्षेत्र में उठनेवाले परिवर्तन की आँधी ने जीवन मूल्यों को भी झकझोर कर रख दिया । व्यक्ति जीवन मूल्यों के बिना नहीं जी सकता और विकृतियाँ जीवनमूल्य नहीं बन सकती । परिवर्तन की रफतार में पड़कर मानव यह भूल गया है कि उसे क्या अपनाना है, क्या छोड़ना है । काल निरपेक्ष जीवन मूल्यों-दया, ममता,करुणा, प्रेम,सहानुभूति के बिना व्यवस्थित समाज की रचना असंभव है ।

समकालीन लेखकीय समाज में अनेक समस्याएँ विद्यमान है । बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, महँगाई, आवास, गरीबी, प्रदूषण इत्यादि उनमें प्रमुख हैं । इन समस्याओं ने समाज को बेहद त्रस्त किया है । बेरोजगारी के कारण अनेक शिक्षित युवक दिशाहीन भटक रहे हैं । अधिकतर सरकारी सेवाओं में चयन का नापदण्ड योग्यता न होकर सिफारिश या रिश्वत हो गई है । इस तरह सरकारी नौकरियों में व्यापक भ्रष्टाचार है । महँगाई ने मध्यम वर्गीय परिवारों की आर्थिक हालत पतली कर दी है, जिसके कारण व्यक्ति एक निष्ठ होने लगा है । इसके साथ नगरीय जीवन में आवास एक बड़ी समस्या है । गरीबी,प्रदूषण, भ्रष्टाचार,असंतोष तथा उत्पीड़न इसी तरह की अन्य समस्याएँ हैं । भारतीय समाज का जागरूक व्यक्ति इसके इतिहास पर समयानुसार चर्चा करता हुआ उसकी व्यवस्थाओं पर प्रश्न-चिह्न लगाता है । क्यों कुछ लोगों, जातियों, वर्णों को

मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया और क्यों कुछ लोगों को विशेषाधिकार मिले ? आज इस प्रश्न को दलित आदिवासियों की ज्वलंत समस्याओं से जोड़कर देखा जाता है ।

स्वतंत्रता के बाद सामाजिक विषमता के प्रति जनाक्रोश बढ़ा है । एक तरफ साधारण व्यक्ति दिन-रात मेहनत करता है और मुश्किल से जीवनयापन करता हैं ,दूसरी तरफ समाज में ऐसे लोग भी है जो भ्रष्ट साधनों से धन एकत्र करते हैं और ऐश्वर्यपूर्ण जीवनयापन करते हैं । डॉ.कृष्ण बिहारी मिश्र का मत है - ‘‘ धांधली और भ्रष्टाचार की प्रतिक्रिया से खीझ कर जनता अक्सर सार्वजनिक सम्पति के विनाश और तोड़-फोड़ पर उतारू हो जाती है । विरोध प्रदर्शन का यह ढंग प्रायः छात्रों द्वारा अपनाया जाता है । ’’[३७] एक तरफ भ्रष्ट तरीकों से धन प्राप्त किया जाता है और दूसरी तरफ मजदूर लोग चन्द रूपियों के लिए दिन-भर धूप में काम करते हैं ।

अन्त में कहा जा सकता हैं कि स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज में तीव्र गति से परिवर्तन हुआ है । प्रेम, विवाह, पारिवारिक सम्बन्ध और संयुक्त परिवार की धारणाओं में आधारभूत बदलाव आये हैं । इसके साथ ही सामाजिक रूढ़ियों, अंध विश्वासों से लोगों का ध्यान हटा है । आज जाति टूट रही हैं,लेकिन जातिवाद बढ़ रहा है । शिक्षा तथा सामाजिक चेतना के माध्यम से युवा वर्ग ने समाज को एक नयी दिशा देने का प्रयास किया है । यद्यपि आज युवक समस्याओं के कारण घुटन,कुण्ठा व पीड़ा में जी रहा है लेकिन साथ ही वह सामाजिक रूढ़ी-भंजन की प्रकिया में तीव्रता पैदा कर रहा है । नारी की सामाजिक स्थिति में मूलभूत परिवर्तन आया है । वह आर्थिक रूप से स्वतंत्र होकर अपने अस्तित्त्व के लिए संघर्ष कर रही है । इन सभी परिस्थितियों का प्रभाव कमलेश्वर के उपन्यासों मे देखा जा सकता है । उन्हों ने सामाजिक विषमता के ज्वलंत प्रश्नों को देखा, अनुभव किया और उसे सहज अभिव्यक्ति दी है ।

३. आर्थिक परिस्थितियाँ :

‘ अर्थ ’ ही देश के विकास का मेरूदंड है । मानव जीवन और जगत की तमाम बाहरी और भीतरी व्यवस्थाओं की आधारशक्ति ‘ अर्थ ’है । ‘अर्थ ’ के महत्त्व को झुठलाया नहीं जा सकता । प्रत्येक युग की सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ अर्थ से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती । शास्त्रों में भी जीवन को सार्थक बनानेवाले चार पुरूषार्थो में से ‘अर्थ ’ को एक पुरूषार्थ माना गया है ।

धर्मवीर भारती ने भी ' मुरदों का गाँव ' कहानी में अर्थ की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहा कि - '' अन्न जीवन की प्रथम आवश्यकता है, अन्न संस्कृति की प्रथम आवश्यकता है, अन्न काव्य की प्रथम आवश्यकता है जौ की सुनहली बालों की छाया में चिन्तन, कल्पना, गीत, प्रेम और रोमांस के सपनें झुलते हैं । ''[३८] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य और कला की उपलब्धि में आर्थिक संबंधों की सक्रियता भी आवश्यक रहती है । साहित्य के निर्धारण में अर्थ का महत्त्व असंदिग्ध है, परंतु इसका मतलब यह नहीं है कि ' अर्थ ' ही सर्जन का मूल हेतु है । पंडित जगन्नाथ के विचारानुसार - ''अर्थ -व्यवसाय का आधार है और साहित्य.......उसकी अधिरचनाएँ हैं । ''[३९]

व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था के प्रति व्यक्ति की मानस चेतना ही आर्थिक चेतना है । समाज का दृष्टिकोण अन्य आयामों की अपेक्षा आर्थिक आयाम से अधिक तीव्रता से प्रभावित होता है । अर्थात् युग बोध के बदलाव में आर्थिक आयाम महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । प्राचीन काल में भक्ति,धर्म युग बोध के नियामक थे किन्तु आधुनिक भौतिकतावादी युग में जीवन के केन्द्र में अर्थ समा गया है । आज माना जाता है -'सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ते ।' आज के प्रत्येक कार्य व्यापार के पीछे अर्थ शक्ति कार्य कर रही है । आज कोई भी समस्या पैसे के बल पर हल की जा सकती है किन्तु पहले ऐसा नहीं था । भारत में प्रारंभ में मिश्रित अर्थ व्यवस्था अपनाई गई इसलिए उस अर्थ व्यवस्था में समाज सापेक्षता थी, समाज कल्याण हमारे युग बोध के केन्द्र में था । सरकारी हस्तक्षेप था, सहकारी समितियों का सहयोग था किन्तु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जब हमने पूरी तरह पूँजीवादी तंत्र को अपना लिया है तो हमारे आर्थिक युग बोध का भी प्रभावित होना स्वाभाविक है । इसलिए वर्तमान दौर में अर्थतंत्र की महत्ता जितने महत्त्वपूर्ण रूप में उभरकर आयी है उतनी पहले कभी नहीं थी ।

आर्थिक असन्तुलन विभिन्न विषमताओं की जननी है । अर्थ की अधिकता जहाँ व्यक्ति को विलासी, तामसी एवं पाशविक बना देती है, वहीं अर्थाभाव उसे कुंठित एवं पंगु बना देता है । क्रियाशीलता समाप्त हो जाती है, वह निष्क्रिय और भाग्यवादी बन जाता है । आवश्यकताओं की पूर्ति न हो पाने की वजह से व्यक्ति में अपराध वृति एवं अनैतिकता का जन्म होता है । मानवीय संबंधों में बिखराव और सामाजिक समस्याओं के मूल में 'अर्थ ' की विषमता ही रही है ।

आर्थिक विषमता ईश्वरीय देन नहीं बल्कि सामाजिक व्यवस्था की देन है जिस से एक वर्ग अमीर हो जाता है और दूसरा गरीब । अपने आर्थिक परिवेश से साहित्यकार भी अछूता नहीं रहता । मार्क्स ऐंगल्स ने कहा है कि - '' काव्य का सृष्टा

कोई स्वप्न दृष्टा मानव नहीं बल्कि दैनंदिन जीवन में संघर्षों में संलग्न आर्थिक परिस्थितियों से पूर्णतः प्रभावित और उनसे जूझता हुआ यथार्थदर्शी मानव है । ''[४०]

अर्थ से उत्पन्न समस्याओं को वह साहित्य में प्रस्तुत करके वर्ग संघर्ष द्वारा आर्थिक विषमता को दूर करने का प्रयत्न करता है । परंतु मार्क्स ऐंगल्स की विचारधारा ने आर्थिक विषमता के इस युग में जलती हुई आग में घी का काम किया । इस प्रकार अर्थ ही समाज की प्रत्येक गतिविधि का केन्द्रबिंदु है । सामान्यतः आर्थिक दृष्टि से उन्नत समाज को ही विकसित समाज कहा जाता है । डॉ. हेमेन्द्र पानेरी के शब्दो में - '' अर्थ ही समाज की शिराओं में बहनेवाला वह रक्त है जो संपूर्ण समाज का जीवन संचालित करता है । प्रत्येक युग का सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन अर्थ-प्रकिया से प्रभावित रहा है । विकास का मूल आधार अर्थ ही है । '' [४१]

भारत की अधिकतर जनसंख्या गाँवों में निवास करती है । ग्रामीण जनता का मुख्य व्यवसाय कृषि होने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति कृषि पर ही आधारित रहती है । पहले अधिकतर कृषि परम्परागत साधनों से होती थी, क्योंकि वैज्ञानिक कृषि यंत्रों का अभाव था । यंत्रों के अभाव के कारण फसल की पैदावार कम मिलती थी । इसी पैदावार के आधार पर ग्रामीण जनता अपना जीवन व्यतीत करती थी । किसान के साथ-साथ अन्य लोग भी जो कृषि सम्बन्धी कार्य करते थे, कृषि पर ही आधारित रहते थे ,वे लोग कृषकों की कृषि सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे , तो कृषक उन्हें बदले में अनाज प्रदान करता था । इस प्रकार भारत की अर्थ व्यवस्था कृषि पर आधारित थी ।

भारत को किसी समय में ' सोने की चिड़िया ' कहा जाता था । यहाँ पर अनेक विदेशी आक्रमणकारी आए तथा अपार धन सम्पदा लूट कर अपने साथ ले गए । यह प्रकिया सैंकड़ों वर्ष तक चलती रही । इसी प्रकिया के अंतिम चरण में यहाँ पर अंग्रेज आए । अंग्रेज भारत में ' इस्ट इन्डिया कम्पनी 'के नाम से ई १६०० में व्यापार करने के उदेश्य से आए थे , और उन्होनें सूरत में अपना पहला व्यापारिक केन्द्र स्थापित किया था । अंग्रेज धीरे-धीरे भारत की राजनीतिक परिस्थितियों में रूचि लेने लगे । सन् १७५७ में 'प्लासी की लड़ाई ' के बाद अंग्रजों का भारत पर एकाधिकार बढ़ने लगा था । अंग्रेजी शासकों ने भारत को आर्थिक दृष्टि से गुलाम बना दिया था । अंग्रेज भारतीय हस्त उद्योग से निर्मित वस्तुओं को सस्ते दामों में खरीद कर युरोप में मँहगें दामों में बेचते थे, और वहाँ की यंत्र उत्पादित सस्ती चीजों को भारत के बाजार में भरते थे । आर्थिक शोषण की नीति से ही उन्होनें कल कारखानों पर

विशेष ध्यान दिया । परिणामस्वरूप भारतीय उद्योग-धंधे, हस्त-कलाएँ एवं कुटीर उद्योग मशीनीकरण में परिवर्तित हो गये । भारत के प्राकृतिक साधनों एवं जनशक्ति का उपयोग वे अपने हित में करते थे ।

उनकी इस नीति पर व्यंग्य करते हुए मार्क्स ने कहा कि-'' अंग्रेज कल-कारखानेदार केवल इसी उदेश्य को सामने रखकर हिन्दुस्तान में रेलें बनवा रहा हैं, कि उनके द्वारा कम खर्च में अधिक कपास और दूसरा कच्चा माल अपने उद्योग-धंधों के लिए निकाल सके । .....इसी प्रकार रेल व्यवस्था से हिन्दुस्तान में आधुनिक उद्योग की नींव पड़ गई । ''[४२] फिर तो भारत में उद्योग सभ्यता ही कायम हो गयी । आर्थिक शोषण की अंग्रेजों की यह योजना सुनियोजित एवं वैधानिक थी । जिससे उनकी तिजोरी भी भरती रहे और भारत पर उनका प्रभाव भी पड़े ।

अंग्रजों ने - '' भारतीय अर्थ व्यवस्था की इकाई ग्राम संगठन को भ्रष्ट कर दिया, देशी उद्योगों को निर्मूल कर दिया और भारतीयों में जो महान और उच्च था, उसे जमीन में मिला दिया । ''[४३] लोग गाँव से शहर की तरफ आकर्षित हुए । भारतीय लघु उद्योग एवं हस्तकलाएँ सदा के लिए विलुप्त हो गयी, कारीगर एवं कलाकार मजदूर में परिणत हो गये जिससे भारतीय कलात्मक उपलब्धियाँ समाप्त होने लगी और कलाकार कुंठित हो गये, शहरीकरण की प्रकिया शुरु हुई । उद्योगीकरण की नीति ने भारतीय अर्थ-व्यवस्था को झकझोर डाला, गाँव की आत्म-निर्भरता विशृंखलित हो गयी और देश खोखला होता गया । अकाल, महामारी, गरीबी, सरकारी टैक्स और कर्ज के बोझ ने जनता की कमर तोड़ दी । असंतुष्ट भारतीय धीरे-धीरे अंग्रजों की असलियत जान गये । इसलिए ई.१९४० के अधिवेशन में किसानों ने कहा कि-'' किसान आजादी की लड़ाई में मजदूरों के साथ आगे बढ़कर विदेशी शासन से लोहा लेंगे और देश के साधनों को लूटने से बचायेंगे । ''[४४]

द्वितीय विश्व युद्ध से भारतीय अर्थतंत्र को और भी धक्का लगा । ब्रिटिश सैनिकों का संपूर्ण खर्च भी भारत की तिजोरी से निकल रहा था । भारत की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए अंग्रेजों ने कोई उपाय नहीं किया, इससे भारतीय नेता भी काफी क्षुब्ध हुए । वर्षा की अनियमितता, एवं अतिवृष्टि तथा मुद्रा स्थिति को सुधारने के लिए अंग्रजों ने कोई उपाय नहीं किया । वर्षा की अनियमितता एवं अतिवृष्टि की समस्या से अन्न की कमी उत्पन्न हुई, लाखों लोग मर गये ।

यह स्थिति को देखते हुए रजनी पामदत्त ने लिखा है कि- '' यह अकाल

· मानव निर्मित था । ....बहार से अनाज माँगकर तथा खाद्यान्नों का लोगों के बीच सामान वितरण कर के इस कमी को आसानी से दूर किया जा सकता था..... अनाज का समूचा भंडार जमींदारों और व्यापारियों द्वारा दबा दिया गया और भ्रष्ट नौकरशाही ने इनके भंडारों को जमाखोरों के हाथों से बाहर निकाल ने की कोशिश करने के बजाय उनकी कीमतें बढ़ाने में मदद पहुँचाई और करोड़ों लोगों की जिन्दगी के साथ खिलवाड़ किया । ''[४५]

इस प्रकार भारतीय जनता ब्रिटिश शासकों, पूँजीपतियों, सामंतों और जमींदारों के आर्थिक शोषण से पिसती रही । देश की विश्रृंखलित अर्थ व्यवस्था से निपटने के लिए गाँधीजी ने कुटिर उद्योगों की स्थापना की और स्वदेशी वस्तुओं के प्रति अभिरुचि पैदा करने के लिए स्वदेशी आंदोलन चलाया । ग्रामोन्नति एवं ग्राम सुधार के लिए अनेक कार्यक्रम बनाये, ग्रामीण बेकारों को स्वावलंबी बनाने के लिए चरखे द्वारा वस्त्र के निजी उत्पादन पर बल दिया और अंग्रेजों द्वारा किये जा रहे आर्थिक शोषण से जनता को जागृत किया ।

लंबी प्रतिक्षा के पश्चात् भारत आज़ाद तो हुआ लेकिन ढेर सारी समस्याओं का तोह्फा लेकर । उन समस्याओं में सबसे मुख्य समस्या 'अर्थ का असंतुलन 'थी । जिससे निपटने के लिए स्वतंत्र भारत में अनेक कदम उठाये गए । अखिल भारतीय आर्थिक कार्यक्रम समिति का गठन किया गया ,आर्थिक दृष्टि से पिछड़े लोगों को भूदान द्वारा भूमि दिलायी गयी, जमींदारी उन्मूलन एवं उचित कर की व्यवस्था प्रदान की गई । प्रधानमंत्री नेहरूजी ने देश को सुखी एवं समृद्ध बनाने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा समाजवादी व्यवस्था कायम करने की घोषणा की ।

पंचवर्षीय योजनाओं का उदेश्य था -'' औद्योगिक विकास करना,उत्पादन क्षमता में वृद्धि लाना एवं जनता के जीवन स्तर में सुधार करना । योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए विदेशों से कर्ज लिया गया । जिससे देश का आत्म-सम्मान भिक्षा पात्र के रूप में विदेशी राजधानियों मे द्वार-द्वार भटकता रहा । ''[४६] विशाल पंचवर्षीय योजनाएँ भी देश को गरीबी से उबार नहीं पायी,वे सिर्फ कागज तक ही सीमित रही । योजनाओं की रकम को नेता और कर्मचारी आपस में बाँट लेते और रिपोर्ट सरकार को सौंप देते । जिससे सरकारी प्रयासों के बावजूद भी आर्थिक समस्या ज्यों-की-त्यों बनी रही । दूसरा कारण यह भी था कि नेहरू ने उद्योग-धंधों को अधिक बढ़ावा दिया । उनकी औद्योगिक क्रांति ब्रिटिश अर्थ व्यवस्था का ही प्रति रूप थी जिस से पूँजीवाद दिनों दिन विकसित होता गया और जनता गरीबी के दल-दल में धसती गयी ।

स्वयं नेहरूजी ने भी आर्थिक विषमता के बारे मे अनुभव किया कि- '' औद्योगिक उत्पादन के क्षेत्र में अधिक लाभ उन्हें मिला है ,जो पहले से उद्योग में स्थिर थे । जिसके परिणाम स्वरूप कुछ परिवार अधिक संपन्न हो गये हैं और एकाधिकार की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला है । ''[४७]

निरंतर बढ़ती जन संख्या एवं कृषि संसाधनों का लाभ धनिक वर्ग का किसान उठाता रहा, निम्न वर्ग उसका लाभ नहीं ले सका । अपनी मेहनत से दूसरों का पेट भरनेवाले मजदूर और गरीब किसान को स्वयं भूखा रहना पड़ता । विकासात्मक परिवर्तन के इस युग में भी भारत के हजारो गाँव आज भी परम्परागत अभिशप्त जीवन जीने के लिए विवश हैं । गरीबी निवारण के भगीरथ प्रयत्नों के बावजूद भी देश की आर्थिक स्थिति ज्यों-की-त्यों बनी रही । सरकार की गलत नीतियों के कारण स्वतंत्र भारत के आर्थिक परिवेश का वर्णन करते हुए डॉ.शिव प्रसाद सिंह कहते हैं कि - '' वह शर्मनाक भिक्षाकाल का समय रहा है, ऋणी और ऋण दाता, सहायता और भिखारी के साथ-साथ जब यह आधुनिकीकरण बनाम विकास का रूप जा मिला है तो सारे देश का मनोबल संकल्प-शक्ति और उसका आत्मबल भी विघटित हुआ है । ''[४८]

विषम आर्थिक व्यवस्था के कारण ही समाज में तीन वर्ग हुए- उच्च वर्ग, मध्य वर्ग और निम्न वर्ग । उच्च वर्ग में पूँजीपति, अफसर और राजनेताओं की गणना की जाती थी । यह वर्ग स्वार्थ सिद्धि के लिए मजदूरों और कारीगरों का आर्थिक शोषण करता है । समाज में आर्थिक विषमता फैलाने का सबसे बड़ा उत्तरदायित्त्व इसी वर्ग का है, क्योंकि इन लोगों के ही हाथों में उत्पादन के साधनों का स्वामित्त्व होता है । मध्य वर्ग के अंतर्गत किसान, अध्यापक, तकनीशियन, कर्मचारी डॉक्टर इत्यादि आते हैं । इस वर्ग की स्थिति सबसे विचित्र और दयाजनक है । दोनों वर्गो के बीच में पिसने के लिए विवश यह वर्ग सदैव परेशान और समस्या ग्रस्त रहता है । उच्च वर्ग से स्पर्धा के कारण ही यह वर्ग आय की अपेक्षा व्यव अधिक करता है । जिस कारण इसे दोहरी मानसिकता में जीना पड़ता है । आर्थिक तंगी का शिकार मध्य वर्ग दिन-प्रतिदिन अवनति के गड्ढ़े में गिरता जा रहा है । निम्न वर्ग का संबंध गरीबी रेखा के नीचे जीनेवाले लोगों से है । डॉ.श्याम सुन्दर घोष लिखते है - '' ये लोग इतिहास के पहिये को पीछे की ओर घुमाने की कोशिश करते हैं, और अपनी स्थिति को अपनी नियति मानकर रूढ़िवादी बने रहना चाहते है ।''[४९] आर्थिक विषमता सामाजिक अराजकता को निमंत्रण देती है । अर्थ व्यवस्था के डगमगाते ही मनुष्य की मनुष्यता समाप्त हो जाती है, नैतिक मूल्य नष्ट हो जाते है और व्यक्ति में कुण्ठा जन्म लेती है ।

डॉ. सुमन मेहरोत्रा का कथन है – ‘‘ धनाभाव के कारण व्यक्ति की इच्छाओं की पूर्ति नहीं हो सकी और व्यक्ति निराश होकर कुण्ठाओं से ग्रसित होता गया । ’’[५०] मध्य वर्गी ही इन सबका शिकार हुआ । झुठी प्रदर्शन प्रियता ने मध्य वर्ग के आर्थिक जीवन को खोखला कर दिया । इस प्रकार भारत पूँजीपतियों की शोषक अर्थनीति से दिन–ब–दिन निर्धन होता गया ।

आर्थिक विषमताओं के कारण निम्न वर्ग जिसमें किसान और मजदूर का ही आधिक्य है, उसका जीवन दुष्कर बन गया । किसान, मजदूर का दम घुट रहा था अर्थात् वे कुण्ठा, निराशा, वेदना और अकेलेपन की भावनाओं से ग्रस्त हो गए । इसका परिणाम यह निकला कि संबंधों में बिखराव आ गया तथा समाज का विघटन तेज हो गया । डॉ. देवेश ठाकुर के अनुसार–‘‘ जहाँ भारतीय समाज की आर्थिक स्थिति का प्रश्न है उसमें व्यक्ति–व्यक्ति के बीच गहरी खाइयाँ विद्यमान है । उद्योगपतियों, व्यवसायियों और स्वतंत्र रूप से अपनी आजीविका अर्जित करनेवाले लोगों को छोड़ भी दें, तो केवल नौकरी पेशा लोगों के बीच एक हजार से अधिक विभिन्न वेतनमान लागू है अर्थात आर्थिक दृष्टि से भारतीय समाज एक डेढ़ हजार से अधिक भागों में बँटा हुआ है । जब पैसा ही सामाजिक प्रतिष्ठा की कसौटी बन जाता हैं तब ऐसी स्थिति समाज में विघटन और संघर्ष के अतिरिक्त और क्या ला सकती है । ’’[५१]

आज भारतीय समाज में मुनाफाखोरी, कालाबाजारी, तस्करी जैसी आर्थिक समस्याएँ विद्यमान है और इसकी समाप्ति के कारण निकट भविष्य में नजर नहीं आ रहे हैं, क्योंकि यह सब सत्ता पक्ष में रहनेवाले लोगों से मिलकर ही हो रहा है । राजनीतिक लोग चुनाव के दिनों में इन असामाजिक लोगों से धन वसूल करते हैं । जिस व्यवस्था का कार्य समाज में आर्थिक समानता स्थापित करना है अगर वही आर्थिक असमानता पैदा करने लगे तो स्थिति की भयावहता स्वयं सिद्ध है ।

डॉ. लालचन्द गुप्त ने भारतीय समाज में व्याप्त बुराइयों के विषय में लिखा है – ‘‘ जाति और रिश्वत की चक्की के बीच प्रजातंत्र की साँसें टूट गई है । जीवन की छोटी आवश्यकता के लिए भी सरल, साफ सुथरा मार्ग नहीं बचा है । हम देखते हैं कि बेरोजगारी, वैषम्य, निर्धनता, दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं, जिसे भाषणों, लम्बे–लम्बे दावों, कागजी आँकडों तथा टैक्सों के भार से सांत्वना देने की चेष्टा की जाती है । ’’[५२] समाज में भ्रष्टाचार का जो माहौल बना हुआ था, वह किसी भी दृष्टि से सार्थक और चेतन व्यवस्था का प्रतीक नहीं हो सकता ।

स्पष्टतः आज हमारा परिवेश आर्थिक विषमताओं के शिकंजे में जकड़ा हुआ है। 'अर्थ ' पर मुट्ठी भर लोगों का ही अधिकार रह गया है। मध्य वर्ग, सर्वहारा और श्रमजीवी की संख्या बढ़ती जा रही है। वह गरीबी और भूखमरी के साये में जीवन जीने को विवश है। सरकार की दल गत खोखली योजनाएँ एवं घोषणाएँ आर्थिक विपन्नता को दूर करने में असफल रही है। युग परिवेश की इस आर्थिक जटिलता से कमलेश्वर भी प्रभावित हुए जिसे हम उनके साहित्य अंतर्गत देख सकते है।

४. धार्मिक परिस्थितियाँ :

व्याकरणिक दृष्टि से धर्म शब्द 'ध' धातु 'अन' प्रत्यय लगाने से बना है। धर्म की स्वरूप विषयक अनेक व्याख्याएँ प्रचलित हैं। प्रथमतः-जिससे लोक धारण किया जाए , वह धर्म है (ध्रियते लोकः अनेन इति धर्मः) द्वितीय रूप से जो लोक को धारण करे वह धर्म है (धरति धारयति व लोकः इति धर्म :) और तृतीय अर्थ में-जो दूसरों के द्वारा धारण किया जाए वह (ध्रियते यः स धर्म :) धर्म है। अंग्रेजी में धर्म के पर्याय रूप में शब्द मिलता है, किन्तु इन दोनों में पर्याप्त अन्तर है। आज भारत वर्ष में 'धर्म' जाति और सम्प्रदाय के रूप में रूढ़ हो गया है। किन्तु धर्म अपने स्वरूप में अत्यन्त व्यापक है,जो समष्टिगत हित की भावना से युक्त होकर मानव व्यवहार को नियंत्रित करता है।

धर्म के आधार पर प्रत्येक युग का मनुष्य भविष्य के सूत्र पकड़ता है। हिन्दी साहित्य के भक्ति काल को इसका सशक्त प्रमाण कहा जा सकता है। 'धर्म ' आदिकाल से ही जनमानस को अभिनियंत्रित करने वाली शक्ति रहा है। भक्तिकाल तो पूर्ण रूपेण धर्म से परिचालित रहा है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आज भी धर्म का हस्तक्षेप उसकी शक्ति और महत्त्व की ओर संकेत करता है। मनुस्मृतिकार के अनुसार धर्म के दस लक्षण है -

> ''धृतिःक्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
> धीर्विद्या सत्यमक्रोधः दशकं धर्म लक्षणम् ।।'' [५३]

धर्म के उपरोक्त दस लक्षण आज भी मान्य हैं। क्योंकि व्यक्ति को सन्मार्ग की ओर उन्मुख करने वाले मूल्यों का अधःपतन होना विवेकशील समाज की समाप्ति का सूचक होगा। इसलिए धर्म और धर्म के दस लक्षण सदैव मान्य रहे हैं और भविष्य

में भी रहेंगे। यद्यपि उल्लेखनीय है कि युगीन परिवर्तन के साथ इन दस धार्मिक मूल्यों के साथ कुछ नवीन धार्मिक मूल्य भी जुड़े और कुछ में युगानुकूल यत्किंचित परिवर्तन लक्षित हुआ।

भारत एक धर्म निरपेक्ष राष्ट्र हैं। भारत धर्म और संस्कृति दोनों में समता का पालन करता आया है। विभिन्न धर्मो का मिला जुला रूप ही इस समता का आधार है। इन सबके होते हुए भी यहाँ समय-समय पर धार्मिक मुठभेड़ हुई हैं। विदेशों से विभिन्न धर्मावलंबियों ने यहाँ आकर अपना अधिकार जमाया है और उनके सिद्धान्तों को भारत ने अपने में पचाया है, फिर भी धर्म के नाम पर यहाँ साम्प्रदायिक दंगे होते रहते हैं।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में प्रत्येक धर्मावलंबी को मूल अधिकार के रूप में अपने धर्म का पालन करने की छूट दी गई हैं। वह देश के किसी भी कोने में रहकर भी समान अधिकारों को भोगता है। आज धर्म 'रिलीजन (Religion)' का पर्याय अथवा कर्मकाण्ड की ओर प्रेरित करनेवाला न होकर कर्तव्य बोधक है। डॉ.बैजनाथ सिंहल कहते हैं - '' आध्यात्मिक स्तर पर धर्म एक उदात्त अनुभूति का नाम है। धर्म मनुष्य को विवेक देता है। वह देख सके कि कहीं दूसरों के अधिकारों का अतिक्रमण तो नहीं कर रहा है। ''[५४] इसी धार्मिक उदारता व नवीन कर्तव्य बोधक दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप भारत धर्म निरपेक्ष राष्ट्र है ,जहाँ हिन्दू,मुस्लिम, सिख, ईसाई एक साथ समान राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक अधिकारों के उपभोग के लिए स्वतंत्र हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ हुए देश विभाजन से भयंकर साम्प्रदायिक दंगे हुए। विभिन्न धर्मों के अंतर्द्वन्द्वों से व्यक्ति, परिवार और समाज का धार्मिक और नैतिक पतन हो गया। मानवीयता लुप्त हो गई और हर क्षेत्र में मूल्य-च्यूति ही दृष्टिगत हुई। धार्मिक अनास्था बढ़ गई, मानवीय सम्बन्ध अस्त व्यस्त हो गया। नैतिक पतन का दुष्परिणाम सब से अधिक नारी-पुरुष सम्बन्धों में दिखाई दिया। आध्यात्मिकता का ह्रास हो गया और लोग भौतिकवादी बन गए। पाश्चात्य जीवन पद्धति का प्रभाव भी इसका कारण बना।

इस सम्बन्ध में डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय बताते है -'' आज का भारतीय एक लम्बी दासता के बाद स्वातंत्र्योत्तर काल में जीवन जीने के बावजूद दास मनोवृत्ति का ही शिकार है और पश्चिमी आचार-व्यवहार को अधिक गर्व से देखता है। अपनी उपयोगी भारतीय परंपराएँ भी उसे अपमान जनक प्रतीत होती है।'' [५५] पश्चिमी प्रभावों

से आये परिवर्तन के कारण देश का धार्मिक पतन होने लगा और उस पतन ने लोगों को निस्तेज कर दिया ।

स्वतंत्रता के पश्चात् अनेक अवसरों पर सोई हुई धार्मिक कट्टरता भड़की है । अपने राजनीतिक स्वार्थों के लिए हवा देने का काम राजनीतिज्ञों ने किया है । इस धार्मिक उन्माद की खामियाँ भारतीयों को अनेक अवसरों पर भुगतनी पड़ी है । स्वतंत्रता के बाद धार्मिक कट्टरता के कारण जहाँ देश में अनेक बार साम्प्रदायिकता का जहर फैला है, वहीं धर्मान्धिता के अजगर ने राष्ट्रीय एकता के सम्मुख भी प्रश्न चिह्न लगा दिया । पंजाब, कश्मीर, असम की आजतक की स्थिति इसका ज्वलंत प्रमाण है । साहित्यकारों ने कभी भी धर्मान्धिता और साम्प्रदायिकता को प्रश्रय नहीं दिया, उनकी जागरूक प्रज्ञा इसका विरोध करती रही है । साहित्यकारों ने धर्मान्ध दृष्टि की तीव्र भर्त्सना की है । उनमें साम्प्रदायिकता के प्रति कहीं आक्रोश है तो कहीं क्षोभ ।

पाश्चात्य प्रभाव के कारण हिन्दुओं के मन में धर्म के प्रति अनास्था की भावना बढ़ने लगी । इसका फायदा मुसलमान और ईसाई दोनों उठाने लगे । धार्मिक अनास्था के कारण व्यक्ति निर्दयी बन गया है । उसके मन में दया, ममता ,विश्वास, बन्धुत्व एवं प्रेम आदि मानवीय गुणों का ह्रास होता जा रहा हैं । इसके कारण व्यक्ति में घुटन, कुण्ठा, वेदना, संत्रास, अकेलापन, अजनबीपन, व्यथा, शून्यता आदि विसंगतियों का आधिक्य दिखाई दिया । व्यक्ति अपने को अकेला, असुरक्षित और खाली-सा महसूस कर रहा हैं । इन सबका असर पारिवारिक सम्बन्धों पर खूब पड़ने लगा । इस वैज्ञानिक युग में ईश्वर के प्रति व्यक्ति का विश्वास घटता जा रहा हैं । व्यक्ति अपने आप को ही अपना स्वामी मान बैठा है ।

देश की अर्थव्यवस्था के बिगड़ने से और भारत विभाजन से संत्रास, भूखमरी, अकाल, बाढ़ और इनसे होनेवाले अपार विनाश ने ईश्वर में मनुष्य की आस्था को हिला दिया और इसी प्रकार से स्वयं को सुरक्षित एवं साधन सम्पन्न रखने की एक मात्र भावना का जन्म हुआ । समाज विरोधी तत्त्वों, गरीबी, बेरोजगारी, महँगाई, व्यक्ति की स्वार्थी प्रवृत्ति और नव विकसित उपयोगितावादी दृष्टि से धार्मिक चेतना का क्रमशः ह्रास हुआ । भक्ति भावना में कमी आई और मन्दिर-मस्जिद को नकारा गया ।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता के बाद देश में धार्मिक क्षेत्र में अधिक उथल-पुथल दिखाई पड़ रही है ।

५. सांस्कृतिक परिस्थितियाँ ः

संस्कृति यदि साहित्य को जन्म देती है तो साहित्य संस्कृति के विकास में अपना सहयोग देता है । संस्कृति की अभिव्यक्ति साहित्य में होती है । साहित्य के द्वारा संस्कृति का पोषण होता है । संस्कृति शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया जाता है ।

संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा के 'सम' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से बना है । इस प्रकार सम कृति में सम्यक रूप से या भलीभाँति का अर्थ समाहित है , अर्थात् कतिपय कार्यो का भलीभाँति किए जाने का भाव ही संस्कृति है । संस्कृति शब्द मूलतः संस्कार पर आधृत है ,जिसका अर्थ है सम्यक किया करना या शुद्ध करना । इस रूप में मानव की आदिम प्रवृतियों को नैष्ठिक क्रियाओं,कर्मानुष्ठानों के द्वारा परिष्कृत एवं सौम्य बनाना ही व्यवहृत रूप में संस्कार है । इस प्रकार मानव के लिए अनुकरणीय 'संस्कार' ही संस्कृति की संज्ञा पाते हैं ।

संस्कृति शब्द अंग्रेजी के 'कल्चर (Culture)' का पर्याय है । इस रूप में हमारे जीवन का ढंग संस्कृति है । इस सम्बन्ध में डॉ. एस. राधाक्रिष्नन ने कहा है कि- ''Culture is that complex whole which includes Knowledge, belief and moral laws, customs and other capabilities acquired by man as a member of society ''[५६] संस्कृति निरंतर विकासशील एवं परिवर्तनशील है । युगीन परिस्थितियों के अनुसार आचार -व्यवहार में नैतिकता- अनैतिकता निश्चित है । यही सांस्कृतिक परिवर्तन है । दो संस्कृतियों के मिलन से सांस्कृतिक बदलाव होता है । विज्ञान और पश्चिमी चिन्तन के कठोर प्रहारों ने हमारे प्राचीन सांस्कृतिक आयामों को खंडित करने का भरसक प्रयास किया और एक हद तक वे इस में कामयाब भी रहे ।

' संस्कृति ' देश की आत्मा होती है । संस्कृति का अर्थ किसी समाज की जीवन पद्धति के रूप में ले तो इसमें धर्म, दर्शन, संस्कार, मान्यताएँ, लोककलाएँ इत्यादि सभी पक्ष समाहित हो जाते हैं । मानव जीवन की आंतरिक प्रगति के लिए संस्कृति और साहित्य नितांत आवश्यक है । वासुदेवशरण अग्रवाल कहते हैं - '' मनुष्य ने देश और काल में विश्व के रंगमंच पर जो मन में सोचा है, कर्म से किया है और भौतिक माध्यम से निर्माण किया है वही मानव की संस्कृति है । ''[५७] मनुष्य ने जीवन और जगत के रहस्यों को जानने के लिए अध्ययन किया और उसकी यही बुद्धि परक व्यारूया मानवीय संस्कृति का प्रमुख अंग हैं ।

धर्म, दर्शन, कला, साहित्य आदि क्षेत्रों में मनुष्य की उपलब्धि ही उसकी संस्कृति हैं। मानवीय संस्कृति इन उपलब्धियों को जितनी सहजता व वास्तविकता में ग्रहण करती है वही विशिष्ट मानवीय संस्कृति है। डॉ. बलदेवप्रसाद मिश्र के अनुसार – ''मँजी सँवरी जीवन वृत्ति तथा परिचर्या का ही नाम संस्कृति है।''[५८] संस्कृति का सम्बन्ध मनुष्य की आन्तरिक भावनाओं से हैं, जो मानव मूल्यों को आकार देती है। किसी भी देश या समाज की श्रेष्ठता उस देश या समाज के श्रेष्ठ सांस्कृतिक मूल्यों पर निर्भर रहती हैं।

सांस्कृतिक अस्मिता के सम्बन्ध में अज्ञेय का मन्तव्य है – '' सांस्कृतिक अस्मिता नकल से नहीं बनती, विदेशी मनोवृत्तियों और मनोभाव आयातीत करके भी नहीं बनती, अपनी सही पहचान से बनती है। सांस्कृतिक जीवन के बारे में ही यह बात सब से अधिक सत्य है कि हम वही बन सकते हैं जो हम हैं। ''[५९] संस्कृति जीवन जीने की एक विशेष सार्वभौमिक पद्धति है। डॉ. हरिशचन्द शर्मा के मतानुसार – '' संस्कृति मानव जीवन को विकृति से बचाकर सुकृति की ओर अग्रसर करनेवाला एक ऐसा रचनात्मक प्रत्यय है, जो अतीत से प्रेरित , वर्तमान से प्रतिबद्ध ओर भविष्य के प्रति उन्मुख है।''[६०]

हमारी वैदिक कालीन संस्कृति समग्र विश्व में अपनी महानता के लिए प्रख्यात थी। ईश्वर को सर्वोपरि माना जाता था उसे प्राप्त करने के लिए जप, तप, यज्ञ, मंत्र, साधना, त्याग, सेवा, धर्म, कर्म का सहारा लेना पड़ता था। आध्यात्मिक ज्ञान के उपरांत समाज व्यवस्था, चिकित्सा-शास्त्र, नीति, शासन-व्यवस्था, संगीत, शिल्प तथा साहित्य के प्रति भी तत्कालीन संस्कृति जागरूक थी। डॉ.नगेन्द्र कहते हैं कि – '' धर्म के माध्यम से ही संस्कृति के नाम पर जीवन की सूक्ष्मतर चेतना का संस्कार होता रहा है। ''[६१]

सारा समाज एकता और वसुधैव कुटुम्बकम की भावना से सराबोर था। स्वार्थ सिद्धि की अपेक्षा पर सेवा एवं परमार्थ को सर्वोपरि माना जाता था। भारतीय संस्कृति के मूल में आध्यात्मिकता, सहिष्णुता, धार्मिकता, स्वान्तः सुखाय की भावना, अतिथि पूजा, दार्शनिकता इत्यादि भावनाएँ रही हैं ,जिससे हमारी शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक शक्तियों का विकास होता हैं। डॉ. गुलाबराय के अनुसार भारतीय संस्कृति की विशेषताओं में – ''आध्यात्मिकता समन्वय, बुद्धि, वर्णाश्रम, अहिंसा, करुणा-मैत्री और विनय, प्रकृति-प्रेम, संयुक्त परिवार की महत्ता, आनंद और अतिथि-सत्कार है। ''[६२]

इन्हीं विशिष्टताओं के कारण विश्व की संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति अपनी पहचान बनाये हुए हैं । उसकी महानता की ओर संकेत करते हुए स्वामी विवेकानंद ने भी कहा है कि- ‘‘ भारतवासी जानते हैं कि इस भौतिक सृष्टि के मूल में वह सत्य और दिव्य आत्मतत्त्व निहित है जिसे पाप कलुषित नहीं कर सकता, दुराचार भ्रष्ट नहीं कर सकता है, दुर्वासना गंदा नहीं कर सकती । भारतीयों की दृष्टि में मनुष्य की यह परा प्रकृति आत्मा उतनी ही सत्य है जितनी कि एक पाश्चात्य व्यक्ति की इन्द्रियों के लिए कोई भौतिक पदार्थ । इसी विचारधारा में वह शक्ति निहित है जिसने भारतीयों को शताब्दियों के उत्पीड़न व वैदेशिक आक्रमण व भयंकर से भयंकर विपत्ति के दिनों में भी आध्यात्मिक महापुरुष कभी उत्पन्न होने से नहीं चुके हैं । सैंकड़ों वर्षों तक तलवारें चली हैं और साम्प्रदायिक भावनाओं से भरपूर गगन-भेदी नारे लगे हैं, किन्तु वे बाढ़े चली गई और राष्ट्रीय आदर्शों में परिवर्तन न कर सकी । ....भारत मर नहीं सकता, संस्कृति मर नहीं सकती । अमर है वह उस वक्त तक जब तक कि भारतीय आध्यात्मिकता को नहीं छोड़ेंगे । ’’[६३] परंतु लगातार विदेशी आक्रमणों से यह संभव नहीं रहा ।

ब्रिटिश राज्य की स्थापना के बाद भारत में युरोपीय व भारतीय संस्कृति के मध्य टकराहट पैदा हुई । प्रारंभ में भारतीय संस्कृति ने अपने आप को सर्वोपरि मानते हुए युरोपीय संस्कृति के प्रति उपेक्षा भाव प्रकट किया । ज्यों-ज्यों अंग्रेजी शिक्षा का भारत में प्रसार हुआ त्यों-त्यों भारतीय संस्कृति में ग्रहण लगना आरम्भ हुआ, तथा तत्कालीन परिस्थितियों से भारतीय संस्कृति के रूप में परिवर्तन होने लगे । भारतीयों को लगा कि आध्यात्मिक क्षेत्र में चाहे हम आगे हो लेकिन भौतिक अवस्था में हम विदेशी संस्कृति से बहुत पीछे है । इसलिए दोनों संस्कृतियों में सामंजस्य की भावना का जन्म हुआ । यह इसी का परिणाम है कि समाज में व्यक्ति का स्थान भौतिक आधार पर निश्चित होने लगा है । डॉ. हेमेन्द्र पानेरी कहते हैं कि- ‘‘प्राचीनकाल में तथा मध्ययुग में बिना रहन-सहन जीवन दृष्टिकोण बदले लोगों का धार्मिक परिवर्तन होता था लेकिन आधुनिक भारत में बिना धार्मिक विश्वास बदले लोगों के रहन-सहन तथा जीवन के दृष्टिकोण में महान परिवर्तन आ गया । ’’[६४]

स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक परिस्थितियों के परिवर्तन से सांस्कृतिक परिस्थिति का भी प्रभावित एवं परिवर्तित होना स्वाभाविक है । डॉ. देवेश ठाकुर के मतानुसार- ‘‘आज़ादी के बाद की भारतीय संस्कृति पर पश्चिमी जीवनदर्शन और संस्कृति की छाप स्पष्ट दिखाई देती है । एक तरह से स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय जीवन में भारतीय और पश्चिमी संस्कृति के समन्वयात्मक चित्र उभरे हैं । ’’[६५]

भौतिक सुख-सुविधाएँ प्राप्त करने की अन्धी भग-दौड़ में परम्परागत आस्था डाँवाडोल हो उठी, जिस से भौतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण में असंतुलन दिखाई दिया । विज्ञान की प्रगति ने मनुष्य को तार्किक बना दिया । इसके फल स्वरूप परम्परागत धार्मिक आस्था और विश्वास टूट गए । धर्म संस्कृति का मूलभूत अंग न रहकर केवल स्वार्थ सिद्धि का शस्त्र बन गया । पाश्चात्य संस्कृति ने सिर्फ हमारी संस्कृति को ही प्रभावित नहीं किया, बल्कि सारी परिस्थितियों को भी अपनी चपेट में ले लिया । देश व्यापी परिवर्तन से हमारा जन जीवन इस कदर मोहग्रस्त हुआ कि- '' गीता में विराट के भयानक संहारक विश्व रूप दर्शन से अर्जुन की जो विह्वल दशा हुई, वैसी ही स्थिति अंग्रेजों के द्वारा पाश्चात्य संस्कृति के आगमन पर भारतीयों की हुई । ''[६६] डॉ. श्रीनिवास के कथनानुसार - '' अंग्रेजी शासन के कारण भारतीय समाज व संस्कृति में बुनियादी और स्थायी परिवर्तन हुए । यह काल भारतीय इतिहास के पिछले सभी कालों से भिन्न था क्योंकि अंग्रेज अपने साथ प्रौद्योगिकी संस्थाएँ, ज्ञान, विश्वास और मूल्य लेकर आये थे । '' [६७]

भारत धर्म निरपेक्ष राष्ट्र होने के कारण उस पर पाश्चात्य संस्कृति की अमिट छाप पड़ी है । नवयुवकों में पाश्चात्य सभ्यता एवं सांस्कृतिक अन्धानुकरण की आदत लग जाने से उनकी कथनी और करनी उल्टी हो गई है । भारतीय पूर्ण रूप से पाश्चात्य संस्कृति न अपना सका और न ही अपने परंपरागत मूल संस्कारों के मोह से छुटकारा पा सका । पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 'संस्कृति के चार अध्याय ' पुस्तक की भूमिका में अपना विचार प्रकट करते हुए कहा - '' पाश्चात्य विचारों में भारत का जो विश्वास जगा था, अब तो वह भी हिल रहा है । नतीजा यह है कि हमारे पास न तो पुराने आदर्श है और न ही नवीन मान्यताएँ है । हम बिना जाने हुए बहते जा रहे हैं कि हम किधर को या कहाँ जा रहे हैं । ''[६८] इस प्रकार पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के फल स्वरूप सामाजिक एवं पारिवारिक सम्बन्धों में अलगाव आ गया है । आजकल पति-पत्नी, भाई-बहन, माता-पिता, गुरू-शिष्य आदि पवित्र सम्बन्धों का विघटन हो गया । सुव्यवस्थित शिक्षा-पद्धति के अभाव के कारण शिक्षित वर्ग में नैतिकता, त्याग,आदर्श आदि भावनाओं का अभाव दिखाई दिया । अतः नई पीढ़ी के सामने न कोई उच्च जीवन मूल्य है, न उच्च आदर्श ।

पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति ने हमारे परंपरागत रीति-रिवाजों, खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा, सौच-समझ यहाँ तक की बातचीत करने का ढ़ंग भी परिवर्तित कर दिया । व्यक्ति ने हर चाल-चलन में पाश्चात्य संस्कृति की स्पष्ट झलक दिखाई दी । यह भी नहीं आज भारतीय नारी प्राचीन नारी की अपेक्षा से हर दृष्टि से आज़ाद

है । अब वह पुरुष के बराबर या उससे भी आगे बढ़कर हर क्षेत्र में सराहनीय कार्य कर रही है अर्थात् वह पुरुष से किसी भी काम में पीछे नहीं है । औद्योगिक विकास, महँगाई, बढ़ती हुई आबादी और जीवन की अन्य समस्याओं का प्रभाव सांस्कृतिक त्योहारों और रीति रिवाजों पर पड़ने लगा । जिसके फल स्वरूप सांस्कृतिक और धार्मिक त्योहार कृत्रिम और नीरस लगने लगे । इसका असर मानवीय रिश्तों के विघटन पर भी पड़ा हैं ।

इस समय समाज को दूषित करनेवाली प्राचीन रूढ़ि परम्पराओं एवं मान्यताओं को दूर करने का प्रयास भी हुआ , जिसका श्रेय अंग्रेजों को जाता है । सत्य दर्शन के अभाव में जनता भटक गई । अतः जिसे जो सत्य लगा उसीको लेकर जगह-जगह पर सुधारवादी सांस्कृतिक आंदोलन शुरु हुए । सुधारकों का एक दल दयानन्द सरस्वती एवं तिलक का था, जो भारतीय संस्कृति को ज्ञान-विज्ञान से परे श्रेष्ठ मानते थे । इसलिए उसे पुनः प्रतिष्ठित करना चाहते थे । दूसरा दल केशवचन्द के ब्रह्मसमाज का था, जो पाश्चात्य संस्कृति का गुणगान करते थकते नहीं थे । तीसरे दल में ईश्वरचन्द विद्यासागर, राजा राममोहनराय एवं विवेकानंदजी शामिल थे, इन्हों ने समाज के उत्थान के लिए दोनों संस्कृतिओं के सहयोग को अनिवार्य बताया । इस सबसे परे गाँधीजी का सुधारवादी दृष्टिकोण था, जिन्होंने सत्य अहिंसा और प्रेम के द्वारा विश्व बन्धुत्व की भावना से भारतीय संस्कृति को पुनः समृद्ध बनाने की कोशिश की । दिनकरजी ने उनके सुधारवादी दृष्टिकोण को देखते हुए कहा कि- ‘‘ यह सांस्कृतिक नवोत्थान सबसे अधिक शक्तिशाली और श्रेष्ठ था । ’’ [६९]

यह दुर्भाग्य की बात है कि स्वातंत्र्योत्तर काल में जनता को सही राह दिखानेवाला कोई भी ऐसा महात्मा अवतरित नहीं हुआ । लेकिन भारत-वर्ष का अतीत तो इस दृष्टि से समृद्ध एवं सम्पन्न था । समाज आध्यात्मिकता से वंचित रह गया । असल में सांस्कृतिक मूल्य ही आध्यात्मिक मूल्यों को पुष्ट करते हैं । धार्मिक व्यवस्था से ही जीवन को गति और सही दिशा प्राप्त होती है । लेकिन इस वैज्ञानिक युग में अनास्था और धर्म के बीच कोई मेल-जोल हुआ ही नहीं ।

विज्ञान की इस दुनिया में आज हर भारतवासी अधिकाधिक धन लोलुप होता जा रहा है । इसके फल स्वरूप परम्परागत संस्कृति का स्वरूप ‘अर्थ संस्कृति ’ में परिणत होता गया । श्रेष्ठ परम्परागत आध्यात्मिक मूल्यों का पतन हो गया । संगीत, साहित्य और कला के आधार पर देश के उच्च जीवन मूल्य निर्धारित होते थे लेकिन आध्यात्मिक मूल्यों के पतन से उसका ही ह्रास हो गया । आज-कल कला और साहित्य

का ध्येय ही बदल गया है। उनका ध्येय मानव मात्र की सौन्दर्यानुभूति एवं कलात्मक अनुभूति को प्रश्रय देने के स्थान पर स्थूल शृंगारिकता एवं यौन भावनाओं को उजागर करना मात्र हो गया है। डॉ. महेश चन्द दिवाकर के मत में - '' जब युग बदल गया है, मान्यताएँ बदल गई हैं, समाज बदल गया है, तो स्वतंत्रता के पश्चात् यदि व्यक्ति और उसकी विचारधाराएँ बदल रही हैं तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है ? '' [७०]

भारतीय संस्कृति को वसुद्यैव कुटुम्बकम तथा मानवतावादी दर्शन पर अवलम्बित कहा गया है लेकिन यदि संसार की बात छोड़कर भारतीय समाज की ही बात की जाए तो उपर्युक्त कथन मात्र झूठ के सिवाय और कुछ नहीं है। यहाँ की जातीय-वर्णवादी मानसिकता जिस वसुद्यैव कुटुम्बकम और मानवतावाद की रचना में लीन थी, वह मात्र ब्राह्मणवाद था। कालिदास ने लिखा है - ''जो पुराना है वह केवल इसी कारण अच्छा नहीं माना जा सकता, और जो नया है उसका भी इसीलिए तिरस्कार करना उचित नहीं। बुद्धिमान दोनों को कसौटी पर कसकर एक को अपनाते हैं। '' [७१] नए और पुराने के इसी संघर्ष को तर्क की कसौटी पर परखना आवश्यक है।

भारतीय परिवेश में जन्म लेनेवाली नवीन विचारधारा के बारे में डॉ. चण्डीप्रसाद जोशी लिखते हैं - '' औद्योगिक सभ्यता वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा युरोपीय भौतिकवादी संस्कृति ऐसे ही क्रांतिकारी तत्त्व थे जिनका भारतीय सामन्तवादी, विश्वास मूलक दृष्टिकोण तथा धार्मिक आध्यात्मिक संस्कृति से संघर्ष हुआ। इस संघर्ष ने नवीन विचारधारा को जन्म दिया। '' [७२] जिसके कारण पाप-पुण्य, उचित-अनुचित, धर्म-अधर्म, स्वर्ग-नरक, शुभ-अशुभ के प्रति व्यक्ति की आस्था डगमगाने लगी। भौतिकवादी सभ्यता के कारण नए जीवन मूल्यों का सृजन हुआ है और इसी सृजनता के मूलमें पश्चिमी शिक्षा, नगरीकरण, औद्योगीकरण तथा व्यक्ति की दिन-प्रतिदिन बदलने वाली आवश्यकताएँ रही हैं। भारतीय संस्कृति ने नवीन मूल्यों को आवश्यकता या विवशता में स्वीकार किया है।

यद्यपि आज हम विज्ञान के युग में जी रहे हैं लेकिन फिर भी हमारी परम्पराएँ हमें इतनी छूट नहीं देती कि हम सब कुछ नया ग्रहण कर ले। मनुष्य विकास चाहता हैं लेकिन वह द्रुतगति से नहीं चल पा रहा है। उसके सामने नवीन-प्राचीन, वैज्ञानिक-अवैज्ञानिक आदि पहलू है, जिनके आधार पर वह अपना रास्ता अपनाता है। दोनों किनारों से सामंजस्य करते हुए एक नयी राह बनाने की चाहत वास्तव में तर्क, बुद्धि व विज्ञान से ही आ सकती है। सड़ी-गली रूढ़ियों को ठोकर मारकर आधुनिक

संस्कृति को अपनाने की आवश्यकता है । आधुनिक युग की भौतिकवादी परम्पराओं, स्वच्छ आध्यात्मिकता विज्ञान बौद्धिकता तथा मानवीयता के उदर से पैदा होने वाले तत्त्वों के साथ सामंजस्य करते हुए एक नयी चेतना, नयी संस्कृति के सृजन से ही इस विश्व सांस्कृतिक धरातल पर अपनी पहचान रख पाएँगे ।

अज्ञात सत्ता के प्रति जिज्ञासा का भाव और तर्काधार पर उसकी शांति का प्रयास दर्शन का मूलाधार है । इस सम्बन्ध में डॉ. एस.राधाकिष्नन का मत है कि- ''Philosphy is a wide term including logic,ethic,asthethics social philosophy and methaphysics''[७३] दर्शन विश्व के वैमनस्य में सामंजस्य स्थापित कर सत्य तक पहुँचने का प्रयास करता है, और बुद्धि इस कार्य की सिद्धि में प्रमुख साधन के रूप में कार्य करती है । दर्शन में तथ्यों का नियमित रूप में तर्कसंगत उपस्थापन का प्रयास किया जाता है । राजनीतिक,सामाजिक क्षेत्र में आए परिवर्तन दार्शनिक दृष्टिकोण को भी प्रभावित करते हैं । बीसवीं शताब्दी में विश्व पटल पर उभरा मार्क्सवादी दर्शन अपने युग के युद्धीय,सामाजिक,राजनीतिक,आर्थिक परिवर्तन का ही परिणाम था जिसने बाद में विभिन्न राष्ट्रों के आर्थिक सामाजिक ढाँचें को विशिष्ट रूप देने की दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई ।

स्वातंत्र्योत्तर काल में भौतिक विकास के कारण परम्परागत सांस्कृतिक मूल्यों का पतन हो गया । पाश्चात्य संस्कृति के अन्धानुकरण के कारण समाज में भारतीय धर्म, दर्शन, कला आदि का कोई स्थान न रह गया । सही ढंग से सोचने समझने की बुद्धि मंद पड़ने से सांस्कृतिक मूल्यों में भी अस्थिरता, अस्पष्टता और भटकाव की स्थिति उत्पन्न हो गई ।

६. साहित्यिक परिस्थितियाँ :

'सहितस्य भावः साहित्यम् ' के अनुसार साहित्य सम्पूर्ण कला,ज्ञान,विद्या एवं शास्त्रों से समन्वित होकर समाज को श्रेय और प्रेय की ओर अग्रसर करता है । साथ ही 'हितेन सहितम् साहित्यम् 'का भाव साहित्य के लोकमंगल कारी रूप की ओर संकेत करता है । इस रूप में साहित्य समाज की चेतना है, जो उसका पथ-प्रदर्शन करती है । साहित्य सम्पूर्ण युग बोध को प्रभावित भी करता है, और उससे स्वयं भी प्रभावित होता है । रीतिकालीन शृंगारिक कविताओं को पढ़-सुनकर सामान्य जन-जीवन विलासिता की ओर उन्मुख हो गया । ऐसे ही रूसों और वाल्टेयर के लेखों से जन क्रान्ति का आह्वान हो गया । मार्क्स और लेनिन के विचारों ने एक बड़े भू-भाग और

युग बोध को प्रभावित कर क्रान्ति को बढ़ावा दिया और साम्यवाद की नींव रखी। स्पष्टतः यह युग पर साहित्य का प्रभाव है जो सम्पूर्ण युग बोध में आमूल परिवर्तन की आकांक्षा से युक्त होता है।

स्वतंत्रता के पश्चात् देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों में जो हलचल हुई, परिवर्तन की जो लहरें उठी उनसे परम्परागत रूढ़ियों की जड़े हिलने लगी। युग की सारी विशेषताओं को अपने में समेटकर साहित्य की सभी धाराएँ नए रूप में उपस्थित होने लगी। परिवर्तन की प्रकिया स्वतंत्रता के पूर्व ही आरम्भ हो गई थी। उन प्रवृत्तियों का सहज विकास ही इस समय हुआ। इस सम्बन्ध में केदार मिश्र का कथन है-" स्वतंत्रता से पूर्व हिन्दी साहित्य के प्रथम काल में जिस रूपों और प्रवृत्तियों ने जन्म ले लिया था, उन्हीं का सुदृढ़ और प्रौढ़ विकास इस काल में दिखाई देता है।"[७४]

पाश्चात्य संस्कृति और पाश्चात्य साहित्य ने हिन्दी कथा साहित्य को खूब प्रभावित किया है। मार्क्स, फ्रायड, सार्त्र, कामू आदि पाश्चात्य विद्वानों की विचारधाराओं का प्रभाव स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य में स्पष्ट दिखाई देता हैं। स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य में साहित्यकारों का एक नया वर्ग उपस्थित हुआ जो बदलावों को सही अर्थों में साकार करने में सक्षम निकले।

संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अंग साहित्य भी पाश्चात्य प्रभाव से प्रभावित हुआ। डार्विन के विकासवाद ने आध्यात्मिक सत्ता पर पहला प्रहार किया। मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और फ्रायड एवं ह्युंग के मनोविश्लेषण सिद्धांत ने साहित्य जगत में उथल-पुथल मचा दी। विश्व की गतिविधियों से भारतीय बुद्धिजीवी भी तटस्थ नहीं रह सका। आधुनिक हिन्दी साहित्य में सांस्कृतिक पुनरूत्थान एवं राष्ट्रीय चेतना का प्राण फूँकने की शुरूआत भारतेन्दु और उनके सहयोगियों ने की। द्विवेदीजी ने खड़ीबोली को हिन्दी साहित्य की भाषा बनाने का भगीरथ कार्य किया। छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद एवं नयी कविता इत्यादि सभी पर पाश्चात्य प्रभाव पड़ा। युग की बदलती हुई गतिविधियों से साहित्य में बदलाव आया। साहित्यिक परिवर्तन की दृष्टि से यह सदी काफी महत्त्वपूर्ण रही। इस सदी का साहित्य सामंती बंधनों और परंपराओं से मुक्त होकर नवीन प्रतिमान की खोज में जुट गया,उसमें युगीन चेतना का स्वर प्रखर हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध के भीषण नरसंहार और अणुयुद्ध ने अस्तित्ववाद को जन्म दिया। परिणाम स्वरूप साहित्य में कुण्ठा, निराशा, संत्रास, क्षणवाद, घुटन, टूटन, अनास्था, अजनबीपन और अकेलेपन जैसी प्रवृत्तियाँ अस्तित्त्व में आयी।

वर्तमान संकट को देखते हुए समाजशास्त्री पी.ए. सरोकिन ने कहा कि- ''इन्द्रिय बोधपरक संस्कृति युद्ध और खूनी क्रांतियों के लिए सर्वाधिक उर्वरक भूमि है पश्चिम में व्याप्त यह बीमार खोखली संस्कृति यदि शीघ्र नष्ट न होकर तर्क मूलक विचारधारा संस्कृति में बदल नहीं जाती तो २० वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध भयानक युद्धों और नरमेघ अध्याय बन जायेगा । यह सर्वाधिक खूनी शताब्दी का सर्वाधिक खूनी संकट है । युद्ध, क्रांति, बिखराव, आत्महत्या, मानसिक रोग, गरीबी, अकाल इस संकट के लक्षण और परिणाम है । ''[७५]

स्पष्टतः स्वातंत्र्योत्तर वैज्ञानिक भौतिक युग के पदार्पण के साथ ही साहित्य ने भी भावपक्ष की ओर मुड़ते हुए भाव और शिल्प के स्तर पर युगानुरूप परिवर्तन लक्षित किया ।

(घ) निष्कर्ष :

स्वतंत्रता प्राप्ति और विभाजन के पश्चात देश की परिस्थितियाँ बदल गई । देश विभाजन के साथ हुए भीषण सांम्प्रदायिक दंगों के प्रभाव तथा स्वतंत्रता के बाद फैले राजनीतिक भ्रष्टाचार,व्यापक असन्तोष,मोहभंग,मूल्यच्यूति, संत्रास, कुण्ठा, निराशा तथा पाश्चात्य अस्तित्ववादी दर्शन ने अन्य साहित्यकारों के समानान्तर हिन्दी कहानीकारों को भी व्यक्ति महत्त्व पर सोचने के लिए विवश कर दिया । इस सम्बन्ध में प्रसन्नकुमार ओझा का कथन युक्ति संगत है - '' लेकिन समय की बदलती चेतना युगीन परिवेश के नए आयामों एवं परिवर्तित परिस्थितियों के आग्रह के सन्दर्भ में पूर्व वर्ती पीढ़ी को अर्जित सत्य जब प्राणवान और सही सिद्ध नहीं होता, तब अनु वर्ती पीढ़ी के समक्ष एक रचना संकट- 'सृजन की क्राइसिस' उत्पन्न हो जाती है । द्विधा ग्रस्त मनः स्थिति के इसी धरातल से उसकी सृजन चेतना संक्रमिक होकर अपने लिए नई दृष्टि खोजती है ।''[७६]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के बदलते परिवेश एवं परिस्थितियों के घेरे में पड़कर भारत के सामाजिक एवं पारिवारिक सम्बन्धों तथा मूल्यों मे काफी बदलाव आ गया । इस सम्बन्ध में कृष्णा अग्निहोत्री का कथन है - '' स्वातंत्र्योत्तर काल में नए परिवर्तन का सर्वाधिक प्रभाव मनुष्य के परस्पर सम्बन्धों पर पड़ा । उसके सभी परम्परागत रिश्तें टूट गये तथा समाज में रहते हुए भी उसे एक अकेलेपन की अनुभूति होने लगी । ''[७७] परम्परागत मूल्यों का विघटन, जीवन संस्कारों पालित नैतिक मान्यताओं में आए

परिवर्तन आदि ने परम्परागत सम्बन्धों के मिथक को तोड़ दिया । संयुक्त परिवार में नई पीढ़ी, पुरानी पीढ़ी की सत्ता को चेतावनी दे रही है तथा पुरानी पीढ़ी नई पीढ़ी की प्रगति के पथ पर बाधा बन रही है । अतः दोनों पीढ़ियों के बीच संघर्ष होता है । पीढ़ियों का यह अन्तराल मानवीय सम्बन्धों को नया आयाम देता है ।

समाज के बारे में डॉ.सुरेश धींगडा के मत अनुसार -'' समाज में बिखराव आने के अतिरिक्त व्यक्ति-व्यक्ति, व्यक्ति-परिवार, व्यक्ति-समाज के सम्बन्धों में अन्तर आया । इस विशृंखलता के कारण मानवीय संवेदनाओं की मृत्यु हुई तथा विषमता का महान प्रभाव स्त्री-पुरूष के पारस्परिक सम्बन्धों पर पड़ा । ''[७८]

स्वतंत्रता के बाद देश में हुए परिवर्तन की समस्त विसंगतियों का शिकार मध्यम वर्ग को होना पड़ा । अतः स्वतंत्रता के पश्चात् मध्यम वर्गीय जीवन का स्वरूप बिलकुल बदल गया । वर्गीय जीवन की कठिनाईयों के पक्ष में कमलेश्वर कहते है कि - ''इन सब का मूल्य मध्य वर्ग तथा निम्न वर्ग को चुकाना पड़ रहा था । ''[७९] देश की बदलती सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक स्थितियों के फलस्वरूप संयुक्त परिवार का विघटन तेज हो गया । विघटन-टूटन की यह प्रक्रिया केवल संयुक्त परिवारों तक सीमित नहीं रही, बल्कि उसने पति-पत्नी, पिता-पुत्र, माँ-बेटी, भाई-बहन और अन्य पारिवारिक सम्बन्धों को भी अपनी गिरफ्त में ले लिया ।

स्वतंत्रता से जुड़े देश विभाजन के दुष्परिणामों से एक ओर जनता बेसहारा और आतंकित थी । दूसरी ओर भारतीय राजनीति एवं प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा बेईमानी से 'मामूली आदमी' की यातना बढ़ने लगी । दिन-ब-दिन बढ़ते दल-बदल और राजनेताओं की कथनी एवं करनी के कारण समूची स्थिति इतनी निराशाजनक थी कि जनसाधारण में लोकतन्त्र के प्रति आस्था ही कम होने लगी । फलतः जनतान्त्रिक मूल्यों का धीरे-धीरे अवमूल्यन होता गया । इसका प्रभाव सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में दिखाई दिया । समाज की इकाई परिवार में विभक्त हो गई यह इसका पहला दबाव है । स्वतन्त्रता के बाद हुए औद्योगीकरण, यान्त्रीकरण, नगरीकरण आदि आर्थिक दबावों ने भारतीय संयुक्त पारिवारिक व्यवस्था को दुर्बल बना दिया । अतः संयुक्त परिवार तेजी से विघटित होकर विभक्त परिवार में बदल गया । इस बदलाव को पाश्चात्त्य सभ्यता एवं संस्कार ने बढ़ावा दिया । भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था के कारण देश की आर्थिक स्थिति भी खराब हो गई । नेताओं की स्वार्थता, योजनाओं के कागजों में ही बन्द होने की नीति ,पूँजीवाद, शोषण आदि के कारण धनिक और अधिक धनिक एवं गरीब और अधिक गरीब होता गया । समाज एवं परिवार में व्याप्त अधिकांश समस्याओं की जड़े

आर्थिक असमानता और तज्जन्य आर्थिक अभाव ही है । राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र में हुए उथल-पुथल के परिणाम से नैतिक एवं धार्मिक मूल्यों की च्यूति हो गई । आम जनता जीने के लिए तथा अस्तित्त्व की रक्षा के लिए कोई भी रास्ता अपनाने से हिचकती नहीं । इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों से समाज में आमूल परिवर्तन हुआ ।

सन् १९५० ई.के बाद हिन्दी उपन्यासों में बदलती हुई सामाजिक परिस्थिति का प्रभावी चित्रण कमलेश्वर के उपन्यासों में देखने को मिलता हैं । स्वतन्त्रता के बाद हर क्षेत्र में हुई प्रगति के कारण जीवन मूल्य विघटित हो गया । इसका असर पारिवारिक रिश्तों में खूब झलकता है । आज कल घर के सदस्यों के बीच पहले जैसा पवित्र,उष्मापूर्ण एवं गाढ़ स्नेह सम्बन्ध तथा विश्वास देखने को नहीं मिलता । कमलेश्वर ने सम्बन्धों में आए इस बदलाव को 'समुद्र में खोया हुआ आदमी ','तीसरा आदमी','काली आँधी ' आदि उपन्यासों में वर्णित किया हैं ।

स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यासकारों ने मानवीय रिश्तों और सम्बन्धों में आए बदलाव को बेहद ईमानदारी के साथ अपने उपन्यासों में चित्रित किया हैं । स्वातत्र्योत्तर उपन्यासों में मानवीय सम्बन्धों में सबसे अधिक परिवर्तन दाम्पत्य जीवन में देखा जाता है । इसकी सफल अभिव्यक्ति कमलेश्वर के 'तीसरा आदमी','आगामी अतीत','काली आँधी','लौटे हुए मुसाफिर','समुद्र में खोया हुआ आदमी' आदि उपन्यासों में देखी जा सकती है । अनादिकाल से पिता-पुत्र के आपसी सम्बन्ध अत्यन्त पावन एवं माननीय रहा है,लेकिन आधुनिकता के प्रभाव प्रसार से यह सम्बन्ध भी खोखला होने लगा । इसका चित्रण कमलेश्वर के 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' उपन्यास में हुआ है । समकालीन परिस्थितियों में आए बदलाव के कारण सम्बन्धों में विशेषकर माँ-बेटी सम्बन्ध में भी दरारें पड़ने लगी । आज कल घर में माँ का दर्जा घटकर नौकरानी में परिणत हो गया है । इसकी सफल अभिव्यक्ति 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' उपन्यास में कमलेश्वर ने अत्यन्त मार्मिक ढंग से की है ।

कमलेश्वर ने स्वातन्त्र्योत्तर बाद की नारी की स्थिति का वर्णन भी अपने उपन्यासों में किया है । कमलेश्वर ने नारी की मानसिकता मे परिवर्तन,नारी जीवन की विसंगति,नारी के बदलते रूप आदि को उपन्यासों में वर्णित किया है । 'तीसरा आदमी' की चित्रा,'काली आँधी'की मालती,'सुबह दोपहर शाम' की सन्तो,'लौटे हुए मुसाफिर की नसीबन,'आगामी अतीत' की चाँदनी,'डाक बंगला' की इरा,'अम्मा' की शारदा आदि चरित्रों में भिन्न-भिन्न धरातल पर मानसिकता में हेर-फेर द्रष्टव्य है ।

स्वतन्त्रता के बाद बदलती हुए राजनीतिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण कमलेश्वर के उपन्यासों मे पाया जाता है। कमलेश्वर ने 'लौटे हुए मुसाफिर' उपन्यास में देश-विभाजन पूर्व और देश-विभाजन के बाद का चित्रण किया है। कमलेश्वर सच्चे वाम पंथी थे। इसका खूब प्रभाव उनके उपन्यासों में हम देख सकते है। वे क्रान्ति या साम्य वादी आन्दोलन से समाजवाद की स्थापना करना चाहते थे। उनके 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ', 'डाक बंगला', 'सुबह दोपहर शाम', 'अम्मा' आदि उपन्यासों में इस विचारधारा की सफल अभिव्यक्ति हुई है।

स्वतन्त्रता के बाद गाँधीवादी आदर्शों को भूला दिया गया। नेताओं की कथनी और करनी में भिन्नता देखने को मिलती थी। राजनीतिक मूल्यों का तेजी से विघटन होने लगा था। राजनीति में भ्रष्टाचार, बेईमानी, गाँधी आदर्शों का पतन आदि ने अव्यवस्था फैला दी थी। गाँधीवादी आदर्शों के पतन की अभिव्यक्ति कमलेश्वर के 'रेगिस्तान' उपन्यास में हुई है। इस प्रकार लेखक ने स्वतन्त्रता पूर्व और स्वातन्त्र्योत्तर राजनीतिक परिस्थितियों को अपने उपन्यासों में चित्रित किया है।

स्वातन्त्र्योत्तर भारत में यदि कोई परिस्थिति महत्त्वपूर्ण रही है तो वो वह आर्थिक परिस्थिति है। इस काल के अधिकतर उपन्यासों का परिवेश मध्य वर्ग की आर्थिक स्थिति से जुड़ा हुआ है। कमलेश्वर ने अपनी रचनाओं में बदलती आर्थिक स्थितियों का जो चित्र प्रस्तुत किया है, उसीके माध्यम से वर्तमान अर्थतन्त्र चुनाव और लोकतन्त्रों को बड़ी चतुराई से समझा जा सकता है। कमलेश्वर ने स्वातन्त्र्योत्तर काल की बदलती हुई आर्थिक परिस्थितियों का उपन्यास के चरित्र के माध्यम से सहज और स्वाभाविक निरूपण किया है। कमलेश्वर ने 'डाक बंगला', 'तीसरा आदमी', 'समुद्र में खोया हुआ आदमी', 'आगामी अतीत' इन रचनाओं मे मध्य वर्गीय समाज की परिवर्तित आर्थिक स्थितियों और जीवनमूल्यों का प्रभावशाली चित्रण किया हैं। सामान्यतः मध्य वर्ग की सबसे बड़ी समस्या अर्थ ही रहती है।

स्वतन्त्रता के बाद के उपन्यासों में धार्मिक परिस्थितियों का चित्रण अधिक देखने को मिलता है। कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों में धार्मिक अंधश्रद्धा तथा कर्म काण्ड का भांड़ा फोड़ दिया है। समाज की समस्याओं में सती प्रथा, वेश्या व्यवसाय और स्त्रियों की खरीद-बिक्री को धर्म के साथ जोड़ा गया है। कमलेश्वर ने 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ', 'अम्मा' में इसकी सफल अभिव्यक्ति की है। 'सुबह दोपहर शाम' उपन्यास के द्वारा साम्प्रदायिकता का चित्रण भी प्रस्तुत किया है। स्वतन्त्रता के

इतने वर्षों के पश्चात भी आज गाँव निरक्षरता के कारण पिछड़े दिखाई देते हैं । गाँव के लोगों की धर्मान्धता का चित्रण ‘एक सड़क सत्तावन गलियाँ ’ उपन्यास में पाया जाता है । इस प्रकार स्वतन्त्रता के बाद भी देश में फैली अंधश्रद्धा, जातिप्रथा, नास्तिकता आदि के कारण धार्मिक क्षेत्र में उथल-पुथल दिखाई देती है ।

कमलेश्वर ने स्वतन्त्रता के बाद पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से भारतीय संस्कृति के ह्रास का चित्रण उपन्यासों मे किया हैं । पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कारों के अन्धानुकरण के कारण हमारे नैतिक मूल्यों का पतन हो गया है । इसका खूला प्रभाव व्यक्ति और उनके जीवन में स्पष्ट दिखाई पड़ता है । कमलेश्वर के ‘आगामी अतीत’,‘डाक बंगला’,‘एक सड़क सत्तावन गलियाँ ’,‘अम्मा’ आदि उपन्यासों में इस तथ्य पर प्रकाश डाला गया है ।

कमलेश्वर ने मूल्यों के लूप्त होते इस युग में ‘लौटे हुए मुसाफिर’ उपन्यास की नसीबन के द्वारा मानवीय मूल्यों का वर्णन किया है । नसीबन दया, ममता, स्नेह, सहानुभूति, करूणा आदि मूल्यों को बनाये रखना चाहती है । यहाँ लेखक ने हिन्दू-मुसलमान दोनों के बीच की वैर वैमनस्य की भावनाओं को दूर करने का प्रयत्न किया है ।

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

क्रम	संदर्भ ग्रन्थ	पृष्ठ नं
१.	गद्यपथ- सुमित्रानंदन पंत	पृ-२०५
२	साहित्य और आलोचना-डॉ. नामवरसिंह	
३.	साहित्यालोचन- श्यामसुन्दरदास	पृ-४४
४.	बृहद हिन्दी कोश-सं.कालिका प्रसाद	
५.	हिन्दी मानक कोश-रामचंन्द्र वर्मा-खण्ड-४	पृ-१४४
६.	The Oxford dictionary Vol XII	
७.	हिन्दी पर्यायवाची कोश- डॉ. भोलानाथ तिवारी	पृ-६३९
८.	भगवत् गो मंडल- महाराजा भगवतसिंहजी	पृ-८५०७
९.	बृहद हिन्दी शब्दकोश- राजवल्लभ सहाय और मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव	पृ-११९९
१०.	लोकभारती बृहत् प्रामाणिक हिन्दी कोश- आचार्य रामचन्द्र वर्मा	पृ-९१४
११.	हिन्दी रामकाव्य का स्वरूप और विकास बदलते युगबोध के परिप्रेक्ष्य में - प्रेमचन्द महेश्वरी	पृ-४७
१२.	हिन्दी उपन्यास युग चेतना एवं पाठकीय संवेदना डॉ. मुकुन्द द्विवेदी	पृ-३५
१३.	समकालीन कहानी युगबोध का संदर्भ- डॉ.पुष्पपाल सिंह	पृ-१०
१४.	हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन- ब्रजभुषणसिंह आदर्श	पृ-५७
१५.	हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	पृ-०१
१६.	साहित्य का उदेश्य-मुंशी प्रेमचंद	पृ-३१
१७.	हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद- डॉ.त्रिभुवनसिंह	पृ-०१
१८.	उपन्यास और लोकजीवन-रैल्फ-फोक्स	पृ-०४
१९.	आधुनिकता और समकालीन रचना संदर्भ डॉ.नरेन्द्र मोहन	पृ-७६
२०.	हिन्दी शब्द सागर भाग-८ संपा-श्यामसुंदरदास	पृ-४५१
२१.	सिक्का बदल गया-संपा. नरेन्द्रमोहन	पृ-११
२२.	नयी कहानी- मीरा सीकरी	पृ-२३-२४

क्रम	संदर्भ ग्रन्थ	पृष्ठ नं
२३.	लहर-डॉ. देवीशंकर अवस्थी-जनवरी-१९६६	पृ-२४
२४.	दैनिक ट्रिब्युन-संपादकीय-१० मार्च १९९१	पृ-०४
२५.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी कथ्य और शिल्प. डॉ. शिवशंकर पाण्डेय	पृ-१४
२६.	कल्पना-नवलेखन विशेषांक-डॉ. बच्चनसिंह	पृ-०३
२७.	भारतेन्दु साहित्य- रामगोपालसिंह चौहान	पृ-२७
२८.	आलोचना- अप्रैल-जून-१९६७	पृ-०६
२९.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी- कृष्णा अग्निहोत्री	पृ-२१
३०.	शैक्षिक समाजशास्त्र- डॉ. सीताराम जायसवाल	पृ-२४१
३१.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि -डॉ. स्वर्णलता	पृ-४३
३२.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास ःमूल्य संक्रमण डॉ. हेमेन्द्रकुमार पानेरी	पृ-१५६
३३.	हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ- डॉ. शशिभूषण सिंहल	पृ-२९
३४.	द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास- डॉ.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	पृ-७४
३५.	द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास- डॉ.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	पृ-५१
३६.	बोध और व्याख्या- प्रो. कामेश्वर शर्मा	पृ-२७९
३७.	आधुनिक सामाजिक आंदोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य- डॉ.कृष्णबिहारी मिश्र	पृ-३१८
३८.	मुरदो का गाँव- धर्मवीर भारती ग्रंथावली-२	पृ-१८
३९.	नागार्जुन का काव्य और युग ः अंतः संबंधों का अनुशीलन - पंडित जगन्नाथ	पृ-४६
४०.	दा जर्मन आइडियोलोजी- मार्क्स ऐंगल्स	पृ-१३
४१.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास- (मूल्य संक्रमण) डॉ. हेमेन्द्रकुमार पानेरी	पृ.-२०४
४२.	भारत सम्बन्धी लेख-मार्क्स ऐंगल्स	पृ-१३
४३.	सिलेक्टेड वर्क्स- मार्क्स ऐंगल्स	पृ-३२०
४४.	आज का भारत-रजनी पामदत्त	पृ-२५८
४५.	आज का भारत-रजनी पामदत्त	पृ-२८०
४६.	आधुनिक परिवेश और नवलेखन -डॉ. शिवप्रसाद सिंह	पृ-२८

क्रम	संदर्भ ग्रन्थ	पृष्ठ नं
४७.	योजना-२ जनवरी १९७०	पृ-०९
४८.	आधुनिक परिवेश और नवलेखन -डॉ. शिवप्रसाद सिंह	पृ-०७
४९.	भारतीय मध्य वर्ग- डॉ. श्यामसुंदर घोष	पृ-६४.
५०.	हिन्दी कहानियों में द्वन्द्व- डॉ. सुमन मेहरोत्रा	पृ-५०
५१.	हिन्दी कहानी का विकास- डॉ. देवेश ठाकुर	पृ-९५/९६
५२.	अस्तित्त्ववाद और नयी कविता -डॉ.लालचन्द गुप्त	पृ-११२
५३.	मनुस्मृति- सं-राजवीर शास्त्री	पृ-६/९२
५४.	आधुनिक मूल्य और प्रयोग- डॉ. बैजनाथ सिंहल	पृ-५१.
५५.	आधुनिक हिन्दी कहानी परिपार्श्व- डॉ. लक्ष्मीनारायण वार्ष्णेय	पृ-१९.
५६.	Enclopaedia of social science vol IV-Dr S.Radha Krishanan	पृ-६२१
५७.	साहित्य और संस्कृति- वासुदेवशरण अग्रवाल	पृ-०३.
५८.	भारतीय संस्कृति- डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र (१९४२)	पृ-०५
५९.	अद्यतन-सच्चिदानंद वात्सायन 'अज्ञेय'	पृ-१३
६०.	निराला काव्य का सांस्कृतिक पक्ष-डॉ.हरिशचन्द शर्मा	पृ-४१.
६१.	नयी समीक्षा : नये संदर्भ- डॉ. नगेन्द्र	पृ-७९
६२.	मेरे निबन्ध- डॉ. गुलाबराय	पृ-२००
६३.	भारतीय समाज और संस्कृति : रविन्द्र मुकर्जी -स्वामी विवेकानंद	पृ-११-१२
६४.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास :मूल्य संक्रमण डॉ.हेमेन्द्र कुमार पानेरी	पृ-३२०
६५.	हिन्दी कहानी का विकास- डॉ. देवेश ठाकुर	पृ-९५-९६
६६.	वीर नर्मद- विश्वनाथ एम भट्ट	पृ-०६
६७.	भारतीय समाज और संस्कृति-रविन्द्रनाथ मुखर्जी	पृ-४९२
६८.	संस्कृति के चार अध्याय- रामधारीसिंह 'दिनकर'	पृ-१६
६९.	संस्कृति के चार अध्याय- रामधारीसिंह 'दिनकर'	पृ-४४६
७०.	हिन्दी नयी कहानी का समाजशास्त्रीय अध्ययन डॉ. महेशचन्द दिवाकर	पृ-५६
७१.	साहित्य और संस्कृति- वासुदेवशरण अग्रवाल	पृ-०६
७२.	हिन्दी उपन्यास : समाजशास्त्रीय विवेचन डॉ. चण्डीप्रसाद जोशी	पृ-२०

कम	संदर्भ ग्रन्थ	पृष्ठ नं
७३.	The present Crises of faith- Dr. S.Radha Krishnan	पृ-२९
७४.	अज्ञेय साहित्य : प्रयोग और मूल्यांकन-केदार मिश्र	पृ-३५
७५.	आधुनिक परिवेश और नवलेखन डॉ. शिवप्रसादसिंह	पृ-१३
७६.	कहानीः नयी कहानी पीढ़ियों और दृष्टियों का अन्तर दृष्टव्य संचेतना (ग्रीष्मांक) जून १९६८	पृ-२५
७७.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी- कृष्णा अग्निहोत्री	पृ-१८
७८.	हिन्दी कहानी दो शतक - डॉ. सुरेश धींगडा	पृ-३५
७९.	नई कहानी की भूमिका - कमलेश्वर	पृ-१५-१६

तृतीय अध्याय

सातवें दशक के उपन्यासों में समसामयिक चेतना

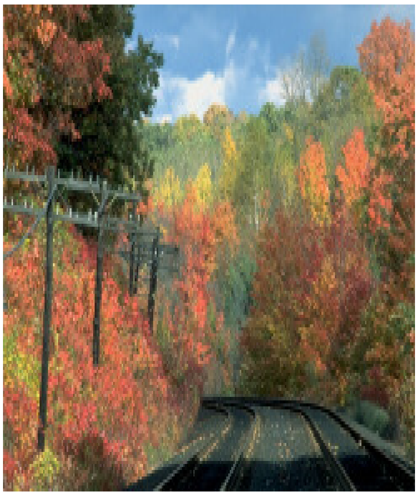

अध्याय-३
सातवें दशक के उपन्यासों में समसामयिक चेतना

क्रमांक	विगत	पृष्ठ संख्या
(क)	**प्रस्तावना ।**	१२०
(ख)	**हिन्दी उपन्यासों का क्रमिक विकास :**	१२३
	(अ) स्वतन्त्रता पूर्व :	
	१. भारतेन्दु युगीन उपन्यास (प्रथम विकास युग)	१२४
	२. द्विवेदी युगीन उपन्यास (द्वितीय विकास युग)	१३४
	३. प्रेमचन्द युगीन उपन्यास (तृतीय विकास युग)	१४१
	४. प्रेमचन्दोत्तर युगीन उपन्यास (चतुर्थ विकास युग)	१५१
	(आ) स्वातन्त्र्योत्तर साहित्य :	
	नवचेतन तथा जनचेतना काल (पंचम विकास युग)	१६७
(ग)	**सातवें दशक के उपन्यास एवं उपन्यासकार ।**	१७७

क्रमांक	विगत	पृष्ठ संख्या
(घ)	**सातवें दशक में कमलेश्वर और उनका स्थान ।**	१९०
(च)	**सातवें दशक के उपन्यास में समसामयिक चेतना :**	
	(i) सामाजिक चेतना :	
	१. प्रस्तावना ।	१९२
	२. नारी समस्या ।	१९३
	३. पारिवारिक समस्या ।	१९४
	४. विवाह समस्या :	१९५
	अ- परम्परागत विवाह ।	
	ब- प्रेम विवाह ।	
	५. तलाक समस्या ।	१९६
	६. विधवा विवाह समस्या ।	१९७
	७. दहेज प्रथा ।	१९७
	८. बहू-विवाह समस्या ।	१९७
	९. अँचल विशेष की वैवाहिक समस्याएँ ।	१९८
	१०. प्रेम और यौन समस्या ।	१९८
	११. स्त्री-पुरूष सम्बन्ध समस्या ।	१९९
	१२. उपसंहार ।	२००
	(ii) राजनीतिक चेतना :	
	१. प्रस्तावना ।	२००
	२. सामन्तवाद की समस्या ।	२०२
	३. साम्प्रदायिक समस्या ।	२०२
	४. उपसंहार ।	२०३

क्रमांक	विगत	पृष्ठ संख्या
(iii)	आर्थिक चेतना :	
	१. प्रस्तावना ।	२०३
	२. निरक्षरता ।	२०३
	३. आर्थिक असमानता ।	२०४
	४. उपसंहार ।	२०६
(iv)	धार्मिक चेतना ।	२०६
(v)	सांस्कृतिक चेतना ।	२०८
(vi)	साहित्यिक चेतना ।	२१०
(छ)	**निष्कर्ष ।**	२१४
(ज)	**संदर्भ ग्रन्थ सूची ।**	२१६

(क) प्रस्तावना

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में बहुमुखी परिवर्तन हुए । राष्ट्र को विकास के पथ पर ले जानेवाली अनेक योजनाएँ बनी और बहुत-सी कार्यान्वित भी हुई । देश के नव निर्माण में योगदान देने के साथ ही लोग अपने अधिकारों के प्रति और जागरूक हुए । स्वाधीनता के कारण एक तरफ समाज में स्वाभिमान की भावना जागृत हुई तो दूसरी तरफ व्यक्तिगत आशाओं आकांक्षाओं का विस्तार हुआ । स्वतन्त्रता प्राप्ति के महाउद्देश्य में सफल होने के पश्चात् समाज में क्रमशः अनैतिकता और अवसरवादिता की स्थिति आने लगी साथ ही देशहित की अपेक्षा वैयक्तिक हित की भावना पनपने लगी । मानव-मूल्यों में विघटन की प्रक्रिया आरम्भ हुई ,जो उत्तरोत्तर बढती गयी । जनसंख्या की अधिकता एवं शिक्षा के अभाव से स्वस्थ समाज की कल्पना को आघात पहुँचा था । भ्रष्टाचार, स्वार्थान्धता,सत्तालोलुपता और मूल्यहीनता की भावना ने समाज में अपना स्थान बना लिया था । परम्परागत श्रृण एवं जर्जर मान्यताओं का वर्चस्व टूटने लगा, और जनसमुदाय में सामाजिक और राजनीतिक चेतना उत्पन्न हुई । प्रतिगामी और प्रगतिशील शक्तियों में द्वन्द्व के फलस्वरूप जहाँ मानसिक असंतोष में बढोत्तरी हुई, वहाँ नवीन स्थापनाओं के प्रति आकर्षण का पादुर्भाव हुआ । आध्यात्मिक वृत्तियों के प्रति उदासीन होते हुए समाज में भौतिकता एवं विलासिता का महत्त्व बढ़ा । पाश्चात्य देशों की समीपता ने भारतीयों में अति आधुनिकता के भावों का बीजारोपण किया । वैज्ञानिक और औद्योगिक विकास की उत्कट अभिलाषा के अन्तर्गत सूक्ष्म गति से मनुष्य के मन मस्तिष्क का यान्त्रिकीकरण होने लगा । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त कठिन संघर्ष के कारण अकेलेपन का अहसास उजागर हुआ । अर्थ की महत्ता ने मानव के नैसर्गिक गुणों को विकृत किया । आन्तरिक खोखलेपन एवं बाह्य आड़म्बर की ओर अग्रसर लोग प्रायः सुख शान्ति की अनुभूतियों से दूर संत्रस्त और संतप्त रहने लगे । स्वचिन्तन एवं स्वविकास की प्रवृतियों से सामूहिकता की उदात्त भावना को चोट पहुँची थी । संयुक्त परिवार टूटने लगे, त्याग की भावना घटने लगी और नयी-पुरानी पीढ़ियों के वैचारिक मतभेद उभरकर सामने आये । सहनशीलता, सहृदयता, उदारता और परोपकारिता का क्षय होने लगा था । ऐसे ही वातावरण में साँस लेते समाज से जीने का हून्नर सीखते स्वातंत्र्योत्तर बच्चें और किशोर साठोत्तर भारत की युवा पीढ़ी में तबदील हो गये ।

सन् साठ के बाद भारतीय समाज प्रान्तीयता,क्षेत्रीयता और जातीयता जैसी संकुचित भावनाओं से ग्रस्त रहा । जातीय कट्टरता का अस्तित्त्व और प्रखर हुआ । जिसे उभारने में वॉट की राजनीति करनेवाले क्षुद्र राजनीतिज्ञों की अहम् भूमिका

रही है । इस सन्दर्भ में डॉ.दंगल झाल्टे का कथन है कि-''आज के राजनीतिक गाँधी-नेहरू का नाम रट-रटकर जातिवाद, भाषावाद, क्षेत्रवाद एवं पारस्परिक कलह का जहर फैलाकर महात्मा के 'राम-राज्य' के स्वप्नों को सरे आम नंगा कर रहे हैं । ''[१] हिन्दू मुसलमानों के अंदर वैमनस्य का भाव तो देश-विभाजन से ही उत्पन्न हो गया था, जो क्रमशः बढता गया । अन्य जातियों में भी आपसी सोहार्द उस रूप में दृष्टिगोचर नहीं होता, जिसे रेखांकित किया जा सके । खासतौर से सवर्णों एवं छोटी जातियों (दलित वर्ग) के मध्य व्याप्त रंज का घृणित रूप कई बार देखने को मिला ।

डॉ.झाल्टे के अनुसार-'' भारत वर्ष के सभी हरिजन तथा सवर्ण मानो अलग-अलग दो खेमों में बँट गये हैं । जीवन के हर क्षेत्र में हरिजनों को रियायतें तथा नौकरियों में आरक्षण का सवाल महज कानूनी नहीं रहा बल्कि उसने लाखों-करोड़ों शिक्षित बेरोजगार गरीब सवर्ण युवकों और उन पर आश्रित माता-पिताओं को झकझोर डाला ।''[२] देश में उत्पन्न विभिन्न समस्याएँ महँगाई, बेकारी,बेरोजगारी, अशिक्षा, भूखमरी और सबको रोजी-रोटी उपलब्ध कराने की प्रतिबद्धता को पूरा न कर पाने की स्थिति में राजनेताओं ने जनता का ध्यान जातीयता एवं धार्मिकता की ओर आकृष्ट किया । फलस्वरूप आये दिन दंगा-फसाद होना आम बात हो गई । अज्ञान, अशिक्षित जनता धर्म के उसी विकृत रूप को ही 'वास्तविक धर्म ' समझने लगी । विश्व के किसी-न-किसी कोने में धर्म के नाम पर नरसंहार होना आम बात है । भारतीय समाज ने भी अनेको बार धर्मान्धता की मर्मान्तक पीड़ा सही है । प्रगतिशीलता के तमाम दावे धर्म की कुत्सित अग्नि में जलती इन्सानी लाशों के समक्ष खोखले सिद्ध हो जाते हैं ।

साहित्य समाज का दर्पण होता है । समाज की वस्तुस्थिति का प्रतिबिम्ब साहित्य में पड़ना स्वाभाविक है । अतः साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में तत्कालीन समाज की जीवन शैली को परिलक्षित किया गया है । उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में साठोत्तर समाज में व्याप्त विषमता,विसंगति,मूल्यहीनता, अवसरवादिता, जातीयकट्टरता,धार्मिक संकीर्णता,असहिष्णुता तथा अराजकता को किसी-न-किसी रूप में चित्रित किया है । भारतीय सामाजिक,आर्थिक,धार्मिक तथा राजनैतिक जीवन की कड़वी सच्चाइयाँ उपन्यासों की विषय-वस्तु बनी । परम्परागत नैतिक मूल्य टूटने के फलस्वरूप समाज में विद्यमान अनैतिकता, उच्छृंखलता,अनास्था,त्रासदीपूर्ण मध्यमवर्गीय जीवन, महँगाई, बेरोजगारी, यौन चित्रण, एवं यौन जनित कुण्ठाएँ कई कथाकारों के प्रिय विषय रहे । साठोत्तर भारत में युवावर्ग की आशाओं, आकांक्षाओं, उनमें निहित सम्भावनाओं एवं रचनात्मक शक्ति,भ्रष्ट व्यवस्था से टकराव की उनकी मानसिकता, उनमें व्याप्त बेरोजगारी, कुण्ठा, उनका शोषण तथा राजनीतिक उपयोग

और उनके आन्दोलनों की दिशा को कई उपन्यासकारों ने अभिव्यक्त करने का सार्थक प्रयास किया है ।

हिन्दी उपन्यास साहित्य के इतिहास का पर्यवेक्षण करने पर यह ज्ञात होता है कि गद्य साहित्य की इस विधा ने बहुत कम समय में आशातीत प्रगती की है । हिन्दी उपन्यास का आरम्भ ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ था । आज जिस रूप में उपन्यास कथा-साहित्य का रूप-विधान लक्षित होता है ,उसका विकास सर्व प्रथम यूरोप में माना जाता है । वस्तुतः कथा साहित्य की प्राचीनतम परम्पराएँ हमारे देश में मिलती हैं और यह कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय कथा-साहित्य अत्यन्त समृद्ध है । वैदिक कथा साहित्य, संस्कृत, पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं का कथा साहित्य तथा उपनिषद् ,पुराण, महाभारत जातक आदि का कथा साहित्य इस समृद्धि का परिचायक है । अनेक संस्कृत ग्रथों 'पन्चतन्त्र', 'हितोपदेश', 'बैताल पंच विंशति', 'वासवदत्ता', 'कादम्बरी' तथा 'दशकुमार चरित' में औपन्यासिकता का विकास निहित हैं । कुछ विद्वानों ने 'कादम्बरी' को भारत का पहला उपन्यास माना है, किन्तु स्वाभाविक चरित्रचित्रण,यथार्थवादी दृष्टिकोण की दृष्टि से ऐसा मानना उचित प्रतीत नहीं होता । मानवीय चरित्रचित्रण, यथार्थवादी दृष्टिकोण एवं शैली की स्वाभाविकता की दृष्टि से 'दशकुमार चरित' को हम भारत का प्रथम उपन्यास कह सकते हैं । संस्कृत के कथा-साहित्य का अनुवाद एशिया और युरोप की विभिन्न भाषाओं में किया गया और इसी तथ्य पर विद्वानों ने यूरोप के रोमांटिक कथा-साहित्य का उद्गम-स्रोत भारतीय कथा साहित्यको माना । परवर्ती युगों में कथा-साहित्य का जो विकास हुआ उस पर भी इनका पर्याप्त प्रभाव पड़ा हैं ।

आधुनिक उपन्यास का उद्भव यूरोप में रोमांटिक कथा-साहित्य से माना जाता है । यूरोप में रोमांटिक उपन्यासों का प्रचार सर्वप्रथम इटली से माना जाता है, आगे चलकर फ्रांस में रोमानी और यर्थाथवादी कथा साहित्य का पर्याप्त विकास हुआ । १७ वीं-१८वीं सदी में इंग्लैण्ड में सर फिलिप सिडनी, जॉन बुनियाल, डेनियल डैफो, आदि ने अनेक महत्त्वपूर्ण उपन्यासों की रचना की । १८ वीं शताब्दी के अन्त तक यूरोप में उपन्यास साहित्य पर्याप्त विकसित हो चुका था, किन्तु हिन्दी में उपन्यास साहित्य का आविर्भाव १९ वीं सदी के अन्तिम चरण में हुआ । जिन भाषा-भाषियों का अंग्रेजी से अधिक सम्पर्क था, उनमें उपन्यासों का प्रचार पहले हुआ । उपन्यासों की रचना हिन्दी के पूर्व बंगला में होने का यही कारण है ।

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में आधुनिककाल नवजागरण का युग है । यूरोपीय

भाषाओं के साहित्य तथा अन्य भारतीय भाषाओं की साहित्यिक उपलब्धियों से अवगत होकर हिन्दी पाठकों में व्यापक स्तरीय चेतना का आविर्भाव हुआ । भारतीय स्वतन्त्रता के लिए किये गये आन्दोलनों तथा सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रों में होनेवाले अनेक आन्दोलनों से हिन्दी पाठकों की सुषुप्त चेतना जागृत हुई । भारतीय सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से पूर्ववर्ती कथा साहित्य में कथा वस्तु का तत्त्व विद्यमान था, परन्तु बाद में अन्य भाषाओं के कथा साहित्य के प्रभाव से हिन्दी में चरित्र-चित्रण आदि तत्त्वों को भी महत्त्व दिया जाने लगा । परिणामस्वरूप हिन्दी उपन्यास साहित्य पर परम्परागत रूप से चले आने वाले प्रभाव के साथ ही समकालीन देशी-विदेशी वैचारिक आन्दोलनों का भी बहुत प्रभाव पड़ा ।

इस प्रकार सातवें दशक के उपन्यासों की समसामायिकता का परिचय प्राप्त करने के लिए प्रथम उपन्यासों का क्रमिक विकास देखना आवश्यक हैं ।

(ख) हिन्दी उपन्यासों का क्रमिक विकास

हिन्दी साहित्य में उपन्यास का आरम्भ गद्य के विकास के साथ जुड़ा हुआ है । १९ वीं शताब्दी के साथ ही उपन्यास का प्रारम्भ माना जा सकता है । यद्यपि उपन्यास विधा की पृष्ठभूमि में संस्कृत कथा साहित्य प्रेरक रहा है और संस्कृत साहित्य में सुबंधु,बाण एवं दण्डी आदि ने श्रेष्ठ गद्यकाव्यों का प्रणयन किया था, फिर भी हिन्दी उपन्यास पाश्चात्य उपन्यासों से अधिक प्रभावित हुआ । वस्तुतः हिन्दी उपन्यास आज अपने जिस रूप में व्यवहृत दिखता है उसका प्रादुर्भाव निश्चय ही पाश्चात भूमिका पर हुआ है और इसी तत्त्व को स्वीकार करने में हमें कोई संकोच नहीं होना चाहिए। बाबू गुलाबराय ने उपन्यास शब्द की व्यापकता का परिचय देते हुए कहा है कि -''उपन्यास सर्वथा आधुनिक युग की देन है और यद्यपि यह शब्द संस्कृत भाषा का है, तथापि प्राचीन संस्कृत साहित्य में उस अर्थ में वह कभी प्रयुक्त नहीं हुआ जिस अर्थ में हम आज उसका प्रयोग करने लगे हैं ।''[३] संस्कृत लक्षणग्रन्थों में 'उपन्यास' शब्द है । संस्कृत के नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में 'उपन्यास' रूपक की प्रतिमुख संधि के उपभेद की संज्ञा है ।

हिन्दी उपन्यास का प्रारम्भ लगभग ई.स.१८०० से हुआ है । हिन्दी उपन्यास के क्रमिक विकास को अध्ययन की सुविधा के लिए कई विद्वानों ने अपने-अपने विचारों के अनुरूप विभाजित किया है । सामान्यतया निम्नलिखित विभाजन अधिकतर

हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों द्वारा स्वीकृत किया गया है । इसी विभाजन के आधार पर इस अध्याय में हिन्दी उपन्यासों के क्रमिक विकास को ध्यान में रखते हुए भिन्न-भिन्न कालों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । उपन्यास के विकास क्रम की रेखा को ध्यान में रखकर यहाँ कालानुरूप इस विधा का अध्ययन किया गया है ।

(अ) स्वतन्त्रतापूर्व : (१८५७ से १९५० तक)

१. भारतेन्दु युगीन उपन्यास (१८५७ से १९००- प्रथम विकास युग)
२. द्विवेदी युगीन उपन्यास (१९०१ से १९१८ -द्वितीय विकास युग)
३. प्रेमचन्द्र युगीन उपन्यास (१९१८ से १९३६-तृतीय विकास युग)
४. प्रेमचन्दोत्तर युगीन उपन्यास (१९३६ से १९५०-चतुर्थ विकास युग)

(आ) स्वातन्त्र्योत्तर साहित्य :(१९५० से आज तक)

नव चेतन तथा जन चेतना काल (पंचम विकास युग)

(अ) स्वतन्त्रतापूर्व : (१८५७ से १९५० तक)

१. भारतेन्दु युगीन उपन्यास :

भारतेन्दु युग सन् १८५७ से १९०० ई. तक का काल है । इस काल में शासन सत्ता, अनेक राजनीतिक परिवर्तनों के कारण इस्ट इन्डिया कम्पनी के हाथों से निकलकर महारानी विक्टोरिया के हाथों में आयी । ब्रिटिश शासन सत्ता की सुसंगठित स्थापना हो जाने के कारण भारतीय राजनीति की इकाई निर्धारीत हुई । राजनीतिक परिवर्तनों के कारण पहले से ही चली आ रही कई योजनाओं से देश की सामाजिक चेतना के विकास का महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध रहा है । अंग्रेजों ने शिक्षण प्रणाली के प्रचार एवं प्रसार के माध्यम से भारतीयों को बोद्धिकदासता का पाठ भी पढ़ाया,लेकिन पश्चिम शिक्षा के प्रचार-प्रसार से भारतीय जीवन में एक नवीन बौद्धिक जागृति आई । भारतीयों मे समाज सुधार और सर्वांगीण उन्नती की भावना पैदा हुई । इस सम्बन्ध में डॉ. रत्नाकर पाण्डेय का कथन है कि- ''भारतेन्दु युग में राजा राम मोहनराय, दयानन्द सरस्वती और अन्य सुधारकों के प्रयास ने एक जबरदस्त साहित्यिक आन्दोलन का रूप धारण किया । यह आन्दोलन अब केवल ब्रह्म समाज और आर्यसमाज का आन्दोलन नहीं रहा बल्कि पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता की प्रतिस्पर्धा में उद्वेलित भारतीय समाज की चेतना का सामूहिक संघर्ष बन गया । ''[४]

इसी युग में अंग्रेजी शासन के प्रति भारतीयों में असंतोष का निर्माण हुआ ।

भारतेन्दु और उनके मण्डल के गद्य साहित्यकार उस समय जन जागरण के अग्रदूत थे । '' सन् १८६८ ई. के उपरान्त भारतेन्दु काल का हिन्दी साहित्य में अवतरण हुआ, तो सबसे पहले साहित्यकारों का ध्यान शुद्ध हिन्दी की ओर गया । उन्हों ने हिन्दुस्तानी के विरूद्ध जनमत का निर्माण किया और सन् १८७० ई. में 'कवि वचन सुधा' पद्य और गद्य प्रधान पाक्षिक का प्रारम्भ किया ।''[५] इस आन्दोलन की भूमिका में इतना आकर्षण निर्माण हुआ था कि कई लेखक तथा कवि सामने आने लगे थे । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी साहित्य में आधुनिक चेतना के अग्रदूत माने जाते हैं । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साथ सक्रिय साहित्य मण्डल था जो अपने समाचार पत्र निकालकर उनमें सामाजिक चेतना के विकास के लिए सक्रिय साहित्य का सृजन करता था । भारतेन्दु युग में अनेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई, जिससे साहित्य का सर्वांगीण विकास हुआ । इस युग की मुख्य साहित्यिक पत्रिकाएँ हैं- कवि वचन सुधा (सन् १८६८), हिन्दी प्रदीप (सन् १८७७), सारसुधा निधि (सन् १८७८), क्षत्रिय पत्रिका (सन् १८९१) तथा नागरी प्रचारिणी पत्रिका आदि....।

भारतेन्दु युग के पूर्व गद्य का स्वरूप अव्यवस्थित तथा अपरिमार्जित दिखाई देता है । इस युग के पूर्व साहित्य की भाषा ब्रजभाषा रही है । 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता 'एवं ' दौ सो बावन वैष्णवों की वार्ता ' की कथाएँ बोलचाल की ब्रजभाषा में लिखी गई है । डॉ.संकठाप्रसाद मिश्र का मत है कि- ''संवत १८६० के लगभग फोर्ट विलियम कॉलेज कलकत्ता के आश्रय में लल्लूलालजी ने खड़ीबोली के गद्य में ' प्रेमसागर' और सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' लिखा । अतः खड़ीबोली के गद्य को एक साथ आगे लानेवाले चार व्यक्ति थे, मुंशी सदासुखलाल, सैयद इंशाउल्ला खाँ,लल्लू लालजी और सदल मिश्र । बाद में राजा शिव प्रसाद ' सितारे हिन्द ' तथा राजा लक्ष्मणसिंह ने हिन्दी गद्य के विकास में पर्याप्त योगदान दिया ।''[६] भारतेन्दु युग में मुख्य संघर्ष हिन्दी की प्रतिष्ठा तथा स्वीकृति को लेकर था । फारसी भाषा के स्थान पर हिन्दी भाषा को प्रतिष्ठा दिलाने के लिए किये गये प्रयास ही जागरण के आधार बने । अपनी प्रतिभा और उद्‌भावना के बल से हिन्दी खड़ी बोली गद्य को सुव्यवस्थित एवं परिमार्जित करने का कार्य भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनके सहयोगियों ने किया ।

भारतेन्दु युग एक प्रकार से नव-जागरण का युग कहा जा सकता है । इस युग में जनजीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक प्रकार के क्रांतिकारी आन्दोलन हो रहे थे । इन आन्दोलनों का परिणाम सामाजिक मान्यताओं में दिखाई दे रहा था । इस

सम्बन्ध में डॉ.स्वर्णलता का कथन है - ‘‘ भारतेन्दु युगीन सामाजिक उपन्यासकारों ने अपनी कृतिओं में इन सामाजिक परिवर्तनों के फलस्वरूप उत्पन्न हुई समस्याओं को विवेचित किया और उनके प्रति एक निर्णयात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।’’[७]

हिन्दी उपन्यास का आविर्भाव भारतेन्दु युग में हुआ। भारतेन्दु युग को हिन्दी उपन्यास का प्रथम काल कहा जाता है। इस युग में राष्ट्रीय नवोत्थान की चेतना ने जनजीवन में सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक वैषम्य की विवेचना की। इसी कारण हिन्दी में सफल गद्यनिर्माण की पीठिका स्थापित हुई। इस युग में उपन्यास की जो मुख्य प्रवृत्तियाँ विकसित हुई उनमें सामाजिक, ऐतिहासिक, जासूसी तथा तिलस्मी आदि प्रमुख हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का प्रभाव भाषा तथा साहित्य पर बहुत ही गहरा पड़ा। उन्होंने जिस प्रकार गद्य की भाषा को परिमार्जित करके बहुत ही स्वच्छ एवं मधुर स्वरूप दिया, उसी भाँति भाषा का निखरा हुआ शिष्ट रूप भारतेन्दु के काल में व्यक्त हुआ। भारतेन्दु ने हिन्दी साहित्य को भी नवीन मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया। भारतेन्दु ने बाँगला तथा मराठी उपन्यासों का अनुवाद करवाया। संस्कृत के ‘कादम्बरी’ बाँगला से ‘दुर्गेशनन्दिनी’ और मराठी से ‘चन्द्रप्रभा पूर्ण प्रकाश’ यह उपन्यास अनूदित किये गये। यह हिन्दी के प्रथम अनुवादित उपन्यास है। मासिक पत्रिका ‘हरिचंद्रिका’ के आविर्भाव के साथ ही हिन्दी में नये-नये लेखक भी तैयार होने लगे। इस पत्रिका में भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी के जीवनकाल में ही कवियों तथा लेखकों का मंडल ‘एक खासा मंडल’ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस मंडल के रचनाकार बालकृष्ण भट्ट, लाला श्रीनिवासदास, कार्तिकप्रसाद खत्री, बदरीनारायण उपाध्याय (चौधरी) ‘प्रेमधन’, ठाकुर जगमोहनसिंह, प्रतापनारायण मिश्र, अंबिकादास व्यास, महामहोपाध्याय, पं.सुधाकर द्विवेदी, श्री गोस्वामी राधाचरणजी, लाला सीताराम, राधाकृष्णदास आदि थे। इन रचनाकारों ने अपनी रचनाओं से हिन्दी भाषा के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

भारतेन्दु युग में अनेक नई तथा आधुनिक साहित्यिक विधाओं का जन्म हुआ। इस युग में अधिकतर अनुवाद हुए, किन्तु कुछ मौलिक उपन्यास लिखे जाने की प्रेरणा भी लेखकों को अवश्य मिली। स्वयं भारतेन्दु का ध्यान उपन्यास अनूदित करने तथा लिखने की ओर गया। उन्होंने खुद उपन्यास लिखने की अपेक्षा दूसरे लेखकों को अधिक प्रेरित किया। भारतेन्दुजी ने खुद अनेक कथाएँ लिखी किन्तु उन कथाओं में एक भी उपन्यास कहलाने के अधिकार नहीं रखते । डॉ. हरदयाल का मत है कि- ‘‘ ‘रामलीला’ ‘राजसिंह’, ‘मदालसो पाख्यान’, ‘कुछ आपबीती- कुछ जगबीती

(अपूर्ण)आदि कथा रचनाएँ उपन्यास नही हैं। 'पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा ' ही एक मात्र ऐसी रचना है जिसे उपन्यास कहा जा सकता है। किन्तु यह भारतेन्दु की मौलिक कृति नहीं है। यह मराठी भाषा से किया हुआ अनुवाद है।''[८]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का अपूर्ण उपन्यास 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती ' आधुनिक उपन्यासों की आधारभूमि प्रस्तुत करनेवाला आत्मकथात्मक शैली का उपन्यास है। इस उपन्यास में मुफ्तखोर सिफारिशियों का चित्रण है। इस काल खण्ड में अनूदित उपन्यासों की अनवरत परम्परा में भी मौलिक उपन्यासों के लेखन को अधिक बल दिया गया। इसी कारण भारतेन्दु द्वारा प्रकाशित 'पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा' उनके द्वारा लिखा मानकर हिन्दी का प्रथम उपन्यास घोषित कर दिया गया। शर्मा मखनलाल ने इस उपन्यास के बारे में अपना मत दर्शाया है कि - ''हिन्दी में प्रथम उपन्यास 'पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा' भारतेन्दु की देन है। सामाजिक कुरीतियों की ओर स्पष्ट संकेत, व्यंग्यपूर्ण शैली में कर के गम्भीर विषयों का प्रतिपादन उपन्यास द्वारा इसके पश्चात होने लगा। इस उपन्यास में पहली बार प्रगतिशील विचारों को प्रश्रय मिला और प्रतिक्रियावादी तत्त्वों का -ह्रास दिखाया गया।''[९]

भारतेन्दुजी का 'पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा' एक महत्त्वपूर्ण अनूदित उपन्यास है। इस उपन्यास में लेखक ने एक वृद्ध(ढुढिराज) तथा युवती(चन्द्रप्रभा) का विवाह कर के अनमेल विवाह की घृणित परिस्थिति को उभारने का प्रयास किया है। भारतेन्दु ने यह भी बताया है कि युवक और युवतियों को अशिक्षित रखने का दुष्परिणाम समाज को पतनोन्मुखी करता है। इस उपन्यास में कुरीतियों का विरोध व्यंग्य के माध्यम से किया गया है। भारतेन्दु युग में अनमेल विवाह का विरोध अशिक्षा के परिणामों के साथ ही नीतिपरक उपन्यास की धारा भी चल निकली थी। शर्मा मखनलाल बताते है कि -''इस काल में एक धारा नीतिपरक उपन्यासों की भी चल नीकली थी, जिसका सूत्रपात भारतेन्दु ने पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा लिखकर दिया था।''[१०]

भारतेन्दु युगीन उपन्यासकारों का हिन्दी उपन्यास के विकास के इतिहास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा हैं जिनमें प्रमुख उपन्यासकार निम्नलिखित हैं.....

१.	श्रद्धाराम फुल्लौरी	(संवत १८९४-१९३८)
२.	लाला श्रीनिवासदास	(सन् १८५०-१८८७)

३.	बालकृष्ण भट्ट	(सन् १८४४-१९१४)
४.	ठाकुर जगमोहनसिंह	(सन् १८४७-१८९९)
५.	राधाकृष्णदास	(सन् १८६५-१९०७)
६.	लज्जाराम शर्मा	(सन् १८६३-१९३१)

पं.श्रद्धाराम फुल्लौरी भारतेन्दु युगीन उपन्यासकारों में एक बहुचर्चित उपन्यासकार थे । पंजाब में श्रद्धाराम फुल्लौरी ने विषम परिस्थितियों में हिन्दी प्रचार का प्रशंसनीय कार्य किया था । इन्हों ने पंजाब में इसाई पादरियों से अनेकबार शास्त्रार्थ करके कई सम्भ्रान्त परिवारों को धर्म परिवर्तन से विमुख किया । फुल्लौरीजी ने हिन्दी,पंजाबी, उर्दू आदि भाषाओं में साहित्य सृजन किया था । हिन्दी में फुल्लौरीजी ने सत्यधर्म, तत्त्वदीपक, मुक्तावली, धर्मरक्षा,भाग्यवती,रमल कामधेनु, बीज मंत्र, सत्यामत प्रवाह आदि पुस्तकें लिखी । संस्कृत और हिन्दी के अलावा पंजाबी और उर्दू में भी इनकी रचनाएँ उपलब्ध हैं ।

पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी के सभी ग्रन्थों में 'भाग्यवती' सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है । कई विद्वानों ने 'भाग्यवती' को हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास भी माना है, जिसका प्रकाशन सन् १८७७ ई. में हुआ था । 'भाग्यवती' उपन्यास की कथा में सामाजिक आदर्शों और शिक्षा की प्रवृत्ति की प्रमुखता है । इस उपन्यास में फुल्लौरीजी का दृष्टिकोण समाज सुधारका रहा है । रूढ़ीवादी समाज में व्याप्त कुरीतियों की पृष्ठभूमि में नये जागरण के प्रतीक के रूप में फुल्लौरीजी ने 'भाग्यवती' की चारित्रिक सृष्टि आत्मविश्वास से युक्त पात्री के रूप में की है । लेखक ने भाग्यवती के विवाह के प्रसंग में बाल-विवाह की युगवादी समस्या को स्पष्ट किया है । वस्तुतः भाग्यवती एक सुखान्त पारिवारिक कथा है ।

पं.श्रद्धाराम फुल्लौरी ने अपने 'भाग्यवती' उपन्यास में एक ज्वलंत सामाजिक समस्या को आधार बनाकर उसका निराकरण किया है । समकालीन समाज में बाल-विवाह प्रथा, पर्दा प्रथा, अशिक्षा, अदूरदर्शिता आदि की जो समस्याएँ विद्यमान थीं,उन सबका समावेश फुल्लौरीजी ने विभिन्न समस्याओं के रूप में किया हैं । निःसन्देह उनका यह प्रयास समय,काल तथा युग की दृष्टि से क्रान्तिकारी सिद्ध हुआ । यही कारण है कि तत्कालीन अनेक समीक्षकों एवं विद्वानों ने पं.श्रद्धाराम फुल्लौरी के 'भाग्यवती' उपन्यास की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है ।

लाला श्रीनिवासदास भारतेन्दु मंडल के दूसरे प्रतिभाशाली महत्त्वपूर्ण

सदस्य थे। संवत १९३१ वि. में दिल्ली में इन्होंने 'सदादर्श ' नामक साप्ताहिक पत्रिका का सम्पादन किया था। संवत् १९३३ में यह पत्रिका को 'कवि वचन सुधा' में मिला दिया गया। लाला श्रीनिवासदास ने तप्तासंवरण, रणधीरप्रेम मोहिनी, प्रहलाद-चरित्र, संयोगिता-स्वयंवर आदि नाटकों के साथ-साथ 'परीक्षा-गुश्र' सामाजिक उपन्यास की भी रचना की थी। इनके उपन्यास में तत्कालीन मध्यम वर्ग का जीवन और समाज यथार्थ रूप में चित्रित हुए हैं।

भारतेन्दु युगीन सामाजिक उपन्यासों की परम्परा के अंतर्गत 'परीक्षा-गुश्र' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि-''पहला इंगजी(अंग्रेजी) ढंग का मौलिक उपन्यास 'परीक्षा-गुश्र' ही है।''[११] लेखक श्री निवासदास ने इसे खुद नवीन और अंग्रेजी ढंग का उपन्यास कहा हैं। लेखक ने किस्से कहानियों की परम्परा पद्धति को त्यागकर कथा का आरम्भ मध्य से किया है और बाद में पात्र परिचय दिया है। 'परीक्षा-गुश्र' के निवेदन में बतलाया गया है कि -'' अपनी भाषाओं में यह नई चाल की पुस्तक होगी। लेखक ने अंग्रेजी में इसे नावेल बताया है और हिन्दी में अनुभव द्वारा उपदेश मिलने की एक सांसारिक वार्ता कहा है , बँगला उपन्यास का कहीं उल्लेख नहीं है। ''[१२]

'परीक्षा-गुश्र' उपन्यास की कथा दिल्ली के एक रईस मदनमोहन के जीवन के उतार-चढाव को प्रस्तुत करती है। उपन्यास की कथा प्रणय तथा विलास रोमान्स के रंगों में न उलझकर जीवन के गम्भीर पथ का चित्रण करती है। इसमें जीवन के यर्थाथ पर आधारित कथा है। एक धनी व्यक्ति के जीवन का तत्कालीन युग के अनुरूप चित्रण हुआ है। पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध से आकर्षित मदनमोहन के जीवन में खुशामदी मित्रों की सलाह से दुखान्त की परिणति होती है, यह दैनिक जीवन में घटित होनेवाली कथा है।

श्रीनिवासदास एक व्यवहार कुशल तथा नीति निपुण मध्यम वर्गीय लेखक थे।'परीक्षा-गुश्र' एक शिक्षाप्रद उपन्यास है। इस 'नई चाल' की पुस्तक में मदनमोहन व्यापारी का अपने खुशामदी एवं स्वार्थी मित्रों के फेर में पड़कर दिवालिया बनना और एक सच्चे हितैषी मित्र की मदद से मुक्त होकर सुधर जाने का चित्रण है।

उपन्यास के नये समाज में दो प्रकार के लोग हैं। एक वर्ग के प्रतिनिधि मदनमोहन और उनके कुमित्र और दूसरे वर्ग का प्रतिनिधि ब्रजकिशोर हैं। ब्रजकिशोर

नई रोशनी का परन्तु स्वदेशाभिमानी तथा सावधान व्यक्ति है। वह यह समय था, जब उनके परस्पर विरोधी विचारधाराएँ समाज में पनप रही थी। एक ओर ऐसे लोगों की संख्या कम नहीं थी,जो विदेशी प्रभाव से ग्रस्त थे। लाला श्रीनिवासदास ने 'परीक्षा-गुरु' उपन्यास के माध्यम से निर्देश किया है कि विदेशी संस्कृति तथा सभ्यता का अन्धानुकरण सामान्य व्यक्ति के साथ उच्च वर्गों के लिए भी अभिशाप बन सकता है। तत्कालीन सम्पन्न वर्गीय समाज में अन्धे प्रदर्शन की झूठी भावना के बढ़ने का मुख्य कारण यह था कि उनमें विदेशियों की तुलना में एक प्रकार की हीन भावना जन्म ले रही थी। राष्ट्रप्रेम,सामाजिक यथार्थ एवं नैतिक आदर्श का चित्रण इस उपन्यास में मिलता है। तत्कालीन समाज की अधिकांश मुख्य प्रवृत्तियों का प्रदर्शन करनेवाले उक्त पात्रों की कथा से उस समय की झाँकी मिलती है।

श्रीनिवासदास ने 'परीक्षा-गुरु' के नायक के माध्यम से समकालीन अभिजात वर्ग के पात्रों का यथार्थ चित्रण किया हैं। उपन्यासकार ने अपने उपन्यास में नैतिक शिक्षा देने का प्रयास किया है। तत्कालीन राष्ट्रीय और सामाजिक समस्याओं को स्पर्श करते हुए समकालीन जीवन के यथार्थ का चित्रण नजर आता है। लेखक के अनुसार जो बात सौ बार समझाने से समझ में नहीं आती वही एक की परीक्षा से मन में बैठ जाती है और इसलिए लोग परीक्षा को गुरु मानते हैं।

भारतेन्दु युग के तीसरे बहुचर्चित उपन्यासकार पं. बालकृष्ण भट्ट है। भट्टजी ने संवत १९३३ में अपनी 'हिन्दी प्रदिप' गद्य साहित्यिक पत्रिका निकाली थी। वे अपनी पत्रिका में सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक और साहित्यिक सब प्रकार के छोटे-छोटे गद्य प्रबन्ध लगभग तीस वर्ष तक लिखते रहे। निबन्धों के अलावा भट्टजी ने नाटकों एवं उपन्यासों की भी रचना की हैं। भट्टजी के दो मौलिक उपन्यास 'नूतन ब्रह्मचारी (सन् १८८६) और 'सौ अजान एक सुजान (सन् १८९२)' उल्लेखनीय हैं। इन उपन्यासों मे लेखक ने स्पष्ट किया है कि निष्कपट व्यवहार और धर्मपरायण कृत्यों से पत्थर दिल व्यक्ति भी पिघल जाता है और कुकृत्य को त्याग देता है। उन्हों ने अपने उपन्यास के माध्यम से विद्यार्थियों को शिक्षा देने तथा उनमें सुधारणा, नैतिकता लाने के लिए प्रयास किया है।

उपन्यास 'नूतन ब्रह्मचारी' उपन्यासकार ने विद्यार्थियों को चारित्रिक शिक्षा देने के लिए लिखा हैं। इसमें छोटे बालक विनायक का निष्कपट व्यवहार और धर्मपरायणता का चित्रण किया गया है। 'नूतन ब्रह्मचारी' में नायक विनायक अपनी धर्मपरायणता और सरल व्यवहार के प्रभाव से डाकुओं के सरदार का हृदयपरिवर्तन

कराता हैं। विनायक हिंसा,द्वेष आदि से रहित सुचरित्र के बल पर डाकुओं के सरदार जैसे दुष्ट को भी चरित्रवान बना देता है। इस उपन्यास से उपन्यासकार ने यह आशा प्रकट की है कि साधारण अक्षरज्ञान रखनेवाला नूतन ब्रह्मचारी (विद्यार्थी) भी चरित्र में विनायक का सहकारी हो सकता है।

पं.बालकृष्ण भट्ट की 'सौ अजान एक सुजान' दूसरी औपन्यासिक रचना है। इस उपन्यास में भी लेखक ने 'नूतन ब्रह्मचारी ' की तरह मुख्यतः सुधारक तथा उपदेशात्मक चित्रण किया है। यह उपन्यास विद्यार्थियों तथा युवकों को चारित्रिक शिक्षा देने के लिए लिखा गया उपन्यास है। इस उपन्यास की रचना किशोरावस्था के पाठकों के लिए की गई है। 'सौ अजान एक सुजान ' यह उपन्यास भी भारतेन्दु युग की सामाजिक कथा परम्परा के अंतर्गत आता है। इस उपन्यास में भट्टजी ने कुमार्ग में भटके हुए दो अन्जान व्यक्तियों को सद्मार्ग पर आते दिखाया हैं।

भारतेन्दु काल में सामाजिक,ऐतिहासिक,तिलस्मी, जासूसी तथा रोमानी उपन्यासों की रचना परम्परा का सुत्रपात हुआ। जिन्होंने हिन्दी के पाठकों को बढ़ाने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

(१) सामाजिक उपन्यास :

भारतेन्दु युग के सामाजिक उपन्यासों में 'भाग्यवती' और 'परीक्षा-गुरु' के अतिरिक्त बालकृष्ण भट्ट कृत 'रहस्य-कथा','नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान एक सुजान' राधाकृष्ण दास कृत 'निस्सहाय हिन्दू' लज्जाराम शर्मा कृत 'धूर्त रसिकलाल' और 'स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी' तथा किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'त्रिवेणी वा सौभाग्य वती' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

(२) ऐतिहासिक उपन्यास :

भारतेन्दु युग में ऐतिहासिक उपन्यास बहुत कम लिखे गए। इस क्षेत्र में किशोरीलाल गोस्वामी का नाम ही उल्लेखनीय है,किन्तु उनके 'लवंगलता' उपन्यास को ऐतिहासिक उपन्यास की मर्यादा देना उचित नहीं है। वस्तुतः इस युग में ऐतिहासिक उपन्यासों की आकांक्षा की पूर्ति बंकिम के ऐतिहासिक उपन्यासों के अनुवादों से हुई ।

(३) तिलस्मी उपन्यास :

तिलस्मी उपन्यासों में देवकीनन्दन खत्री कृत 'चन्द्रकान्ता' ,'चन्द्रकान्ता

संतति'(चौबीस भाग), 'नरेन्द्र मोहिनी', 'विरेन्द्र वीर' और 'कुसुमकुमारी' तथा हरेकृष्ण जौहर कृत 'कुसुमलता' उल्लेखनीय है ।

(४) जासूसी उपन्यास :

भारतेन्दु युग के जासूसी उपन्यासों में गोपालराम गहमरी कृत 'अद्‌भुत लाश' और 'गुप्तचर' उल्लेखनीय है ।

(५) रोमानी उपन्यास :

भारतेन्दु युग के रोमानी उपन्यासों में ठाकुर जगमोहनसिंह का 'श्यामा स्वप्न' उल्लेखनीय है । इसमें श्यामा (बाह्मणकुमारी) की प्रेमकथा का स्वच्छन्द शैली में चित्रण हुआ है ।

(६) अनूदित उपन्यास :

भारतेन्दु युग में बँगला,उर्दू,मराठी, अंग्रेजी आदि भाषा के उपन्यासों का अनुवाद किया गया है । बँगला उपन्यासों के अनुवादों की संख्या सर्वाधिक है । गदाधरसिंह कृत 'बँग विजेता दुर्गेश नन्दिनी', प्रतापनारायण मिश्र कृत 'राधा रानी','इन्दिरा','राजासिंह' राधाचरण गोस्वामी कृत 'मृण्मयी',मुंशी हरितनारायणलाल कृत 'दीप निर्वाण' आदि बँगला से अनूदित उपन्यास हैं । उर्दू से अनूदित उपन्यासों में रामकृष्ण वर्मा कृत 'संसार दर्पण','अमला वृत्तांत' आदि महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं ।

भारतेन्दु युगीन उपर्युक्त उपन्यासों में सबसे सशक्त तथा महत्त्वपूर्ण धारा उन सामाजिक उपन्यासों की है, जिनका प्रारम्भ 'परीक्षा-गुश्च' से हुआ हैं । पं.श्रद्धाराम फुल्लौरी ने चली आती हुई मध्ययुगीन कुरीतियों, अन्धविश्वास एवं कर्मकाण्ड को समाप्त कर उन्हें नवीन युग के अनुश्चप आचरण करने में समर्थ बनने हेतु ही 'भाग्यवती' उपन्यास का सृजन किया था । 'परीक्षा- गुश्च ','भाग्यवती','नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान एक सुजान' आदि उपन्यासों की रचना सामाजिक उन्नति तथा सामाजिक सुधारणा की प्रेरणा से की गई थी । अन्य उपन्यासों का महत्त्व इतना ही है कि उनके द्वारा सामान्य लोगों में हिन्दी भाषा की लोकप्रियता बढ़ी ।

भारतेन्दु युग के उपन्यासों के तीन उद्देश्य स्पष्ट दृष्टिगत होते हैं-

१. सामाजिक समस्याओं का प्रगटन ।
२. सुधारमार्ग निर्देशन ।
३. नैतिक शिक्षा ।

भारतेन्दु युग में शैक्षणिक मूल्यों के सभी उपन्यासों में सामाजिक नीति के संरक्षण,उत्कृष्ट चरित्र निर्माण तथा मर्यादा पालन के उपदेश दिये हैं । लाला श्रीनिवासदास कृत 'परीक्षा गुरु', पं.बालकृष्ण भट्ट कृत 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान एक सुजान 'आदि उपन्यासों का लक्ष्य नैतिक सुधार है । सामाजिक समस्यामूलक उपन्यासों में अधिकांश नारी समस्या से सम्बन्धित हैं । 'ठेठ हिन्दी का ठाठ ' तथा 'पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा' उपन्यासों में अनमेल विवाह की समस्याओं का चित्रण दिखाई देता है ।

मनोरंजन वस्तुतः सभी उपन्यासों का एक मुख्य उद्देश्य होता है । परन्तु भारतेन्दु युग में मनोरंजन के उद्देश्य के साथ ही सामाजिक सुधारणा तथा नैतिकता का बोध, यह उद्देश्य ज्ञात होते हैं । भारतेन्दु युग के अर्ध शिक्षित पाठकों के संस्कार अधिक विकसित नहीं थे । उनमें सुरुचि तथा नैतिकता का अभाव था । इस युग के उपन्यासकार इन्हें जगाने के कार्य की अपेक्षा, मनोरंजन करने के कार्य में लगे रहे थे ।

भारतेन्दु युग में सामाजिक जीवन के विभिन्न प्रश्नों से सम्बन्धित चित्रणों का समावेश भी उपन्यासों में मिलता है । नीतिपरक कथाओं द्वारा निर्धारित सीमाओं का अतिक्रमण करके इस युग में जनजीवन को उपन्यास की विषयवस्तु बनाने की चेष्टा की गई । पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं पर विचार करते हुए इस युग के अनेक उपन्यासकारों ने समाज में व्याप्त रूढ़ियों,कुरीतियों तथा संकिर्णताओं का विरोध करते हुए समाज को उन्नति की दिशा में पहुँचाने का कार्य किया । बालमुकुन्द गुप्त ने विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार कर स्वदेशी पर बल दिया था । यही प्रवृत्ति आगे चलकर गाँधी बापू के आचरण में लक्षित होती है । गुप्तजी ने विदेशी सरकार पर व्यंग्य करके तत्कालीन व्यवस्था पर भी प्रहार किया है ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक हिन्दी साहित्य के जन्मदाता माने जाते हैं । युग प्रवर्तक भारतेन्दु के साहित्य में नवयुग की चेतना परिलक्षित होती है । इनके साहित्य में देश के अतीत गौरव की गाथा, वर्तमान अधोगति की क्षोभ भरी वेदना, भविष्य की चिन्ता आदि वर्णन मिलते हैं । उनके साहित्य में सुधार की, एकता की और समानता की दृष्टि है । उन्होंने भारत के अतीत के गौरव के गीत गाकर सामयिक दीनदशा की ओर देशवासियों को आकृष्ट किया । भारतवासियों को स्वदेश, स्वजाति और स्वसंस्कृति के पुनरूत्थान करने की प्रेरणा दी । भारतेन्दुजी ने अपने युग की नब्ज टटोलकर जन भावनाओं को साहित्य का रूप दिया । दूसरे शब्दों में उन्हों ने युगीन भावनाओं का

प्रतिनिधित्त्व किया । डॉ.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने भारतेन्दु के सम्बन्ध में लिखा है कि - '' भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एक महान साहित्यिक संगम के समान है, जहाँ साहित्य की प्राचीन धाराएँ मिलकर एक नवीन साहित्यिक धारा को जन्म देती हैं । उनमें जगनिक, कबीर,सूर, मीरा, देव और बिहारी आदि सभी मूर्तमान दृष्टिगोचर होते हैं ।''[१३]

वार्ष्णेयजी का यह मत नितान्त सत्य है, क्योंकि भारतेन्दु के पदार्पण से हिन्दी का आधुनिक रूप निश्चित हुआ तथा हिन्दी के स्वतंत्र व्यक्तित्त्व की प्रतिष्ठा हुई । इसलिए वे हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग के जन्मदाता एवं प्रवर्तक है ।

२. द्विवेदी-युगीन उपन्यास :

भारतेन्दु युग में उपन्यास का उद्‌भव तथा प्रारम्भिक विकास हुआ था । उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चार दशकों में विकसित हुए उपन्यास साहित्य को भारतेन्दु युग के अन्तगर्त रखा गया है । बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों में हिन्दी उपन्यास का जो प्रवृत्तिगत इतिहास मिलता है, उसे द्विवेदी-युग के अन्तगर्त रखा जाता है ।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी-युग का साहित्य पढ़े लिखे लोगों के मनोरंजन का साधन मात्र न रहकर समाज के विशाल क्षेत्र में अवतरित हुआ । समाज और साहित्य का उत्तरोत्तर सम्बन्ध बढ़ने के कारण साहित्य जन-चेतना का बहुत ही आवश्यक अंग बन गया । उन्नसवीं शताब्दी की सतत जागरूकता ने नवीन प्राण प्रतिष्ठा प्राप्त की एवं मुख्य रूप से साहित्य की सावभौमिक सत्ता पूरे समाज की चेतना को जागृत करने लगी । इस नवीन सामाजिक चेतना ने जनता को अपने प्राचीन गौरव पर गर्व करना सिखाया । वैज्ञानिक परिवर्तनों ने समाज की काया को पलट दिया । इस युग में राष्ट्रीय स्वाभिमान की प्राण प्रतिष्ठा हुई तथा पाश्चात्य तत्त्वों का असर रहा । सन्‌ १९०२ ई. उपरान्त भारत में प्राथमिक,माध्यमिक और विश्व विद्यालय शिक्षा में सुधार एवं प्रसार के लिए आयोग बैठाए गये । आयोग के सुधार के आधार पर अमल किया जाने लगा । अंग्रेजी शिक्षा का महत्त्व बढ़ा दिया गया, परिणाम यह हुआ कि सरकारी नौकरी पाने तथा बुद्धिमान समझे जाने के लिए अंग्रेजी शिक्षा अनिवार्य समझी जाने लगी । अंग्रेजी शिक्षा का फल यह रहा कि उच्च शिक्षित भारतीय विदेशी राजनेताओं एवं दार्शनिकों के विचारों से सम्पर्क में आये और स्वातंत्र्य तथा राष्ट्रीय भावनाओं मे दीक्षित हुए । वैसे भी आर्य समाज,ब्रह्मसमाज, इन्डियन नेशनल कांग्रेस तथा थियोसोफिकल सोसायटी की स्थापना से भारतीय जनजीवन में

पुर्नजागरण आन्दोलन चल रहा था तथा पुनरूत्थान की प्रकिया प्रारम्भ हो चुकी थी। इन्डियन नेशनल कांग्रेस ने भारत में राष्ट्रीय भावों का उदय किया। द्विवेदीयुग में ही सर्व श्री लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, लाला लजपतराय, गोपालकृष्ण गोखले, स्वामी श्रद्धानन्द, मदनमोहन मालवीय आदि नेताओं तथा समाजसेवियों ने उनकी आत्मविस्मृत भावनाओं को उत्तेजित किया।

राष्ट्रीय भावना की प्रबलता तथा आत्मविश्वास के कारण साहित्य का जनता से उत्तरोत्तर सम्बन्ध स्थिर होता गया। आर्य समाज ने तत्कालीन युग की आदर्शवादी प्रवृत्तियों में विकास करना प्रारम्भ किया और सुधार की आकांक्षा व्यक्तिवादी चेतना का अभिन्न अंग बन गई। उसी काल में देश-विदेश में कुछ प्रेरक घटनाएँ घटी जिन्हों ने हिन्दी भाषा और साहित्य को शक्ति एवं गति प्रदान की। इस काल खंड में आर्य समाज और सनातन धर्म का द्वन्द्व चलता रहा फिर भी धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र में उदारता और सहिष्णुता की भावनाएँ फैलती जा रही थी। प्रथम विश्वयुद्ध ने रूसी, जर्मनी और फ्रांसीसी जन-जीवन के साहित्य से भारत को परिचित कराया, जिससे सांस्कृतिक जन-जागरण में नई दृष्टि का समन्वय हुआ। महायुद्ध के बीच और उसके उपरान्त भारत की राजनैतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों मे अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। भारतीय साहित्य में नवोन्मेष की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ जागृत हुई। औद्योगीकरण के कारण समाज में एक नवीन वर्ग ने जन्म लिया।

द्विवेदी-युग भारतीय जन-जीवन में हो रहे व्यापक परिवर्तनों का काल है। इस युग कलात्मक तथा साहित्यिक रूप से भी सामाजिक पुनरूत्थानवादी आन्दोलन का प्रेरक था। साहित्यकार एवं पत्रकारों ने शिक्षित वर्ग में सांस्कृतिक एवं राजनैतिक वैचारिक जागृति निर्माण की। द्विवेदीजी ने ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ीबोली का प्रचलन किया। इन्हों ने अपने युग के लेखकों को संस्कृत, बँगला तथा अंग्रेजी ग्रन्थों के अनुवाद करने की प्रेरणा दी। द्विवेदी युग का सन् १९००-१९०८ ई. तक का साहित्य हिन्दी में अराजकता का साहित्य माना जाता है। अचानक परिवर्तनों से लोगों को आघात सा लगा और द्विवेदीजी ने सन् १९०८ ई. में सामाजिक परिवेश के गद्य लेखकों को अभ्यास और आदर्श रचनाकारों के अनुकरण की प्रेरणा दी। सन् १९०८ ई. से सन् १९१६ तक का काल साहित्यक व्यवस्था का काल है। कुछ साहित्यकार साहित्य की आदर्श प्रतिमाओं के लिए संस्कृत का प्राचीन आदर्श सामने रखना चाहते थे और कई साहित्यकार पाश्चात्य रूप के प्रसंशक थे। द्विवेदीजी ने गद्य साहित्य में दोनों प्रवृत्तियों में सामंजस्य स्थापित किया और प्रतिभाशाली साहित्यकारों को प्रोत्साहित किया।

द्विवेदी युग के सामाजिक उपन्यासकारों में लज्जाराम शर्मा (सन् १८६३-१९३१ ई.), किशोरीलाल गोस्वामी(सन् १८६५-१९४१ ई.), अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (सन् १८६५ - १९४१ ई.) ब्रजनन्दन सहाय, राधिकारमण प्रसाद 'सिंह' तथा मन्नन द्विवेदी (सन् १८८४ -१९२१ ई.) प्रसिद्ध हैं । मेहता लज्जाराम शर्मा कृत 'आदर्श दम्पति'(सन् १९०४ ई.), 'बिगड़े का सुधार' अथवा 'सती सुखदादेवी'(सन् १९०७ ई.), 'आदर्श हिन्दू'(सन् १८१४ ई.), किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'लीलावती या आदर्श सती '(सन् १९०१ ई.), 'चपला' या 'नव्य समाज'(सन् १९०३ - १९०४ ई.), 'पुर्नजन्म या सौतिया डाह' (सन् १९०७ ई.), 'माधवी, माधव या मदन मोहीनी '(सन् १९१० ई.) अयोध्यासिंह उपाध्याय कृत 'अध खिला फूल'(सन् १९०७ ई.), 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' या 'देवबाला ', ब्रजनन्दन सहाय कृत 'सौदर्योपासक'(सन् १९११ ई.)तथा 'राधाकान्त'(सन् १९१२ ई.) मन्नन द्विवेदी कृत 'रामलाल', 'कल्याणी' और राधिकारमण प्रसाद 'सिंह' कृत 'नवजीवन वा प्रेमलहरी'(सन् १९१६ ई.) आदि उल्लेखनीय हैं ।

भारतेन्दु युगीन उपन्यास साहित्य संख्यात्मक दृष्टि से समृद्ध हैं, लेकिन उनमें स्तरीय उपन्यासों की संख्या अपेक्षाकृत कम हैं । द्विवेदी युगीन उपन्यासों का उद्देश्य और स्वरूप के आधार पर दो वर्ग के किए जा सकते हैं -

१) मनोरंजन के लिए लिखे गए उपन्यास जिसके अंतगर्त तिलस्मी, ऐयारी, जासूसी, अद्भुत घटना प्रधान तथा ऐतिहासिक उपन्यास आ जाते हैं ।

२) सुधार जागरण के लिए लिखे गए उपन्यास जिसके अंतगर्त सामाजिक उपन्यास आ जाते हैं । मौलिक उपन्यास के अतिरिक्त अन्य भाषा के उपन्यासों का अनुवाद भी हुआ है ।

(अ) मनोरंजवादी उपन्यास :

(१) तिलस्मी-ऐयारी उपन्यास :

इस तरह के उपन्यासों का जन्म भारतेन्दु काल में ही हुआ था, उसी परम्परा को आगे बढ़ानेवाले कई उपन्यासों की रचना इस कालखण्ड में हुई थी । देवकीनन्दन खत्री के 'काजर की कोठरी', 'अनूठी बेगम', 'गुप्त गोदन' हरेकृष्ण जौहर का 'मयंक मोहिनी' या 'माया महल', 'कमल कुमारी', 'निराला नकाबपोश', 'भयानक खून', किशोरी गोस्वामी का 'तिलस्मी शीशमहल' रामलाल वर्मा का 'पुतली महल' आदि उपन्यास इसी कालखण्ड में लिखे गये ।

(२) जासूसी उपन्यास :

'गोपालराम गहमरी' इस युग के लोकप्रिय जासूसी उपन्यासकार रहे थे। उन्होंने लगभग २०० उपन्यास लिखे थे। जिनमें से 'सरकटी लाश ','चक्करदार चोरी ', 'जासूस की भूल', 'जासूस पर जासूसी','जासूस चक्कर में ', 'इन्द्रजालिक जासूस', 'गुप्तभेद','जासूसी की ऐयारी ','तीन जासूस','जोड़ाजासूस' आदि उपन्यास अत्यधिक लोकप्रिय रहे हैं। गहमरी के अलावा रामलाल वर्मा, किशोरीलाल गोस्वामी, जयरामदास गुप्त आदि ने भी इस तरह के उपन्यासों की रचना की है।

(३) अद्‌भुत घटना प्रधान उपन्यास :

रहस्यमय एवं अद्‌भुत घटनाक्रमों द्वारा पाठक का कौतूहल एवं जिज्ञासा बढ़ाते हुए मनोरंजन करनेवाले इस तरह के उपन्यासों की प्रेरणा रेनाल्डस की ' मिस्ट्रीज ओफ द कोर्ट ओफ लंडन ' जैसी कृतियाँ रही हैं। विठ्ठलदास नागर का 'किस्मत का खेल' या 'मिस जौहरा', प्रेम विलास वर्मा का 'प्रेम माधुरी' या 'अनंगकान्ता' दुर्गाप्रसाद खत्री का 'अद्‌भुत भूत' आदि उपन्यास इस युग के पाठकों का मनोरंजन करते रहे थे।

(४) ऐतिहासिक उपन्यास :

इस युग के कवियों ने ऐतिहासिक घटना और चरित्रों का प्रयोग देश-भक्ति और राष्ट्रीय जागरण के लिए किया था, लेकिन उपन्यासकारों ने उसका प्रयोग मात्र मनोरंजन के लिए किया है। इसलिए इस काल के उपन्यासों में ऐतिहासिक घटनाएँ मात्र बहाने भर के लिए हैं, रहस्य सृष्टि करने के लिए कल्पना का ही बोलबाला रहा था। इस दृष्टि से मूलरूप में ये रचनाएँ भी एक तरह से अद्‌भुत घटना-प्रधान तथा तिलस्मी उपन्यासों की सहोदर ही हैं। किशोरी लाल गोस्वामी इस क्षेत्र के आदर्श रहे थे। 'लवंगलता या आदर्शबाला ' 'ताराबाई वा क्षत्रकुल कमलिनी ','कनक कुसुम वा मस्तानी ','सुल्तान रजिया बेगम वा रंगमहल में हलाहल ','सोना और सुगन्ध वा पन्नाबाई ','मल्लिका देवी वा बंग सरोजिनी','सोने की राख वा पद्मिनी', 'लखनऊ की कब्र वा शाही महल सरा','गुलबहार वा आदर्श भातृस्नेह ','लालकुँवर वा शाही रंगमहल','हिराबाई वा बेहयायी का बोरका' आदि किशोरीलाल गोस्वामी के ऐतिहासिक उपन्यास हैं। इनके अतिरिक्त गंगा प्रसाद गुप्त, जयरामदास गुप्त,हरिचरणसिंह,रूपनारायणसिंह, कार्तिकप्रसाद खत्री, जैनेन्द्र किशोर, विश्वनाथ शर्मा,बलदेव प्रसाद, बलभद्र सिंह आदि लेखकों ने ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं।

(आ) जागरण-सुधारवादी उपन्यास :

(१) सामाजिक उपन्यास :

द्विवेदीकाल की युग-चेतना का सही संवहन करनेवाले उपन्यास मूलतः सामाजिक उपन्यास ही रहे थे। इस तरह के उपन्यासों में सुधारवादी और आदर्शवादी जीवन दृष्टि ही प्रधान रही थी। इन उपन्यासों मे जहाँ एक ओर सामाजिक दुर्गुणों जैसे मद्यपान, वेश्यावृत्ति, जुआ आदि के दुष्परिणामों का चित्रण कर सदाचार का उपदेश दिया है, तो दूसरी ओर विधवा विवाह, नारी-शिक्षा आदि का समर्थन भी किया हैं। साथ ही व्यक्तिगत और सामाजिक आचरण के नैतिक आदर्शों को भी अपने उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत किया था।

मेहता लज्जाराम शर्मा का 'बिगड़े का सुधार' अथवा 'सती सुखदा देवी' उपन्यास में सामाजिक पृष्ठ भूमि में पारिवारिक चित्रण की प्रधानता मिलती है। इस उपन्यास में तत्कालीन सामाजिक तथा पारिवारिक समस्या का निवारण करने का प्रयास किया गया है। उपन्यासकार ने यह मत प्रस्तुत किया है कि यदि स्त्री में सद्गुणों, सद्वर्तन की शक्ति हो तो वह अपने बिगड़े पति को सन्मार्ग पर ला सकती है। तत्कालीन विद्वानों तथा पाठकों में यह उपन्यास बहुत चर्चित रहा।

मेहता लज्जाराम शर्मा ने 'आदर्श हिन्दू' उपन्यास की रचना तीन भागों मे की है। इस उपन्यास का उद्देश्य तीर्थयात्रा के व्याज से सनातन धर्म का निर्देशन करना है। लेखक ने आधुनिक युग में तीर्थयात्रा विषयक उपलब्ध सुख-सुविधाओं का चित्रण किया है। 'आदर्श हिन्दू ' उपन्यास में वेश्या समस्या उठाई गई है, जिन पर परवर्ती उपन्यासों में विशेष रूप से विस्तार हुआ। तत्कालीन युग में उपन्यासकार का दृष्टिकोण रूढ़ीवादी रहा है। उपन्यासकार ने अपने अधिकांश उपन्यासों की तरह वेश्या समस्या का उन्मूलन करने की जगह वेश्यावृत्ति का समर्थन ही किया है। 'आदर्श हिन्दू ' उपन्यास में सामाजिक त्रुटियाँ, परमेश्वर भक्ति और राजभक्ति का उल्लेख है। यहाँ यह भी सिद्ध किया गया है कि कुसंगति और कुशिक्षा से कुलवधू भी पतित होती है। धर्म, कर्म एवं तीर्थयात्रा से सम्बन्धित अन्य कई व्यावहारिक समस्याओं पर लेखक ने समय-समय पर विचार किया है। तीर्थस्थलों पर जो चोरी-डकैती और गुण्डागीरी होती है उसका भी लेखक ने विस्तृत चित्रण किया है। इस उपन्यास में पाश्चात्य तथा भारतीय आचार-विचार और दृष्टिकोण को अनेक जगहों पर दर्शाया है इसमें प्राचीन धर्म की मर्यादा, वर्ण विभाजन तथा पारिवारिक व्यवस्था आदि के औचित्य को चित्रित किया है। इसके साथ ही एक ब्राह्मण परिवार में सनातन

धर्म का दिग्दर्शन, परमेश्वर भक्ति का आदर्श हिन्दूपन का नमूना एवं तत्कालीन समाज की त्रुटियाँ प्रस्तुत की है ।

'ठेठ' हिन्दी का ठाठ' या 'देवबाला' हरिऔधजी का प्रसिद्ध एवं बहुचर्चित उपन्यास है । इस उपन्यास में अनमेल विवाह का दुष्परिणाम दिखाया गया है । यह उपन्यास सामाजिक कथा वस्तु पर आधारित है । इस में हिन्दू परिवारों की कुरीतियों एवं सामाजिक विषमता का विदारक चित्र प्रस्तुत किया गया है । उस उपन्यास का महत्त्व भाषा सम्बन्धी प्रयोग की दृष्टि से कहीं अधिक है । इस उपन्यास में हरिऔधजी ने अनमेल विवाह का विरोध करते हुए हिन्दू परिवार की रूढ़िवादिता को नकारा है । हरिऔधजी का दूसरा उपन्यास 'अधखिला फूल ' ठेठ हिन्दी का ठाठ या देवबाला की भाँति ही अभिव्यक्त प्रेमभावना का आदर्शात्मक है । इस उपन्यास में लेखक ने कर्मकाण्ड तथा अन्धविश्वास का विरोध किया है । साथ ही सत्य, असत्य के प्रति संघर्ष और अन्त में सत्य की विजय एवं असत्य की हार को बताया गया है । लेखक ने कर्मफल में विश्वास किया है और अन्धविश्वास की खिल्ली उड़ाई है । हरिऔधजी के इन दोनों उपन्यासों के बारे में सुषमा प्रियदर्शनी का मत है कि -'' हरिऔधजी के 'ठेठ हिन्दी का ठाठ ' और 'अधखिला फूल' इन दोनों उपन्यासों का महत्त्व भाषा सम्बन्धी प्रयोग की दृष्टि से कहीं अधिक है । 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' में तो लेखक ने संकल्प लेकर ठेठ हिन्दी का प्रयोग किया है । 'अध खिला फूल' में भी छोटे-छोटे तद्भव शब्दों का प्रयोग अधिक मात्रा में किया गया है ।'' [१४] 'अध खिला फूल' उपन्यास समस्याप्रधान सामाजिक उपन्यास है । इस उपन्यास में स्त्रियों के जीवन की अनेक समस्याओं की विवेचना की गई हैं । साधुओं के ढोंग तथा पाखण्डों पर कटु व्यंग्य कसा है ।

किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'चपला' उपन्यास द्विवेदी युग का बहुचर्चित उपन्यास है । 'चपला' उपन्यास को मध्यम वर्ग का महाकाव्य माना जाता है । इस संसार में व्यभिचार, बलात्कार, भ्रष्टाचार तथा मदिरापान के दर्शन होते हैं । जहाँ एक ओर गरीबी तथा बेकारी के कारण घोर निराशा छाई हुई है, वहाँ दूसरी ओर आधुनिक सभ्यता से उद्भवित उच्छृंखलता एवं पशुता का प्राबल्य है । गोस्वामीजी ने 'चपला' उपन्यास में इस सामाजिक अराजकता का उपहास और विरोध किया है । लेखक ने इस उपन्यास में मध्यमवर्गीय समाज का हृदयविदारक चित्रण किया है । उन्हों ने तत्कालीन नवीन समाज का वातावरण अवांछित दिखाया है । इसके साथ ही निम्न मध्यमवर्गीय स्त्रियों के विवाह की समस्या, विधवा जीवन का चित्रण भी किया है । लेखक उपन्यास के अंत में कहते है बुरा कर्म का फल बुरा होता है ।

'माधवी माधव या मदन मोहिनी' उपन्यास में गोस्वामीजी ने बड़े घर की विधवाओं की उत्कट वासना, गुप्त प्रेम एवं गर्भपात का चित्रण करके क्रुर तथा सत्य बोलने का साहस किया है । वे कहते हैं कि सभ्य समाज भ्रूण हत्या के लिए शर्मिन्दा नहीं होता परन्तु विधवा विवाह का विरोध करता है । इससे व्यभिचार को बढ़ावा मिलता है । ये उच्च वर्ग के नैतिक पतन पर क्षोभ और घृणा प्रकट करते हैं । गोस्वामीजी ने इस उपन्यास द्वारा धर्म से धर्म, काम से काम और मोक्ष से मोक्ष तीनों की सिद्धि दिखाने का प्रयास किया है । सभी पात्रों का विवाह धर्म के अनुसार होता है । लेखक ने इन आदर्श पात्रों के विवाह में बाधा डालनेवाले अधर्मी पात्रों का दुःखद अन्त दिखाकर धर्म एवं नीति की श्रेष्ठता प्रमाणित की है ।

इसके अतिरिक्त सामाजिक उपन्यासकारों में मन्नन द्विवेदी कृत 'रामलाल', 'कल्याणी',गोपालराम गहमरी का 'बड़ा भाई ','देवरानी-जिठानी', 'दो बहनें ' कमला प्रसाद का 'कुल कलंकिनी' लोचनप्रसाद पाण्डेय का 'दो मित्र ', रामजीदास वैश्य का 'सती', बलदेव प्रसाद मिश्र का 'संसार' ईश्वर प्रसाद मिश्र का 'हिरण्यमयी', 'स्वर्णमणी' द्वारकादास चतुर्वेदी का 'सावित्री सत्यवान' आदि उपन्यासकार तथा उनके उपन्यास महत्त्वपूर्ण हैं । इन सभी सामाजिक उपन्यासों में तत्कालीन सामाजिक प्रवृत्तियाँ धर्म की जय, नवीनता का समर्थन या विरोध, आदर्श आचरण का महत्त्व, सतीत्त्व की महीमा, ईश्वरीय न्याय में विश्वास, अन्ध विश्वासों का परित्याग, राष्ट्रप्रेम आदि का चित्रण किया गया हैं ।

(इ) अनूदित उपन्यास :

द्विवेदी युग में हिन्दी उपन्यास मौलिक साहित्य रचना के साथ-साथ अनूदित साहित्य के क्षेत्र में भी क्रियाशील रहा । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय से ही हिन्दी उपन्यासों के अनुवाद की परम्परा आरम्भ हो गई थी । सन् १९०१ ई. से लेकर लगभग दो शताब्दियों तक अंग्रेजी, बँगला, उर्दू, मराठी आदि भाषाओं से अनेक उपन्यास हिन्दी भाषा में अनूदित किये गये । अंग्रेजी और बँगला के उपन्यासों के अनुवाद काफी मात्रा में हुए , लेकिन इन में से अधिकांश अनुवाद कौतुहल, रहस्य और रोमांच प्रधान उपन्यासों के ही हुए हैं । अंग्रेजी के 'लब्ज ऑफ द हेयर ' 'राबिन्सन क्रुसो','ला मिजरेबुल' 'अंकल टाम्स के बिन' जैसी रचनाओं के अनुवाद हुए हैं । बँगला से दामोदर मुखोपाध्याय, बंकिमचन्द्र, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, रमेशचन्द्र दत्त के उपन्यासों के अनुवाद हुए हैं । इस प्रकार से द्विवेदी-युग में मौलिक तथा अनुवादित साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय गतिशीलता रही हैं । तिलस्मी, जासूसी, ऐतिहासिक, पौराणिक एवं सामाजिक आदि औपन्यासिक प्रवृत्तियों का द्विवेदी युग में समान रूप से

विकास हुआ है । भारतेन्दु युग की भाँति द्विवेदी युग के अधिकांश उपन्यास मनोरंजन तथा समाज सुधार के उद्देश्य से लिखे गए हैं ।

द्विवेदी युगीन उपन्यासों की महत्त्वपूर्ण परम्परा जिसने आगे चलकर प्रेमचन्द की औपन्यासिक कृतियों के लिए पृष्ठभूमि प्रस्तुत की वह सामाजिक उपन्यासों की ही हैं । इस युग के सामाजिक उपन्यासों का उद्देश्य समाजसुधार था । प्रसिद्ध उपन्यासकार प्रेमचन्द भी इसी उद्देश्य से प्रेरित थे । प्रेमचन्द के 'प्रेमा', 'रूठी रानी ' और 'सेवा सदन' उपन्यास द्विवेदी-युग में ही प्रकाशित हुए । इन तीनों उपन्यासों में समाज की प्रवृति प्रमुख है, जिसके द्वारा हिन्दी उपन्यास जगत को समृद्धि प्राप्त हुई ।

आधुनिक गद्य के निर्माता आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी माने जाते हैं । उन्होंने गद्य साहित्य की चेतना की भाषा, विषयवस्तु को गति तथा परम्परावादी एवं कई प्रचलित रूढ़ियों की जगह पर परिष्कृत स्थिरता का प्रौढ आधार प्रदान किया । उन्होंने अपने युग की सामाजिक मान्यताओं से साहित्यिक आदर्शवाद स्थिर किया । उन्होंने अपनी आदर्शवादी व्यवस्थाओं में आदर्श तथा सत्य को दृष्टि में रखकर मौलिक साहित्य रचना का नियमन किया । उसका आदर्शवाद समाज की सुधारवादी रीतियों का समर्थन करता रहा ।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि द्विवेदी काल में सामाजिक उपन्यास ही महत्त्वपूर्ण रहे हैं ।

३. प्रेमचन्द युगीन उपन्यास ः

भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग में उपन्यास साहित्य की सशक्त, प्रेरणादायिनी एवं स्फूर्तिदायिनी परम्परा सामाजिक जागृति के वाहक उपन्यासों की ही मानी जा सकती हैं । इन्हीं उपन्यासों ने 'सेवासदन' की रचना की पृष्ठभूमि प्रस्तुत की । प्रेमचन्द के आगमन के साथ हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक नवीन युग का आरम्भ हुआ, प्रेमचन्द इस नवीन युग चेतना के अग्रदूत बने । इस युग ने भारतीय राजनीति तथा हिन्दी उपन्यास को एक मोड़ दिया ।

प्रेमचन्द युगीन साहित्य इतिहास की प्रेरणाओं तथा राजनीतिक समस्याओं से ओतप्रोत हैं । प्रेमचन्द युग प्रधानतः राजनितिक क्षेत्र में उथल-पुथल का युग था । प्रेमचन्द के हिन्दी साहित्य क्षेत्र में प्रवेश करते ही 'जलियाँवाला बाग' की घटना घटी

और सत्याग्रह के रूप में विदेशी शक्ति के विरूद्ध एक विशाल आन्दोलन प्रारम्भ हुआ । इसका परिणाम यह हुआ कि गतिरोध शक्तियों को प्रश्रय दिया गया तथा सामंती युग के अवशेष रायबहादुरों, नवाबजादों के प्रयत्न से हिन्दू-मुस्लिम दंगों के रूप में जातीय विद्वेष की भूमि निर्माण की गई । प्रेमचन्द ने इसी पृष्ठभूमि को लेकर 'कायाकल्प' उपन्यास की रचना की । उपन्यासकार ने इस उपन्यास में यह स्थापित किया कि जातीय विद्वेष की जड़ें देश की संस्कृति में नहीं, विदेशी कूटनीति में हैं ।

सन् १९२३-२४ ई. में उत्तरप्रदेश के किसानों ने प्रथम 'किसान आन्दोलन' चलाया परन्तु राष्ट्रीय कांग्रेस ने उसे विशेष मान्यता नहीं दी । इस आन्दोलन की जड़ें समाज के निचले स्तर तक गाँवो में भी फैल गई । ब्रिटिश सरकार ने किसानों से समझौता किया और जनशक्ति को कुंठित करने में सफलता प्राप्त हुई । हमारे नेता सत्य और अहिंसा से बंधे होने के नाते, सरकार की इस चाल को नहीं समझ पाए । प्रेमचन्द में भी इसकी प्रतिक्रिया हुई और परिणाम यह हुआ कि उन्होंने समझौता तथा आदर्श को त्याग दिया और क्रान्ति एवं यर्थाथ की भूमि पर उतर आए । 'गोदान' की नवीन जागरूक दृष्टि इसी परिवर्तन की ओर संकेत करती हैं ।

प्रेमचन्द सन् १९३१ ई. में 'गबन' उपन्यास के माध्यम से व्यंग्य स्वर में पहले भी जागरूकता दिखला चूके थे, लेकिन उपन्यास के पात्र मध्यम वर्गीय थे, ग्रामीण नहीं । ग्राम तथा ग्रामीण पात्रों को अपने उपन्यास में ध्वंसमान दिखाकर उपन्यासकार प्रेमचन्द सुधार की भूमि को त्यागकर विद्रोह की सत्यता पर उतर आए दिखाई देते हैं । इस सम्बन्ध में डॉ. बेचेन का मत है कि-''प्रेमचन्द युग में हिन्दी उपन्यास ने पहली बार सामाजिक चरित्रों के विभिन्न पहलूओं से अपना सम्बन्ध जोड़ा और चरित्र विश्लेषण में भाषा की आलंकारिता और कल्पना की रंगीनी के स्थान पर सत्य की नई अपराजित आभा ने प्रवेश किया ।''[१५]

प्रेमचन्द युग में तत्कालीन राजनीतिक तथा सामाजिक स्थितियों का सर्वांगीण चित्र उपस्थित किया गया है । प्रेमचन्द युग आते-आते हिन्दी उपन्यास को कल्पना, रोमान्स, ऐयारी, तिलस्मी, जासूसी तथा ऐतिहासिक भूमिका प्राप्त हो चुकी थी । तत्कालीन संघर्षशील सामाजिक चेतना को नवीन अभिव्यक्ति माध्यमों की आवश्यकता थी और समुची चेतना की अभिव्यक्ति उपन्यास द्वारा ही सम्भव थी । इसी के फलस्वरूप हिन्दी उपन्यास का विकास हुआ ।

प्रेमचन्दजी ने हिन्दी उपन्यास को प्रथम बार जनजीवन से संपृक्त किया, तो

दूसरी ओर उपन्यास विधा को गम्भीरता और गुश्चता प्रदान की। प्रेमचन्द पूर्व उपन्यास मात्र मनोरंजन का खिल्लौना था। प्रेमचन्द ने उसे जीवन के आदर्श और यर्थाथ का दस्तावेज बनाया।'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि', 'कायाकल्प', 'निर्मला','प्रतिज्ञा','गबन','गोदान'उपन्यास प्रेमचन्द की सम्पदा हैं,जिसने इस कालखण्ड को ही नहीं सम्पूर्ण आधुनिक उपन्यास साहित्य को गरिमा प्रदान की हैं।

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों के माध्यम से अपने युग की प्रायः सभी समस्याओं का चित्रण किया हैं। 'सेवासदन' उपन्यास में मध्य वर्ग की विडम्बना का चित्रण है। प्रेमचन्द की औपन्यासिक प्रतिभा का चरमबिन्दु 'गोदान' है। यह भारतीय किसान की मर्मान्तक पीड़ा का सशक्त दस्तावेज हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों पर गाँधीवादी दर्शन का पर्याप्त प्रभाव देखा जा सकता है। उनके अधिकतर उपन्यासों में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के दर्शन होते हैं, लेकिन 'निर्मला' और 'गोदान' में वे पूरी तरह से यथार्थवादी रहे हैं।

मुन्शी प्रेमचन्द वस्तुतः हिन्दी के युग प्रवर्तक और अमर कलाकार थे। उनसे पूर्व हिन्दी उपन्यास सर्वथा अविकसित था। उसमें तिलस्मी,जासूसी और ऐयारी कथाओं की ही प्रधानता रहती थी,किन्तु प्रेमचन्दजी ने उपन्यास साहित्य को मानवीय जीवन के निकट ला दिया और उसमें तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं का चित्रण किया। प्रेमचन्द के उपन्यास तत्कालीन संघर्षमय जीवन और समाज के प्रतिबिम्ब हैं। इसकी सबसे पुरानी रचना एक छोटा उर्दू उपन्यास है। इस उपन्यास के बारे में प्रेमचंदजी ने कहा -" 'अररा से मआबिद' जो अब हिन्दी में 'देवस्थान-रहस्य' के नाम से उपलब्ध है। यह छोटा उपन्यास बनारस के एक उर्दू साप्ताहिक में सन् १९०३ ई. के अक्टुबर महिने से १९०५ ई. तक धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ था।"[१६] यह उपन्यास एक मठ के महन्त की सुरा-सुन्दरी में आकंठ डूबी हुई, रंगरेलियों से भरी जिन्दगी का पर्दाफाश करता है।

प्रेमचन्द का दूसरा उपन्यास 'हमखुर्मा ओ हम सबाब' (हिन्दी मे 'प्रेमा') है। जिसका प्रकाशन सन् १९०४ ई. में हुआ था। इस में विधवा स्त्री के साथ किये समाज के अन्याय और अत्याचार को साफ-साफ रेखांकित करते हैं। जो विधवा स्त्री भले नवयुवती क्यों न हो ? लेखक उनके पुनर्विवाह का निषेध करता है। हिन्दू समाज का और उसमें भी विशेष रूप से सवर्ण हिन्दू समाज का यह एक भयंकर अभिशाप हैं। इस उपन्यास के द्वारा लेखक इस बात को पाठकों के सामने रखते हैं ।

प्रेमचन्द का तीसरा छोटा उपन्यास 'जल्वए ईसार' (हिन्दी में 'वरदान') जो सन् १९१२ ई. में प्रकाशित हुआ। इसमें जनता की सेवा को सच्चे हृदय से समर्पित एक स्वामीजी की कहानी है। जो हमारे भारतीय गाँवों की गरीबी और गन्दगी, अज्ञान, अन्धविश्वासों को खूब गहराई में जाकर बड़े प्रामाणिक ढंग से उजागर करती है।

प्रेमचन्द का चौथा उपन्यास 'बाजारे हुस्न ' (हिन्दी में 'सेवासदन') जो सन् १९१८ ई. में प्रकाशित हुआ। इसमें एक ऐसी अभागिनी विवाहित स्त्री की कहानी है, जो अपने पति के अत्याचार से त्रस्त होकर अपना घर छोड़ने पर विवश होती है और अन्ततः एक वेश्या के कोठे पर पहुँच जाती है।

प्रेमचन्द का पाँचवा उपन्यास 'गोअए आफियत ' (हिन्दी मे 'प्रेमाश्रम') जो सन् १९२२ ई. में प्रकाशित हुआ। इस में जमींदार द्वारा किसानों के अमानुषिक शोषण की कहानी है।

प्रेमचन्द का छठवाँ उपन्यास ' चौगाने हस्ती '(हिन्दी में 'रंगभूमि') जो सन् १९२५ ई. प्रकाशित हुआ। इसमें एक अन्धे किसान सुरदास की कहानी है। एक पूँजीपति सिगरेट का कारखाना डालने के लिए उसकी जमीन को हथियाना चाहता है। सुरदास का विश्वास है कि वहाँ पर उस कारखाने के खूलने से वहाँ के लोगों पर बहुत घातक नैतिक प्रभाव पड़ेगा और वह यह जानते हुए कि उस पूँजीपति के मुकाबले में वह हर तरह से बहुत कमजोर है। वह अपनी जमीन की रक्षा के लिए अहिंसक ढंग से संघर्ष करता है और अन्ततः अपने प्राणों की बली चढा देता है।

प्रेमचन्द का सातवाँ उपन्यास 'पईए मजाज ' (हिन्दी में 'कायाकल्प') जो सन् १९२७ ई. मे ं प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास को उपर से देखने पर लगता है कि इसमें पुनर्जन्म की कहानी हैं, पर असलियत में वह राजनीतिक नेताओं के उस पुनर्जन्म और कायाकल्प की कहानी है , जो धारासभाओं में पहुँचकर बिलकुल स्वार्थी, लोभी झूठे और प्रपंचक बन जाते हैं।

प्रेमचन्द का आठवाँ उपन्यास 'निर्मला' जो 'चाँद' नामक पत्रिका में नवम्बर १९२५ ई. से नवम्बर १९२६ ई. तक धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ था। 'निर्मला' उपन्यास पुस्तकाकार रूप में सन् १९२७ ई. में छपा था । इस उपन्यास में दहेज की बड़ी रकम न चुकायी जा सकने के कारण एक जवान लड़की की एक बूढ़े आदमी के साथ शादी का वर्णन है। इस उपन्यास में अनमेल विवाह और उसके दुष्परिणामों की कश्रण कहानी है।

प्रेमचन्द का नवाँ उपन्यास 'गबन' सन् १९३१ ई. में प्रकाशित हुआ था । इसमें एक ओर भारतीय स्त्रियों की विनाशकारी आभूषण वासना की कहानी है, तो दूसरी ओर साधारण मध्यम वर्ग के लोगों की दुर्भाग्यपूर्ण प्रदर्शन प्रिय मानसिकता की स्थिति का वर्णन है । मध्यम वर्गीय स्त्री अपनी सच्ची विपन्न आर्थिक स्थिति को छिपाकर अपने को बहुत सम्पन्न दिखलाने में व्यस्त होती है । लेखक ने इसका चित्रण उपन्यास की स्त्री पात्र 'जालपा' के द्वारा किया है ।

प्रेमचन्द का दसवाँ उपन्यास उर्दू में 'मैदाने अमल' जो हिन्दी में 'कर्मभूमि' नाम से प्रकाशित हुआ था । 'कर्मभूमि' सन् १९३२ ई. में प्रकाशित हुआ था । इस उपन्यास में देश के समसामयिक स्वाधीनता आन्दोलन की कहानी चित्रित है । जिसमें उपन्यासकार ने गहराई से पैठकर उसका सामाजिक विश्लेषण किया है ।

प्रेमचन्द का ग्यारहवाँ उपन्यास उर्दू में 'गऊदान' जो हिन्दी में 'गोदान' नाम से सन् १९३६ ई. में प्रकाशित हुआ । यह प्रेमचन्द की अमर कृति है । इस उपन्यास की गणना विश्व के श्रेष्ठ उपन्यासों में की जाती है । इस उपन्यास की केन्द्रीय कहानी गाँव की है । इसी कहानी में सीधे सादे नेक किसान को जमींदार , महाजन और पटवारी जैसे महारथी शोषकों के चक्रव्यूह में फँसकर अपने विनाश तक पहुँचते देखता है । यहाँ तक कि आखिरकार होरी एक दिन अपनी किसान की मरजाद खोकर कुल्ली, मजदूर की तरह सड़क पीटते-पीटते सड़क पर ही दम तोड़ देता है ।

'मंगलसूत्र' प्रेमचन्द का अन्तिम और अधूरा उपन्यास है । जो प्रेमचन्द के देहान्त के बरसों बाद प्रकाशित हुआ । इस उपन्यास के सम्बन्ध में अमृतराय का मत है -'' मंगलसूत्र उपन्यास को लेखक के सामाजिक विश्वासों का आखिरी दस्तावेज समझना चाहिए , जिसमें उसने वर्ग समाज में सत्य और न्याय की धारणा के सम्बन्ध में विचार किया है ।''[१७]

वास्तव में प्रेमचन्द ने ही भारत की सही नब्ज को पहचाना । प्रेमचन्द के सम्बन्ध में हजारी प्रसाद द्विवेदी की विचारधारा है कि -'' प्रेमचन्द शताब्दियों से पददलित, अपमानित और निष्प्रेषित कृषकों की आवाज थे, पर्दे में कैद , पद-पद पर लांछित असहाय नारी जाति की महिमा के जबरदस्त वकील थे । अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार-विचार,भाषा-भाव, रहन-सहन ,आशा-आकांक्षा, दुःख-सुःख और सूझ-बूझ जानना चाहते हैं तो प्रेमचन्द से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता '' [१८] झोंपडियों से लेकर महलों तक, खोमचेवालों से लेकर बैंकों

तक, गाँव से लेकर धारासभाओं तक आपको इतने कौशलपूर्ण और प्रामाणिक भाव से प्रेमचन्द के अलावा कोई नहीं ले जा सकता । आप बेखटके प्रेमचन्द का हाथ पकड़कर मेड़ों पर गाते किसानों को, अन्तःपुर में मान किये बैठी प्रियतमा को, कोठे पर बैठी वारवनिता को, रोटियों के लिए ललकते हुए भिखमंगों को, ईर्षा परायण प्रोफेसरों को, ढोंगी पण्डितों को , फरेबी पटवारी को देख सकते हैं और निश्चिंत होकर विश्वास कर सकते हैं कि जो कुछ आपने देखा वह गलत नहीं है । इस से अधिक सच्चाई से दिखा सकनेवाला परिदर्शक को अभी हिन्दू-उर्दू की दुनिया नहीं जानती ।

प्रेमचन्द ने अतीत दर्शन का पुराना राग नहीं गाया, और न भविष्य की हैरत अंग्रेज कल्पना ही की । वे ईमानदारी के साथ अपनी वर्तमान व्यवस्था का विश्लेषण करते रहे ।

प्रेमचन्द की मान्यता है कि कोई भी मनुष्य सदा बुरा नहीं रहता । वह मनुष्य को 'कु' ओ 'सु' का समन्वित रूप मानते हैं । वह कुप्रवृत्तियाँ दूर करने की उसकी शक्ति में तथा उसके हृदय-परिवर्तन में विश्वास करते हैं । प्रेमचन्द के उपन्यासों का अत्यन्त गहन अध्ययन, विश्लेषण, चिन्तन, मनन और परिक्षण हुआ । फलतः उनकी उपलब्धियों और सीमाओं को दर्शानेवाला साहित्य प्रकाश में आया । डॉ. सुरेश सिन्हा की मान्यता है कि-''वस्तुतः सहानुभूति प्रेमचन्द की सबसे बड़ी विशेषता है, जिसने उनके चारित्रिक निर्माण को सजीव एवं संवेदनशील बनाया । ''[१९] प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों मे जिस दर्शन का परिचय दिया, वह आदर्शोन्मुख यथार्थवाद है । प्रेमचन्द का मानना है कि किसी भी श्रेष्ठ कृति के लिए यर्थाथ और आदर्श दोनों अनिवार्य हैं । प्रेमचन्द युग के उपन्यासों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जाता हैं -

१. सामाजिक उपन्यास
२. ऐतिहासिक उपन्यास
३. मनोवैज्ञानिक उपन्यास

(१) सामाजिक उपन्यास :

सामाजिक उपन्यास समाज मंगल की भावना से प्रेरित होकर लिखे गए। ऐसे उपन्यासों से यह अपेक्षा रहती है कि वे समाज द्वारा निर्दिष्ट मूल्यों की रक्षा करने का प्रयत्न करे । इस युग के प्रमुख सामाजिक उपन्यासकार - प्रेमचन्द, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', जयशंकर प्रसाद , सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', भगवतीचरण वर्मा आदि प्रमुख हैं ।

प्रेमचन्द के उपन्यास 'सेवासदन' से ही हिन्दी उपन्यास साहित्य में युगान्तकारी मोड़ आया और प्रेमचन्द युग-प्रवर्तक सिद्ध हुए । उनकी कला का धीरे-धीरे विकास हुआ । इसलिए उनकी आरम्भ में जो आदर्शवादी आश्रम और सदनवादी धारणा थी, उसमें बाद के उपन्यासों में परिवर्तन हुआ । उनके उपन्यासों में अनेक नारी-समस्याएँ निरूपित हुई जैसे ...वेश्या समस्या, विधवा विवाह, अनमेल विवाह, आभूषणप्रियता आदि... । प्रेमचन्द ने आम आदमी की शोषण सम्बन्धी समस्याओं को भी व्यापक फलक प्रदान किया । उन्होंने साहित्य के माध्यम से राष्ट्रीय आन्दोलन को गति देने का बीड़ा उठाया था । अतः उनके उपन्यासों में अहिंसात्मक आन्दोलन, सत्याग्रह, साम्प्रदायिक सद्भाव आदि का वर्णन अनेक रूपों में परिलक्षित होता है ।

आगे प्रेमचन्द के सारे उपन्यासों का विस्तृत विवेचन किया जा चुका है उसके आधार पर कह सकते है कि प्रेमचन्द ने समाज के उपेक्षित एवं शोषित अंगों को अपनी भरपूर सहानुभूति प्रदान की और उनके प्रति पाठकों के मनमें करुणा जगाने में सफलता प्राप्त की थी । प्रेमचन्द की दृष्टि में किसान की दयनीय अवस्था के लिए न केवल उसकी साधनहीनता जिम्मेदार है, अपितु झूठी मर्यादाओं का पालन,रीति-रिवाजों का सम्मोहन, ऋण लेने की आदत भी जिम्मेदार है । 'गोदान' में शोषण की बुराई का व्यापक चित्रण किया गया है । प्रेमचन्द ने 'गोदान' में भारतीय कृषक की पतनोन्मुख स्थिति के लिए विभिन्न शोषक वर्गों के साथ ही समाज की रूढियों, अन्धविश्वासों तथा दुराग्रहों को भी उत्तरदायी सिद्ध किया हैं । प्रेमचन्द युग के ही नहीं समूचे हिन्दी उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में वे सर्वोत्कृष्ट उपन्यासकार माने जाते हैं ।

प्रेमचन्द युग के प्रमुख उपन्यासकारों में विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है । कौशिकजी ने अनेक औपन्यासिक रचनाओं का सृजन किया, जिनमें सन् १९१९ ई. में प्रकाशित 'गल्पमन्दिर' , सन् १९२४ में प्रकाशित 'चित्रकला' (दो भाग), सन् १९२८ ई. में प्रकाशित 'भीष्म', सन् १९२९ ई. में प्रकाशित 'मणिमाला' ,'माँ' तथा 'भिखारिणी' और सन् १९४२ में प्रकाशित 'पेरिस की नर्तकी' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । कौशिकजी के दो महत्त्वपूर्ण उपन्यास 'माँ' और 'भिखारिणी' को सामाजिक उपन्यास की श्रेणी के भीतर रखा जाता है । इन दोनों उपन्यासों में यथार्थ और आदर्श का एक विशिष्ट सम्मिश्रण दिखाई देता है जो समाज सुधार एवं नवजागरण की चेतना को प्रकट करते हैं । कौशिकजी अपने उपन्यासों के माध्यम से मध्यम वर्गीय समाज के नैतिक मूल्यों को व्यक्त करते हैं, जिनमें वैवाहिक सम्बन्धों के प्रति पतिव्रतावादी दृष्टिकोण, घरमें पति का महत्त्वपूर्ण स्थान एवं उनका

एकमात्र अधिकार, पुत्री की उपेक्षा पुत्र पाने की प्रबल इच्छा, भाग्यवाद में अटूट विश्वास आदि । उनके दोनों उपन्यास 'माँ' और 'भिखारिणी' में अधिकांश आदर्शवादी तत्त्व दिखाई देते हैं ।

पाण्डेय बेचेन शर्मा 'उग्र' प्रेमचन्द युग के महत्त्वपूर्ण उपन्यासकार है । इन्होंने अपनी कृतियों में देश की विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिए गाँधीवादी सुझावों का प्रतिपादन किया है । स्वदेश प्रचार,दलितोद्धार, सामाजिक समस्याओं का निराकरण, सत्यनिष्ठा, स्वदेश-प्रेम, अहिंसा और सामाजिक सुधार आदि सिद्धान्तों को उग्रजी ने महात्मा गाँधी से ही ग्रहण किये हैं । उग्रजी का पहला उपन्यास सन् १९२३ में अन्तिम उपन्यास १९६३ प्रकाशित हुआ । इन चालीस वर्ष की अवधि में उग्रजी ने 'चन्द हसीनों के खतूत', 'बुधुआ की बेटी ', 'दिल्ली का दलाल ', 'शराबी','सरकार तुम्हारी आँखों में' आदि...... शीर्षक के दस उपन्यास हिन्दी जगत को प्रदान किये । उग्रजी ने अपने उपन्यासों में यथार्थ चित्रण के साथ-साथ विचारों के प्रस्तुतीकरण को माध्यम भी बनाया । इनके साथ ही इनके उपन्यासों की कथावस्तु में भारतीय समाज के भीतर छिपी हुई, वेश्यालयों मदिरालयों तथा घृणित वृत्तियों आदि से सम्बन्धित यर्थाथपरक सुत्रों की प्रमुखता दिखाई देती हैं । उग्रजी ने 'चन्द हसीनो के खतूत' उपन्यास के माध्यम से तत्कालीन समय की ज्वलंत समस्या हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला है ।'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में अस्पृश्यता,अधार्मिक, अनैतिक, अतार्किक एवं अमानवीय रूप को ही उपन्यासकार ने सशक्त रूप में चित्रित किया है । हिन्दी उपन्यास जगत में अछूतोद्धार के प्रश्नों को लेकर लिखे उपन्यासों में 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास का स्थान सर्वश्रेष्ठ है ।

सामाजिक उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद भी उल्लेखनीय है । प्रसाद काव्य और नाटक में संस्कृत निष्ठ भाषा का प्रयोग करते हैं, किन्तु उपन्यासों में आम बोलचाल की चुस्त और प्रवाहपूर्ण हिन्दी का प्रयोग करते हैं, जिससे सिद्ध होता है कि वह उपन्यास को आम लोगों का साहित्य मानते थे । उन्हों ने इन उपन्यासों में व्यक्तिवादी स्वरों को प्रमुखता दी । उन्हों ने समाज की कहीं-कहीं कटु आलोचना भी की है । वह 'कंकाल' उपन्यास के माध्यम से देश के सामाजिक गठन पर गहरी चोट करते हैं ।

प्रेमचन्द युग के सामाजिक उपन्यासकारों में निराला का स्थान भी महत्त्वपूर्ण है । उनका भले ही सामाजिक दृष्टिकोण बहुत उदार था ,पर सांस्कृतिक क्षेत्र में वह भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता पर मुग्ध थे । उनके उपन्यासों में 'अलका', 'अप्सरा',

'निरूपमा' प्रमुख हैं । इन तीनों में से निरूपमा उपन्यास, उपन्यास कला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं ।

सामाजिक उपन्यासकारों में भगवतीचरण वर्मा का नाम भी विशेष महत्त्व रखता है । भगवतीचरण वर्मा का 'चित्रलेखा' उपन्यास अपने युग में अत्यन्त लोकप्रिय नहीं रहा, अपितु आज भी वह अपनी लोकप्रियता बनाये हुए हैं । यह उपन्यास अनेक भारतीय और विदेशी भाषाओं मे अनूदित हो चुका हैं । इस उपन्यास में पाप और पुण्य को वैयक्तिक दृष्टि से परिभाषित किया गया है । इस में प्रवृत्तिमूलक और निवृत्तिमूलक जीवन का व्यापक चित्रण हुआ है ।

(२) ऐतिहासिक उपन्यास :

प्रेमचन्द युग के उपन्यासकार राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रभावित थे । प्रेमचन्द सामाजिक उपन्यासों के माध्यम से राष्ट्रीय आन्दोलनों को बल दे रहे थे, तो वृन्दावनलाल वर्मा ऐतिहासिक उपन्यासों के माध्यम से पाठकों को गौरवपूर्ण अतीत की याद दिला रहे थे । इस युग में सच्चे अर्थों में ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की शुरूआत वृन्दावनलाल वर्मा ने ही की थी । वे ऐतिहासिक तथ्यों की रक्षा के लिए सचेत रहे । ऐतिहासिक उपन्यास के सम्बन्ध में वृन्दावनलाल वर्मा का विचार है कि- '' मैं तथ्य का उपासक हूँ। तथ्य को सर्जनात्मक ढंग से प्रस्तुत करना मैं सत्य की पूजा और कला को प्राण समझता हूँ।''[२०] वर्माजी ने इस युग में दो ऐतिहासिक उपन्यास लिखे - 'गढ कुण्डार' और 'विराटा की पद्मिनी ' । ऐतिहासिक उपन्यास की आरम्भिक अवस्था के परिचायक ये दोनों उपन्यास लेखक के इतिहास प्रेम को प्रकट करते हैं । प्रेमचन्द युग में सही ऐतिहासिक उपन्यासों का सृजन आरम्भ हुआ, उसका उत्कर्ष परवर्ती युग में दिखाई देता है ।

(३) मनोवैज्ञानिक उपन्यास :

मनोविज्ञान पर लिखे गये ग्रथों में वर्णित घटनाओं के आधार पर निर्मित सिद्धान्तों की जानकारी का परिचय देने के लिए कथा-साहित्य की सृष्टि करने का बीड़ा इलाचन्द्र जोशी ने उठाया था । इसके बारे में शिवनारायण श्रीवास्तव ने कहा कि- '' हिन्दी उपन्यास में मनोविश्लेषण प्रणाली के प्रथम प्रयोक्ता इलाचन्द्र जोशी ही हैं । ''[२१] इलाचन्द्र जोशी अपने पहले उपन्यास 'लज्जा' (१९२९) से ही चर्चित हो गए । इसमें यौवनकाल की दमित यौन भावना को उपन्यास का विषय बनाया गया है ।

मानवमन की जटिलताओं पर आधृत जैनेन्द्र कृत 'परख' (१९२९) बालविधवा की करुण गाथा है । इस कृति पर शरत्चन्द्र का प्रभाव परिलक्षित किया जा सकता है । प्रेमचन्द युग के अन्तिम वर्षों में जैनेन्द्र ने 'सुनीता' उपन्यास लिखकर हिन्दी उपन्यास में मनोवैज्ञानिक तत्त्वों की प्रतिष्ठा की । जैनेन्द्र ने 'परख' नामक उपन्यास 'सुनीता' से पहले लिखा था पर उनकी इस युग में कीर्ति का आधार 'सुनीता' उपन्यास ही है । 'सुनीता' उपन्यास में क्रान्तिकारी आन्दोलन की यथार्थता सिद्ध कर गाँधीवाद की प्रतिष्ठा का संदेश दिया है । इस उपन्यास का प्रतिपाद्य और शिल्प दोनों गर्म-गर्म बहस के विषय बने । उपन्यास में स्वल्प-सा कथानक और पात्र केवल चार-पाँच हैं, जो लेखक की विशिष्ट प्राप्ति के लिए पर्याप्त हैं ।इस उपन्यास के सम्बन्ध में जैनेन्द्र की मान्यता है - '' पुस्तक में मैंने कहानी कोई लम्बी-चौड़ी नहीं कही है । कहानी सुनाना मेरा उद्देश्य भी नहीं है ।''[२२] जैनेन्द्र का उद्देश्य मानव मन में उठनेवाले छोटे-छोटे भावों और विचारों का अंकन करना है । इसी कारण से उन्होंने स्वल्प सी कथा का अंकन किया है । यदि 'सुनीता' उपन्यास में अधिक पात्र होते तो सबका मानसिक विश्लेषण करना कठिन हो जाता । जैनेन्द्र के उपन्यासों के लिए शिवनारायण श्रीवास्तव लिखते हैं - '' परम्परा प्राप्त सामाजिक नैतिकता के स्थान पर मानव भावनाओं एवं आचरणों को इन्हों ने अधिक उदार तथा मानवीय दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया और अपने अनुपम वर्णन-कौशल और सामाजिक दृष्टि से पतित पात्रों को भी एक अनोखी गरिमा प्रदान कर पाठक की स्नेह सहानुभूति का अधिकारी बनाया ।''[२३]

उपर्युक्त विवेचन से निष्कर्ष यह प्राप्त होता है कि प्रेमचन्द काल हिन्दी उपन्यास का स्थापना काल है । यह नयी-नयी औपन्यासिक शैलियों के आविष्कार का काल खण्ड सिद्ध हुआ । प्रेमचन्द ने हिन्दी के सामाजिक उपन्यास को शैशव अवस्था से प्रौढ अवस्था तक पहुँचाया । इस युग में उपन्यास हमारे जीवन का यथार्थ प्रतिबिम्ब बना । उपन्यास में केवल मध्यम वर्ग का ही चित्रण नहीं हुआ, अपितु किसान -मजदूर आदि आम आदमी का भी निरूपण हुआ । इस युग में हाड़-माँस के जीवन्त पात्रों की अवतारणा हुई, और होरी, धनिया, सुनीता जैसे जीवन्त पात्रों की भी सृष्टि हुई । हिन्दी का सामाजिक उपन्यास उत्कर्ष के शिखर पर पहुँचा, जब कि मनोवैज्ञानिक और ऐतिहासिक उपन्यास अपनी आरम्भिक अवस्था में थे, पर उनके विकास की संभावनाएँ दिखाई देने लगी थी ।

प्रेमचन्द तथा उनके समकालीन उपन्यासकारों ने हिन्दी उपन्यास को विशाल रूप प्रदान किया है । प्रेमचन्द युगीन लेखकों ने जीवन के प्रति एक नया

दृष्टिकोण अपनाया,जो मूलतः मानवता पर आधारित था । इस काल के उपन्यासों में महलों से लेकर छोटे-छोटे देहातों तक, राजाओं से लेकर भिखारियों तक, गर्वनर से लेकर पटवारी, पुलिस तक , ब्राह्मणों से लेकर अछूतों तक, पूँजीपतियों से लेकर मजदूर तक सभी की समस्याओं को अभिव्यक्ति मिली । भारतीय समाज के विभिन्न वर्ग शहर तथा देहाती समाज की विविध समस्या, धार्मिक, कर्मकाण्ड एवं पाखण्ड, सामाजिक कुरीतियों में वेश्यावृत्ति की भयानकता, अछूत समस्या, दहेज की कु प्रथा, स्त्री समस्याओं के विभिन्न पहलूओं - अनमेल विवाह, विधवाओं की समस्या के साथ ही साथ राजनैतिक स्वतंत्रता, सशस्त्र क्रान्ति की समस्या, हिन्दू-मुस्लीम साम्प्रदायिक एकता, अहिंसा का व्यावहारिक रूप, नीति एवं असहयोग आन्दोलन से सम्बन्धित इत्यादि विचार प्रेमचन्द युगीन उपन्यासकारों ने अपने उपन्यास में उठाए हैं । इस युग तक आते-आते हिन्दी उपन्यास को यथार्थ तथा मनोविज्ञान आदि के नवीन आधार प्राप्त हुए । इस प्रकार प्रेमचन्द युग में हिन्दी उपन्यास का सर्वांगीण विकास हुआ ।

४. प्रेमचन्दोत्तर युगीन उपन्यास ः

सन् १९३६ ई. में मुन्शी प्रेमचन्दजी का देहान्त हुआ । उनके देहान्त के साथ ही प्रेमचन्द-युग का समापन समझा जाता है । प्रेमचन्द युग के उपरान्त भारत की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था एवं विचारों में अनेक परिवर्तन हुए । उनके समय में ही धर्म, नैतिकता और प्राचीन मूल्यों पर आघात होने लगे थे, परन्तु बाद में बढ़ते हुए संघर्ष, व्यक्तिगत स्वार्थ तथा आदर्श दृष्टिकोण ने लोगों के हृदय से इन सब के प्रति अनास्था के भाव निर्माण किये । इसी बीच विश्व व्यापी द्वितीय महायुद्ध, बंगाल का अकाल, देश विभाजन, साम्प्रदायिकता आदि दुःखद घटनाओं ने राष्ट्रीय जीवन के अस्थिपींजर ढीले कर दिये । चारों तरफ अनास्था, कुण्ठा, बिखराव, स्वार्थ,अविश्वास का वातावरण फैल गया । इन सभी प्रवृत्तियों की स्पष्ट झलक प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में दिखाई देती है ।

प्रेमचन्दोत्तर युग में हिन्दी साहित्य में अनेक नवीन प्रवृत्तियों का उदय हुआ जो कि बदलते हुए काल की देन थी । यह युग भारतीय समाज तथा जनजीवन के संक्रमण का युग था । भारतीय समाज अपनी प्राचीनता से मुक्त न हो सका और न पाश्चात्य संस्कृति, सभ्यता, औद्योगिक विकास एवं अन्य परिवर्तनों को पूर्ण रूप से स्वीकार कर सका । परिणाम यह हुआ कि भारतीय जनमानस का एक मिश्रित व्यक्तित्त्व तैयार हुआ, जिसके संस्कार तो प्राचीन थे परन्तु आचार-व्यवहार इत्यादि आरोपित । पुरातन नारी सम्बन्धी मान्यताएँ क्रमशः शिथिल पड़ती जा रही थी यह इस

युग की और भी एक उल्लेखनीय विशेषता थी । जब तक सम्पूर्ण आर्थिक प्रणाली में मूलतः परिवर्तन नहीं होता तब तक नारी मुक्ति का महान स्वप्न अधूरा ही रहता, इस कारण आर्थिक प्रणाली में परिवर्तन आवश्यक था । भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था और संयुक्त परिवार का महत्त्व हमेशा ही रहा है । समाज का सामंतवादी ढाँचा आहिस्ता-आहिस्ता टूटने लगा था । सामंतवादी समाज के स्थान पर पूँजीवादी समाज का उदय हो रहा था । पूँजीवादी समाज को वर्णव्यवस्था और संयुक्त पारिवारिक व्यवस्था से कोई विशेष लगाव नहीं था । लेकिन वर्णव्यवस्था के प्रति अलगाव होते हुए भी जातिगत भावना कम नहीं हुई थी । जातिगत भावना के आधार पर निर्मित तत्कालीन कई संगठन तथा संस्थाएँ इस तथ्य की पुष्टी करते हैं । फिर भी यह बात निश्चित हो गई थी कि पुरातन काल से चली आ रही व्यवस्था के सामाजिक संगठन अपने रूपों को स्थिर रखने की स्थिति में नही थे, क्योंकि सामाजिक प्रतिष्ठा के आधार का स्थान नवीन सामाजिक आर्थिक वर्गों ने ले लिया था जो पूँजीवाद की देन थी । अब व्यक्ति के सामने दो स्थितियाँ थी , एक पूरानी जर्जर रूढ़ियों एवं मान्यताओं का विरोध और दूसरी नवीन सामाजिक स्थिति में अपने आपसे समझौता करने का प्रयत्न । सन् १९३६ ई. से आज तक का काल हिन्दी उपन्यास में सर्वतोपरी विकास का काल है । प्रेमचन्दोत्तर युगीन उपन्यासकार के विकास कम के बारे में डॉ. नगेन्द्र का मत है कि-'' प्रेमचन्द के उपरान्त हिन्दी उपन्यास कई मोड़ों से गुजरता हुआ दिखाई पड़ता है ।- १९५० ई. तक के उपन्यास, १९५० से १९६० तक के उपन्यास और साठोत्तरी उपन्यास । पहला दशक मुख्यतः फ्रायड और मार्क्स की विचारघारा से प्रभावित है दूसरा प्रयोगात्मक विशेषताओं से तीसरा आधुनिक विचारधारा से ।''[२४]

काल मार्क्स और फ्रायड के विचारों ने उपन्यास के क्षेत्र में नई जागृति ला दी । नये-नये आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक खोजों के प्रकाश में जीवन के प्रति दृष्टिकोण बदलने लगा जिसके परिणाम स्वरूप लेखन शैली में भी परिवर्तन आ गया । फ्रायड के सिद्धान्तों ने व्यक्ति के मानस तथा चेतना का जो रूप प्रकट किया था, उससे उपन्यासकार को विदित हुआ कि बाह्य संघर्ष प्रतिछाया अथवा उसका विशाल रूप होता है । बाहर की घटनाओं के घटित होने से पूर्व मानव मन में ही कई घटनाएँ घटित हो जाती है । बाहर के स्थूल संघर्ष मे पड़ने से पहले उसे आंतरिक संघर्ष से झूझना होता है । फलतः उपन्यासकार की दृष्टि से व्यक्ति और परिस्थिति के संघर्ष का कोई मूल्य न रहा । 'घटना' तथा 'संघर्ष' की परिभाषा बदल गई और उनके चित्रण का स्वरूप भी बदल गया । उपन्यास में बाह्य संघर्ष की जगह आंतर संघर्ष ने ले ली । उपन्यासकार अनुभूति के विविध स्तरों पर व्यक्ति मानस में हो रहे संघर्ष के अचेतन कारणों के अनुसंधान में मनोविश्लेषण की ओर प्रवृत्त हुआ । इससे इस युग

के रचनाकार बहुत ही आत्मविश्वास के साथ अपने पात्रों की चीर फाड़ करने तथा उनके अचेतन का एक-एक आवरण खोलने में जुट गये । कोरे भावुकता पूर्ण अन्दाज की जगह मनोवैज्ञानिक प्रकारों ने ले लिया । प्रेमचन्दोत्तर युगीन उपन्यास विकास के बारे में डॉ. बेचेन का विचार है कि-'' प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों का नवीन तम विकास इस मनोवैज्ञानिकता के समावेश के कारण हुआ, जिससे उपन्यासों के कला सौदर्य में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है ।''[२५] प्रेमचन्दोत्तर युग में हिन्दी उपन्यास साहित्य फ्रायड, एडलर और ह्युंग के मनोविश्लेषण से सर्वाधिक प्रभावित हुआ है ।

सन् १९५० ई. के पश्चात् हिन्दी उपन्यासों में देश में बहुस्तरीय आमूल परिवर्तन होने के चित्र स्पष्ट दिखाई देते हैं । स्वाधीनता के बाद भारत में जो परिवर्तन हुए, उनमें विशेषकर भारत विभाजन की स्थितियों, लोकतंत्र प्रणाली, चुनाव, पंचवार्षिक योजनाएँ, व्यापक रूप से विकास चक्र परिवर्तन, जनजीवन की राजनीति, महँगाई, बेकारी की मार, भष्टाचार तथा आबादी का भार आदि ने जबरदस्त प्रभावित किया । इन सबका चित्रण विविध रूपों में उपन्यास में हुआ । देश विभाजन के परिणाम स्वरूप निर्माण हुई धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, साम्प्रदायिक आदि समस्याओं का यथार्थ परक चित्रण भी इस युग के उपन्यासकारों ने किया है । इसी समय उपन्यास में नये प्रयोग हुए । प्रतीक आदि के द्वारा उपन्यासों में नये शिल्प के दर्शन दिखाई देते हैं ।

सन् १९६० के बाद के उपन्यासों में आज के जीवन तथा उसकी विशालता को सम्पूर्ण रूप से विविधता के साथ प्रकट करने का प्रामाणिक प्रयत्न हो रहा है । उच्च वर्ग की विलासिता के परिणाम स्वरूप उनमें फैली हुई मानसिक अशांति, आंतरिक उलझनें एवं पारिवारिक भटकाव आदि से लेकर मध्यम वर्ग के मानस का वैचारिक तथा बौद्धिक संघर्ष और निम्न वर्ग की उद्विग्नता, असंतोष की वेदना का चित्रण उपन्यास में हुआ है । सन् साठ के बाद के उपन्यास अब समाज के वर्ग से हटकर व्यक्ति और उसकी अंतःचेतना को बहुत ही प्रमुखता दे रहा है ।

प्रेमचन्दोत्तर युग में सामाजिक और मनोवैज्ञानिक धारा के अलावा सामाजिक उदे्श्यों को साथ लेकर चलनेवाली समाजवादी धारा का भी उल्लेखनीय योगदान रहा है । इस प्रकार की कृतियों में भी समाज के सर्वांगीण उन्नति की तड़प दिखाई देती है इसके साथ ही साथ सामाजिक विषमताओं, धार्मिक विसंगतियों तथा अंधविश्वासों पर कटु प्रहार किये गए हैं और शोषित वर्ग के उत्थान के लिए भी आवाज ध्वनित हुई है । समाजवादी उपन्यास व्यक्ति तथा समाज के संघर्ष की अपेक्षा वर्ग संघर्ष पर बहुत

बल देते हैं । यह उपन्यास साम्यवादी चिन्तन से प्रेरित है ।

इस युग के उपन्यासों मे कथानक का ह्रास दृष्टिगोचर होता है । प्रेमचन्द युग में कथानक पर अधिक बल दिया जाता था । कथा के प्रारंभ, मध्य और चरमोत्कर्ष तीन सोपान होते थे । इस युग के उपन्यासों में कथानक की अपेक्षा चरित्र पर बल दिया जाने लगा । फलतः चरित्रप्रधान अनेक उपन्यासों की सृष्टि हुई । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में यही प्रवृत्ति अन्यन्त प्रमुख हैं । प्रेमचन्द युग में घटनाओं और चरित्रों का अंकन साथ-साथ होता था, पर इस युग में उपन्यास का महत्त्वपूर्ण केन्द्र चरित्र हो गया । इस युग के उपन्यासों की एक अन्य प्रवृत्ति है कि उच्च वर्ग के स्थान पर मध्य वर्ग का अधिक चित्रण होने लगा । प्रेमचन्दोत्तर युग में मध्य वर्ग के अंकन को प्रमुखतम स्थान मिला था । इस युग में वातावरण के प्रति विशेष सजगता एक अन्य प्रवृत्ति है । इस युग के उपन्यासों में वातावरण चित्रण तीन रूप में देखने को मिलता है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में वातावरण उपेक्षित हैं, जब कि बहिर्मुखी उपन्यासों में वातावरण को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है और आँचलिक उपन्यासों में वातावरण का अंकन ही उन्यासकार का लक्ष्य बन गया ।

इस युग के उपन्यासों की एक अन्य प्रवृत्ति है - भाषा का नए दृष्टिकोण से प्रयोग । यशपाल, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' आदि ने जनभाषा का प्रयोग किया है । जैनेन्द्र ने सरल भाषा में लाक्षणिकता का प्रयोग किया । इलाचन्द्र जोशी ने भाषा के संस्कृतनिष्ठ रूप का प्रयोग किया, जब कि 'अज्ञेय' ने अभिजात्य भाषा का निदर्शन अपने उपन्यासों में किया है । आँचलिक भाषा का प्रयोग फणीश्वरनाथ 'रेणु' और नागार्जुन के उपन्यासों में दिखाई देता है । प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यास साहित्य को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :-

१. सामाजिक उपन्यास
२. आँचलिक उपन्यास
३. ऐतिहासिक उपन्यास
४. मनोवैज्ञानिक उपन्यास

(१) सामाजिक उपन्यास :

प्रेमचन्दोत्तर युग में सामाजिक उपन्यास परम्परा में अनेक उपन्यासकारों ने योगदान दिया जैसे भगवतीचरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', यशपाल, अमृतलाल नागर आदि । इस युग में सामाजिक उपन्यास को अनेक नए आयाम प्राप्त हुए । प्रत्येक

उपन्यासकार ने अपने विशिष्ट दृष्टिकोण से समाज और व्यक्ति के सम्बन्धों को देखा। 'अश्क' में व्यक्तिवादी दृष्टि प्रमुख थी, अतः उन्हों ने समाज की अपेक्षा व्यक्ति को महत्त्व दिया। साम्यवादी विचारों से प्रभावित यशपाल ने व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अधिक महत्त्व दिया ,जब कि अमृतलाल नागर ने व्यक्ति और समाज में संतुलन स्थापित किया।

भगवतीचरण वर्मा ने इस युग में अनेक उपन्यास लिखे, जिनमें 'भूले-बिसरे चित्र ' बहुचर्चित है। इस उपन्यास में १८८५ ई. से १९३० ई. तक कुल मिलाकर ४५ वर्षों के उत्तर भारत की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों के यथार्थ का चित्रण हुआ हैं। आम तौर पर उपन्यासकार किसी व्यक्ति के जीवन के एक अंश पर उपन्यास लिखता है, पर वर्माजी ने इस उपन्यास में चार पीढ़ियों की पूरी कहानी प्रस्तुत की है। इस उपन्यास में आधुनिक भारत में मध्य वर्ग के विकास का लगभग पूर्ण इतिहास प्रस्तुत किया है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' मध्यम वर्गीय समाज की यथार्थ चेतना के उपन्यासकार है। उन्हें निम्न मध्यमवर्गीय समाज के सूक्ष्म और यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में अभूतपूर्व सफलता मिली है। 'अश्क' का 'गिरती दीवारें ' चर्चित उपन्यास है। जिसमें निम्न मध्यमवर्गीय युवक की आर्थिक चिन्ताओं का अंकन ही नहीं, सफलताओं से उत्पन्न कुण्ठाओं का भी विश्लेषण हैं। निम्न मध्यमवर्गीय युवकों की आशा-निराशा, सफलता-असफलता, सुख-दुःख, संघर्ष और हताशा का नायक चेतन के माध्यम से निरूपण किया गया हैं। इसमें जालन्धर, लाहौर और शिमले के निम्न मध्यमवर्गीय समाज के जीवन संघर्षों और शहरी परिवेश का व्यापक अंकन हुआ है।

यशपाल का 'झूठा-सच' उपन्यास एक महाकाव्यात्मक उपन्यास है। इसमें देश विभाजन के समय जो भिषण रक्तपात और अव्यवस्था उत्पन्न हुई उसका व्यापक और प्रभावपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास के सम्बन्ध में डॉ. प्रकाश चन्द गुप्त की मान्यता है कि- ''इस में पट की विशालता है, सामाजिक यथार्थ का मार्मिक अंकन है, असंख्य पात्र है और आधुनिक जीवन की गहरी सूझ और अनुभूति हैं। बारह सौ पृष्ठों का यह उपन्यास अत्यन्त रोचक है और इस में अनेक जीवन्त चरित है ''[२६]

अमृतलाल नागर को यश देने वाले दो उपन्यास 'बूँद और समुद्र' और 'अमृत और विष' हैं। 'बूँद और समुद्र' का नाम प्रतीकात्मक है। बूँद व्यक्ति का और

समुद्र समाज का प्रतीक हैं । उपन्यासकार को व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों में संतुलन अमिष्ट है । लेखक ने पात्रों के माध्यम से परिवार और समाज के सम्बन्धों का निरूपण किया है । समाज में व्याप्त कुरीतियों और अनैतिक आचरण का विशद वर्णन किया गया है । नागरजी के रचना शिल्प का यहाँ उत्कर्ष दिखाई देता है । इसमें मोहल्ले के निवासियों के रहन-सहन, आचार-व्यवहार, रीति-संस्कृति का सटीक चित्रण हुआ हैं ।

प्रेमचन्द के बाद समाज केन्द्रित उपन्यासों की दो उपधाराएँ रही हैं :

(अ) समाजवादी उपन्यास

(ब) सामाजिक यथार्थवादी उपन्यास

इन दोनों धाराओं के उपन्यासकार प्रेमचन्द उपन्यास की परिभाषा को स्वीकार करके उसे अपने ढंग से प्रस्तुत करते आए हैं । इन दोनों कोटियों के उपन्यासकारों पर मार्क्सवाद का प्रभाव पड़ा है और ये समान रूप से समाज की सामान्य प्रवृत्तियों और उसके ह्रास-विकास को दिखाने में सतत प्रयत्नशील भी रहे हैं ।

(अ) समाजवादी उपन्यास :

समाजवादी उपन्यासों में वर्णित सामाजिक यथार्थ मार्क्सवादी विचारों के अनुरूप होता है । डॉ. रामदरश मिश्र के शब्दो में - ''समाजवादी उपन्यासों की एक निर्दिष्ट दृष्टि होती है । वह दृष्टि लेखक की अपनी निजी दृष्टि नहीं हो सकती, वह मार्क्सवादी होती है अर्थात् मार्क्स ने सामाजिक यथार्थ का जो विश्लेषण किया है,उसे ये उपन्यास छोड़ नहीं सकते ।''[२७]

इस धारा के उपन्यासों का प्रवर्तन यशपाल ने किया और आलोच्यकाल में राहुल सांस्कृत्यायन, डॉ. रांगेय राघव, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' आदि ने इसके विकास में अपना योगदान दिया ।

अपनी विशिष्ट विचारधारा और सर्जनात्मक शक्ति के कारण यशपाल विशिष्ट और अधिक चर्चित उपन्यासकार रहे हैं । आलोच्यकाल में उनके 'दादा कामरेड़', 'देशद्रोही', 'मनुष्य के रूप' आदि समाजवादी उपन्यास हैं । 'दादा कामरेड़' की कहानी तत्कालीन तीन राजनीतिक विचारधाराओं - गाँधीवाद, आतंकवाद और साम्यवाद के विवेचन -विश्लेषण के सहारे चलती हैं । इन तीनों विचारधाराओं में से 'साम्यवादी' विचारधारा की सार्थकता इस उपन्यास में अंकित हैं । 'देशद्रोही'

में मध्य वर्ग के एक बुद्धिजीवी खन्ना का चित्रण है जो अपनी मानसिक उलझनों के बावजूद व्यक्ति के घेरे से निकल समाज की ओर उन्मुख होता है और साम्यवादी विचारधारा को अपना लेता है। इस उपन्यास के सम्बन्ध में बाबू गुलाबराय का कथन है कि- " कम्यूनिस्ट उपन्यासों का जो यथार्थवाद के प्रति स्वाभाविक झुकाव होता है वह इसमें नहीं दिखाई देता है। लेखक गाँधीवाद को सफाई देने का अवसर नहीं देता और मार्क्सवादी की महत्ता दिखलाने के लिए सक्रिय-सा हो जाता है।"[२८] इस तरह यशपाल का उपन्यास साहित्य व्यक्तिवादी तत्त्वों पर चोट करते हुए समाजवादी सिद्धान्तों का पोषण करता है। डॉ. माधव सोनटक्के ने उपन्यास के बारे में अपना मत प्रकट करते हुए लिखा है कि- " आर्थिक विषमता और परम्परागत सड़ी-गली रूढ मान्यता के परिणाम स्वरूप होनेवाला आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक शोषण और उससे मुक्ति यशपाल के उपन्यास का उद्‌देश्य है।"[२९]

समाजवादी यथार्थ के अनुकर्ताओं में रांगेय राघव का भी स्थान महत्त्वपूर्ण रहा हैं। उनके उपन्यासों की संख्या तीस के लगभग हैं, जिन में प्रचारवादी रचनाओं को छोड़कर 'घरोंदा', 'सीधा-सादा रास्ता', 'विषाद मठ', 'कब तक पुकारूँ','मुर्दों का टीला' आदि स्तरीय औपन्यासिक कृतियाँ हैं। रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' के 'चढ ती धूप ','नयी ईमारत', 'उल्का', 'मरूप्रदीप' मन्मथनाथ गुप्त के 'अवसान जय यात्रा सुधार' आदि उपन्यास यशपाल की परम्परा को आगे बढ़ाते हैं। राहुल सांस्कृत्यायन के उपन्यास ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के जरूर हैं, लेकिन उनमें भी मार्क्सवादी विचारों का पर्याप्त प्रभाव देखा जाता है।

(ब) सामाजिक यथार्थवादी उपन्यास :

सामाजिक यथार्थवादी उपन्यासों में समाज के जीवन का यथार्थ चित्रण करते हुए भी लेखक किसी विशिष्ट जीवन-दर्शन से बंधे नहीं रहते और सामाजिक समस्याओं के विश्लेषण के लिए किसी विशिष्ट दृष्टि को भी अपनाते नहीं। इसका जीवन दर्शन और विश्लेषण-दृष्टि युगीन परिवेश तथा उनकी अपनी अनुभूतियों द्वारा विनिर्मित होता हैं। साम्यवादी विचारधारा का इन पर जो प्रभाव दिखाई देता है, वह युगीन परिवेश के जरिए रहा है। एक ओर तो इस युग में भारतीय राजनीति में समाजवादी आदर्शों का प्रवेश हुआ और दूसरी ओर प्रगतिशील साहित्य की जो लहर समस्त संसार में व्याप्त हो गयी थी उसके संस्पर्श से उपन्यास विधा वंचित नहीं रह सकी। इस धारा को विकसित करने में आलोच्य कालीन उपेन्द्रनाथ 'अश्क' भगवतीचरण वर्मा आदि ने तथा परवर्ती काल में अमृतलाल नागर, फणीश्वरनाथ 'रेणु' आदि ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

(२) आँचलिक उपन्यास :

किसी विशिष्ट भू-भाग अँचल या जनपद को उभारने के उदे्श्य से लिखे गये उपन्यासों को आँचलिक कहा गया है । हिन्दी में आँचलिक उपन्यास पर बँगला उपन्यासों का कुछ प्रभाव स्वीकारा जाता है । हिन्दी के आँचलिक उपन्यास का प्रारम्भ स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हुआ और नागार्जुन हिन्दी के पहले आँचलिक उपन्यासकार है । नागार्जुन ने अनेक उपन्यास लिखे जिनमें से 'बलचनमा' और 'बाबा बटेसरनाथ' प्रसिद्ध हैं । आँचलिक उपन्यास-कला की दृष्टि से 'बाबा बटेसरनाथ' अधिक मँजी हुई और सशक्त रचना है । इसमें कथ्य का संतुलन निरूपण, सजीव चरित्र-चित्रण तथा प्रसंगों का नये ढंग से नियोजन पाठक को आकृष्ट करता है । इसमें बरगद पेड़ का मानवीकरण करके एक नया प्रयोग किया गया है । बरगद को मानवीय संवेदनाओ से मुक्त अंकित किया गया है ।

फणीश्वर नाथ 'रेणु' के उपन्यास 'मैला आँचल'(१९५४ ई.) के प्रकाशन के बाद इस आँचलिक विधा का चौ मुखी विकास हुआ है । डॉ. रणवीर रांग्रा के मतानुसार-''स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् अब देश की एकाग्रता भंग हुई और देशोद्धार की अपेक्षा आत्मोद्धार की रौ चली, राष्ट्र की एकता को फोड़कर विविध प्रदेशों, जातीय वर्गों और धर्मों संस्कृतियों की अनेकता प्रखर वेग से प्रस्फुटित हुई , तब हर किसी का ध्यान अपने प्रदेश, जाति-वर्ग-धर्म-संस्कृति के संरक्षण और विकास की ओर गया और इस दिशा में यथेष्ट प्रयत्न आरम्भ हुए आँचलिकता के पनपने के लिए यह स्थिति अत्यन्त अनुकूल थी और आँचलिक उपन्यास की धारा पूर्ण वेग से चली ।''[३०]

डॉ. रांग्रा के कथन से यह ध्वनित होता है कि आँचलिक उपन्यास प्रान्तवाद की उपज है, परन्तु ऐसा नहीं है । रेणु, नागार्जुन आदि प्रखर मानवतावादी, राष्ट्रवादी लेखक है । आँचलिक उपन्यास का लेखक एक विशिष्ट अँचल का सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत कर उसे देश या विश्व के मानव प्रवाह में इस प्रकार एक मेक कर देता है कि वह रचना सर्वकालीन एवं सर्वदेशीय शाश्वत कला तत्त्वों से जुड़ जाती है । आँचलिक उपन्यासों में भी जहाँ ऐसा हो पाया है वहाँ श्रेष्ठ उपन्यास बन पड़े है जहाँ ऐसा नहीं हो पाया है वहाँ उन्हों ने संख्या वृद्धि ही मात्र की है । इस संदर्भ मे डॉ. रामदरश मिश्र का यह मत उल्लेखनीय है-'' आँचलिक उपन्यास की सिद्धि तो एक भू भाग के सारे प्राकृतिक और सांस्कृतिक परिवेश में वहाँ के संक्रमणशील, जीवन-मूल्यों, संवेदनाओं और सम्बन्धों को गहराई से उभारने में हैं और ये मूल्यों के संघर्ष, संवेदनाएँ और मानवीय नियति के उस भाग को शेष मानव- समाज से जोड़ते हैं । इसलिए कोई

उपन्यास आँचलिक होकर भी अपनी ऊपरी गतिविधियों के कारण कहीं भी जमीन से नहीं जुड़ सकता और कोई उपन्यास एक विशेष भू-भाग का होते हुए भी अपनी भीतरी प्रकृति के कारण सारी मानवता से जुड़ जाता हैं ।''[३१] वस्तुतः आँचलिक उपन्यास यथार्थ की नयी क्षितिजों को खोलते हुए आये हैं ।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' को 'मैला आँचल' के प्रकाशन पर रातों-रात ख्याति मिली । विद्रोह एवं भावुक रोमानीपन, सामान्यता-असामान्यता, साम्यवाद-सामन्तवाद का अजब मेल 'रेणु' के व्यक्तित्त्व में हुआ है । बाँगला की सरस भावतरलता और हिन्दी के यथार्थ बोध का सुन्दर समन्वय उनमें हुआ है । उनके साहित्य में कठोरता, कश्रणता एवं कोमलता का दूसरे शब्दों में सत्य, शिव और सुन्दर का त्रिवेणी संगम हुआ है । डॉ. नेमिचन्द्र जैन के शब्दों में -'' साहित्यकार मानव आत्मा का शिल्पी होता है,वह जीवन के काव्य का उसकी सरसता और सौन्दर्य का विकृति और विसंगति के पंक के बीच से झाँकते-मुस्कुराते कमल का दृष्टा होता है ।''[३२] मानवता का यह कमल हमें 'रेणु' के साहित्य-सरोवर में सदैव मुस्कुराता हुआ मिलता हैं ।

डी.एच.लोरेन्स ने अपने समय के एक नव यथार्थवादी उपन्यास की भूमिका में लेखक का अनुमोदन करते हुए कहा था - ''आधुनिक सफाई सेनिटेशन की जड़ में यह बात है कि मानव को मानव की बू असह्य हो गई है ।''[३३] 'रेणु' ने मानवता की इस 'बू' में एक सोंधी खुश्बू को महसूस किया है । उसका अहसास हमें उनके साहित्य से हुए बिना नहीं रहता है । मिट्टी की एक सोंधी महक 'रेणु' की अपनी विशेषता है ।

आँचलिक उपन्यासों में अभिव्यक्त आँचलिकता की चेतना भी दो स्तरों पर मिलती है । एक तो वे उपन्यास है जिनमें चित्रित, अँचल-विशेष से लेखक का प्रत्यक्ष सम्बन्ध है । उस जीवन से उनका गहरा लगाव है क्योंकि उसे अनुभूति के स्तर पर उन्होंने जिया है । 'रेणु' तथा नागार्जुन के सभी उपन्यास, शिवसागर मिश्र कृत 'दूध जनम आई ',शिवप्रसाद मिश्र 'रूद्र' कृत 'बहती गंगा' शैलेष मटियानी का 'हौलदार' चिट्ठी रसेन का 'एक मुठ सरसों ' आदि इस कोटि के उपन्यास हैं ।

दूसरी कोटि के उपन्यासों में वे उपन्यास परिगणित हैं जिनकी कथावस्तु सुदूर स्थित विभिन्न क्षेत्र जो अपेक्षा कृत अपरिचित होते हैं एवं उनकी जनजातियों से सम्बन्धित है जो उन उपन्यासकारों के अपने नहीं है, लेकिन सायास उन्हें अपनाकर

अपने लेखन का विषय बनाया गया है । यद्यपि कला का सायास रूप मौलिक उद्‌भावना नहीं दे पाता, लेकिन उनकी साधना कम मूल्यवान नहीं । देवेन्द्र सत्यार्थी कृत 'रथ के पहिये ' और 'ब्रह्मपुत्र' नागार्जुन कृत 'वरूण के बेटे' राजेन्द्र अवस्थी का 'जंगल के फूल', रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूँ' उदयशंकर भट्ट का 'सागर लहरें और मनुष्य' इस कोटि के उपन्यास हैं ।

(३) ऐतिहासिक उपन्यास :

डॉ. रणवीर रांग्रा ने ऐतिहासिक उपन्यास के प्रयोजन पर प्रश्न चिह्न लगाते हुए लिखा है - '' लैसली स्टीफन का विश्वास है कि ऐतिहासिक कथानक अच्छे उपन्यासों के द्योतक हैं, उधर इतिहासकार पालमेव की धारणा है कि ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास के शत्रु होते हैं । ऐतिहासिक उपन्यास यदि साहित्य और इतिहास दोनों में से किसी के प्रति न्याय नहीं कर पाता तो ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की ओर उपन्यासकार प्रवृत्त क्यों होता है ?''[३४] इस प्रश्न के कई उत्तर हैं । कुछ उपन्यासकार इतिहास का पुनः मूल्यांकन करने की दृष्टि से इधर प्रवृत्त होते हैं - यथा वृन्दावनलाल वर्मा । कई बार कोई युग विशेष किसी उपन्यासकार को इतना प्रभावित कर जाता हैं कि वह उसे अपनी उर्वर कल्पना के द्वारा पुनःजागृत करना चाहता हैं । कुछ उपन्यासकार मार्क्सवादी चेतना से अनुप्राणित होकर प्राचीन इतिहास के सहारे अपने मत का विवेचन ,विश्लेषण एवं पुष्टि करने के हेतु ऐतिहासिक उपन्यास का पल्ला पकड़ते हैं । परन्तु यहाँ यह बात ज्ञातव्य रहे कि इस यथार्थ निर्माण के प्रयत्न में उपन्यास केवल शुष्क ऐतिहासिक विवरण मात्र न हो जाय । इस सन्दर्भ में नारायण भारद्वाज का यह मत उल्लेखनीय है - '' वस्तुतः ऐतिहासिक उपन्यास पहले उपन्यास है, बाद में अन्य कुछ है । जीवन की व्याख्या या उसका चित्र उपस्थित करने के लिए ऐतिहासिक तथ्यों का उसमें कलात्मक संयोजन हुआ करता है । अतः उपन्यासकार उनमें कला की साधना के लिए कल्पना का समूचित उपयोग भी कर सकता है ।''[३५] तात्पर्य है कि ऐतिहासिक उपन्यासकार को दोहरे दायित्व का निर्वाह करना पड़ता है । ऐतिहासिक तथ्यों की रक्षा करते हुए उपन्यास की मूल रसात्मकता को बनाए रखना निश्चय ही एक दुष्कर कर्म है ।

आलोच्य युग में वृन्दावनलाल वर्मा ने अनेक सफल ऐतिहासिक उपन्यास लिखे । वर्माजी ने भारतीय इतिहास के अतीत पर शोधपूर्ण दृष्टि डालकर ऐतिहासिक पात्रों और घटनाओं की जानकारी प्राप्त की तथा प्रामाणिक तथ्यों के आधार पर उपन्यास लिखे । वृन्दावनलाल वर्मा के 'झाँसी की रानी ' और 'मृगनयनी' आलोच्य कालीन महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास हैं । 'झाँसी की रानी ' में वर्माजी ने रानी

लक्ष्मीबाई के स्वराज्य-संघर्ष का चित्रण किया है। सुरेश सिन्हा 'झाँसी की रानी' को समस्त भारतीय भाषाओं की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि मानते हैं। इस उपन्यास की अद्भूत प्रभाव-क्षमता का मूल रहस्य यह है कि इसमें सत् और असत् का संघर्ष कल्पित नहीं है, अपितु इतिहास की सुदृढ और प्रामाणिक पृष्ठभूमि पर आधारित है।

'मृगनयनी' में ग्वालियर नरेश राजा मानसिंह तोमर और उनकी रानी मृगनयनी की प्रेम-कथा है। इस उपन्यास में ग्वालियर के राजा मानसिंह के काल की राजनीतिक परिस्थितियों का विशद चित्रण है और नायिका मृगनयनी की शूरवीरता और विलक्षण बुद्धि का विश्वसनीय अंकन है। तत्कालीन वातावरण सृजन करने में यह उपन्यास अत्यन्त सफल है।

संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषा के प्रकाण्ड विद्वान, भारतीय साहित्य एवं संस्कृति के मर्मज्ञ और हिन्दी के एक सुधी आलोचक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का योगदान इस क्षेत्र में सदा उल्लेखनीय है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में एक अभिनव प्रयोग है। एक युग के सांस्कृतिक परिवेश को पुनर्जीवित करने का श्लाधनीय प्रयास उसमें हुआ है। आलोच्यकाल के ही नहीं बल्कि समूचे ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य में बेजोड़ उपन्यास आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी के 'बाणभट्ट की आत्मकथा' और 'चाश्चचन्द्र लेख' माने जाते हैं। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में 'कादम्बरी' और 'हर्ष चरितम' के युग की राजनैतिक और सामाजिक पृष्ठभूमि में संस्कृत के महान लेखक बाणभट्ट का जीवन वृत्त आत्मकथात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है। 'चाश्चचन्द्र लेख' में मध्यकालीन साहित्य में प्राप्त जीवन-सत्य के आधार मध्ययुगीन व्यक्ति की प्रवृत्तियों की ओर निर्देशकर ,प्रतीकात्मक रूप में अपने समकालीन परिवेश की प्रस्तुति की गई है।

❖ साम्यवादी चेतना से अनुप्राणित ऐतिहासिक उपन्यास :

साम्यवादी -मार्क्सवादी दृष्टिकोण से इतिहास का विश्लेषण प्रस्तुत करनेवाले उपन्यासकारों में राहुल सांस्कृत्यान, यशपाल, रांगेय राघव मुख्य हैं। इन उपन्यासकारों ने कहीं प्राचीन काल की आर्थिक, सामाजिक ,राजनीतिक व्यवस्था को अपने सिद्धान्तों के अनुकूल पाकर उसकी प्रसंशा की है अथवा उसकी व्याख्या की है। राहुल सांस्कृत्यायन कृत 'सिंह सेनापति '(१९४२),'जय यौधेय'(१९४४), रांगेय राघव कृत 'मुर्दों का टीला' (१९४८) आदि उपन्यास इस कोटि के हैं। इसके अतिरिक्त कहीं प्राचीन काल में व्याप्त सामन्तीय व्यवस्था ,जातिप्रथा, नारी का शोषण आदि के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया हैं। जैसे 'सिंह सेनापति' में लिच्छवी

गणतन्त्र ‘जय योधेय’ में योधेय गणतन्त्र ‘मुर्दों का टीला’ में मोहन्जो दड़ों की संस्कृति ‘दिव्या’ में बौद्धकालीन भारत में व्याप्त वर्ण व्यवस्था तथा ‘अमिता’ में अशोक के कलिंग विजय के ऐतिहासिक वृत्त को लिया गया है । इन कृतियों के अतिरिक्त ऐतिहासिक उपन्यासों में शिवप्रसाद मिश्र कृत ‘बहती गंगा’ (१९५२) एक नवीन प्रयोग है । इसमें काशी नगरी की २०० वर्षों की (सन् १७५० से १९५०) कहानी सत्रह तरंगों में धारा-तरंग न्याय के अनुसार रोचक ढंग से कही गयी है । प्रतापनारायण श्रीवास्तव द्वारा लिखित ‘बेकसी का मजार’(१९५७) प्रथम स्वाधीनता संग्राम को लेकर लिखा गया है । वीरेन्द्रकुमार जैन का उपन्यास ‘मुक्तिदूत’ अंजना और पवनंजय के पौराणिक आख्यान पर आधारित उपन्यास है । अमृतलाल नागर कृत ‘शतरंज के मोहरे’ में अवध के नवाबों का विलास एवं ह्रासपूर्ण जीवन अंकित है । यादवेन्द्र शर्मा ‘चन्द्र’का ‘सन्यासी और सुन्दरी’ तथा बनकाम सुनील के ‘सामन्त बीजगुप्त’ में चित्रलेखा की कथा को आगे बढ़ाया गया है ,तो ‘इरावती’ में जयशंकर प्रसाद की अपूर्ण कृति को पूर्णता देने का साहसपूर्ण प्रयोग किया गया है ।

(४) मनोवैज्ञानिक उपन्यास :

मनोविज्ञान मन का विज्ञान है । उसका अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द ‘सायकोलोजी’ (Psychology) युनानी भाषा के ‘ सायको’ और ‘लोगस’ के योग से बना है । ‘सायको’ का अर्थ है आत्मा और ‘लोगस’ का अर्थ है विचार-विमर्श । अतः सायकोलोजी वह विज्ञान है , जिसमें मनुष्य की आत्मा अथवा मन पर विचार किया जाता है । मनोविज्ञान के सिद्धान्तों पर आधारित उपन्यास मनोवैज्ञानिक उपन्यास है ।

फ्रायड-ह्युंग आदि मनोवैज्ञानिकों की विचारधारा के प्रभाव में साहित्य-सृजन और मूल्यांकन के क्षेत्र में नये आयाम-नयी दृष्टि का आगमन हुआ है । मनोविश्लेषणात्मक तथा व्यक्तिवादी उपन्यास इसी विचारधारा की देन है । मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास मे व्यक्ति को समाज के सर्वग्राही आधिपत्य से मुक्ति दिलाकर उसकी मूल चेतना को अभिव्यक्त होने का अवसर दिया जाता है । आज अगणित संघर्षों और दबावों से ग्रस्त मानव-चेतना पहले जैसी सीधी-सादी निर्द्वन्द्व नहीं रह गयी है, वह विचित्र अंतः संघर्षों से ग्रस्त,अस्पष्ट और दुरूह हो गयी है । मनोवैज्ञानिक ऐसी चेतना के ‘व्यक्तित्त्व’ का अभ्यंतरिक अध्ययन प्रस्तुत करता है ।

आलोच्य युग में फ्रायड आदि मनोवैज्ञानिकों के विचारों का साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा । शुद्ध मनोवैज्ञानिक उपन्यासों पर यह प्रभाव प्रत्यक्ष परिलक्षित होता है, जब कि अन्य वर्गों के उपन्यासों पर इसका आंशिक प्रभाव है । इसमें व्यक्ति के

आन्तरिक चरित्र के उद्‌घाटन के लिए मनोविज्ञान का आश्रय लिया जाने लगा, क्योंकि व्यक्ति के अन्तर्मन के चित्रण के अभाव में व्यक्ति के पूर्ण चरित्र का उद्‌घाटन संभव नहीं। डॉ. देवराज उपाध्याय के शब्दो में -''यदि किसी उपन्यास में घटना या अनुभूति के आत्मनिष्ठ रूप को अभिव्यक्ति पर आग्रह पायेंगे तो उसे मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहेंगे।''[३६] इस प्रकार इनमें स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर संक्रमण होता है। आलोच्य कालीन इस धारा के प्रमुख उपन्यासकार जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी तथा अज्ञेय रहे हैं।

लब्ध प्रतिष्ठ मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार जैनेन्द्रकुमार ने हिन्दी साहित्य जगत में अनेक विषयों में पहल की है। वे हिन्दी उपन्यास साहित्य के प्रथम व्यक्तिवादी,मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं। उपन्यास में प्रचलित सामाजिक-नैतिक मानदण्डों को बदलने का श्रेय भी उन्हीं को जाता है, उनके उपन्यास मनोवैज्ञानिक व दर्शन से शासित हैं। व्यक्ति के अहं का विसर्जन और आत्म-पीड़ा द्वारा आत्मोपलब्धि बनकर उपन्यासों का काम्य रहा हैं, कथा और चरित्र चित्रण की अपेक्षा वे चिन्तन को अधिक महत्त्व देते हैं। वे कहते है - '' मेरे निकट यथार्थ का उतना मूल्य नहीं जितना कल्पना का है। वैसे भी यथार्थ तो कुछ है नहीं। कल्पना का ही सब खेल है।''[३७] स्वचिन्तन शासित कथा-विन्यास उनकी सबसे बड़ी सीमा और भाषा की व्यंजकता उनकी सबसे बड़ी शक्ति है।

जैनेन्द्र का उपन्यास साहित्य मूलतः नारी के अन्तर्मन का विश्लेषण तथा नर नारी सम्बन्धों की तलाश का साहित्य रहा हैं। आलोच्यकाल के उनके उपन्यास 'कल्याणी'(१९५३),'सुखदा'(१९५२), 'विवर्त'(१९५३), 'व्यतीत'(१९५३), 'जयवर्धन'(१९५६) में भी पूर्ववर्ती 'परख','सुनीता','त्यागपत्र' आदि उपन्यासों के समान नारी मन के द्वन्द आत्मयातनाओं को प्रस्तुत करते हैं।

इलाचन्द्र जोशी ने मनोविज्ञान को यत्नपूर्वक अपने उपन्यासों में स्थान दिया। मानो उन्हों ने उपन्यासों की रचना मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को स्पष्ट करने के लिए की हो। कुछ विद्वान जोशी को विधिवत मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार कहते है। शिवनारायण श्री वास्तव का कथन है - '' हिन्दी उपन्यास में मनोविश्लेषण प्रणाली के प्रथम प्रयोक्ता इलाचन्द्र जोशी ही है।''[३८] इलाचन्द्र जोशी का 'संन्यासी' उपन्यास अत्यन्त लोकप्रिय है। इसमें नायक नन्दकिशोर के अन्तर्मन की व्याख्या करते हुए फ्रायड की दमित काम भावना के प्रभाव का चित्रण किया गया है। 'संन्यासी' उपन्यास के बारे में बाबू गुलाबराय ने अपना मत प्रकट करते हुए लिखा है- ''संन्यासी में दो स्त्रियाँ शान्ति और जयन्ती क्रमशः नन्दकिशोर की ईर्षा और अहंकार

वृत्ति का शिकार बनती है। एक प्रकार से यह उपन्यास ईर्षा-मनोवृत्ति की कथा है।''[३९]

इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में 'संन्यासी'(१९४१),'पर्दे की रानी'(१९४३), 'प्रेत और छाया'(१९४६), 'निर्वासित'(१९४६),'मुक्तिपथ'(१९५०), 'सुबह के भूले'(१९५२), 'जिप्सी'(१९५२),'जहाज का पंछी'(१९५६) आदि आलोच्यकाल के उल्लेखनीय उपन्यास हैं। अपने उपन्यासों के संदर्भ में जोशीजी ने लिखा है कि- '' मेरे सभी उपन्यासों का प्रथम उद्देश्य व्यक्ति के अहंभाव की एकांतिकता पर निर्मम प्रहार करने का है। कभी तृप्त न होनेवाले अहंभाव की अस्वाभाविक पूर्ति की चेष्टा में जब पुरुष को पग-पग असफलता मिलती है तो बौखला उठता है और उस बौखलाहट की प्रतिक्रिया के फल स्वरूप वह आत्मविनाश की योजना में जूट जाता है''[४०] इनके उपन्यासों के चरित्र मनोविज्ञान के किताबी ढाँचे में ढले होने के कारण चरित्र का स्वाभाविक विकास और वस्तुगत गतिशीलता की जगह कृत्रिमता और असहजता आ जाती है। डॉ.गिरधरप्रसाद शर्मा के मतानुसार -''इलाचन्द्र जोशी पुरुष की अहमजन्य विकलता एवं विफलता,शोषित नारी की व्यथा तथा अज्ञात मन द्वारा प्रेरित जीवन व्यापारों के सशक्त चित्रकार है। फ्रायड,एडलर एवं ह्युंग आदि मनोविश्लेषकों से विचार शक्ति संचय करके उन्होंने व्यक्ति अहंभाव की एकान्तिका पर निर्भय प्रहार किया हैं।''[४१] संक्षेप में 'संन्यासी' में आत्महीनता की ग्रंथि का अंकन है, 'प्रेत और छाया' में इडिपस ग्रंथि का तथा 'पर्दे की रानी' मे मानसिक कुण्ठा का अंकन है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों मे अज्ञेय सर्वोत्कृष्ट कलाकार माने जाते है। हिन्दी कथा साहित्य में वह सर्वाधिक विवादास्पद साहित्यकार है। आधुनिक कथाकारों में सर्वाधिक पाश्चात्य प्रभाव उनमें मिलता है। वैज्ञानिक निरपेक्षता उनके कथा साहित्य की विशेषता है। डॉ. राम स्वरूप चतुर्वेदी के शब्दों में -'' अज्ञेय के काव्य में मानवीय व्यक्तित्त्व को या समूची सृष्टी को ही एक नये अपेक्षा कृत गैर रोमांटिक ढंग से देखने की शुरूआत मिलती है, जिसमें आग्रह परम्परागत राग पर उतना नहीं जितना की यथार्थ को सही ढंग से समझने पर है। उपन्यासों में मानवीय व्यक्तित्त्व की परिपूर्णता की ओर क्रमिक यात्रा लेखक की चिन्ता का केन्द्रीय तत्त्व है और इस प्रकार कविता तथा उपन्यास मिलकर व्यक्तित्त्व का चित्र उपस्थित करते हैं।''[४२] वे व्यक्ति चरित्र की समग्रता को प्रस्तुत करनेवाले कलाकार हैं और अपने इस उद्देश्य की पूर्ति में समाज के प्रवर्तमान नैतिक मानदण्डों की उपेक्षा कर उसे चौंकाते हैं। डॉ.ओम प्रभाकर कहते है - '' प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास के कथानक वस्तुतः लम्बाई-चौड़ाई में सीमित होकर गहराई में असीम हुए हैं।''[४३] कथानक की यह विशेषता हमें अज्ञेय

में पूर्ण मात्रा में मिलती हैं । अज्ञेय की औपन्यासिक प्रतिभा सचमुच विशिष्ट है । 'शेखर'(शेखर एक जीवनी) और रेखा (नदी के द्वीप) अज्ञेय की कथा प्रतिभा से प्रसुत उनके मानस पुत्र-पुत्री हैं । दोनों का व्यक्तित्त्व उन्हें भीड़ से अलगाता है । कहा गया है -'गद्य कविनां निकषं वदन्ति' और हिन्दी गद्य को ऊँचाई प्रदान करनेवालों में अज्ञेय अग्रिम पंक्ति में आते हैं ।

अज्ञेय के उपन्यासों में 'शेखर एक जीवनी' खण्ड एक तथा दो, 'नदी के द्वीप' और 'अपने-अपने अजनबी' बहुचर्चित कृतियाँ हैं । उनके उपन्यासों में सूक्ष्म संवेदना, गहन दार्शनिकता, मृदु रोमांस और परिपक्व कला का अद्वितीय सम्मिश्रण पाया जाता है । अज्ञेय ने 'शेखर एक जीवनी' उपन्यास लिखकर उपन्यास-जगत में प्रवेश किया । इस उपन्यास से उन्हें अपूर्व ख्याति और यश प्राप्त हुआ । उन्होंने मनोविज्ञान के क्षेत्र में बाल-मनोविज्ञान को अपना आधार बनाया और यह माना कि बाल्यवस्था में अहं,भय और सेक्स तीन शक्तियाँ सक्रिय रहती हैं । इस उपन्यास में अज्ञेय की प्रयोगधर्मिता का उत्कर्ष दिखाई देता है । इसका शिल्प उपन्यास का उज्जवलतम पक्ष है ।

'अपने-अपने अजनबी' अज्ञेय की पिछली दो रचनाओं की भाँति हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में बहुचर्चित और भिन्न-भिन्न छोरों पर रही हैं । डॉ. हेमचन्द्र जैन तो यहाँ तक लिखते है कि- ''उपन्यास में अन्तर्निहित चेतना प्राच्य और पाश्चात्य जीवन-दृष्टियों के समीकरण को आधार बना सके तो यह कहा जा सकता है कि कामू में 'अजनबी' और हेमिग्वें के 'सागर और मनुष्य की भाँति ' यह उपन्यास भी हिन्दी के प्रथम श्रेणी के उपन्यास बनने की क्षमता रखता है ।''[४४] अज्ञेय के तीन उपन्यास क्रमशः मानव मन की तीन मूलभूत प्रवृत्तियों (अहं,सेक्स और भय) से जुड़े हुए हैं । भय की भावना से मुख्यतः मृत्यु-बोध से सम्बद्ध है, जो अस्तित्त्ववादी दर्शन के केन्द्र में है । अस्तित्त्ववादी दर्शन के कुछ संकेत तो हमें 'नदी के द्वीप' में ही मिल जाते हैं, परन्तु 'अपने-अपने अजनबी' तो एक प्रकार से मृत्यु-बोध का ही आख्यान है । उपन्यास के सभी मुख्य पात्र (सेल्मा, योके, यान) पूरे उपन्यास में इस मृत्यु गन्ध से आक्रान्त हैं । इस सम्बन्ध मे डॉ.गिरिधरप्रसाद शर्मा का कथन है कि- ''हिन्दी उपन्यासों में अस्तित्त्ववादी दर्शन अथवा जीवन दृष्टि का सफल चित्रण 'अपने-अपने अजनबी' में ही मिलता है । जन्म और मरण के मध्य वरण की स्वतंत्रता को खोजता हुआ व्यक्ति अन्त में मृत्यु का वरण करता है । ''[४५]

तार सप्तक की भाँति अज्ञेय कथा साहित्य में कुछ नवीनता लाने के लिए

उत्सुक थे । 'बारहखम्भाः एक नवीन प्रयोग'(१९५१-५२) के 'बारह खम्भे' के बारह अध्याय अलग-अलग लेखकों से धारावाहिक रूप में लिखवाए गए थे और 'प्रतीक' पत्रिका में प्रकाशित हुए थे । इस सहयोगी लेखन में अज्ञेय,मन्मथनाथ गुप्त, विष्णु प्रभाकर, प्रभाकर माचवे, अमृतलाल नागर,भारतभूषण अग्रवाल, देवराज, धर्मवीर भारती, रांगेय राघव और रामचन्द्र तिवारी । अलग-अलग किश्तों में लिखे गए इस उपन्यास का आज केवल ऐतिहासिक मूल्य रह गया है । संक्षेप में अज्ञेय प्रतिभा के सम्पन्न कलाकार है । आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य में उनका स्थान एक मौलिक प्रवर्तक तथा सर्वरूपेण श्रेष्ठ कलाकार के रूप में शीर्ष स्थान पर अक्षुण्ण है और रहेगा ।

डॉ.देवराज हिन्दी के जाने-माने मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं। आलोच्यकाल में उनके चार उपन्यास 'पथ की खोज'(१९५१),'बाहर-भीतर'(१९५४),'रोड़े और पत्थर'(१९५८),'अजय की डायरी'(१९६०) प्रमुख हैं । उनके उपन्यासों में शिक्षित बुद्धिजीवी मध्यवर्ग की कुण्ठाओं का चित्रण मिलता है। अन्य मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों में 'सर्वेश्वर दयाल सक्सेना' कृत 'सोया हुआ जल'(१९५५),सूर्यकुमार जोशी का 'दिगम्बरी'(१९५७),राजेन्द्र यादव का 'कुलटा'(१९५८), धर्मवीर भारती का 'गुनाहों का देवता'(१९४६), नरेश मेहता कृत 'डूबते मस्तूल'(१९५४) और 'दो एकान्त'(१९५५), गिरिधर गोपाल का 'चाँदनी के खण्डर'(१९५५), रघुवंश का 'तन्तुजाल'(१९५८), प्रभाकर माचवे के 'परन्तु'(१९४१),' द्वाभा'(१९५६) व 'साँचा' नामक उपन्यास भी इस धारा के उल्लेखनीय उपन्यास हैं ।

प्रेमचन्दोत्तर काल में उपन्यास विधा का चतुर्मुखी विकास हुआ । यथार्थ के नये आयामों की ओर उपन्यासकार उन्मुख हुए । यथार्थ का यह निरूपण सामाजिक एवं वैयक्तिक धरातलों पर हुआ । सामाजिक धरातल पर यथार्थ का निरूपण सामाजिक, समाजवादी एवं आँचलिक उपन्यासों में हुआ । ऐतिहासिक उपन्यासों में भी ऐतिहासिक यथार्थ का विशेष ध्यान के साथ ही ऐतिहासिक खोजों एवं गम्भीर अध्ययनों को अनेक लेखकों ने अपनाया हैं । वैयक्तिक धरातल पर यथार्थ का निरूपण मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में दिखाई पड़ता है ।

इस प्रकार प्रेमचन्दोत्तर युगीन उपन्यास में नई संचेतना के अनेक रूप ध्वनित हुए हैं। आधुनिक युग की भीषण तथा भयावह घटनाओं ने भारतीय जीवन-दर्शन को झकझोर दिया । नये बुनियादी प्रश्न निर्माण हुए और उनका समाधान आधुनिक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में खोजने का प्रयास किया है। भारतीय जीवन के

महानगर, नगर ,कस्बों तथा गाँवों की जिन्दगी की अनेक समस्याएँ एवं अनेक रूपों का यथार्थ धरातल पर चित्रण प्रेमचन्दोत्तर युगीन उपन्यासों में हो रहा है । हिन्दी उपन्यास साहित्य में सामाजिक उपन्यासों की पुष्ट परम्परा हैं । प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यासकारों ने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, आँचलिक, समाजवादी, मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की रचना की हैं । इसके साथ ही इन्होंने आधुनिकता के आह्वान को स्वीकारते हुए अपने उपन्यासों की भी रचना की हैं ।

(आ) स्वातन्त्र्योत्तर साहित्य (१९५० से आज तक)

पंचम विकास युग (नवलेखन तथा जनचेतना काल)

सन् १८५७ से प्रस्फुटित स्वाधीनता संग्राम से जुड़ी भारतीय जनमानस की चेतना १९४७ में फलीभूत हुई । हमारा साहित्य भी इसी चेतना से जुड़ा है, इसलिए १९४७ में हमारे आधुनिक साहित्य का एक खण्ड पूरा हो जाता है । स्वाधीनता प्राप्ति के बाद जनतांत्रिक जीवनमूल्यों से जुड़ी एक नयी चेतना का आरम्भ हमारे साहित्य के आधुनिक काल के द्वितीय खण्ड के आरम्भ का परिचायक हैं । इसीलिए १९५० से लेकर आजतक के कालखण्ड को हम 'स्वातन्त्र्योत्तर काल' के प्रथम चरण के रूप में प्रस्तुत करना संगत मानते हैं । यद्यपि साहित्यिक प्रवृत्ति के आधार पर इस कालखण्ड को दो चरणों में भी बाँटा जा सकता है । जैसे प्रथम चरण (१९५० से १९६० तक) - 'नये साहित्य का नवलेखन काल',द्वितीय चरण (१९६१ से आजतक)- 'साठोत्तरी जनवादी काल'। 'नये साहित्य ' और 'जनवादी साहित्य' दो अलग-अलग प्रवृत्तियाँ हैं, लेकिन साठोत्तरी काल में भी 'नये साहित्य'पर्याप्त मात्रा में लिखा जा रहा हैं । अतः १९६० को 'नये साहित्य' की अन्तिम-सीमा स्वीकार करना उचित नहीं होगा । दूसरे नये-साहित्य और साठोत्तरी जनवादी साहित्य की प्रवृत्ति और स्वरूप में भेद होने के बावजूद दोनों में एक समान सम्बन्ध-सूत्र दिखाई देता है ।

भारत की स्वतन्त्रता के बाद हिन्दी उपन्यास साहित्य का विकास विविध रूपों में हुआ । इस युग में लिखे गये उपन्यासों में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से सम्बन्धित गहन चिंतन प्रस्तुत हुआ । देश के विभाजन के फल स्वरूप धार्मिक, साम्प्रदायिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में अनेक नयी समस्याएँ सामने आयी, जिनके प्रति हिन्दी के साहित्यकारों ने अतिशय जागरूकता का परिचय देते हुए उनका यथार्थपरक चित्रण अपने उपन्यासों मे किया । भारतीय समाज के विविध वर्गों में जो परिवर्तनशीलता इस युग में पाई जाती हैं, उसका सम्यक परिचय पंचम विकास युग में लिखे गये उपन्यासों में मिल जाता है ।

आलोच्य काल उपन्यास की दृष्टि से समृद्ध कहा जायेगा। इस काल के उपन्यास साहित्य में कथ्यगत तथा शिल्पगत वैविध्य हैं। कई नयी-पुरानी युवा प्रतिभाओं ने इसकाल के उपन्यास साहित्य को वैविध्य और सम्पन्नता प्रदान करने में अपना योगदान दिया है। यशपाल, रांगेय राघव, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', भगवती चरण वर्मा , जैनेन्द्र, अज्ञेय आदि पूर्व कालीन रचनाकारों की परवर्ती रचनाएँ आलोच्यकाल को उनकी परिष्कृत-प्रतिभा से लाभान्वित करती रही हैं। फणीश्वरनाथ 'रेणु', नागार्जुन,मोहन राकेश,राजेन्द्र यादव,कमलेश्वर, धर्मवीर भारती आदि नये रचनाकारों ने परिवेशानुकूल उपन्यास को नया रूप दिया, तो रामदरश मिश्र,विवेकीराय, जगदीशचन्द्र, हिमांशु जोशी, धीरेन्द्र आस्थाना, नरेन्द्र कोहली आदि साठोत्तर रचनाकारों ने उसे नये आयाम प्रदान किये हैं। अन्य विधाओं के समान उपन्यास में भी वैयक्तिक मूल्यों से लेकर जनवादी मूल्यों तक की यात्रा के कई पड़ाव दिखाई देते हैं। मौटे तौर पर आजादी के बाद मूल्य विघटन राजनीतिक प्रपंच, सर्वव्याप्त भ्रष्टाचार और व्यवस्थागत दबावों में पिसते लोग उपन्यास के केन्द्र में आये, तो दूसरी ओर वैयक्तिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करने वाले उपन्यासों की बड़ी मात्रा में सर्जना हुई है। जहाँ एक ओर अपनी मिट्टी से जुड़ने का प्रयास इसमें हैं, तो दूसरी ओर फ्रायड ,सार्त्र की मनोवैज्ञानिक, अस्तित्त्ववादी विचारधारा के प्रभाव में अपने परिवेश को आँकने का प्रयास दिखाई देता है। इसी लिए स्वातन्योत्तर उपन्यास साहित्य में प्रमुख रूप से दो धाराएँ प्रवाहित हैं -

१. व्यक्तिचेतना प्रधान उपन्यासधारा।

२. जन-चेतना प्रधान उपन्यासधारा।

इन दो धाराओं के अतिरिक्त ऐतिहासिक सांस्कृतिक एक धारा भी दिखाई देती है।यदि व्यक्ति चेतना आलोच्यकाल के उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक, प्रयोगवादी तथा आधुनिकतावादी रूप में प्रकट हुई हैं, तो जन चेतना आँचलिक, समाजवादी तथा राजनैतिक-व्यंग्य-बोध के माध्यम से प्रकट हुई हैं। इसलिए आलोच्यकाल के उपन्यास साहित्य को आँचलिक, सामाजिक चेतना, प्रयोगवादी, मनोवैज्ञानिक, आधुनिकतावादी तथा राजनैतिक,ऐतिहासिक-सांस्कृतिक वर्गों में विभाजित किया जा सकता हैं।

(१) आँचलिक उपन्यास : ग्राम चेतना के उपन्यास :

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद प्रथम दशक में परिवर्तित परिवेश जन्य ग्राम्यचेतना को अभिव्यक्त करनेवाली उपन्यासधारा का उद्भव हुआ, जो आज तक परिवेशानुरूप मोड़ों से गुजरती हुई प्रवहमान हैं। ग्रामीण-परिवेश की अभिव्यक्ति आलोच्यकाल में सर्वप्रथम नागार्जुन के उपन्यास 'बलचनमा' तथा 'नई पौध' से हुई। कुछ विद्वान इसी

आधार पर नागार्जुन को आँचलिक उपन्यास का उन्नायक कहते हैं । नागार्जुन की ये दोनों कृतियाँ उनके समाजवादी विचारधारा से ओत-प्रोत होने के बावजूद मूलतः व्यक्ति या चरित्र केन्द्रित है । स्वातन्त्रोत्तर परिवेश के अनुरूप समष्टिमूलक जीवनदृष्टि, समाजकेन्द्रितता यथार्थपरकता आदि विशेषताओं से युक्त आँचलिक उपन्यासधारा के प्रवर्तक फणीश्वरनाथ 'रेणु' को माना जाना चाहिए । 'मेला आँचल' तथा 'परती-परिकथा' रेणुजी के इस धारा के प्रतिमान उपन्यास हैं । ग्रामजीवन के टूटते-बनते नये रूपों का यथार्थ अंकन करनेवाली इस धारा के अन्य उपन्यासकार के रूप में नागार्जुन ('बलचनमा', 'नई पौध'), बाबा बटेसरनाथ ('दुःख मोचन', 'वरूण के बेटे') रांगेय राघव ('कब तक पुकारूँ') देवेन्द्र सत्यार्थी ('ब्रह्मपूत्र') आदि उल्लेखनीय हैं । समकालीन उपन्यास साहित्य में ग्रामजीवन में व्याप्त शोषण, अभाव और पीड़ा का यथार्थ अंकन करनेवाले उपन्यासकारों में विवेकीराय, रामदरश मिश्र, जगदीश चन्द्र, राही मासुम रजा, डॉ.शिवप्रसाद सिंह, हिमांशु जोशी आदि विशेष उल्लेखनीय हैं । डॉ. विवेकीराय ग्राम-जीवन के समर्पित कथाकार हैं । उन्होंने 'बबुल','पुश्चष पुराण','लोक-ऋण', 'सोना-माटी' आदि उपन्यासों में स्वातन्त्र्योत्तर ग्रामीण-जनजीवन के शोषण तथा पतन का सशक्त चित्रण किया हैं । रामदरश मिश्र ग्रामीण-चेतना से जुड़े उपन्यासकार हैं । मिश्रजी के 'पानी के प्राचीर' ,'जल टूटता हुआ','सूखता हुआ तालाब' ग्राम चेतना के उपन्यास हैं । डॉ. शिवप्रसाद सिंह का 'अलग-अलग वैतरणी ' इस धारा में कथ्य तथा शिल्प के धरातल पर एक महत्वपूर्ण उपन्यास माना जाता है । इसमें भूतपूर्व जमींदार, धर्म के ठेकेदार, समाज के पुराने ठेकेदार, भ्रष्ट सरकारी बाबू द्वारा निर्मित अलग-अलग वैतरणी अलग-अलग नर्क से जूझती टपटपाती स्वातंत्र्योत्तर गाँव की प्रगतिशील नयी पीढ़ी को समग्र रूप में प्रस्तुत किया गया है । जगदीशचन्द्र के 'धरती न धन अपना','आधा पुल','मुठ्ठी भर कांकर','कभी न छोड़े खेत' इस धारा के प्रख्यात उपन्यास हैं । राही मासूम रजा का 'आधा गाँव' में देश विभाजन के पूर्व तथा बाद के ग्रामीण-मुस्लिम जन-जीवन का चित्रण किया गया है । हिमांशु जोशी के 'अरण्य', 'कगार की आग','सुराज','अँधेरा' तथा 'काँधा' इस धारा के विशिष्ट उपन्यास हैं, जिसे आँचलिकता का नव-उपन्यास कहा जा सकता है ।

पहाड़ी आदिवासी जन-जीवन का चित्रण जोशी के उपन्यासों में यथार्थ रूप में पाया जाता है । इसके अतिरिक्त भैरवप्रसाद गुप्त के 'सती मैया का चोरा', 'गंगामैया' विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के 'रींछ','दूसरा भूतनाथ' द्रोणवीर कोहली के 'हवेलियों वाले','आँगन कोठा' रमाशंकर श्रीवास्तव के 'किसिम-किसिम के लोग','एक टूकड़ा जमीन ','रथ के पहिए', धीरेन्द्र आस्थाना का 'समय एक शब्द भर नहीं ',

सच्चिदानंद धूमकेतु का ‘माटी की महक’, राजेन्द्र अवस्थी का ‘जंगल के फूल’, भीष्म साहनी का ‘मैयादास की माड़ी’, शिव प्रसाद सिंह का ‘नीला चाँद’, यादवेन्द्र शर्मा ‘चन्द्र ’का ‘हजार घोड़ों का सवार ’उदय राज सिंह का ‘अँधेरे के विरूद्ध’ आदि ग्रामचेतना के उल्लेखनीय उपन्यास हैं ।

(२) सामाजिक चेतना के उपन्यास :

सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था द्वारा शोषित जनजीवन की अभिव्यक्ति करनेवाले उपन्यासकारों ने सामाजिक यथार्थ को अपनाया हैं । आलोच्य कालीन इस धारा के उपन्यासों मे मन्मथनाथ का ‘बहता पानी’, भैरवप्रसाद गुप्त का ‘मशाल’ अमृतराय का ‘बीज’,‘नागफनी का देश’ और ‘हाथी के दाँत’ आदि समाजवादी यथार्थ को अपनानेवाले उपन्यास हैं। जो प्रगतिवादी-उपन्यासों की परवर्ती रचनाएँ हैं । मध्य, निम्न वर्ग के शोषित पीड़ित जीवन को अभिव्यक्त करनेवाले उपन्यासों में राजेन्द्र यादव के ‘उखड़े हुए लोग’ अमृतलाल नागर के ‘बूँद और समुद्र’,‘नाच्यौ बहुत गोपाल’ रमाकान्त का ‘छोटे-छोटे ’ धर्मेन्द्र गुप्त के ‘नोन-तेल लकड़ी’,‘गवाह है शेख पूरा’ हिमांशु जोशी का ‘ महासागर’,‘निरूपमा सेवती का ‘बँटा हुआ आदमी’ अभिमन्यु अनंत के ‘तीन राहों का चौहारा’, ‘लाल पसीना’ शिवसागर मिश्र का ‘अक्षत’ दामोदर सदन का ‘काला हीरा’ भीष्म साहनी का ‘तमस’ मुद्रा राक्षस का ‘तेरा नाम मेरा नाम’, रामदरश मिश्र के ‘आकाश की छत’,‘अपने लोग’,‘बिना दरवाजे का मकान’,‘दूसरा घर’ विवेकी राय के ‘विभावरी बीतेगी’ शानी का ‘काला जल’, कमलेश्वर के ‘समुद्र में खोया हुआ आदमी’,‘आगामी अतीत’रामकुमार भ्रमर का ‘काँच घर’ मनमोहन सहगल का ‘नंगा शहर’ आदि उल्लेखनीय हैं ।

(३) राजनीतिक उपन्यास :

आज की राजनीति हमारे जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित करती हुई देखी जाती हैं । आँचलिक, सामाजिक उपन्यासों में स्वातन्त्र्योत्तर राजनीति के जन-जीवन पर पड़े प्रभाव का अंकन हुआ हैं । राजनीतिक उपन्यास से हमारा तात्पर्य स्वातन्त्र्योत्तर राजनीतिक यथार्थ के अंतरंग चित्रणवाले उपन्यासों से हैं । इस दृष्टि से आलोच्य कालीन उपन्यासों में यशपाल के ‘झूठा-सच’,‘मेरी तेरी उसकी बात’,भगवती चरण वर्मा का ‘प्रश्न और मरीचिका’ भीष्म साहनी का ‘तमस ’,राही मासूम रजा के ‘टोपी शुक्ला’,‘कटरा बी आर्जू ’ श्री लाल शुक्ल का ‘राग दरबारी’ शिवप्रसाद किशोर का ‘गली आगे मुड़ती है’ काशीनाथ सिंह का ‘अपना मोर्चा ’ मन्नू भंडारी का ‘महाभोज’ गिरिराज किशोर का ‘लोग’,‘इन्द्र सुने’बदीउज्मा का‘छठ्ठाँ तंत्र’ राजकृष्ण मिश्र के ‘मंत्रि मंडल’, ‘दारूलशफा’,‘सचिवालय’ सुशिल कालरा के ‘निक्का-निमाना’

श्रवणकुमार गोस्वामी का 'जंगलतंत्रम' आदि उल्लेखनीय उपन्यास हैं। इन उपन्यासों में स्वतन्त्रता आन्दोलन, आपातकाल आदि घटनाएँ, दलों की दलदल, मूल्यहीन राजनीति, राजनयिकों की सत्ता लोलूपता, भाई -भतिजावाद और भ्रष्टाचार का यथार्थ अंकन गंभीर तथा व्यंग्यात्मक शैली में किया गया हैं।

(४) मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास :

व्यक्ति के आन्तरिक यथार्थ को मनोविज्ञान के सहारे प्रस्तुत करनेवाले उपन्यास भी स्वातन्त्र्योत्तर काल में लिखे गये। व्यक्ति के अन्तर्मन के परस्पर विरोधी विचारों,धृणा-प्रतिधृणा, संघर्ष ,तनाव, कुण्ठा, संत्रास चिन्ता, आशंका आदि को अभिव्यक्त करनेवाले आलोच्य कालीन उपन्यासकारों मे अज्ञेय, जैनेन्द्र, डॉ. देवराज प्रमुख हैं। अज्ञेय के 'नदी के द्वीप' तथा 'अपने-अपने अजनबी' आलोच्य कालीन उपन्यास हैं जो व्यक्ति की अन्तश्चेतना का भिन्न-भिन्न कोणों से अध्ययन प्रस्तुत करते हैं। जैनेन्द्र विशेषकर नारी-मन के विश्लेषक रहे हैं। आलोच्यकाल में उनके 'सुखदा','विवर्त' 'व्यतीत', 'जयवर्धन','मूक्तिबोध','अनन्तर' 'अनामस्वामी' 'देशार्क' उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। डॉ. देवराज के उपन्यास की मूलवर्तिनी धारा विवाह एवं बाह्य प्रेम रही है, 'पथ की खोज', 'बाहर-भीतर' 'रोड़ें और पत्थर','अजय की डायरी', 'मैं, वे और आप' आदि उनके इस धारा के उपन्यास हैं। मनोविश्लेषणात्मक अन्य उपन्यासों में नरेश मेहता के 'वह पथ बन्धु था' ,'डूबते मस्तुल','दो एकान्त' राजेन्द्र यादव के 'मंत्र बिद्ध', 'सारा आकाश' कमलेश्वर के 'काली आँधी', 'आगामी अतीत' धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' श्रीकान्त वर्मा का 'दूसरी बार' राजकमल चौधरी का 'मछली मरी हुई ' निर्मल वर्मा का 'वे दिन' कृष्णा सोबती का 'सूरज मुखी अंधेरे के ' आदि उल्लेखनीय हैं।

(५) प्रयोगशील उपन्यास :

कविता के समान स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यासों में भी शिल्पगत प्रयोग किये गये। ऐसे उपन्यासों में परम्परागत शिल्प विधान की जगह प्रतीक,सिनेरियो टेकनिक आदि का प्रयोग हुआ है। प्रभाकर माचवे का 'परन्तु', 'साँचा द्वाभा' धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा',रुद्र का 'बहती गंगा' गिरिधर गोपाल का 'चाँदनी रात के खंडहर' सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'सोया हुआ जल' नरेश मेहता का 'डूबते मस्तूल' बदीउज्जमा के 'एक चूहे की मौत','छठाँ तंत्र' आदि उल्लेखनीय प्रयोगशील उपन्यास माने जा सकते हैं।

(६) ऐतिहासिक उपन्यास :

अन्य धारा की अपेक्षा इतिहास को आधार बनाकर लिखे गए उपन्यासों की संख्या आलोच्य काल में कम हैं । आलोच्यकालीन ऐतिहासिक उपन्यासों मे जहाँ एक ओर आचार्य चतुरसेन शास्त्री के 'वयं रक्षामः','महारानी दुर्गावती','रामगढ की रानी','सह्याद्रि की चट्टानें ' 'बिना चिराग का शहर','राहुल सांस्कृत्यायन का 'दिवोदास',रांगेय राघव के 'प्रतिदान','देवकी का बेटा', यशोधरा जीत गयी','चीवर' आदि पूर्वकालीन उपन्यासकारों की परवर्ती रचनाएँ हैं, वहाँ नरेन्द्र कोहली के 'दीक्षा','अवसर' 'संघर्ष की ओर','युद्ध अभिज्ञान' भगवतीशरण मिश्र का 'पहला सूरज' जैसे नये लेखकों के उपन्यास भी हैं । नये लेखकों में ऐतिहासिक कथा-चरित्रों की समकालीन प्रासंगिकता के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुतीकरण की प्रवृत्ति दिखाई देती हैं । इस दृष्टि से अमृतलाल नागर का 'मानस का हंस' हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'पुनर्नवा','अनामदास का पोथा ' आदि महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं । इस धारा के अन्य उपन्यासों में यादवचन्द्र जैन के 'उत्तरापथ','आदिसम्राट' यज्ञदत्त शर्मा का 'देवयानी',शिवसागर मिश्र के 'राजतिलक','मगध की जय' यशपाल का 'अमिता' गुरूदत्त के 'लुढकते पत्थर' 'पत्रलता' वाल्मीकि त्रिपाठी का 'दुरभि संधि' उमाशंकर का 'भुवन विजयम्' हिमांशु जोशी का 'सिकन्दर' जगदीशकुमार निर्मल का 'विदिशा की देवी' वीरेन्द्र पाण्डेय का 'सिन्धु की बेटी' अमृतलाल नागर के 'खंजन नयन','सुहाग के नुपूर' शिवप्रसाद सिंह के 'नीला चाँद','कुहरे में युद्ध','दिल्ली दूर है ' आदि उल्लेखनीय हैं ।

(७) आधुनिकतावादी उपन्यास :

यांत्रिकीकरण,दो महायुद्धोत्तर अस्तित्त्ववादी चिन्तन से प्रेरित होकर समकालीन जीवन में व्याप्त विसंगति, संत्रास, घूटन तथा नगरीय बोध को अभिव्यक्त करनेवाले उपन्यास आलोच्यकाल में विपुल मात्रा में लिखे गए । इसमें मोहन राकेश के 'अँन्धेरे बन्ध कमरें' 'न आनेवाला कल' निर्मल वर्मा का 'वे दिन','लालटीन की छत' राजकमल चौधरी का 'मछली मरी हुई ' कमलेश्वर का 'डाक बंगला' गंगा प्रसाद विमल का 'अपने से अलग ' महेन्द्र भल्ला का 'एक पति के नोट्स' श्री लाल शुक्ल का 'मकान', शैलेष मटियानी के 'कबूतर खाना' 'भागे हुए लोग', केशवचन्द्र का 'आँसू की मशीन' उषा प्रियंवदा का 'पचपन खम्भे लालदीवारें ' मन्नू भण्डारी का 'आपका बंटी' शशी प्रभा शास्त्री का 'नार्वे 'कृष्णा सोबती के 'मित्रों मरजानी ' 'डार से बिछुड़ी' रमेश बक्षी का 'सूरज के पौधे' रामदरश मिश्र के 'बीच में समय' 'रात का सफर' जगदम्बाप्रसाद दीक्षित का 'कटा हुआ आसमान''मुर्दाघर','इतिवृत' गिरिराजकिशोर का 'तीसरा आदमी' बदीउज्जमा का 'अपुश्चष' योगेश गुप्त के

‘स्वप्न दंश’ ‘अनदीखी झील’,‘धुआँ-धुँआ बस्ती’ ‘पत्थर की खिचीं लहरें ’,‘उनका फैंसला’ मनोहरश्याम जोशी का ‘कुरू कुरू स्वाहा’ धर्मेन्द्रगुप्त का ‘नगर पुत्र हँसता हैं ’मृदुला गर्ग के ‘उनके हिस्से की धूप’ ‘चित्त कोबरा’ ‘वंशज’,‘मैं और मैं ’ ‘अनित्य’ निरूपमा सेवती का ‘पतझड़ की आवाजें ’ राजी शेठ का ‘तत्सम’ स्वदेश भारती का ‘माया-पोत’ शंकर कपूर का ‘नचिकेता’ आदि उल्लेखनीय उपन्यास हैं । इन उपन्यासों में मध्य वर्गीय जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्रण पाया जाता हैं । अधिकतर उपन्यासों के केन्द्र में नगर या महानगर होता हैं । ये उपन्यास सामाजिक यथार्थ की अपेक्षा व्यक्तिवादी यथार्थ से प्रेरित हैं । पाश्चात्य विचारों एवं उपन्यासों का उन पर पर्याप्त प्रभाव देखा जा सकता हैं, यह प्रभाव विशेषकर स्त्री-पुश्रुष सम्बन्धों, जीवन की विसंगतियों तथा निरर्थकता के प्रकटीकरण में परिलक्षित होता है ।

(८) उत्तर आधुनिकतावादी उपन्यास :

हिन्दी साहित्य में आधुनिकता के प्रति अत्यधिक मोह रहा है । सातवें-आठवें दशक में विशेषकर इस सदी के अंतिम दशक में आकर हम महसूस कर रहे हें कि पाश्चात्य देशों से आयातित आधुनिकता एक तरह से उपनिवेशवाद का अस्त्र बनकर आयी थीं,अपने मूल्यरूप में साम्राज्यवाद का ही एक नया संस्करण थी । रूस के टूटने तथा साम्यवादी विचारधारा के क्षीण होते ही पूँजीवाद, खूली-बाजारनीति ,ग्लोबलाइजेशन आदि के रूप में तीसरी दुनिया पर पूरी तरह से हावी हो गया । अपनी तथाकथित समृद्ध संस्कृति आज आधुनिकता की प्रमुख पहचान है ।

हिन्दी उपन्यास-साहित्य में उत्तर आधुनिकता की अनगूँज मनोहरश्याम जोशी के ‘कुरू कूरू स्वाहा ’ में सुनी जा सकती हैं । ‘कसप’ हरिया हरक्युलस की हैरानी ’‘टटा प्रोफेसर’,‘हमजाद’ इन उपन्यासों में उत्तर आधुनिकता का ‘जादुई यथार्थवाद’ हैं । दक्षिणी अमेरीका के कार्पेतियर तथा कोलंबिया के ग्रेबियल गर्सिया मार्क्स के उपन्यासों में यह जादुई यथार्थवाद देखा जाता था । जोशी को यह प्रेरणा वहीं से मिली है लेकिन परिप्रेक्ष्य अपने देश का आज का विषम परिवेश रहा हैं । इन उपन्यासों में आज के तथाकथित आधुनिक परिवेश में दम तोड़ते जीवन मूल्यों को रेखांकित किया गया है । ये उपन्यास अपने शिल्प तथा संवेदना के धरातल पर उत्तर आधुनिकता के वे सभी लक्षण संयोजे हुए हैं ,जो डॉ. सुधीर चौधरी ने अपने ग्रंथ ‘उत्तर आधुनिकता और संरचनावाद’ में दिये हैं । इस नवागत विचारधारा से प्रेरित अन्य उपन्यासों के रूप में विनोदकुमार शुक्ल का ‘नौकर की कमीज’ मृणाल पाण्डे का ‘पटरंग पुटपुराण’ भगवान सिंह का ‘अपने अपने राम ’ वीरेन्द्र जैन का ‘डूब’ तथा सुरेन्द्र वर्मा का ‘मुझे चाँद चाहिए’ आदि का उल्लेख किया जा सकता हैं ।

(९) नारीवादी उपन्यास :

'नारी समस्या' केन्द्रित साहित्य-सृजन भारतेन्दु काल से होता आया है । अल्पमात्रा में ही क्यों न हो, लेकिन महिला लेखिकाएँ प्रायः हर युग में रही हैं । लेकिन स्वातन्त्र्योत्तर काल में महिला लेखिकाओं का नारी समस्या केन्द्रित साहित्य अपनी पूर्ववती लेखिकाओं तथा समकालीन लेखकों से निश्चित रूप से अलग रहा है । यद्यपि साहित्य-क्षेत्र में महिला लेखन तथा पुरूष लेखन जैसा लिंग भेद उचित नहीं है तथापि 'नारी' तथा 'नारी समस्या' के प्रति पुरूष लेखक तथा महिला लेखिका की दृष्टि में अन्तर हैं । पुरूष प्रधान संस्कृति के संस्कारों से ग्रस्त वर्तमान व्यवस्था में अपनी तथाकथित वैज्ञानिक दृष्टि एवं प्रजातांत्रिक मूल्यों के बावजूद नारी-समाज की दशा में अपेक्षित सुधार नहीं हो पाया है । अपितु देखा यह जाता है कि परम्परागत शोषण औजारों के साथ नये औजार भी आविष्कृत हुए हैं, इसलिए नारी शोषण की व्याप्ति और भी बढ़ गई है । घर में तथा घर के बाहर जीवन के हर क्षेत्र मे वह शोषित है । इस शोषण से मुक्ति के लिए अब तक ओरों के भरोसे रहने की मानसिकता में नहीं है, क्योंकि उसने अनुभव किया है कि 'शोषण मुक्ति' के नाम पर भी उसका शोषण होता रहा है । कई दिनों तक यह कहा जाता रहा कि आर्थिक परावलम्बन उसके शोषण के लिए जिम्मेदार है । लेकिन आर्थिक रूप में आत्मनिर्भर होने पर भी उसका शोषण निरन्तर हो रहा है । कामकाजी महिलाओं का घर में तथा कार्यालयों में भी तरह-तरह से शोषण होता है । साथ ही अपनी समूची योग्यता के बावजूद घर में तथा समाज में उसे दूसरा दर्जा ही मिलता रहा है । तथाकथित आयातित विचारों से 'मुक्ति' स्वप्रयत्नों से और स्वअर्जित विचारों से ही प्राप्त हो सकती है । इसलिए अब वह 'अपनी दृष्टि' से अपने समाज और अपने आपका अन्वेषण कर रही है । इसे ही 'स्त्रीवादी' या 'नारीवादी साहित्य' कहा जा रहा हैं । हिन्दी में प्रमुखतः उपन्यास तथा कहानियों में नारीवादी चेतना व्यक्त हो रही है । कृष्णा सोबती का 'मित्रों मरजानी' तथा शिवानी का 'कृष्णकली' उल्लेखनीय उपन्यास हैं ।

(१०) लघु-उपन्यास :

स्वातन्त्र्योत्तर युग में महाकाव्यात्मक उपन्यासों का महत्त्व नष्ट हो रहा है । इसका यह अर्थ नहीं है कि विशाल कलेवरवाले उपन्यासों का प्रणयन इस काल में नहीं हुआ है । अधिकांश लेखक आज लघु उपन्यास के सृजन में दिलचस्प दिखाई पड़ते हैं । कुछ आलोचक यह मानते हैं कि लघु उपन्यास अपने में एक विधा हैं । कुछ आलोचकों के अनुसार लघु उपन्यास उपन्यास नहीं हैं, जिसमें जीवन का सीमित विस्तार गृहित होता है । इसकी संरचना और विकास प्रक्रिया उपन्यास-की-सी है, कहानी-की-सी नहीं । कुछ भी हो इस बात पर स्वयं उपन्यासकार एकमत नहीं हैं ।

मशहूर लघु उपन्यासकार डॉ. प्रभाकर माचवे के शब्दों में –'' लघु उपन्यास अपने आप में एक विधा हैं । जो काम 'कहानी' से नहीं हो सकता जो 'उपन्यास' से नहीं हो सकता वह इसके द्वारा किया जाये, ऐसी अपेक्षा से शुरु हुआ था । दुर्भाग्य से दीर्घ कथा को ही यार लोग लघु उपन्यास कहने लगे ।''[४६] यह पाठक के हक में चुनाव के लिए अधिक मौका है । भीष्म साहनी के मतानुसार – ''लघु उपन्यास,कहानी और उपन्यास दोनों के बीच की चीज है । इसे कहानी का विस्तार मात्र नहीं कहा जा सकता । वे उपन्यास हैं किन्तु छोटे ।''[४७] लघु उपन्यास को एक अलग विधा मानना संगत प्रतीत नहीं होता । क्योंकि उपन्यास और लघु उपन्यास की संरचना और विकास प्रक्रिया बराबर है । इसमें एक सूत्रता है, लेकिन विस्तार कम ।

लघु उपन्यास एक अलग विधा हो या न हो एक बात निश्चित है, आज लघु उपन्यास अधिक प्रासंगिक है । महाकाव्यात्मक उपन्यास लिखनेवाले सारे उपन्यासकारों ने लघु उपन्यासों की रचना में रुचि दिखाई हैं । उपन्यास का कैनवास सीमित हो रहा हैं । सीमित कैनवास में जीवन की बहुरूपता और विविधता को रूपायित करते हैं । लघु उपन्यासों की प्रभावोत्पादन की क्षमता पर किसी ने प्रश्नचिह्न नहीं लगाया है । पाठक भी आज इस ढंग के उपन्यासों को अधिक पसंद करते हैं । उपन्यास का बाह्याकार विस्तार का मापदंड नही हैं । मानव जीवन और मानव नियति को प्रस्तुत करने में लघु उपन्यास अधिक सक्षम हैं । कमलेश्वर के 'समुद्र में खोया हुआ आदमी ','तीसरा आदमी ','काली आँधी','एक सड़क सत्तावन गलियाँ ', रमेश बक्षी का 'एक घिसा हुआ चेहरा' उल्लेखनीय हैं ।

(११) विदेशी परिवेश के उपन्यास :

विदेशी परिवेश को अपनाकर उपन्यास लिखने की प्रवृत्ति स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास की एक अभिनव प्रवृत्ति है । अपने ही समाज और राष्ट्र के ढाँचे में सीमित होकर उपन्यास लिखना है,यह धारणा आज बदल गयी है । स्वातन्त्र्योत्तर युग में हिन्दी के उपन्यास क्षेत्र में पदार्पण किये लेखकों में बहुतों की विश्वविद्यालय और अन्य प्रकार की शैक्षिक संस्थाएँ उनके कार्यक्षेत्र हैं । विदेशी मनीषियों और साहित्यकारों की प्रकृष्ट रचनाओं से उनका निकट सम्पर्क हैं । सारी अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के प्रति वे उत्सुक हैं । विदेशी पत्र-पत्रिकाओं और साहित्यिक रचनाओं से वे अवगत और अभिभूत होते हैं । इतना ही नहीं, ऐसे भी अनेक उपन्यासकार हैं, जिन्हें विदेशयात्रा करने का मौका मिल चुका है । यात्रा के दौरान दिखाई पड़े दृश्यों और घटनाओं को उपन्यास सृजन के संदर्भ में कच्चे माल के रूप में इस्तेमाल करते हैं । पश्चिम के जीवन-मूल्यों की तुलना वे हमारे मूल्यों से करते हैं । इन्हीं कारणों के आधार पर हिन्दी में विदेशी परिवेश के उपन्यासों की रचना हुई हैं ।

विदेशी परिवेश का अर्थ यूरोपीय परिवेश न मानकर अभारतीय परिवेश मानना अधिक संगत होगा । अमरिका, रूस, जापान, फ्रान्स, ओस्ट्रेलिया, इंग्लेन्ड, जर्मनी, चेकोस्लोवाकिया, बांग्लादेश, सिलोन, अफ्रिका आदि देशों के परिवेश में हिन्दी के कई उपन्यास लिखे गए हैं । इस ढंग के उपन्यासों से अनेक नई बातें उद्घाटित होती हैं । तत्सम्बन्धी देश की दृश्यावलियों, प्रमुख संस्थाओं और मकानों के परिचय इनमें मिलते हैं । विभिन्न देशों के जीवन-मूल्यों का सही परिचय इन उपन्यासों के माध्यम से हमे मिलता हैं । इस ढंग के अधिकांश उपन्यास यूरोपीय परिवेश के हैं । युद्धोत्तर यूरोप के जनमानस का सही चित्र इन में रूपायित हैं । विज्ञान और तकनीकी से उन्नति के उत्तुंग श्रृंग पर पहुँचे देशों में मानवीय मूल्यों का पतन हो रहा है । पब और क्लब की जीवन लीलाएँ इस ढंग के उपन्यासों में चित्रित हैं ।

विदेशी परिवेश के उपन्यासों के प्रति कुछ आलोचकों का दृष्टिकोण पूर्वग्रहयुक्त हैं । उनकी शिकायत यह है कि जब हमारे देश में काफी समस्याएँ है तब विदेश की ताक में क्यों रहते हैं । दोनों संस्कृतियों के तुलनात्मक विवेचन के लिए ये उपन्यास फायदेमंद हैं । विदेशी परिवेशवाले किसी भी उपन्यास ने यूरोपीय संस्कृति को भारतीय संस्कृति से उत्तम नहीं माना है । यूरोपीय संस्कृति के छिछले और खोखले पहलुओं से हमें सहज बनाकर अपनी संस्कृति की गौरव-गरिमा को बनाये रखने का संदेश इस ढंग की रचनाओं में निहित हैं । यूरोपीय जीवन के कई तौर-तरीकों के विशद वर्णन इन में हुए हैं । इस प्रकार के उपन्यासों में विदेशी पात्रों को भी हम देख सकते हैं । कुछ विदेशी पात्र भारतीय संस्कृति और जीवन मूल्यों की सराहना करनेवाले भी हैं । विदेशी परिवेश के प्रति परहेज की भावना रखना उचित नहीं हैं । हिन्दी में होनेवाले अन्तर्राष्ट्रीय उपन्यासों के प्रति हमारा दृष्टिकोण व्यापक और विशाल बन जाय । निर्मल वर्मा का 'वे दिन',अज्ञेय का 'अपने अपने अजनबी' विदेशी परिवेश के उपन्यास हैं ।

(१२) महानगरीय परिवेश के उपन्यास :

स्वातन्त्र्योत्तर काल में शहरी परिवेश में कई उपन्यासों का प्रणयन हुआ हैं । अजनबीपन, अकेलापन, गृहातुरता आदि बातों की परत खोलने में ये उपन्यास बहुत सहायक निकले हैं । जिन्दगी की गन्दगियों का चित्रण इनमें भरे पड़े हैं । नाइट क्लब, मदिरापान, काफी हाउसों की खोखली परिचर्चाएँ ,नकाबी व्यवहार ये सब आधुनिकता के अनुप्रेक्षणीय पहलू बन गये हैं । सेक्स और विलास-लालसा के चित्रण में इस ढंग के उपन्यासकार कुछ भी अंकुश नहीं लगाते । स्त्रियों की समलैंगिक रति तक इनके विषय हैं । कुछ उपन्यासकार इस ढंग के चित्रणों को मनोवैज्ञानिक

विश्लेषण कहकर उन्हें विशिष्ट सिद्ध करते हैं। कमलेश्वर के 'डाक बंगला', 'आगामी अतीत', 'समुद्र में खोया हुआ आदमी ', रमेश बक्षी का 'अठारह सूरज के पौधे ' आदि महानगरीय परिवेश के विशेष महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं।

हिन्दी उपन्यास के विकास के पड़ावों के विश्लेषण के संदर्भ में यह कहना उचित होगा कि आये दिन उसके कथ्य, तथ्य और शिल्प में परिवर्तन और परिवर्द्धन आते रहे हैं। नये विचारों को ग्रहण कर वह अपने रूप को निरन्तर निखारकर प्रगति के पथ पर अग्रसर भी हो रहा हैं। हिन्दी उपन्यास के सामने संभावनाओं के नये क्षितिज खूल गये हैं और उसने अपनी विकास यात्रा में नये मील पत्थरों की स्थापना भी की हैं। प्रेमचन्द युग और स्वातन्त्र्योत्तर युग के हिन्दी उपन्यास की चेतनाभूमि समान और सदृश नहीं रही हैं। स्वातन्त्र्योत्तर युग में हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में कई नयी, निराली प्रवृत्तियों का सूत्रपात हुआ है। कुछ प्रवृत्तियाँ स्तुत्य रही हैं और कुछ प्रवृत्तियाँ अनहोनी। प्रेमचन्द के पद्चिह्नों का अनुगमन करनेवाले लेखक भी स्वातन्त्र्योत्तर युग में सृजनरत हैं।

इस प्रकार संक्षिप्त सर्वेक्षण से पता चलता है कि स्वातन्त्र्योत्तर युग में हिन्दी का उपन्यास साहित्य काफी समृद्ध हो गया है। विकास की सीढ़ियाँ एक रूप नहीं थी। पूर्व परम्परा की लीक पर चलने में परवर्ती उपन्यासकारों ने श्चि नहीं दिखाई है। नये मार्गों और लक्ष्यों की वे तलाश करते रहें। उपन्यास सम्बन्धी दृष्टिकोण भी आज बहुत हद तक बदल गया है। आधुनिक युग में ज्ञान-विज्ञान का जो महास्फोट हुआ उसके सारे तत्त्वों को पचाने और आत्मसात करने की क्षमता उपन्यास ने हाँसिल की है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यासकारों ने स्वतंत्रता के बाद की पारिवारिक, सामाजिक राजनैतिक, आर्थिक एवं धार्मिक सांस्कृतिक व्यक्ति चेतना को वाणी दी है, उनकी रचनाओं में जीवन के विविध पक्ष अपने यथार्थ रूप में प्रस्तुत हुए हैं। उनकी प्रस्तुति युग-सापेक्ष है।

(ग) सातवें दशक के उपन्यास एवं उपन्यासकार

इसमें हम केवल उन लेखकों की सन् साठ के बाद की रचनाओं के अनुशीलन को प्रस्तुत कर रहे हैं जिनका औपन्यासिक कृतित्त्व प्रेमचन्द तथा प्रेमचन्दोत्तर युग से प्रारम्भ हुआ हैं, पर जो आज भी प्रासंगिक नहीं बने हैं और यथार्थ के नये आयामों को आधुनिक भावबोध के साथ प्रस्तुत करने में समर्थ हैं। इस दशक में विपुल औपन्यासिक साहित्य लिखा गया हैं। यह विधा जहाँ उत्कृष्ट साहित्यिक स्तर की

रचना देने के लिए समर्थ है, वहाँ असाधारण कोटि की कृति देना इसमें बड़ा सरल काम हैं । अतः इसमें केवल उन रचनाओं का चयन किया गया है जो वस्तु अथवा शिल्प की दृष्टि से रचनाधर्मिता की ऊँचाइयों का स्पर्श कर सकी हैं । हम इस दशक के उपन्यास का परिचय प्राप्त करे इससे पहले उस समय की परिस्थितियों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करना आवश्यक हैं ।

स्वाधीनता के उपरान्त हमारे यहाँ एक उल्टा चक्र चला । स्वाधीनता पूर्व की सारी बातें,सारे प्रण,सारी नीतियाँ स्वाधीनता के बाद उलट गई । गरीबी के स्थान पर गरीब ही हट रहे हैं । गरीबी,बेरोजगारी,महँगाई,भ्रष्टाचार,कालाबाजार,तस्कर व्यापार आदि दिन-दूने रात चौगुने बढ़ रहे हैं । शहीदों का स्थान शोहदों ने ले लिया हैं और देश का राजनीतिक चित्र ह्रासोन्मुखी तथा घोर कालिमामुक्त होता जा रहा है ।

देश की गति में अवरोध जहाँ नेताओं की स्वार्थपटुता, क्षुद्रता, कुपमण्डूकता एवं संकिर्णता के कारण पैदा हुआ है, वहाँ आजादी के बाद भी उसकी कार्य-प्रक्रिया की अपरिवर्तनशीलता भी उतनी ही जिम्मेदार हैं । नौकरशाही ने भ्रष्टाचारी, व्यापारियों, तस्करों तथा भ्रष्ट नेताओं के साथ हाथ मिला लिया हैं, जिसके परिणाम स्वरूप देश में चारों तरफ भयंकर मूल्यहीनता नजर आ रही है ।

इधर आजादी के पश्चात् बढ़ते भ्रष्टाचार ने नव धनिक वर्ग को जन्म दिया हैं जिसके पास अतुल सम्पत्ति है पर संस्कारों का नितान्त अभाव हैं । जिसकी ताकत श्नपया हैं । श्नपये के इस बढ़ते प्रभाव ने सारे नैतिक मूल्यों की कमर तोड़ दी हैं । पश्चिम की भौतिकवादी सभ्यता तथा चिन्तन ने व्यक्ति को नितान्त अकेला, निस्सहाय व अजनबी बना दिया है ।

महानगरों पर पश्चिम का ,नगरों पर महानगरों का तथा गाँवों पर नगरों का दबाव बढ़ रहा है । अंग्रेजियत की अहमियत कम होने की बजाय बढ़ रही हैं । गाँव तथा उनके लोग भी अपने सहज उन्मुक्त प्राकृतिक जीवन से दूर हटते जा रहे हैं । जटिलता वहाँ भी बढ़ रही हैं । दोहरे जीवन-मूल्यों ने व्यक्ति के दोगलेपन व खोखलेपन को बढ़ा दिया हैं ।

बढ़ती हुई दिशाहीन शिक्षा-पद्धति ने बेरोजगारी को बढ़ावा दिया हैं । स्त्री-शिक्षा ने जहाँ आत्मनिर्भर किया हैं, वहाँ नवीन सामाजिक समस्याओं को भी

जन्म दिया हैं । स्त्री-शोषण का एक नया आयाम शिक्षित ,अविवाहित, व्यवसायी लड़कियों के रूप में सामने आया हैं । उनकी सेक्स जनित कुण्ठा तथा उत्तरकालीन जीवन के असहाय एकाकीपन से एक नवीन नाटकीयता एवं मानव ट्रेजड़ी का निर्माण होता है ।

बढ़ते हुए व्यक्तिवाद ने स्त्री-पुश्रूष की अहंवृत्ति को अत्यधिक उत्तेजित किया है, जिसके परिणाम स्वरूप दाम्पत्यजीवन में दरारें पड़ रही हैं और परिवार टूटते जा रहे है । इसमें छोटे-छोटे शिशुओं की स्थिति त्रिशंकु-सी होती जा रही हैं । भौतिकवादी चिन्तन प्रणाली ने जीवन-मूल्यों में अभूतपूर्व परिवर्तन उपस्थित किया हैं । तथापि मध्यवर्गीय समाज नये-पुराने संस्कारों के बीच पिस रहा है । उच्च तथा निम्न वर्ग का नैतिकमूल्यों से कोई सरोकार नहीं है ।

संक्षेप में राजनीति, समाज, धर्म, शिक्षा आदि सभी क्षेत्र समस्याओं से बुरी तरह ग्रस्त एवं आक्रान्त हैं जिसका आकलन उपन्यासों में प्रगतिवादी, आधुनिकतावादी, तथा अस्तित्त्ववादी उपन्यासकार अपने-अपने ढंग से कर रहे हैं ।

उक्त परिस्थितियों के दबाव में मानव-सम्बन्धों में भी एक विशिष्ट बदलाव आया है । सम्बन्धों के इस बदलते हुए यथार्थ की अगणित मुद्राएँ १९६० के बाद के उपन्यासों मे ग्राम,नगर तथा महानगर के त्रिस्तरीय परिवेश में उपलब्ध होती हैं । ये मुद्राएँ निम्न मध्यवर्गीय समाज में आर्थिक स्तर पर दिये जा रहे संघर्ष की पृष्ठभूमि में उभरी हैं । इसमें शिक्षित आधुनिका नारी के सम्बन्धों का एक टूटता बनता और बिखरता संसार है । पुश्रूष इस संसार में अधिकाधिक भावनाहीन होता गया हैं । आर्थिक शोषण तथा व्यवस्था तन्त्र और नौकरी पेशा की किलेम्बन्दियों की सर्व व्यापक प्रकिया से गुजरते हुए वह अवसरवादी समझौता परक तत्त्वों का शिकार होकर जड़ एवं भावनाहीन हो गया हैं । इस सम्बन्ध में डॉ. अतुलवीर अरोड़ा ने लिखा है - ''सम्बन्धों का यह संसार केवल स्त्री-पुश्रूष, पति-पत्नी अथवा प्रेमी-प्रेमिका का संसार नहीं हैं, प्रत्युत इसकी पकड़ समूचे मानवी संदर्भ, मानवी स्थिति एवं मानवी परिप्रेक्ष्य पर हैं । इन्हें व्याख्यायित करने के लिए आज के हिन्दी उपन्यासकार को अनुभवों के व्यापक धरातलों पर से गुजरना पड़ा हैं और कई बार 'अनुभूति की प्रामाणिकता' के प्रकाशन के लिये वह अपने ही जीवन की कथाएँ कहता और जुटाता चला गया हैं । इस बिन्दु पर उसकी रचना-मुद्रा पैने दंश से भरपूर हैं ।''[४८]

हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में कदाचित पहली बार सन् ६० के बाद स्त्री-पुश्रूष,

पति-पत्नी और प्रेमी-प्रेमिका के मिथुन सम्बन्धों पर दृष्टिपात किया गया हैं । आलोचकों की नाराजगी मोल लेते हुए खूली आँख से दृष्टिपात किया गया हैं ।

आज के उपन्यास की एक प्रमुख विशेषता है कि साधारण मनुष्य की अवधारणा जो इधर अधिकाधिक उभरती गई हैं । मनुष्य की इस मुद्रा को कुछ लोगोनें 'लिटिल मैन' कहा हैं । इसका विरोध करते हुए डॉ. रमेश कुन्तल मेघ ने समुचित ही लिखा है- ''कुल मिलाकर मेरा एक दिन का जीवन एक मामूली आदमी का जीवन है । इस तरह सबसे पहले मैं एक व्यक्ति 'मामूली मैं 'हूँ मैं न महा मानव हूँ न ही लघु मानव । यदि हूँ तो एक मानव । एक विशेष का अनुभव करनेवाला ।''[४९] इस प्रकार सातवें दशक के उपन्यासों में मनुष्य की इस साधारण छवि को उसकी समूचि शक्ति-अशक्ति के साथ आकलित करने की चेष्टा हुई हैं ।

◈ अपने-अपने अजनबी (१९६१) :

हिन्दी कथा साहित्य में निजी शिल्प सजगता को लेकर अज्ञेय अप्रितम हैं । उनके तीन उपन्यास प्रायः दस-दस साल के अन्तराल में आये हैं, परन्तु उनमें से प्रत्येक ने शिल्प के नये आयामों की सम्भावना को बढ़ा दिया हैं और हिन्दी कथा साहित्य में नयी जमीन को तोड़ा हैं । अज्ञेय के तीन उपन्यास क्रमशः मानव मन की तीन मूलभूत प्रवृत्तियों (अहं,सेक्स और भय) से जुड़े हुए हैं । 'अपने-अपने अजनबी' एक प्रकार से मृत्यु बोध का ही आख्यान हैं ।

◈ अन्धेरे बन्द कमरे (१९६१) :

यह आधुनिक भावबोध से सम्पन्न बहुचर्चित उपन्यास हैं । हिन्दी उपन्यास साहित्य के विवेचकों में इस कृति ने काफी खलबली मचाई थी । डॉ. कुसुम वार्ष्णेय के मतानुसार - '' मोहन राकेश का यह पहला उपन्यास सातवें दशक के नये आयाम खोलने की गवाही देता हैं । यहीं से व्यक्ति सम्बन्धों का बाह्य परिवेश छुटता नजर आता हैं और आन्तरिक परिवेश की बात ही रह गई है । मोहन राकेश द्वारा 'अन्धेरे बन्द कमरे ' में पहली बार स्त्री-पुश्रुष के नये सम्बन्धों और तनावों को भरपूर खूली आँख से देखने की कोशिश की गई हैं ।''[५०]

◈ पचपन खम्भे लाल दीवारें (१९६१) :

आधुनिक कला लेखिकाओं में उषाजी की गणना अग्रिम पंक्ति में होती है । उनके साहित्य में आधुनिक जीवन की ऊब, छटपटाहट, संत्रास अस्तित्त्व-बोध

एवं अकेलेपन की भावना को प्रमुख स्वर मिला हैं। उषा प्रियंवदा व्यक्ति स्वतंत्रता और निजता में अधिक विश्वास करती हैं। वह मानती हैं कि मानवमूल्यों विकास की दृष्टि से मनुष्य का स्वतंत्र विकास अनिवार्य हैं।'पचपन खम्भे लाल दीवारें ' में अपने अनुभवों की मानसिकता को बड़ी गहराई से उभारा हैं। इस उपन्यास में स्त्री स्वतंत्र निर्णय लेने की शक्ति रखने के बावजूद अजीब बेबसी और सामाजिक घिराव में अपने को बन्द पाती हैं। प्रस्तुत उपन्यास नारी-जीवन के इन परिवर्तित आयामों की कश्रण अभिव्यक्ति हैं।

◈ हीरक जयन्ती (१९६१) :

प्रगतिशील कवि एवं कथाकार नागार्जुन का औपन्यासिक कृतित्त्व सन् १९४८ (रतिनाथ की चाची) से अनवरत् प्रवहमान हैं। 'हीरक जयन्ती' में लेखक ने स्वाधीनता के पश्चात् उत्पन्न राजनीतिक अस्थिरता के परिचायक 'नेतो' नामक नये वर्ग का चित्रण व्यंग्य प्रधान शैली में किया हैं।

इसके अलावा भी १९६१ में अनेक उपन्यास लिखे गए हैं। **'पानी के प्राचीर'** रामदरश मिश्र का प्रचलित उपन्यास हैं। इसमें लेखक ने नीरू के माध्यम से पाखण्ड, अंध-विश्वास, अन्याय एवं अनीति का विरोध स्पष्ट कराया हैं। **'नदी फिर बह चली '** में हिमांशु श्रीवास्तव का प्रगतिवादी दृष्टिकोण उभरकर आया हैं। इस उपन्यास की नायिका 'परबतिया' अन्तिम साँसों तक परिस्थितियों से संघर्ष ही नहीं करती वरन् एक नयी चेतना के 'नव जागरण' का शंख फूंक देती हैं। **'नदी बहती थी '** राजकमल चौधरी का सामाजिक विषमता को लेकर लिखा गया उपन्यास है। इसमें मानवीय असंगति से परिपूर्ण जीवन के आक्रोश,सामाजिक विषमता एवं शिल्प के बिखराव का चित्रण हुआ हैं। युगानुसार परिवर्तित मान्यताओं, सामाजिक विघटन एवं आर्थिक विषमताओं का प्रभावी चित्रण इस रचना में हुआ हैं। **'एक इंच मुस्कान'** में राजेन्द्र यादव ने आज के नव युवकों की मानसिक उलझनों का चित्रण किया हैं। **'ये कोठेवालियाँ'** अमृतलाल नागर का उपन्यास है। नागर के उपन्यासों में आज की सामाजिक सक्रांति तथा उथल-पुथल के बीच व्यक्ति द्वन्द्व का उद्घाटन किया हैं।

◈ यह पथ बन्धु था (१९६२) :

यह नरेश मेहता का दूसरा बहुचर्चित उपन्यास है। जिसका प्रकाशन सन् १९६२ ई. में हुआ। यह उपन्यास बीसवीं सदी के पूर्वाध के सामाजिक जीवन-मूल्यों तथा मान्यताओं पर आधारित है। इसमें देश के पिछले पचास वर्षों का इतिहास है।

राजनैतिक, सामाजिक, पारिवारिक,जीवनगत मूल्य-संक्रमण की पृष्ठभूमि की व्यक्ति चेतना का टूटन लेखक ने प्रस्तुत किया है । युग का राजनीतिक एवं सामाजिक चित्र प्रस्तुत करना मेहताजी का उदेश्य नहीं हैं । राजनीतिक परिपाश्र्व में नायक श्रीधर के जीवन को चित्रित किया गया है ।

◈ अनदेखे अनजाने पुल (१९६३) :

यह राजेन्द्र यादव का लघु-उपन्यास है । इसमें काली लड़की (कुरूप) निम्मी के मानसिक संघर्षों और मनःस्थितियों का चित्रण किया गया है । इस उपन्यास में केवल निम्मी की हीनतानुभूति की अभिव्यक्ति हैं ।

◈ चारू चन्द्रलेख (१९६३) :

द्विवेदीजी ऐतिहासिक उपन्यासों मे नहीं इतिहास विषयक यह मनोधारणा भी पुष्ट करते हैं कि इतिहास महज किसी काल-विशेष के राजा-रानियों की तथा उनके युद्धों की कहानी नहीं हैं । प्रत्युत उस युग के जन-जीवन की जीती जागती तस्वीर है । इस अर्थ में 'चारू-चन्द्रलेख' १३ वीं शताब्दी के मध्य कालीन भारत का मानक दर्पण हैं । समूचा युग उसमें बोल उठा है ।

संक्षेप में 'चारू-चन्द्रलेख'भारतीय इतिहास के उन काले पृष्ठों की कथा हैं, जब भारतवर्ष राजपुतों के झूठे अहंवाद, शास्त्रों एवं परम्पराओं का अंधानुकरण व्यक्तिगत साधनमार्ग के तन्त्र-मन्त्र और अन्य मान्यताओं के कारण विदेशियों द्वारा पराजित होता जा रहा था ।

◈ दीर्घतपा (१९६३) :

आँचलिक उपन्यासकारों में फणीश्वरनाथ 'रेणु' का महत्त्वपूर्ण स्थान हैं । 'रेणु' के उपन्यासों के माध्यम से पाठक वर्ग ने हिन्दुस्तान के एक ग्रामीण अँचल को उसके असली रूप में देखा तथा अनुभव किया । ग्रामीण लोगों के आचार-विचार ,बोली-भाषा, मान्यताएँ विश्वास, गीत-संगीत, पर्व-त्यौहार, दुःख-सुख इतने सहज तथा विश्वसनीय बनकर सामने आते हैं, लगता है कि सचमुच हमारे ग्रामीण जीवन में ऐसा बहुत कुछ है जो अब तक अपेक्षित एवं त्याज्य रहा है ।

'दीर्घतपा' उपन्यास में उपन्यासकार ने नायिका बेलागुप्ता और श्रीमती ज्योतिआनन्द की जिन्दगी के उतार-चढ़ावों को चित्रित किया हैं । ये दोनों जीवन की विकृतियों को भोग चुकी हैं । एक जीवन की विकृत्ति को भोगकर उनसे अलग हट गयी

है और दूसरी ने इन विकृतियों को ही अपना व्यवसाय बना लिया हैं । श्रीमती आनन्द आज के सड़े-गले पतित जीवन का प्रतिनिधित्व करती है ।

इसके अलावा १९६३ में अनेक उपन्यास लिखे गए हैं । **'शहर में घूमता आईना'** उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का प्रसिद्ध उपन्यास है । सारा उपन्यास चेतन केन्द्रित है । उपन्यास का नायक चेतन उनमुक्त कामवासना और पतनोन्मुख बुद्धिवाद का प्रतीक है । इसमें चेतन की कुण्ठा और भटकन समूचे निम्न मध्यवर्ग की कुण्ठा और भटकन का प्रतिनिधित्त्व करती है । **'उग्रतारा'** नागार्जुन का प्रसिद्ध उपन्यास है । राजनीतिक वादों एवं नारों से ऊपर भारतीय परिवेश में उगी तथा पनपी प्रगतिशीलता का नया स्वर हमें 'उग्रतारा' में सुनाई पड़ता है । प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने शोषण के इस कोण को विशेषतः दृष्टिपथ में रखा है । **'किस्सा ऊपर किस्सा'** ,**'हम तिनके '** यह दोनों रमेश बक्षी के प्रसिद्ध उपन्यास हैं । रमेश बक्षी साठोत्तरी कथाकारों में एक सशक्त हस्ताक्षर हैं । रमेश बक्षी के उपन्यासों में स्त्री-पुरुष, पति-पत्नी और प्रेमी-प्रेमिका के मैथुन सम्बन्धों पर एक खूली आँख का दृष्टिपात मिलता हैं । पश्चिमी समाज एवं उसकी मान्यताओं का अन्ध-अनुकरण के भयानक परिणामों को इसमें संकेतित किया गया हैं ।

◈ रेखा (१९६४) :

इस उपन्यास में भगवतीचरण वर्मा ने एक आधुनिक समस्या को अपनी पुरानी किस्सागो शैली में प्रस्तुत किया है । समस्या अनमेल ब्याह की है, परन्तु उसे भिन्न धरातल पर रखा गया है । 'रेखा' आज की कामजनित समस्याओं पर आधारित उपन्यास हैं । 'रेखा' में वर्माजी ने रूढिगत परम्परा से हटकर एक स्वेच्छाचारिणी नारी का चित्रण किया है ।

◈ बारह घण्टे (१९६४) :

यह यशपाल का प्रसिद्ध उपन्यास है । यशपाल के अन्य उपन्यासों में स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध ,क्रान्तिकारिता या जीवन की मार्क्सवादी व्याख्या ही दिखाई पड़ती हैं, जब कि 'बारह घण्टे' इस लीक से हटा हुआ उपन्यास है । इस उपन्यास में लेखक ने प्रेम के व्यावहारिक पक्ष को उद्‌घाटित किया है । इसमें लेखक ने प्रतिपादित किया है कि प्रेम और विवाह आत्मा के सम्बन्ध की अपेक्षा शरीर के सम्बन्ध पर अधिक निर्भर हैं ।

◈ वे दिन (१९६४) :

संवेदनशील कथाकार निर्मल वर्मा का यह प्रथम उपन्यास चैकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राग के क्रिसमस के बन्द शान्तिपूर्ण दिनों की कहानी है। यह यूरोप की महायुद्धोत्तर नयी दिशा द्वारा पीढ़ी के सन्त्रास ,घुटन, तनाव, मूल्यहीनता, अर्थहीनता और उसके रीतापन को रूपायित करनेवाला उपन्यास हैं। निर्मल वर्मा ने जीवन के एकाकीपन को उसकी नाना छवियों में उभारा हैं।

इसके अलावा भी अन्य उपन्यासों में 'दो एकान्त', 'एक घिसा हुआ चेहरा', 'लौटती लहरों की बांसुरी' प्रमुख हैं। **'दो एकान्त'** नरेश मेहता का नवीनतम उपन्यास है। इसमें लेखक ने विवेक और वानीरा के माध्यम से आधुनिकता के परिपार्श्व में स्त्री-पुरूष के बनते बिगड़ते सम्बन्धों की व्याख्या की है। **'एक घिसा हुआ चेहरा '** रमेश बक्षी का लघु-उपन्यास है। इसमें लेखक ने महत्त्वाकांक्षी स्त्री का वर्णन किया है। पति-पत्नी दोनों के शंकित जीवन में झूठ के सहारे दोनों एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। दो बच्चों के बाद नायिका का चेहरा एक घिसी हुई पारिवारिक महिला के रूप में ही रह जाता है। **'लौटती लहरों की बांसुरी '** सुपरिचित प्रयोगवादी कवि भारत भूषण अग्रवाल का प्रयोगधर्मी उपन्यास है। इसमें उपन्यासकार ने तैंतालिस दिवास्वप्नों द्वारा नायक के अतीत जीवन के ताने-बाने को बूनते हुए कथानक का निर्माण किया है। इस उपन्यास में लेखक ने रूपाकर्षण से उत्पन्न अपरिपक्व भावुकता के कारण होनेवाले मानसिक घात-प्रतिघात या मानसिक अर्न्तन्द्वन्द्वों का सटिक चित्रण किया है।

◈ अठारह सूरज के पौधे (१९६५) :

महाभारत का युद्ध अठारह दिन चला था उसी प्रकार अनेक यन्त्रणाओं से अटा-पड़ा हमारा आधुनिक जीवन भी किसी कुरूक्षेत्र से कम नहीं है। यह रमेश बक्षी का रोचक उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में बम्बई की 'फास्ट और डबल फास्ट' जिन्दगी तथा अपने जीवन की विसंगतियों से संत्रस्त व्यक्ति की अठारह दिनों की पलायनमुखी मनःस्थिति की अर्न्तन्द्वन्द्वपूर्ण कथा है। जिसे पठानकोट से बम्बई वी.टी. की यात्रा के दौरान फ्लेश बैक शैली में कहा गया है। यह उपन्यास गति पर बैठे आदमी, गति पर बैठे चिन्तक और गति पर बैठी कलम का परिणाम हैं। इस उपन्यास में आधुनिक मानव के यान्त्रिक एवं संघर्ष पूर्ण जीवन का चित्रण किया गया है।

◈ जुलूस (१९६५) :

यह फणीश्वरनाथ 'रेणु' का सशक्त नायिका प्रधान उपन्यास है।

इसमें 'पवित्रा' की कथा उपन्यास की मुख्य कथा है । पवित्रा के जीवन में यथार्थ और आदर्श दोनों का मिश्रण है । एक आलोचक का इस उपन्यास के सम्बन्ध में कथन है कि- ''दीर्घतपा की नायिका बेलागुप्ता और जुलूस की नायिका पवित्रा दो अलग-अलग स्त्रियाँ नहीं, एक ही स्त्री के अलग-अलग टुकड़े हैं ।''[५१] इन दोनों नायिका में अन्तर यह है कि बेलागुप्ता एक विद्रोहिणी नारी है, जब कि पवित्रा समझौतावादी नारी है ।

इसके अलावा १९६५ में 'एक कटी हुई जिन्दगीः एक कटा हुआ कागज','एक पंखुडी की तेज धार' आदि उपन्यास लिखे गए हैं ।**'एक कटी हुई जिन्दगी : एक कटा हुआ कागज '** यह लक्ष्मीकान्त वर्मा प्रणित आस्थाहीन जीवन का आख्यान है । वैज्ञानिक युग के क्षिप्रगामी प्रभावों से आक्रान्त नित्य प्रति परिवर्तन होनेवाले जीवनमूल्यों तथा नवीन खोजों से जीवन आस्थाहीन होकर अपनी धुरी को छोड़ता जा रहा हैं । यह आस्थाहीन जीवन आधुनिक युग का महान अभिशाप है, जिससे वर्तमान बौद्धिक पीढ़ी जीवन से कटी हुई प्रतीत होती है । **'एक पंखुडी की तेज धार'** रामशेर सिंह नरूला द्वारा प्रणित प्रस्तुत उपन्यास गाँधीजी की हत्या के समय की परिस्थितियों पर आधारित हिन्दी का पहला उपन्यास है । गाँधीजी की हत्या के समय घृणा का कैसा साम्राज्य फैसला जा रहा था और किन परिस्थितियों में महात्मा गाँधी की हत्या हुई थी उसका बड़ा ही सटीक ब्यौरा इस उपन्यास में उपलब्ध होता है ।

◈ अमृत और विष (१९६६) :

यह अमृतलाल नागर का तीसरा महत्त्वपूर्ण उपन्यास है । यह स्वातंत्र्योत्तर भारत के नागरिक जन-जीवन की यथार्थता का दिग्दर्शन् करनेवाला उपन्यास है । प्रथम खण्ड में उपन्यासकार ने टूटती हुई पारिवारिक मर्यादा, बिगड़ते पारिवारिक सम्बन्ध तथा युवा वर्ग के गूँगे आक्रोश को रेखांकित किया हैं । दूसरे खण्ड में बहुरंगी पात्र सृष्टि के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक,सांस्कृतिक परिस्थितियों के मध्य डूबते-उतरते समाज का यथार्थ चित्रण किया हैं । अमृतलाल नागर ने 'बूँद और समुद्र' की भाँति ही इस उपन्यास में जीने की समस्या का चित्रण किया हैं ।

◈ आधा गाँव (१९६६) :

गाँवो के जीवन से मानसिक रूप से पूर्णतया जूड़े नागरिकों के लिए डॉ. राही मासूम रजा का उपन्यास आधा गाँव अपने ही अतीत की जुगाली जैसा प्रतीत होगा । लेखक ने ग्रामीण जीवन के नाना आयामों को तथा शिया मुसलमानों की जिन्दगी के स्पन्दनों को इस प्रकार सम्प्रेषित किया है कि उसमें समय के प्रवाह के साथ बहती और बदलती जिन्दगी के उसके दर्द को हम बड़ी गहराई से महसूस करते हैं ।

◈ मछली मरी हुई (१९६६) :

यह समलैंगिक स्त्री यौनाचार का लिखा गया हिन्दी का सम्भवतः प्रथम उपन्यास हैं। राजकमल चौधरी के साहित्य में आक्रोश, यौनाचार, कुण्ठाएँ और नैतिक निषेधों को स्थान मिला हैं। साम्प्रत शहरी जिन्दगी के विभिन्न आयामों को लेखक ने एक तिक्त व्यंग्य के साथ उभारा हैं। इस उपन्यास में विवाह, रिश्तें, पारम्परिक मान्यताओं आदि का खोखलापन चित्रित हुआ हैं।

◈ बैसाखियोंवाली इमारतें (१९६६) :

रमेश बक्षी साठोत्तरी कथाकारों में एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनकी कथासृष्टि अधिकांशतः आधुनिक नगरीय परिवेश से सम्बद्धित हैं। 'बैसाखियोंवाली इमारतें' लंगड़े सम्बन्ध,घिनौने प्रेम और आत्मभोगी चिन्तन के गाल पर भरी सड़क पर एक तमाचा हैं। एक बदतमीज पत्रकार, एक नालायक पत्नी, एक चरित्रहीन प्रशंसिका और एक बेगैरत प्रेमिका के चार स्तम्भों पर इस इमारत की कैचियाँ ऊपर उठी हैं। प्रेम के चतुष्कोणीय रूप को बक्षी की कलम ने नये परिवेश में नये सन्दर्भों के साथ आधुनिक युगबोध के आवरण में प्रस्तुत किया है।

इसके अलावा १९६६ में अनेक उपन्यास लिखे गए हैं। जिनमे 'मन वृन्दावन', शहर था शहर नहीं था ','एक पति के नोट्स ' आदि प्रमुख हैं।**'मन वृन्दावन'** में देहाती आत्मा के स्वच्छारोपित नागरिक व्यक्तित्त्व के भीतर एक रसभीना, प्रेमसींझा व्यक्तित्त्व छिपा है, जिसका अनुभव होता है। 'मन वृन्दावन' मथुरा से कृष्ण की लीलाभूमि वृन्दावन की चौरासी कोस की यात्रा की कहानी नहीं, प्रत्युत यात्रा के अन्तर्मन में चलती हुई असंख्य यात्राओं तथा उपयात्राओं की कथा हैं। **'शहर था शहर नहीं था '** में लेखक ने पटना की एक नयी बस्ती को कथा का आधार बनाया है। राजकमल की यह पहली कृति है जिसमें उसका व्यक्तित्त्व नहीं झाँकता। इसकी कथा में विश्रृंखलता,बिखराव और सूत्र हीनता हैं। **'एक पति के नोट्स'** महेन्द्र भल्ला का परिवर्तित जीवनबोध को लेकर लिखा गया है। अलगाव में जीते जीवन के निरर्थकता बोध और ऊब को ढोते मनुष्यों का जीवनबोध कुछ अन्य हिन्दी उपन्यासों में भी नजर आता हैं। 'एक पति के नोट्स' का नायक अविनाश इसी निरर्थकता का मारा है।

◈ मित्रों मरजानी (१९६७) :

यह कृष्णा सोबती का प्रसिद्ध उपन्यास है। इस उपन्यास की सुमित्रावन्ती उर्फ मित्रों हिन्दी कथा साहित्य का एक अनोखा नारी पात्र हैं। जिसमें नारी की पुरानी मुद्रा एवं बिम्ब को लेखिका ने चुनौती-सी दी है। इस उपन्यास में माँ-बेटी का

सम्बन्ध हिन्दी पाठकों को थोड़ा चौंकानेवाला जरूर है, परन्तु पंजाब देश की मिट्टी की सोंधी गन्ध कथा में इतनी रसी-बसी हैं कि इसका माधुर्य भी किसी लोकगीत की धुन का सा प्रभाव डालता है ।

◆ अलग-अलग वैतरणी (१९६७) :

यह ग्राम्यजीवन के सतरंगी एवं सातपांखी आयामों को उभारनेवाली एक सशक्त औपन्यासिक रचना है । इसमें स्वाधीनता प्राप्ति के बाद के टूटते हुए गाँव की कथा-व्यथा को मानवीय संवेदना के साथ इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है,कि दर्द की पर्त-दर-पर्त उघड़ती गयी हैं और गाँव के जीवन की नाना वैतरणियाँ उपन्यास के बृहद कैनवास पर उभरती गयी हैं । इस उपन्यास में लेखक गाँवों के टूटते-बदलते मूल्यों की कराह को संवेदनशील पाठकों तक संक्रमित कर सका है ।

◆ रूकोगी नहीं राधिका (१९६७) :

ऊषाजी ने जहाँ पूर्ववर्ती उपन्यास में निम्न मध्यवर्ग को लिया है, वहाँ इस उपन्यास में उच्च मध्यवर्ग को उपस्थित किया हैं । अस्तित्त्वबोध एवं आधुनिक जीवन के कुछ आयाम प्रस्तुत उपन्यास में अधिक निखरकर आये हैं । इसमें लेखिका ने पात्रों के परस्पर मनोविश्लेषण द्वारा आधुनिक जीवन में परिव्याप्त जटीलता को पकड़ने का प्रयास किया हैं । प्रस्तुत उपन्यास आधुनिक जीवन के अनेक नवीन आयामों को सशक्त रूप में उद्‌घाटित करता है ।

इसके अलावा भी १९६७ के राजकमल चौधरी का **'देहगाथा'** तथा राजेन्द्र यादव का **'मंत्रबिद्ध'** प्रसिद्ध उपन्यास हैं । राजकमल चौधरी ने अपने उपन्यासों में हर जगह नयी चेतना का रूप चित्रित किया हैं । सम्भवतः इस नयी चेतना को चित्रित करनेवाले वे प्रथम व्यक्ति थे । जिन्होंने समय की नब्ज को परखकर वक्त की सही पहचान कराई । राजेन्द्र यादव ने अपने उपन्यास में प्रगतिवादी चिन्तनधारा अपनाते हुए, मध्य वर्ग के जीवन का चित्रण किया है । सामन्ती पूँजीवादी शोषण के जो दुष्परिणाम इस राष्ट्र को मूलतः मध्य वर्ग को भूगतने पड़े, उसके यथार्थ जीवंत उत्तेजक चित्र उनके उपन्यासों में मिलते हैं । मध्य वर्गीय परिवार तथा व्यक्ति के स्तर पर होनेवाले बिखराव एवं टूटन को उन्होंने ईमानदारी के साथ उकेरा हैं ।

◆ न आनेवाला कल (१९६८) :

यह मोहन राकेश का नवीनतम उपन्यास है । इस उपन्यास में एक मिशनरी स्कूल के अध्यापक मनोज की कथा है, जो अपने स्कूली परिवेश और पत्नी शोभा के

कारण स्कूल से त्यागपत्र देकर चला जाता है। पति-पत्नी एक दूसरे के साथ एडजस्ट न होने के कारण अलग हो जाते हैं। स्कूल की गुटबन्दी और धर्मगत भेदभाव के कारण मनोज ठीक तरह से रह नहीं सकता। लेखक ने इसमें मनोज के मनोभावों का सुंदर चित्रण किया है। इसके द्वारा उपन्यासकार ने उपन्यास में स्त्री-पुरुष, समाज और देश के विभिन्न संदर्भों के बीच व्यक्ति के सम्बन्धों को उभारा हैं।

◈ राग दरबारी (१९६८) :

यह श्रीलाल शुक्ल का सातवें दशक का एक प्रसिद्ध आँचलिक उपन्यास है। इसकी कथा में ग्रामीण जीवन की मूल्यहीनता को व्यंग्यात्मक ढंग से रेखांकित किया है। इसकी कथा कोई सिलसिलेदार कथा नहीं है। लेखक ने अपनी सूक्ष्म एवं सशक्त व्यंग्य शैली से शिवपालगंज के समक्ष जीवनतंतुओं को विविध कोनों से पकड़ने का प्रयास किया है। इस उपन्यास में आज स्थान-स्थान पर खुलती हुई नई कॉलिजें, संस्थाएँ किस प्रकार खोली जाती है और बंद की जाती है उसके संदर्भ में मैनेजमेन्ट,अध्यापक और लक्ष्यहीन विद्यार्थी जीवन का चित्रण किया है।

इसके अलावा १९६८ में अनेक उपन्यास लिखे गए, उनमें नागार्जुन का 'इमरतिया' और गिरिराज किशोर का 'चिड़िया घर' प्रसिद्ध उपन्यास हैं। शिल्प एवं वस्तु दोनों दृष्टियों से **'इमरितया'** नागार्जुन का श्रेष्ठ उपन्यास है। मठों एवं मन्दिरों में व्याप्त भ्रष्टाचार का संकेत तो कई उपन्यासों में मिलता है, पर केवल इसी वस्तु पर लिखा गया वह पहला उपन्यास है। किस प्रकार सामान्य लोगों की भावनाओं से खिलवाड़ किया जाता है उसका खुला चित्रण इस उपन्यास में किया गया हैं। **'चिड़ियाघर'** में गिरिराज किशोर ने बेरोजगारी की समस्या का वर्णन किया है। इस दफ्तर में काम दिलाने के नाम पर जितनी लूट-खसोट ,छीना-झपटी, रिश्वतखोरी और बेईमानी होती है,उसको ज्यों-का-त्यों गिरिराज किशोर ने 'चिड़िया घर' में उपस्थित कर दिया है।

◈ जल टूटता हुआ (१९६९) :

यह रामदरश मिश्र का एक उल्लेखनीय प्रतीकात्मक उपन्यास है। इसमें लेखक ने अपने कछार अँचल के गाँव तिवारीपुर की धरती,उसकी बेचैनी, प्राकृतिक सुन्दरता,टूटन टकराहट आदि अनेक संवेदनाओं का जीवन्त चित्रण किया है। साथ ही लेखक ने बदलते गाँव एवं अँचल विशेष के राजनीतिक दाव-पेचों का यथार्थ चित्रण किया है। संक्षेप में यह उपन्यास स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय गाँव के सम्बन्धों तथा मूल्यों के तनाव, विघटन और उसके जीवन संघर्षों एवं व्यथा की कथा है।

◈ कृष्णकली (१९६९):

संवेदनशील नारी कथाकार शिवानी द्वारा प्रणित प्रस्तुत उपन्यास में भी नारी-जीवन की व्यथा के अनेक स्तर खूलते हैं । इसमें समय की दृष्टि से प्रस्तुत सामन्तकालीन समाज एवं स्वाधीनता प्राप्ति के बाद के आधुनिक जीवन को चित्रित किया है । उच्च, सम्भ्रान्त भद्रवर्गीय परिवेश के निर्माण में लेखिका की सूक्ष्म निरीक्षक दृष्टि ने वास्तववादी अभिगम को अपनाया है ।

इसके अलावा १९६९ में अनेकविध उपन्यास लिखे गए ,उनमें अमृतलाल नागर का **'घुंघटवाला मुखड़ा'** प्रसिद्ध उपन्यास है । नागरजी के उपन्यासों में आज की सामाजिक संक्रांति तथा उथल-पुथल के बीच व्यक्ति के द्वन्द्व को उद्‌घाटित किया गया है । उनके उपन्यास के पात्र सामाजिक और बौद्धिक वर्ग का प्रतिनिधित्त्व करते हैं । सामाजिक उपन्यासकार होते हुए भी उन्होंने व्यक्ति की उपेक्षा नहीं की हैं । व्यक्ति के सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति नागरजी की रचनाओं का मूल स्वर माना जाता है ।

◈ शहीद और शोहदें (१९७०) :

हमारा राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम आन्दोलन कथा की रत्न-मंजूषा है । उसकी पृष्ठभूमि मे अनेक उपन्यास लिखे गये । प्रसिद्ध समाजवादी लेखक मन्मथनाथ गुप्त द्वारा प्रणित प्रस्तुत उपन्यास में उस आन्दोलन के एक नये अनछुए पहलू को पहली बार उभारा गया है । इसमें गुप्तजी ने उन राजनीतिक लोगों की बात न कहकर सरकारी तन्त्र के नाभी-श्वास समान नौकरशाही की बात को उठाया है । सरकारे आती है और जाती हैं पर नौकरशाही कायम रहती हैं । हमारे यहाँ सरकार में परिवर्तन होने के बावजूद, नीतियों मे खास परिवर्तन नहीं आते क्योंकि सरकार को चलानेवाली तो नौकरशाही हैं ।

◈ कड़ियाँ (१९७०) :

यह हिन्दी के नये हस्ताक्षरों में सिद्धहस्त कथाकार भीष्म साहनी का यह एक हृदय-स्पर्शी उपन्यास है । महेन्द्र और प्रमिला के दाम्पत्य की कड़ियाँ एक बार टूटी तो फिर कभी न जुड़ सकी । इसमें उठते परिवार की इकाइयों के मानसिक तनावों और उनके बीच के विकसित होनेवाले आज के व्यक्ति की प्रेम और परिवार विषयक मान्यताओं का अत्यंत प्रभावशाली चित्रण हुआ हैं । संक्षेप में 'कड़ियाँ' विवाह एवं सेक्स की समस्या पर आधारित खण्डित दाम्पत्य तथा टूटते परिवार की कसक को गहराई से अंकित करनेवाला उपन्यास है । विभक्त परिवार के भयस्थान तथा उसमें

बच्चें की असहाय अवस्था को व्यंजित किया गया है । बढ़ते हुए व्यक्तिवाद तथा उसके दुष्परिणामों को यहाँ लेखक ने बखूबी चित्रित किया है ।

अध्याय के समग्रावलोकन से यह कहा जा सकता है कि वस्तु एवं शिल्प दोनों दृष्टियों से उपन्यास में विकास दृष्टिगत किया जा सकता है । वस्तु एवं परिवेश की व्यापकता पिछले काल की तुलना में बढ़ी है । आलोच्यकाल में ग्रामीण जीवन के विभिन्न आयामों को उद्घाटित करनेवाली अनेक सशक्त रचनाओं का प्रणयन हुआ हैं । नगरीय समाज की नाना समस्याओं का चित्रण भी उपलब्ध होता हैं । स्वातंत्र्योत्तर मोहभंग, समस्त जीवन में व्याप्त कथनी-करनी का अन्तर, निराशा और कुण्ठा आदि के कारण साहित्य में व्यंग्य का अनुपात बढ़ रहा हैं । 'राग दरबारी', 'एक पंखुड़ी की तेजधार', 'एक चूहे की मौत' आदि उपन्यासों में हम व्यंग्य के इस पैनेपन को महसूस करते हैं । संक्षेप में आलोच्यकाल के उपन्यास अपने समय की पहचान देने मे सर्वथा समर्थ कहे जा सकते हैं ।

(घ) सातवें दशक में कमलेश्वर और उनका स्थान :

सन् १९६० के बाद के उपन्यासों में आज के जीवन तथा उसकी विशालता को सम्पूर्ण रूप से विविधता के साथ प्रकट करने का प्रमाणिक प्रयत्न हो रहा था । उच्च वर्ग की विलासिता के परिणाम स्वरूप उनमें फैली हुई मानसिक अशांति, आन्तरिक उलझनें एवं पारिवारिक भटकाव आदि से लेकर मध्य वर्ग के मानस का वैचारिक तथा बौद्धिक संघर्ष और निम्न वर्ग की उद्विग्नता, असंतोष की वेदना का चित्रण उपन्यास में हुआ । सन् साठ के बाद के उपन्यास अब समाज वर्ग से हटकर व्यक्ति और उसकी अन्तःचेतना को बहुत ही प्रमुखता दे रहा है । इस दौर के मुख्य उपन्यासकार नागार्जुन, राजकमल चौधरी, नरेश मेहता, डॉ. रांगेय राघव आदि हैं ।

समकालीन उपन्यासकारों में शैलेष मटियानी, अज्ञेय, अमृतलाल नागर, राजेन्द्र यादव, मन्नू भण्डारी, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', श्रीलाल शुक्ल, जगदम्बाप्रसाद दीक्षित, विष्णु प्रभाकर, नागार्जुन, भीष्म साहनी आदि हैं । समकालीन उपन्यासकारों में जिन विशिष्ट उपन्यासकारों की चर्चा की जाती है, उनमें एक नाम कमलेश्वर का भी है । सन् १९६० ई.के बाद के प्रमुख उपन्यासकारों में कमलेश्वर एक व्यक्ति तथा साहित्यकार दोनों रूप में सफलता की चोटी पर पहुँच चुके थे ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जिन लेखकों ने कथा साहित्य को नयी दिशा प्रदान

करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया उनमें कमलेश्वर का नाम प्रमुख है। प्रेमचन्द के बाद हिन्दी कथा साहित्य जन सम्पर्क से कट गया था। कथा साहित्य जीवन की मुख्य धारा से कट जाने के कारण निर्जीव और एकांतिक हो गया था। प्रेमचन्द की समाजोन्मुखी धारा से उसे फिर से जोड़ने और समकालीन जीवन संदर्भों के कथानकों को मुख्य कथाधारा में ले आने का कार्य स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद नये लेखकों ने आरम्भ किया। कमलेश्वर नये उपन्यासकारों की उस पीढ़ी के लेखक है, जिन्हों ने जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल और इलाचन्द्र जोशी की रूढ कथा चेतना को नवीन और स्वस्थ सामाजिक भूमि देने की चेष्टा की हैं।

स्वातन्त्रोत्तर काल के कथाकारों में कमलेश्वर एक प्रमुख नाम है। जीवन की विसंगतियों के बीच ताल-मेल बिठाने की कोशिश करनेवाले कमलेश्वर के उपन्यासों में मध्य वर्ग का यथार्थ उभरा है। सच तो यह है कि कमलेश्वर अपनी कथाओं में युग-सत्य को उद्घाटित करने में अत्यन्त सफल रहे है। उन्होंने अपने उपन्यासों में बड़ी सुक्ष्मता और सांकेतिकता के साथ नये सामाजिक यथार्थ को निरूपित किया है। यही नहीं स्वान्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य को विकास और नयी दिशा देने में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

युग बोध और युग-सत्य को कमलेश्वर ने सदैव प्राथमिकता दी है। कमलेश्वर सदैव अपने युग की किसी समस्या के बारे में सोचते रहे है। उनके सभी उपन्यासों में उनका यह चिन्तन प्रमुख रहता है। उनका चिन्तन एक ऐसे बुद्धिजीवी का चिन्तन है जो जनसाधारण के लिए है।

कमलेश्वर एक ऐसे जागरूक कथाकार हैं जिन्होंने समकालीन जीवन के उन प्रसंगों को भी चुना है जो जोखिम से भरे हैं। उन्होंने समकालीन राजनीतिक कुचक्र को भी आधार बनाया है। कमलेश्वर ने आम जीवन की सार्थकता को व्यंजित करने के लिए उन विवरणों को अपने कथा चिन्तन का आधार बनाया है।

कमलेश्वर की चिन्ता अपने समय के मनुष्य के केन्द्र में घनीभूत होती चली गयी है और इसके लिए उन्होंने कभी घटनात्मक ढंग से ,कभी मनोविज्ञानिक ढंग से और कभी एब्सर्ड ढंग से कथा कहते हुए ' एक सड़क सत्तावन गलियाँ 'से लेकर 'पति पत्नी और वह 'तक की लंबी यात्रा की हैं।

कमलेश्वर की संवेदना 'मैला आँचल ','तमस' अथवा 'राग दरबारी '

जैसे उपन्यासों की संवेदना से नितांत भिन्न और व्यापक धरातल पर हैं ,जहाँ मनुष्य का दुश्मन एक गाँव, कस्बा और शहर मात्र नहीं हैं । उसके सामने एक विकसित होती संस्कृति भयानक रूप में फैलती जा रही हैं और वह मुक्ति की आकांक्षा में और गहरे धँसते जा रहे हैं ।

वस्तुतः कमलेश्वर का औपन्यासिक संघर्ष कितने मोड़ों पर बिखरा हुआ है । यह उनके पात्रों और घटनाओं के माध्यम से देखा परखा जा सकता हैं । यह परख एक लेखक की रचनात्मक परख न होकर इस पूरे दौर की एक ऐसी परख होगी, जिसमें मनुष्य के बनते, बिगड़ते और स्थापित होते मूल्य स्पष्ट हो जाते है ।

(च) सातवें दशक के उपन्यासों में समसामयिक चेतना :

साहित्यकार समाज में रहता है इसीलिए वह भी संवेदनशील होता है । तत्कालीन परिस्थिति साहित्यिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक मान्यताएँ लेखक की वैयक्तिक अभिरुचि तथा उसके ज्ञान, चेतना और अनुभूति की सीमाएँ आदि के अनुसार ही साहित्य में समाज का प्रतिरूप, उसकी समस्याओं का विश्लेषण और उसकी आशाओं और अभिलाषाओं का प्रदर्शन मिलता है ।

साहित्य में युग बोध का व्यापक चित्रण होता है । युग के अनुरूप युगचेतना में भी कई धाराएँ पाई जाती हैं , क्योंकि एक ही युग में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा यह उनकी निजी संवेदना के अनुरूप ग्रहण की जाती हैं । सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के संदर्भ में संवेदनाएँ भी भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं । इन संवेदनाओं का यथार्थ एवं व्यापक चित्रण सातवें दशक के उपन्यास साहित्य में हुआ है ।

(i) सामाजिक चेतना :

(१) प्रस्तावना :

जिस समाज में मनुष्य रहता है उसके वातावरण के प्रभाव से वह मुक्त नहीं रह सकता, इस दृष्टि से वातावरण एक ससंगतिमक शक्ति हैं । इस सामाजिक वातावरण का निर्माण रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान, आचार-विचार, भाषा तथा संस्कृति द्वारा होता है । उसे देशकाल भी कहा गया है । देशकाल के अंतर्गत समाज, राष्ट्र या राष्ट्र की धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक परिस्थितियाँ,

आचार-विचार,रहन-सहन, रीति-रिवाज आदि आते हैं । उपर्युक्त परिस्थितियों से हमारा सम्बन्ध सामाजिक स्थितियों से हैं ।

सामाजिक के अंतर्गत प्रायः सामाजिक दशा का यथार्थ चित्र दिया जाता है । इसमें यह बताया जाता है कि किसी विशिष्ट समाज में कौन-कौन सी परिस्थितियाँ थी । सामाजिक जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले सभी वर्णन, वेशभूषा, भाषा, रीति-रिवाज, सामाजिक वर्ग ,शिक्षा, संस्कृति, व्यापार आदि इसके अंतर्गत आते हैं । उपन्यासों में सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण दो रूपों में मिलता हैं ।

१. यथार्थ रूप में

२. आदर्श रूप में

सामाजिक उपन्यासों मे सेक्स और मनोविज्ञान का प्राधान्य दृष्टिगत होता है । सातवें दशक के हिन्दी उपन्यासों में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से दिखाई पड़ती हैं । हिन्दी उपन्यासकारों ने मानव मन की रहस्यपूर्ण स्थितियों के साथ-साथ स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् नारी की परिवर्तित सामाजिक स्थिति का चित्रण भी किया हैं । सातवें दशक के हिन्दी उपन्यासों में स्त्री-पुश्रुष के सम्बन्धों को दाम्पत्य जीवन में या दाम्पत्य जीवन से बाहर या विवाह पूर्व, नये सामाजिक संदर्भों,संस्कारगत मान्यताओं और आज के शिक्षित एवं विशिष्ट संस्कारों में पले स्त्री-पुश्रुषों के सम्बन्धों को गहराई के साथ देखा परखा हैं । मन्नू भण्डारी, सुरेश सिन्हा तथा शिवानी जैसे प्रसिद्ध उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में नारी-जीवन की विसंगतियों, बदलते हुए संदर्भों और नवीन परिस्थितियों के फलस्वरूप उत्पन्न स्थितियों का चित्रण किया हैं ।

(२) नारी समस्या ः

'कृष्ण-कली' उपन्यास में शिवानी ने बताया हैं कि कृष्ण कली माता पार्वती और पिता शाहदुल्ला की अवैद्य सन्तान हैं । वह समाज में चोटें सहती हुई विद्रोह करती है, झुकती या टूटती नहीं । केवल प्रवीर का व्यक्तित्त्व उसे प्रभावित करता है । वह अकेली समाज से टक्कर लेती हुई जी रही है । इसके द्वारा उपन्यासकार ने यह चित्रित करने का प्रयत्न किया है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नारी की सामाजिक स्थिति बड़ी विचित्र-सी हो गई है । साथ-ही-साथ यह स्पष्ट होता हैं कि मध्यम वर्ग में प्रेम के प्रतिमान भी टूट चुके हैं और नारी को अपने पाँवो पर खड़े होकर ही उसकी समस्याओं का समाधान प्राप्त हो सकता है ।

सातवें दशक के हिन्दी उपन्यासों में नारी का व्यक्तिरूप उभरता हुआ

स्पष्ट होता है। परम्परागत समाज व्यवस्था के प्रति प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों रूपों में नारी विद्रोह को अभिव्यक्ति मिली है। फिर भी आज नारी कहीं-कहीं दासतापूर्ण जीवन व्यतीत कर रही हैं। साथ ही यौन-भावना से पीड़ित हैं। नरेश मेहता ने 'दो एकान्त' उपन्यास में नारी का चित्र अंकित करते हुए कहा है कि- '' नारी का अपना तो कोई स्वत्व हैं ही नहीं, पहले भी न था। पहले वह समर्पिता बनी पति के चरणों में धूल धूसरिता थीं।''[५२] राजकमल चौधरी अपने उपन्यास 'मछली मरी हुई ' मे नारी की स्थिति का चित्रण करते हुए कहतें है कि-'' यहाँ सबसे कमजोर स्त्रियाँ ही हैं। वह वेश्या अथवा मध्ययुगीन पत्नियाँ होकर एक ऐसी जिन्दगी बिताती हैं कि गर्भवती होने और फिर से गर्भवती होने और फिर से गर्भवती होने की जिन्दगी।''[५३] इस प्रकार पुश्रुष इसके तन को भोगेंगे और भोगने के बाद लात मारकर ठेल देंगे। स्त्री परम्परागत दृष्टि में पाँव तले की जूती समझी गई। उसने पुश्रुष की दुनिया में लात-मुक्का, बदनामी, भूख,घृणा के अलावा क्या पाया ?

नारी स्वातंत्र्य के लिए पहली आवश्यकता है आर्थिक स्वातंत्र्य की प्राप्ति। आर्थिक स्थिति अच्छी होने पर और आर्थिक समानाधिकार मिलने पर ही नारी सच्चे अर्थों में समाज का अंश बन सकेगी। स्त्री स्वातंत्र्य की इस भावना को मोहन राकेश ने 'अन्धेरे बन्द कमरे' में उद्‌घाटित किया हैं। 'अन्धेरे बन्द कमरे' उपन्यास की सुषमा कहती है कि - '' मैंने आज तक अपने को किसी पुश्रुष के सामने हीन नहीं होने दिया,किसी को अपनी कमजोरी का फायदा नहीं उठाने दिया, मैं आर्थिक रूप से किसी पर निर्भर नहीं रहना चाहती। पुराणों में स्त्रियों के प्रति जो संरक्षणात्मक भाव है, वह मुझे बरदाश्त नहीं था। इसलिए मैंने ऐसा काम चुना जिसमें मैं अपने आपको किसी पुश्रुष के बराबर सिद्ध कर सकूँ।''[५४]

(३) पारिवारिक समस्या :

वर्तमान युग में समाज की पारिवारिक स्थिति भी बदल रही है। आज तक लोग संयुक्त परिवार में थे किन्तु वर्तमान मानव जीवन 'संयुक्त परिवार ' से 'सरल परिवार' की ओर अग्रसर हो रहा है। ज्यों-ज्यों व्यक्ति का सामाजिक क्षेत्र विस्तृत होता गया त्यों-त्यों उसका पारिवारिक क्षेत्र संकुचित होता गया। विश्व-समाज का स्वप्न देखनेवाला मानव लघु-परिवारों के सृजन में संलग्न हैं। रामदरश मिश्र के उपन्यास 'जल टूटता हुआ ' में रामकुमार के संयुक्त परिवार में सदा कलह बना रहता है। इसका अंत आणविक परिवार में आकर ही रहता है।

वर्तमान अर्थप्रधान युग में जहाँ पति-पत्नी दोनों अर्थोपार्जन रत हैं वहाँ मूल

परिवार के बच्चों का पालन-पोषण हेतु में भी अन्य संगठनों का सहारा लेना पड़ता हैं। चूल्हें-चौके का स्थान होटलों ने छीन लिया हैं। इस प्रकार संयुक्त परिवार की बात तो दूर आज मूल परिवारों का आधार स्तम्भ भी लड़खड़ाने लगा है इस प्रकार सातवें दशक के हिन्दी उपन्यासों में संयुक्त परिवारों के स्थान पर विभक्त परिवारों के निर्माण का चित्रण उपलब्ध होता हैं।

(४) विवाह समस्या :

समाज को बनाये रखने के लिए एवं उसके व्यापक प्रसार के लिए समाज ने विवाह प्रथा की व्यवस्था की। विवाह को संस्कार माना गया है। इस विवाह प्रथा को लेकर आज समाज में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। वर्तमान समाज में विवाह की दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं।

(अ) परम्परागत विवाह व्यवस्था

(ब) प्रेम-विवाह व्यवस्था

(अ) परम्परागत विवाह व्यवस्था :

परम्परागत विवाह व्यवस्था में विवाह के नियामक माता-पिता ही होते थे। आज इसमें परिवर्तन हो गया हैं। विवाह को दो आत्माओं का मिलन, जन्म जन्मान्तर का सम्बन्ध ,स्त्री-पुरुष का स्थायी बन्धन आदि परम्परागत धारणाएँ क्षीण हो चुकी हैं। आज विवाह एक समझौता अथवा मैत्री सम्बन्ध के रूप में स्वीकार किया जाता हैं। महानगरीय जीवन में विवाह सम्बन्धी उन सभी परम्पराओं को पूरा करने का न तो किसी को अवकाश है और न इसकी आवश्यकता ही समझी जाती है।

आधुनिक अर्थव्यवस्था औद्योगिक क्रान्ति, नारी की नयी चेतना अर्थात् नारी स्वातंत्र्य और बढ़ती हुई नारी शिक्षा आदि का विवाह संस्था पर गहरा प्रभाव पड़ा हैं। इसके फलस्वरूप प्रेम-विवाह, अन्तर्जातीय-विवाह, विधवा विवाह आदि के रूप में विवाह-संस्कार परिवर्तित होता जा रहा हैं।

सातवें दशक के हिन्दी उपन्यासों में विवाह सम्बन्धी उपर्युक्त पद्धतियों की विशदता से अभिव्यक्ति हुई हैं। कमलेश्वर कृत 'डाक बंगला' में इरा ने कहा कि- ''शादी से आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं है। अगर आत्मिक मिलन की बात होती तो शादियाँ करने की उम्र पचास के बाद होती। यह महज एक शारीरिक आवश्यकता है जिसे आदर्श का ताज पहनाकर गरिमा प्रदान की गई हैं।''[५५] शिवानी के उपन्यास 'चौदह फेरे ' की शिक्षित युवती अहल्या विवाह में कोर्टशिप को महत्त्व देती हैं।

'दुःख लागे नैन' की वीणा अनेक में जो सर्वाधिक असफल विवश परिस्थिति को विवाह कहती हैं ।

(ब) प्रेम विवाह व्यवस्था :

आज परम्परित विवाह व्यवस्था के स्थान पर प्रेम विवाह की संख्या बढ़ रही है । प्रेम विवाह में लड़के-लड़कियों की स्वतंत्र इच्छा ही वैवाहिक चुनाव में सर्वोपरि मानी जाती है । यह पाश्चात्य संस्कृति के प्रमाण की उपज है । प्रेम विवाह के अधिकांश युगल शिक्षित समाज के हैं अर्थात प्रेम विवाह की पद्धति शिक्षित समाज में बढ़ रही हैं । कहीं माता-पिता की ईच्छा के विश्रुद्ध प्रेम निभाने की दृष्टि से तो कहीं विवाह की परम्परागत शृंखलाओं को तोड़कर प्रगतिशीलता का परिचय देने के लिए या जाति की सीमाओं को तोड़ने के लिए , प्रेम-विवाह, विधवा-विवाह, या आतर्जातिय प्रेम-विवाह हो रहे हैं । इसके अनेक उदाहरण सातवें दशक के हिन्दी उपन्यासों में उपलब्ध हैं । 'अन्धेरे बन्ध कमरें ','यह पथ बन्धु था','अमृत और विष', 'मन-वृन्दावन','गिरते-महल' आदि उपन्यासों में इस प्रवृत्ति का विशेष उल्लेख मिलता हैं ।

(५) तलाक समस्या :

तलाक, दाम्पत्य जीवन में मनमुटाव ,संघर्ष अथवा घुटन से मुक्ति पाने की वैवाहिक जीवन की व्यवस्था है । तलाक का अर्थ है कि बिगड़ते वैवाहिक सम्बन्धों को कानूनी दृष्टि से विच्छेद करना । स्त्री और पुरुष दोनों को इसका अधिकार हैं । तलाक की समस्या ज्यादातर प्रेम विवाहों के कारण उत्पन्न हुई हैं ।

आज समाज में तनाव-भरे वैवाहिक जीवन से मुक्ति पाना ही उचित समझा गया हैं । तलाक के कारण पुर्नविवाह को भी बढ़ावा मिला हैं । उपन्यासों में पति-पत्नी द्वारा तलाक किये जाने के विभिन्न कारण उपलब्ध होते हैं । जिनका चित्रण सप्तम दशक के हिन्दी उपन्यासों मे मिलता हैं ।

राजकमल कृत 'मछली मरी हुई ' का विश्वजीत मेहता पत्नी को इसलिए तलाक देता हैं कि अब उसमें यौवन का आकर्षण नहीं हैं । पति-पत्नी के बदलते सम्बन्धों का यथार्थ चित्रण राजेन्द्र यादव के 'एक इंच मुस्कान' उपन्यास में भी किया गया है । मोहन राकेश के 'न आनेवाला कल ' में शारदा का पति कोहली मारपीट करता है । शारदा कहती है कि आजकल औरत भी चाहे तो दूसरी शादी कर सकती है सरकार ने इसके लिए कानून ऐसे नहीं बनाया ।

इस प्रकार तलाक की समस्या अधिकतर प्रेम विवाहों में पाई जाती हैं। उपन्यासों में तलाक के दुष्परिणाम भी चित्रित किये गये हैं। 'धर्मयुग' में धारावाहिक रूप में प्रकाशित मन्नू भण्डारी का उपन्यास 'आपका बंटी' माता-पिता के सम्बन्ध विच्छेद के कारण बंटी की दशा का चित्रण करता है।

(६) विधवा-विवाह की समस्या :

आज भी विधवा विवाह की समस्या समाज में खड़ी है फिर भी कहीं कहीं समाज में पुर्न विवाह को स्थान दिया जाने लगा हैं। अमृतलाल नागर के उपन्यास 'अमृत और विष' की रानी अल्पायु में विधवा हो जाती हैं, युवा होने पर रमेश की ओर आकर्षित होती है परन्तु बार-बार वैधव्य की चिन्ता से झिझक उठती हैं। नागार्जुन के उपन्यास 'उग्रतारा' में कामेश्वर विधवा उगनी से विवाह करना चाहता है, परन्तु षडयंत्र के कारण दोनों को जेल हो जाती हैं। उगनी पुलिस की वासना का शिकार बन जाती है। कामेश्वर जेल से लौटने पर गभर्वती उगनी को पत्नी रूप में ग्रहण करता है। इस प्रकार लेखक ने उगनी का विवाह करके परम्परित मान्यताओं को तोड़ देने का प्रयत्न किया हैं।

(७) दहेज प्रथा की समस्या :

असंतुलित अर्थ व्यवस्था के कारण विवाह क्षेत्र में दहेज प्रथा का जन्म हुआ। दहेज प्रथा आज बल लेती जा रही है। इसके कारण पारिवारिक समस्याएँ भी होती हैं। दहेज के कारण कई कन्याओं का जीवन नष्ट हो जाता हैं। दहेज प्रथा की क्रुरता के कारण नरेश मेहता के 'वह पथ बन्धु था ' उपन्यास में गुनी को अपमानित करके परित्यक्त कर दी गई, क्योंकि ससुरालवालों को अपेक्षित दहेज नहीं मिला था।

(८) बहु-विवाह समस्या :

बहु-विवाह की प्रथा आज भी भारत में प्रचलित हैं। पहली पत्नी को सन्तान न होने के कारण दूसरा विवाह कर लिया जाता था। बहु-पत्नी विवाह में एक से अधिक पत्नियाँ की जाती हैं। यह प्रथा धनी, उच्च वर्ग तथा विश्व की अनेक जातियों में प्रचलित रही हैं। अफ्रिका में बेनिन के राजा की रानियों की संख्या ४००० से ६००० के बीच में थी। भारत में हिन्दू तथा मुसलमान दोनों जातियों में बहु-विवाह न्यूनाधिक मात्रा में प्रचलित था। वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास 'मृगनयनी' में गुजरात के शासक नसीरूदीन की १५००० बेगमों का उल्लेख है, जिसे वह पाकिस्तान कहता था।

(९)   अँचल विशेष की वैवाहिक समस्याएँ :

आँचलिक उपन्यासों में अँचल विशेष की वैवाहिक समस्याओं का उद्‌घाटन किया गया हैं । आनन्दप्रकाश जैन, रामदरश मिश्र, शिवप्रसाद सिंह आदि हिन्दी के आँचलिक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों मे अँचल विशेष की सामाजिक समस्याओं का उद्‌घाटन किया हैं ।

आनन्दप्रकाश जैन के उपन्यास ‘आठवीं भांवर’ में जिस वैवाहिक समस्या का उद्‌घाटन किया गया है, वह विशेष रूप से गोखाहयों में दिखाई पड़ती हैं इस प्रकार की विवाह प्रथा का लाभ यह था कि पति मर जाने पर भी उसकी पत्नी विधवा न होकर अपने पति के छोटे भाई से सम्बन्ध स्थापित करती थी । जयप्रकाश भारती के ‘ कोहरे में खोए चांदी के पहाड़ ’ उपन्यास में इसी वैवाहिक समस्या का दूसरा रूप प्रस्तुत किया गया हैं । जो नस्तर बावर के पांड़व वंशीय समाज में बहुपतित्व की प्रथा है । इस प्रथा के अनुसार विवाह करने का अधिकार केवल बड़े भाई को ही होता हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता हैं कि सातवें दशक के हिन्दी उपन्यासों में वैवाहिक जीवन की विभिन्न समस्याएँ व्यापक रूप से उद्‌घाटित की गई हैं । इसमें तलाक, विधवा विवाह, दहेज प्रथा, बहु विवाह समस्या आदि प्रमुख हैं । अँचल विशेष की वैवाहिक समस्याओं का सुंदर चित्रण भी सातवें दशक के हिन्दी उपन्यासों में उपलब्ध होता हैं ।

(१०)   प्रेम और यौन समस्या :

प्रेम और यौन सम्बन्ध में परम्परागत संदर्भ में जो कुछ अवैद्य माना गया हो उसे आज वैद्य माना जाने लगा हैं । अर्थात् आज उसके परम्परित मूल्य बदल गये हैं । आज के मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकारों ने मानवजीवन की मूल प्रवृत्तियों का यथार्थ अंकन किया है, तथा दमित कुण्ठाओं, अतृप्त वासनाओं आदि को अभिव्यक्ति दी हैं । सातवें दशक के हिन्दी उपन्यासों में ऐसे अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं कि जहाँ प्रेम और यौन सम्बन्धी परम्परागत नैतिकता को अस्वीकार किया गया हैं ।

रांगेय राघव के उपन्यास ‘दायरे ’का सत्यदेव कहता हैं कि सेक्स के कारण ही हम एक दूसरे के नहीं हो पाते । सेक्स हमारी जिन्दगी की धुरी नहीं बन सकता । हम जीवन में धर्म,अर्थ, काम और मोक्ष को स्थापित करते हैं । नरेश मेहता के ‘यह पथ बन्धु था ’ में दीदी और श्रीधर की यौन भावना का सुन्दर चित्रण हुआ है । नरेश

मेहता ने 'नदी यशस्वी है ' में उदयन की कामवासना का विकास प्रस्तुत किया है। जब कि इलाचन्द्र जोशी के 'ऋतुचक्र' के दादा मानते है कि स्त्री-पुरुष का शारीरिक मिलन जीवन की ठोस वास्तविकता हैं। अमृतलाल नागर के उपन्यास 'अमृत और विष' की मिसेज माथुर का मत है कि औरत मर्द का मिलना एक शारीरिक जरूरत हैं और उसे पूरा करना चाहिए। जब कि गिरिराज किशोर के 'चिड़ियाघर' की मिसेज रिजवी उच्छृंखल और उन्मुक्त जीवन जीना चाहती है और अशिक्षित पति लतीफ मियां को इच्छानुसार नचाती हैं। वह स्त्री-पुरुष में नैतिकता-अनैतिकता के विभेद को नष्ट कर देना चाहती हैं।

सातवें दशक के हिन्दी उपन्यासों के उदाहरणों से प्रेम और यौन सम्बन्धी समस्या स्पष्ट होती है साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि आज यौन सम्बन्धी परम्परागत मान्यताएँ नष्ट होती जा रही हैं।

(११) स्त्री-पुरुष सम्बन्ध समस्या :

स्त्री- पुरुष के सम्बन्धों में आज परिवर्तन आ रहा हैं। नारी पुरुष की भोग्या और समर्पिता बनकर रहना नहीं चाहती। क्योंकि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नारी आर्थिक क्षेत्र में बहुत कुछ अंश तक निर्भर होती जा रही है। साथ ही नारी-शिक्षा के कारण अपना स्वतंत्र व्यक्तित्त्व स्थापित करना चाहती है। सातवें दशक के हिन्दी उपन्यासों मे नारी का नवीन रूप चित्रित हुआ है। अब स्त्री-पुरुष दोनों अपने परम्परागत रूप को छोड़कर 'व्यक्ति' होते जा रहे हैं।

मोहन राकेश के 'अन्धेरे बन्द कमरे' में पति-पत्नी सम्बन्धों का नवीन रूप विकसीत हुआ दिखाई पड़ता हैं। नरेश मेहता ने 'दो एकान्त ' में भी आधुनिक नर-नारी के सम्बन्धों में उत्पन्न होनेवाले तनाव की स्थिति का चित्रण किया हैं। लक्ष्मीनारायण लाल ने 'मन-वृन्दावन ' में भी स्त्री-पुरुष के विकसीत होते सम्बन्धों का चित्रण किया हैं। जैनेन्द्र के 'अनन्तर' में चारु परम्परागत पति परायणा नारी हैं। पति उसे आधुनिक बनाना चाहता है, किन्तु वह आधुनिका नहीं बन पाती है,अतः पति-पत्नी में तनाव होता है। इलाचन्द्र जोशी के 'ऋतुचक्र' में पति की यौन दुर्बलता के कारण उत्पन्न तनाव एवं सम्बन्ध विच्छेद की समस्या का चित्रण हुआ है।

लक्ष्मीनारायण लाल के 'छोटी चम्पा बड़ी चम्पा ' उपन्यास में मर्द जात की मानसिक दुर्बलता का वर्णन किया गया है। शान्ति जोशी के 'मेरा मन वनवास दिया सा ' उपन्यास में पाशविक वृत्तियों वाले पति के विचित्र व्यवहार का तथा

परिवार द्वारा दोषित इन्दु का दयनीय चित्रण किया है। शिवानी ने भी 'चैादह फेरे' में सदा अहं से चूर पति द्वारा प्रताड़ित नन्दी के दयनीय जीवन का चित्रण किया है।

(१२) उपसंहार :

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता हैं कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आधुनिक अर्थ व्यवस्था एवं नारी शिक्षा प्रसार के कारण प्राप्त नारी स्वतंत्रता से स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में आमूल परिवर्तन आ गया है। नारी समस्याओं का चित्रण अपने साहित्य में करके नारी मन की गुत्थियों को सुलझाने का प्रयास किया गया है। सातवें दशक के उपन्यासकारों ने वैवाहिक समस्याओं को अपने उपन्यासों में चित्रित करके प्रेम-विवाह की असफलताओं का चित्रण भी किया है। पाश्चात्य प्रभाव के कारण आज कल अधिकतर महानगरों में अवैद्य सम्बन्ध की समस्या बढ़ती जा रही है। सातवें दशक के उपन्यासकारों ने महानगरीय समस्याओं का यथार्थ चित्रण भी अपने साहित्य में किया है।

(ii) राजनीतिक चेतना :

(१) प्रस्तावना :

आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में राजनीतिक चेतनाओं का व्यापक चित्रण हुआ हैं। आज का उपन्यासकार राजनीतिक मान्यताओं, सिद्धान्तों के विषय में पहले से अधिक तटस्थ,संतुलित दृष्टिकोण लेकर चलता हैं। वह अपनी स्वतंत्र दृष्टि से राजनीतिक मताग्रहों की आलोचना करता हैं उनका मूल्यांकन करता हैं। प्रजातंत्र प्रणाली की यह विशेषता है कि व्यक्ति अपने विचारों की अभिव्यक्ति निशंक रूप से कर सकता है उसे कोई रोक नहीं सकता। अतः सातवें दशक के हिन्दी उपन्यासकारों ने अपने राजनीतिक एवं सामाजिक विचार प्रस्तुत किये हैं। आज लोग राष्ट्र-सेवा का चोला पहनकर अपने स्वार्थ में लगे हुए हैं। 'राग दरबारी' उपन्यास में श्रीलाल शुक्ल ने इसका यथार्थ चित्रण किया हैं। कोई नये पुल बनवाता है, कोई सड़के बनवाता है, कोई गरीबों को अन्न और कम्बल का दान करता हैं उसी हिसाब से रामदीन के भैया ने चबूतरे के आसपास का नक्शा बदलने की कोशिश की।

विगत दो दशकों में विभिन्न प्रकार के सामाजिक, वैयक्तिक, नैतिक तथा बौद्धिक मूल्यों का विघटन हुआ हैं। राष्ट्र में आज संकीर्णता,क्षुद्रता, स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार आदि का भीषण बोल-बाला हैं। जीवन के हर क्षेत्र में मिलावट हैं। पथ-पथ पर बेईमानी और धोखा घड़ी हो रही हैं। देश के नेता वर्ग स्वयं आपा-धापी

में पड़ा हुआ हैं । राष्ट्र का नेतृत्व दिग्भ्रमित हो गया हैं । भारत आदर्श शून्यता और मर्यादाहीनता के युग में जी रहा हैं । मूल्य विघटन का कारण यही 'शून्यता' और हीनता हैं ।

आज नेता लोग एक दल से दूसरे दल में जा बैठते हैं । उन राष्ट्रीय नेताओं के बदलते हुए चरित्र का विश्लेषण नागार्जुन ने अपने उपन्यास 'हीरक जयन्ती' में सुंदर ढंग से किया है । आज नेता लोगों की कथनी और करनी में बहुत बड़ा अन्तर दृष्टिगोचर होता हैं । 'हीरक जयन्ती' के बाबूजी एक ओर तो संत विनोबा के चरणों मे भूमि का दानपत्र अर्पित करते हैं और दूसरी ओर हरिजन खेत मजदूरों की झोपड़ियाँ हाथियों से उखड़वाते हैं ।

अमृतलाल नागर के 'अमृत और विष 'का अरविन्द शंकर कहता है कि आजादी के बाद फूट, असंगठन, विलास, व्यभिचार, लूट, डाके, खून और कालेबाजार का जमाना आया । देश की अवस्था विकट हैं । नाना प्रकार के दल अपने-अपने वाद की ध्वजा लिए कमर कस के उसके उद्धार के लिए बढ़े जा रहे हैं । राजनीति से गाँधी लुप्त होते जा रहे हैं । देश में और विदेश में हिंसक यत्नों का विश्वास बढ़ रहा हैं । यही नहीं हमारे शासक कूटनीति के कच्चे खिलाड़ी हैं, वे गलत ढंग पर आदर्शवादी है । उनमें से अधिकांश का आदर्शवाद महज ढोंग और छलावा है ।

भगवतीचरण वर्मा के 'सामर्थ्य और सीमा ' उपन्यास में प्रजातंत्र-प्रणाली में पाये जानेवाले व्यक्तिगत स्वार्थों का चित्रण किया गया हैं । अतः यह स्पष्ट हो जाता हैं कि प्रजातंत्र में भी सत्ताधारी लोग या नेता सत्ता का दुरुपयोग करते हैं । प्रजातंत्र प्रणाली में एक बार मंत्री बन जाता है वह धन प्राप्ति स्वार्थ में पड़ जाता हैं और अपने पद को सुरक्षित बनाये रखने का प्रयत्न करता हैं । इससे यह स्पष्ट होता है कि स्वाधीनता के बाद परिवर्तित राजनीतिक परिस्थितियों के कारण प्रजा विपन्न है नेता लोग धनलोलुप और सत्तारूढ हो गये हैं । इतना ही नहीं सत्ता का दुरुपयोग कर रहे हैं ।

स्वाधीनता के पश्चात् राजनीतिक चेतना के परिवर्तित रूप के कारण अनेक राजनीतिक समस्याएँ खड़ी हुई हैं । इसमें मुख्य दो समस्या है -

सामन्तवाद की समस्या और
साम्प्रदायिकता की समस्या ।

(२) सामन्तवाद की समस्या :

सातवें दशक के हिन्दी उपन्यासों में पारम्परिक सामन्तवाद और नये सामन्तवाद का यथार्थ चित्रण उपलब्ध होता है । मनहर चौहान कृत 'हीरना साँवरी ' उपन्यास में दुःखमोचनसिंह परम्परा को सुरक्षित रखने के लिए स्वयं टूट जाता है । मुरारी सिंह युग के अनुसार बदल कर उन्नति करता है । दुःखमोचनसिंह की स्थिति गिरती सामन्त व्यवस्था का प्रतीक हैं । इस प्रकार इसमें दो सामन्त परिवारों की कहानी प्रस्तुत की गई हैं । भगवतीचरण वर्मा के 'सबहिं नचावत राम गोसाईं ' में सामन्तवाद की अन्तिम स्थिति का चित्रण किया गया है ।

इस प्रकार आज प्रजातंत्र प्रणाली में पूँजीवादी लोग सरकार से मिलकर धन लाभ उठाते हैं और वह भी देश के विकास के नाम पर । इससे हम कह सकते है कि स्वतंत्र भारत में सामंतवाद नये रूप में प्रविष्ट हुआ है ।

(३) साम्प्रदायिक समस्या :

साम्प्रदायिक समस्या का मूल कारण धर्म है ।आज स्वतंत्र भारत में जाति,धर्म, भाषा आदि को लेकर कई समस्याएँ खड़ी हुई हैं । बाहर से एक राष्ट्र और एक जाति के रूप में दिखलाई पड़नेवाला भारत भीतर ही भीतर बहुत टूटा हुआ हैं । सातवें दशक के हिन्दी उपन्यासों में साम्प्रदायिक समस्या का चित्रण हुआ हैं । इतना ही नहीं उसके प्रति उदार दृष्टिकोण भी दृष्टिगत होता हैं । अमृतलाल नागर कृत 'अमृत और विष 'में साम्प्रदायिक समस्या का सुन्दर चित्रण हुआ हैं । नवाब साहब कहते हैं कि ये मजहबी अलगाव का ऊपरी अहसास आपस में नफरत फैलाता हैं । ये पुरानी जातियाँ,धर्म और कबीले यह बकवास हैं ।

इस प्रकार साम्प्रदायिकता के प्रति उदार दृष्टि से सोचने पर भी साम्प्रदायिक अलगाव दूर हो सकता हैं । आज हम देख सकते हैं कि भारतीय एकता को साम्प्रदायिकता ने छिन्न-भिन्न कर दिया हैं । धर्म-भावना से प्रेरित होकर आज हिन्दू-मुस्लिम के बीच दंगल होते हैं । अतः यह आवश्यक हैं कि भारतीय जन जीवन सुखमय बनाने के लिए साम्प्रदायिकता का त्याग किया जाए ।

इस प्रकार हिन्दी उपन्यास साहित्य तत्कालीन जीवन से प्रभावित हैं । इसमें स्वातंत्र्योत्तर काल के नेता वर्ग ,उच्च मध्य वर्ग तथा नौकरशाही आदि का चित्रण पाया जाता हैं । साथ ही नेता-जमींदार, नेता-उद्योगपति, नेता-धनवान वर्ग आदि की साँठ-गाँठ कूटनीति, चुनावी प्रपंच, नेताओं के भ्रष्ट चरित्र एवं जनता में शिक्षा के

अभाव जन्य, अंध श्रद्धापूर्ण लोकमानस के चित्र पाये जाते हैं । रामदरश मिश्र ने 'जल टूटता हुआ' में सरकारी तंत्र की कमजोरियों तथा नेताओं की करनी तथा कथनी में जो अन्तर हैं उसे यथार्थ ढंग से निरूपित किया हैं । नरेश मेहता ने भी 'यह पथ बन्धु था' में तत्कालीन राजनीति का सुन्दर चित्रण किया है । तात्पर्य यह है कि आज चारों ओर भ्रष्टाचार और अनैतिकता जोरो पर हैं । गरीबों की कोई सुन नहीं रहा है यही सबसे बड़ी समस्या हैं ।

(४) उपसंहार :

स्वतन्त्रता पूर्व भारतीय जनता ने जो सपने संजोए थे, वे स्वतन्त्रता के बाद धराशायी हो गये । राजनीतिक हत्यायें,घेराव,हड़ताल,बंद और तथागत प्रवृत्तियाँ अभिशाप के रूप में सामने आयी । स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व राजनीतिज्ञों की स्थिति इतनी दयनीय नहीं थी । वे स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए अंग्रेजों से लड़-झगड़ रहे थे । आज यह स्थिति आ गई है कि जो नेता लोग हैं, वे अपना स्वार्थ साधने के लिए कुछ भी करने को तैयार रहते हैं । सातवें दशक के उपन्यासकारों ने राजनेताओं की स्वार्थीवृत्ति,दल बदल की नीति, सत्ता-लोलुपता,पद-लोलुपता,भ्रष्टाचार आदि को अपने साहित्य में चित्रित किया हैं ।

(iii) आर्थिक चेतना :

(१) प्रस्तावना :

किसी देश की आर्थिक चेतना विशेष रूप से भौगोलिक वातावरण, जनसंख्या, संस्थाओं और सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों पर आधारित हैं । इसके अतिरिक्त वहाँ के व्यवसाय पर सर्वाधिक निर्भर करती हैं ।

भारत कृषि प्रधान देश है । यहाँ का प्रमुख व्यवसाय कृषि है, भारत की भूमि उपजाऊ होने पर भी उत्पादन बहुत कम होता है । उसके प्रमुख दो कारण उपलब्ध होते है - निरक्षरता और आर्थिक असमानता

(२) निरक्षरता :

आजादी के बाद देश में निरक्षरता का प्रमाण आज भी अधिक देखने को मिलता है । इसके कारण आजादी के बाद हमारे देश के आर्थिक आधुनिकीकरण के अन्तर्गत जो मिश्रित अर्थ व्यवस्था कायम हुई उसमें पूँजीवादी तथा अर्धसामन्तीय प्रभुत्व हैं । रमेश कुन्तल मेघ ने 'क्योंकि समय एक शब्द हैं' में औद्योगिकीकरण का

वर्णन करते हुए कहा है कि- '' ऐसे शुद्ध आधुनिकीकरण से गरीबी और बेरोजगारी, महँगाई और मुनाफे, भ्रष्टाचार और असमानता, शोषण और धोखे बंधे हैं......हमारे औद्योगिकीकरण ने मनुष्य को केन्द्र मे नहीं रखा,बल्कि मशीन और माल को केन्द्र में रखा हैं ।''[५६] अतः पूँजीवादी औद्योगिकीकरण ने वर्ग संघर्ष और वर्ग भेद को उग्र किया हैं ।

इस देश में एक ओर कुछ मुट्ठीभर लोगों की पूँजी बढ़ी है तो दूसरी ओर अधिकांश जनता जीवन सूचक आंक से भी निचले स्तर पर जीवन यापन कर रही हैं । आर्थिक विषमता गाँवों एवं नगरों में दोनों जगह विद्यमान हैं । महानगरों की ६० प्रतिशत जनता गन्दी बस्तियों में रहती हैं तथा श्रीमंत वर्ग के कुछ लोग अपनी दौलत और शान का भद्दा प्रदर्शन करते हैं । गन्दगी से बिमारियाँ, बिमारियों से गन्दगी फैलने का चक्र चलता रहता हैं । जनसंख्या में अशिक्षा और अभावों का भयानक पंजा गड़ा रहता हैं, जिससे अपराध और अनैतिकता फैलती जा रही हैं । बेरोजगारी और दरिद्रता, भूख और बीमारी की दशाएँ हमारे स्वतंत्र शहरीकरण का भयानक प्रारब्ध हैं ।

अर्थोपार्जन के लिए अनैतिक, समाज एवं राष्ट्र-विरोधी गतिविधियाँ अपनाने से भी नहीं चूकते । जूएँ का अड्डा चलाना, शराब की भट्ठी लगाना, शराब का धन्धा करना, वेश्यालय चलाना, जेबकटी का संगठित धंधा करना, नोट छापना आदि नाना रूपों में अर्थोपार्जन किया जा रहा हैं ।

आज धन से एश्वर्य एवं यश दोनों प्राप्त किया जाता हैं । धन ही जीवन मूल्य बन गया हैं । ऐसे समाज में कतर्व्य परायणता, न्याय, निष्ठा, सत्याचरण का लोप होना स्वाभाविक हैं । व्यक्ति का सामाजिक मूल्यांकन उसके मानवीय गुणों पर नहीं अपितु उसकी आर्थिक अवस्था के आधार पर किया जाने लगा । सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि सभी क्षेत्रों में अर्थ का महत्त्व गहराता जा रहा हैं । आज जीवन में सभी सम्बन्धों का निर्णायक तत्त्व अर्थ हो गया हैं ।

(३) आर्थिक असमानता :

आज भारत में निरक्षरता का प्रमाण कम होता जा रहा हैं और कृषि क्षेत्र में वैज्ञानिक पद्धति की ओर लोग आकृष्ट होते जा रहे हैं । कृषि में क्रान्ति लाने के लिए नवीन बीज और उर्वरकों की व्यवस्था सरकार ने बड़ी तत्परता से की परन्तु उनका लाभ साधारण किसानों को नहीं मिल पाया । ज्यों-ज्यों जीवन में अर्थ की महत्ता बढ़ी आर्थिक विषमता उत्तरोत्तर बढ़ती गई । आज धन की और धनी आदमी की पूजा

होती हैं, यह पूछे बिना कि वह धन उसने ईमानदारी से पाया या गबन करके, घूस खाकर या डाका डालकर ।

पूँजीवादी समाज व्यवस्था में अर्थ प्रमुख और मनुष्य गौण हो जाता है । मनुष्य मनुष्य न रहकर 'माल' हो जाता है .. वह क्रय-विक्रय की वस्तु हो जाता है । जिससे सारे मानवीय सम्बन्धों की नैतिक मर्यादाएँ भंग होती हैं । जीवन में जटिलता बढ़ती हैं । अर्थ- वैषम्य से सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता बन्धुत्व एवं सद्भावना का ह्रास होता हैं । इससे नई आर्थिक बिरादरी जन्म लेती हैं जिसकी परिणति वर्ग द्वेष एवं वर्ग संघर्ष में होती है । आर्थिक वर्गों का जन्म होता हैं । निःसंन्देह भारत में भी इसका प्रभाव परिलक्षित होता हैं । यद्यपि धार्मिक अंध विश्वास एवं जाति प्रथा भारतीय समाज में इतने गहरे पैठ चुकी हैं कि सहज निर्मूल नहीं हो सकती । हमारी आर्थिक व्यवस्था के परिणाम स्वरूप उत्पन्न सामाजिक समस्याओं की झलक उपन्यासों में मिलती हैं ।

वर्तमान अर्थप्रधान युग में जहाँ पति-पत्नी दोनों अर्थोंपार्जन रत हैं, वहाँ मूल परिवार के बच्चों का पालन पोषण हेतु भी अन्य संगठनों का सहारा लेना पड़ता हैं । चूल्हें-चौके का स्थान होटलों ने छीन लिया है । इस प्रकार सातवें दशक के हिन्दी उपन्यासों में संयुक्त परिवारों के स्थान पर विभक्त परिवारों के निर्माण का चित्रण उपलब्ध होता हैं ।

नागार्जून ने 'हीरक जयन्ती' उपन्यास में रिक्शा चालकों और मालिकों की स्थिति का चित्रण किया हैं । पूँजीपतियों के द्वारा श्रमिकों का शोषण किया जाता हैं । आर्थिक असमानता के कारण भारतीय समाज की स्थिति बड़ी विचित्र सी हो गई हैं । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत की यह स्थिति हैं- जहाँ राजा-महाराजा मालेतुजार, जमींदार, अंग्रेज आदि तो चले गये परन्तु उनकी जगह नया शोषण वर्ग उठ खड़ा हुआ हैं । भाई-भतीजावाद पनप रहा हैं । बड़ी-बड़ी मिलों के मालिक उद्योगपति और मोटी-मोटी तनख्वाहें लेकर मौज करनेवाले सरकारी अफसर उस शोषक वर्ग के अंश हैं । नौकरशाही की दीवारें दिनों-दिन चौड़ी होती जा रही हैं ।

रामदरश मिश्र ने 'जल टूटता हुआ ' में निम्न वर्ग की स्थिति इस प्रकार स्पष्ट की हैं -''इस इलाके में वामन,हरिजन, मध्य वर्ग, निम्न वर्ग भी भूख और गरीबी के चक्कर में बुरी तरह पिस रहे हैं ।''[५७] रांगेय राघव के 'दायरे' का कटली मध्य वर्ग से निम्न वर्ग को अधिक सुखी समझता हैं । क्योंकि उनके यहाँ पढ़ाई लिखाई

पर पैसा बरबाद कहाँ होता है ? न साफ कपड़ों की जरूरत होती हैं । उनके तो बच्चें भी लायक होते ही कमाने लगते हैं । औरतें अपने-अपने बच्चों को भी पालती हैं, खाना भी बना लेती हैं और हमारे यहाँ भी काम करती हैं । अपनी औरतें हैं जो अपने घर का खाना भी नहीं बना सकती । उसे अपने बच्चों को पैदा करने में भी बड़ी मुश्किल होती हैं ।

भगवतीचरण वर्मा के 'सामर्थ्य और सीमा 'उपन्यास में उद्योगपति रतनचन्द्र मकोला श्रुपये को ही शक्ति, देवता और सब कुछ मानते हैं । पैसा समाज के शरीर का प्रवाही रक्त हैं । सुदर्शन मजीठिया के 'लोहे की लाशें ' का सेठ मानता है कि पैसों के अभाव में मनुष्य कितने पाप करता हैं उतना पैसे रखने पर नहीं करता । दरिद्रता सबसे बड़ा पाप है । गरीबी सब पापों की माँ है ।

इस प्रकार असंतुलित अर्थ व्यवस्था के कारण आज समाज में वर्ग भेद की स्थिति उत्पन्न हुई है और उसके कारण वर्ग संघर्ष की स्थिति भी । मध्य वर्ग की स्थिति समाज में बहुत बुरी हो गई । संक्षेप में सातवें दशक के हिन्दी उपन्यासों मे नारी की सामाजिक स्थिति, पारिवारिक स्थिति तथा अर्थ संतुलन के कारण उसका वर्ग वैषम्य एवं वर्ग संघर्ष की स्थिति का बड़ी विशद्ता से चित्रण किया गया हैं ।

(३) उपसंहार :

आर्थिक विपन्नता मनुष्य को किस कदर मजबूर कर देती है इस बात का चित्रण सातवें दशक के उपन्यासकारों ने किया है । महँगाई दो प्रेमियों के संसार को पूरी तरह बसने के बीच दीवार बनकर कैसे खड़ी हो जाती है इस बात का वर्णन भी उपन्यास में मिलता है । समाज में फैली निरक्षरता के कारण उत्पन्न बेकारी, बेरोजगारी, पूँजीपति,अर्थाभाव आदि समस्याओं का चित्रण पाया जाता है । विज्ञान के बढ़ते प्रभाव एवं जनसंख्या की बढ़ोत्तरी के कारण आज समाज में विविध अर्थसंतुलन की समस्या भी देखी जाती है ।

(iv) धार्मिक चेतना :

वर्तमान युग बौद्धिक युग माना जाता है । इस बौद्धिक युग में गहन चिंतन का प्राधान्य है । उसका मूल सिद्धान्त नीर-क्षीर विवेक है । इस दृष्टि से जो पहले समाज में धर्म और नीति बहुत कुछ अंशो में एक ही थे । इसमें आज अन्तर दृष्टिगत होता है, नीति ह्दय की अपेक्षा बुद्धि पर अधिक आधारित है, इस में सत्य पर

बल दिया जाता है । वर्तमान मानव धर्म-नीति को लेकर चला हैं, अतः वर्तमान मानवधर्म परम्परागत धर्म की अपेक्षा व्यक्ति के अधिक निकट हैं । इस प्रकार सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के साथ ही धर्म समाज परक न होकर व्यक्ति परक होने लगा । इस प्रकार नैतिकता के प्रति मानव का दृष्टिकोण बदल चुका हैं । इसके फल स्वरूप परम्परागत नैतिकता और वर्तमान नैतिकता आदि दो भेद स्पष्ट दृष्टिगत होते हैं । इन क्षेत्रों में बहुत कुछ अंतर दिखाई पड़ता हैं, परम्परागत नैतिकता ने मानव को दुर्बल बनाया । धर्म और नैतिकता के नीचे व्यक्ति सदा भयभीत रहा । परम्परागत नैतिकता आदर्श प्रधान थी और अब वर्तमान नैतिकता यथार्थ प्रधान हैं ।

स्वतंत्रता के पश्चात के सातवें दशक के हिन्दी उपन्यासों में नैतिकता के विषय में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण देखने को मिलते हैं । इस उपन्यासों मे विशेष रूप से परम्परागत नैतिकता के प्रति विरोध का स्वर प्रबल रूप में दृष्टिगत होता हैं । यशपाल का प्रसिद्ध उपन्यास 'बारह घण्टे' का लोरेन्स नैतिकता के विषय में कहता है कि हमारी औचित्य और अनौचित्य सम्बन्धी धारणाएँ ही नैतिकता हैं । प्रभाकर माचवे के 'एक तारा' का जयंत गिरे हुए परम्परागत नैतिक मूल्य के विषय में कहता है नीति-अनीति की कल्पना भी वर्ग के अनुसार बदलती हैं, वह प्रवाही है । आज की अति कल की नीति बन जाती हैं ।

अमृतलाल नागर के 'अमृत और विष ' में नैतिकता सम्बन्धी विश्लेषण इस प्रकार उपलब्ध होता है । ''नैतिकता इस बात में नहीं कि आदमी कितना सच्चा, त्यागी, तपस्वी और प्रमाणिक हैं, प्रश्न हैं कि व्यक्ति को अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं और आचार-व्यवहार को गति देने में मुक्ति कितनी मिली हैं । प्रमाणिकता का आग्रह झूठा और बेकार हैं ।''[५८]

आज कथनी और करनी में बहुत बड़ा अन्तर दिखाई पड़ता हैं । वर्तमान युग में नैतिकता केवल कथन में दृष्टिगत होती है ,करनी में नहीं । राजकमल चौधरी ने 'मछली मरी हुई ' उपन्यास में बताया है कि नैतिकता मानव व्यक्तित्त्व के विकास में रूकावट डालती है । नैतिकता भी नशा है,नैतिकता भी आदमी को गुलाम और अंधा बनाती हैं । जैनेन्द्र के उपन्यास 'अनन्तर' में नैतिकता की विस्तृत परिभाषा दी गई है । अपराजिता कहती है आदमी-आदमी के बीच जिसने शंका पैदा कर दी है उसे नैतिकता कहते हैं ।

शिवानी ने 'चौदह फेरे ' में मानवतावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया

हैं। मनुष्य विवश होकर ही पाप करता है ,स्वेच्छा से नहीं। यादवेन्द्र शर्मा कृत 'चुनर की पीड़ा ' उपन्यास का चन्दर पाप पुण्य को दुकानदारी मानता हैं। वस्तुतः पाप और पुण्य समाज की व्यवस्था के कारण हैं। आचाय चतुरसेन शास्त्री के 'मोती ' उपन्यास में मोती पाप के विषय में कहता हैं कि पाप तो वे दुष्कर्म हैं जिसकी सजा आपका कल्पित परमेश्वर देता हैं, वह भी सम्भवत् इस जनम में या जन्मान्तरों में।

उक्त उदाहरणों से सातवें दशक के हिन्दी उपन्यासों की धार्मिक स्थितियाँ स्पष्ट हो जाती हैं। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि आज नैतिकता और अनैतिकता, पाप-पुण्य, धर्म और अधर्म आदि का मानव अपनी आवश्यकतानुसार अर्थ करके उपयोग करता हैं,जिसका समाज ने स्वीकार भी किया है।

(V) सांस्कृतिक चेतना :

आज भारतीय संस्कृति पाश्चात्त्य संस्कृति से अत्यधिक प्रभावित होती जा रही है। भारतीय एवं पाश्चात्त्य संस्कृति के मिश्रण के कारण आज धर्म सम्बन्धी अनेक धार्मिक समस्याएँ खड़ी हुई हैं। समस्याओं को लेकर मानव मन उलझ रहा हैं, इससे बाहर नहीं निकल सकने के कारण पीड़ित भी है।

इस प्रकार आज का भारतीय दर्शन विभिन्न देशी और विदेशी विचार दर्शनों से पीड़ित हैं। एक ओर भारतीय दर्शन समाजवाद, व्यक्तिवाद, मानवतावाद और गाँधीवाद को लेकर चला हैं तो दूसरी ओर पाश्चात्त्य दर्शन में अपवाद, अस्तित्त्ववाद जैसी विचारधाराएँ चल रही हैं।

आज जीवन में कहीं उल्लास और आशा दृष्टिगोचर नहीं होती हैं, जीवन या सुरूप हो गया है, या उसे अनिच्छा से भी होना पड़ता है । इस प्रकार की विचारधारा की अभिव्यक्ति नरेश मेहता के 'प्रथम फाल्गुन ' में हुई है। जीवन बड़ा निर्मम होता हैं। इलाचन्द्र जोशी के 'ऋतुचक्र' का नकुलेश अस्तित्त्ववादी दर्शन का समर्थन करता है। वह समाज को ईश्वर विहीन निरर्थक समाज मानता हैं। चित्रा भी इसी विचारधारा को मानती हुई कहती है सार्त्र और काम ने अस्तित्त्ववाद को खड़ाकर जो शराब तैयार की हैं उससे अपनी आत्मा को गलाकर तुम केवल एक बनावटी बिटनिक बनकर रह गये। नकुलेश अस्तित्त्ववादी दर्शन के विषय में अपना मत स्पष्ट करते हुए कहता है कि - ''अस्तित्त्व का बोझ व्यक्ति पर बरबस लादा गया है, वह तभी सराहनीय हो सकता है जब व्यक्ति अपनी परिपूर्ण स्वतंत्रता का अनुभव अपने

व्यक्तित्त्व के अणु परमाणु से करे । व्यक्ति पर किसी का कोई दायित्त्व नहीं है न समाज का न संसार का । प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में पूर्ण हैं । ''[५९]

'अपने-अपने अजनबी ' अज्ञेय का एक श्रेष्ठ अस्तित्त्ववादी उपन्यास है । इसमें अस्तित्त्ववादी विचारधारा की ही अभिव्यक्ति हुई है । योके मृत्यु को ही एक मात्र सच्चाई मानती है क्योंकि हम सब को मरना है । सेल्मा कहती है जीना ही जीर्ण होना है ,क्षणवादी विचारधारा क्षण को लेकर चली है । मानवजीवन क्षणभंगुर हैं । क्षणभंगुर जीवन में भी कई क्षण ऐसे होते हैं जो जीवन जीने का आकार दे जाते हैं । अतःक्षणवाद में क्षण का विशेष महत्त्व प्रस्तुत किया गया हैं । इसी प्रकार क्षणवादी विचारधारा में अनंतकाल की अपेक्षा क्षण को विशेष महत्त्व दिया गया हैं । इसी क्षणवादी विचारधारा की अभिव्यक्ति 'अपने-अपने अजनबी' में सेल्मा के माध्यम से की गई है ।

डॉ. देवराज के 'मैं वे और आप' में भी क्षणवादी विचारधारा व्यक्त की गई है । इस उपन्यास की अमिता मानती है कि जिन्दगी में न कुछ शाश्वत है न टिकाऊ । जिन्दगी क्षणों का समूह, निरंतर बहते गायब होनेवाले क्षणों का । 'ऋतुचक्र' में भी चित्रा क्षणवाद में आस्था प्रकट करती है । वह कहती है दादा बिना क्षणवादी बने आज की दुनिया में जिया ही नहीं जा सकता । आज अतीत को छोड़कर वर्तमान को अधिक महत्त्व दिया जा रहा हैं । वर्तमान युवा पीढ़ी में यही भावना विकसीत हो रही हैं । 'मैं वे और आप' उपन्यास में विचारदर्शन के अनुभव के बारे में अमिता कहती है कि - ''यह जरूरी हैं कि हम वर्तमान की चिंता करे, आज की इसी क्षण की । अतीत पहले ही खत्म हो चुका है और भविष्य अनिश्चित है ।''[६०]

इस प्रकार सातवें दशक के हिन्दी उपन्यासों मे भारतीय एवं पाश्चात्त्य विचारधाराओं का चित्रण हुआ हैं । किन्तु प्रश्न यह उपस्थित होता हैं कि इन दोनों में से किसको स्वीकार किया जाए ? दर्शन के क्षेत्र में आज के वैज्ञानिक युग में यह महत्त्वपूर्ण समस्या हैं ।

क्या इन दोनों विचारधाराओं के अतिरिक्त आज मानवतावादी विचारधारा को अपनाया जाय ? किन्तु आज मानव का मानव से विश्वास उठ चुका हैं । मानव का सबसे बड़ा दुश्मन मानव ही बन गया है । मानव ने ही विनाश का आयोजन एवं योजनाएँ प्रस्तुत की हैं । ऐसी परिस्थितियों में मानवतावादी या गाँधीवादी विचारधारा या दर्शन को कैसे ग्रहण किया जाय यह एक समस्या हैं ।

पहले मानव गौण था , धर्म प्रमुख था । आज मानव प्रमुख है, धर्म गौण बन गया है । इस प्रकार मानवतावाद का आधार मानवधर्म हैं । मानव-धर्म ईश्वर से सम्बन्धित न होकर मानव से हैं । अतः मानव ही सर्वस्व एवं सर्वशक्तिमान हैं । स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् सातवें दशक के हिन्दी उपन्यासों में मानवतावादी विचारधारा के दर्शन होते हैं ।

रांगेय राघव के 'दायरे' का सत्यदेव मानवतावाद का आदर्श प्रस्तुत करता है । वह हिन्दू, मुसलमान, ईसाई , सिख आदि के पीछे चलनेवालों को सीमित दायरे का मनुष्य मानता हैं । आज के युग में इन्हें तोड़ने की आवश्यकता है । वह कहता है - इन दायरों से पार होकर देखो,आगे देखो, मनुष्य केवल मनुष्य हैं । जो इन्हें स्वीकार नहीं करता वह असली असभ्य और असली बर्बर हैं ।

भगवतीचरण वर्मा के 'सामर्थ्य और सीमा 'का एलबर्ट किशन मंसूर मानता हैं कि -मैं न हिन्दू हूँ न मुसलमान हूँ , न ईसाई । मैं सिर्फ एक इन्सान हूँ फिर इन्सानियत का कायल हूँ । उपन्यासकार जैनेन्द्र के 'अनन्तर' की बनानि भाषण देती है - हम लोग भारत की बात बहुत करते हैं और सोचते ही उस प्रसंग को लेकर हैं , लेकिन समय आगे बढ़ गया हैं, और देश छोटे पड़ते जा रहे हैं । अब विश्व की भाषा में सोचना और करना होगा । हमें मानवचेतना के बल पर काम करना हैं । मुक्त चेता पुरूषों का उदय और आर्विभाव होगा, एक नये मानव और मानस का आर्विभाव तब वास्तविक और जागृतिक क्रान्ति आयेगी । उसीसे ही हमने जय हिन्द की जगह जय जगत का नारा स्वीकार किया हैं ।

संक्षेप में कहा जा सकता हैं कि वर्तमान युग में धर्म को लेकर दर्शन के क्षेत्र में ईश्वर के अस्तित्त्व के विषय में, आस्था के विषय में और मानव के कर्म एवं अस्तित्त्व के विषय को लेकर अनेक समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं । इन सभी समस्याओं का यथार्थ चित्रण सातवें दशक के हिन्दी उपन्यासों में हुआ हैं ।

(vi) साहित्यिक चेतना :

साहित्य सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति का एक सुयोग्य एवं समर्थ माध्यम है । साहित्य समाज के आभ्यन्तर विकास का लेखा-जोखा बन जाता हैं । साहित्य मानव वृत्तियों के विकास का सहज, सरल एवं सरस चित्रण हैं । समाज के सामने उपस्थित होनेवाली समस्याओं के समाधान की दिशा में साहित्य दिशा निर्देश

करता हैं क्योंकि- '' साहित्य का अंतिम लक्ष्य संपूर्ण मानवता, मानवता ही क्यों, प्राणीमात्र को प्रेम तथा एकता के सूत्र में बाँध देना हैं। ''[६१] स्पष्ट है कि साहित्य और समाज के बीच अविच्छिन्न सम्बन्ध हैं।

साहित्य मात्र विविध सामाजिक प्रभावों का प्रतिफलन है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में यह सामाजिक चेतना जितने समवेत स्वरों में मुखरित हुई हैं उतनी पूर्ववर्ती साहित्य में कभी भी अभिव्यक्त नहीं हुई। इस सामाजिक चेतना का विकास क्रम पाश्चात्य से मंडित हैं,फिर भी वह परम्परा से असम्पृक्त रही हैं।

सातवें दशक के समाज का सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से शोषण-पोषण हो रहा था। उसका प्रभावपूर्ण चित्र इस काल के साहित्य में सहज ही प्राप्त होता है।

सातवें दशक का राष्ट्रीय, सामाजिक जीवन नये लक्ष्य की दिशा में राष्ट्र विकास में बाधक समस्याओं से लड़ता हुआ आगे बढ़ रहा हैं। इस लक्ष्य के संदर्भ में नवनिर्माण की संघर्षपूर्ण चेतना प्रमुख राष्ट्रीय चेतना राष्ट्र को अनुप्रमाणित कर रही हैं। यह वर्गहीन शोषणमुक्त समाजवादी समाज की स्थापना का लक्ष्य था। चीन के आक्रमण के प्रति सातवें दशक के हिन्दी साहित्यकारों ने अपनी तीव्र प्रतिक्रिया और तीखा आक्रोश प्रकट किया हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रजा निराशा के तिमिर में उलझ गई हैं। इसके लिए उत्तरदायी हमारा दिशाविहीन, निष्क्रिय, संवेदनाहीन, क्रान्तिभीश्च नेतृत्त्व तथा हमारा नौकरशाही भ्रष्ट प्रशासन हैं। देश के नेताओं ने इनके साथ समाधान कर लिया हैं। देश की प्रगति को भुलाकर वे स्वउन्नति की चिन्ता में लगे हैं।

आज हर एक नेता गाँधी के नाम को भुला रहा है। गाँधी के नाम के साथ जो मनमानी हो रही है और इतना जल्दी इस महा मानव को जिस तरह इन तथाकथित नेताओं ने भुला दिया है,शायद ही इतना जल्द किसी को भुला दिया गया हो। श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्ण, महावीर, गौतम बुद्ध आदि को जिस आदर के साथ आज भी याद किया जा रहा है,गाँधीजी को उसी त्वरा से स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भुला दिया गया है।

नौकरशाही, नेतागीरी तथा पूँजीवाद के द्वारा हो रहे प्रजा के शोषण आदि

अनेक समस्याओं का समाधान क्रान्ति में ही देखा जा रहा हैं । इसके लिए नये संघर्षशील नेतृत्त्व का स्वीकार करना पड़ेगा,क्योंकि पुराने नेता अब क्रान्ति के योग्य नहीं रहे हैं । इस सत्य की अभिव्यक्ति तत्कालीन साहित्य में पायी जाती हैं ।

कथा साहित्य हमेशा से बुद्धिजीवी और मध्य वर्ग का महाकाव्य रहा हैं । कथा साहित्य में जीये जानेवाले जीवन के प्रति तात्कालिक प्रतिक्रिया सर्वाधिक होती हैं । समाज की परिधि में ही उपन्यास पनपता है । उपन्यासकार की दृष्टि चाहे कुछ हो,वह मनुष्य और समाज की समस्याओं को राजनीतिक, सामाजिक,धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सदर्भों में देखने का प्रयास करता हैं ।

सातवें दशक का हिन्दी उपन्यास साहित्य भी तत्कालीन जीवन से प्रभावित हैं । इन उपन्यासों में जहाँ एक ओर स्वतंत्रता पूर्व के जमींदारो और सामन्तों का चित्रण किया हैं, वहाँ दूसरी ओर स्वातंत्र्योत्तरकाल के नेता वर्ग ,मध्य वर्ग, उच्च मध्य वर्ग, तथा नौकरशाही आदि का चित्रण पाया जाता हैं ।

पूँजीपति अपने औद्योगिक विकास के लिए किसानों की जमीन हथिया लेना चाहते हैं । भगवती बाबू के ‘सबहिं नचावत राम गोसाईं ’ उपन्यास में उद्योगपति राधेश्याम मंत्री जबरसिंह की सहायता से गरीब कृषकों की जमीन छीनकर उस पर अपना मील खड़ा करना चाहते हैं ।

हमारे राष्ट्रीय नेताओं एवं नेता बनने के स्वप्नदर्शी लोग चुनाव जीतने के लिए विविध प्रयत्न करते हैं । कोरी भाषणबाजी सबसे सरल इलाज हैं चूँकि उसमें सिवाय शब्दों के कुछ भी गँवाना नहीं पड़ता । वे इन भाषणों द्वारा प्रजा को दिन दहाड़े खूली आँखो में कभी न पूरा होनेवाला सपना दिखाते हैं । प्रजा भी इस भाषणबाजी से तंग आ गई है । श्री लाल शुक्ल के ‘राग दरबारी’ उपन्यास में यह व्यथा उभरकर आयी है तथा भाषण और नारेबाजी के इस युग में पीछे रह जाने का अफसोस व्यक्त हुआ है ।

वैयक्तिक लाभोत्सुक लोगों में दलगत स्वार्थवृत्ति बढ़ गई हैं । सुदर्शन मजीठिया के ‘लोहे की लाशें ’ उपन्यास में इन तत्त्वों से युक्त राजनीति का यथार्थ चित्र मिलता हैं । इस स्वार्थवृत्ति के बहकने से महात्मा गाँधी के अहिंसक शस्त्र हड़ताल, सत्याग्रह, घेराव , अनशन ,बंद इत्यादि का दुरुपयोग बढ़ चढ़कर हो रहा हैं । जुलूस,हड़ताल, नारेबाजी,घेराव तथा बंद जैसे आज के दैनंदिन जीवन की प्रक्रिया के

अंग बन गये हैं । राजनीतिक दलों में मात्र सत्ताप्राप्ति की होड़ लग गई हैं । पुरानी मान्यताएँ एवं परम्पराएँ छिन्न-भिन्न हो रही हैं ।

रामदरश मिश्र के 'जल टूटता हुआ ' उपन्यास में नेताओं की कथनी तथा करनी में जो अन्तर हैं उसे यथार्थ ढंग से निरूपित किया गया हैं । नरेश मेहता के 'यह पथ बंधु था ' में तत्कालीन राजनीति का चित्रण मिलता है । एक ओर आतंकवादी दल के लोग हैं, दूसरी ओर कांग्रेसी आन्दोलन कर्ता खादी बोर्ड आदि संस्थाओं को बनाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं । भगवतीचरण वर्मा ने ' सबहिं नचावत राम गोसाईं ' उपन्यास में तत्कालीन युग की स्थिति का चित्रण किया हैं । इन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् कांग्रेसी राज्य में व्याप्त भ्रष्टाचार, चोरबाजारी, डकैती, घूस के प्रति व्यंग्य किया हैं ।

सातवें दशक के हिन्दी उपन्यासकारों ने अपने राजनीतिक एवं सामाजिक विचार प्रस्तुत किये हैं । यह सर्वविदित है कि आज लोग राष्ट्रसेवा का चोला पहनकर अपने स्वार्थ में डूबे है । आजकल वैयक्तिक स्तर पर तथाकथित महत्त्वाकांक्षी नेताओं के कारण राष्ट्र का नेतृत्त्व दिग्भ्रमित हो गया हैं । सातवें दशक के भारतीय राजनीतिक परिवेश में व्याप्त 'दलदल की समस्या' के प्रति तत्कालीन लेखकों ने आक्रोश व्यक्त किया हैं । नागार्जुन ने 'हीरक जयन्ती' उपन्यास में इन राष्ट्रीय नेताओं के चरित्र का विश्लेषण बखूबी किया हैं । इन नेताओं के आचरण में विरोधाभास हैं । आजादी के बाद की वास्तविक स्थिति का निरूपण अमृतलाल नागर ने 'अमृत और विष' उपन्यास में किया है ।

आजकल लोगों में कुर्सी का मोह दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा हैं । प्राप्त कुर्सी के अनुपयुक्त सिद्ध होने या प्रजा द्वारा दुत्कारे जाने पर भी इन नेताओं का मोह छुटता नहीं । साथ ही भाई -भतीजावाद इस तरह से राष्ट्र में व्याप्त है कि योग्यता प्राप्त व्यक्ति को पहुँच के अभाव में स्थान नहीं मिलता और अयोग्य व्यक्ति पहुँच के आधार पर इच्छित स्थान पर बैठ जाता है और राष्ट्र का बँटवारा कर देता हैं । इस प्रकार इस राष्ट्रव्यापी समस्या ने भी तत्कालीन उपन्यासकारों को उद्वेलित किया हैं ।

आलोच्यकाल की महत्त्वपूर्ण घटनाओं मे चीन और पाकिस्तान के आक्रमण का प्रभाव तत्कालीन साहित्य में पाया जाता है । चीनी आक्रमण पर विभिन्न दृष्टियों से लिखे गये उपन्यासों में भी श्री शम्भुनाथ आशुतोष के सन् १९६३ ई. में 'संघर्ष और सीमा 'तथा सुरेन्द्र आनन्द के उपन्यास ' आ अब लौट चले ' में शत्रु के प्रति घोर

विरोध भाव तथा राष्ट्रीयता को जगानेवाले नारों का प्रणयन हुआ । जमनादास अख्तर कृत 'कश्मीर की बेटी ' कश्मीर समस्या की व्याख्या करता है । मनहर चौहान कृत 'सीमाएँ' उपन्यास उल्लेखनीय है । इस उपन्यास में सीमा-युद्ध की भूमिका में सारे देश के समाज का निरीक्षण किया गया हैं ।

इस प्रकार सातवें दशक के उपन्यासों में तत्कालीन सामाजिक चेतना, राजनीतिक चेतना,आर्थिक चेतना,धार्मिक चेतना एवं सांस्कृतिक चेतना का यथार्थ चित्रण मिलता हैं । तात्पर्य यह है कि सातवें दशक के इस कालखण्ड के साहित्य में तत्कालीन विविध परिस्थितियों का प्रभाव पाया जाता हैं ।

(छ) निष्कर्ष :

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त विशेष रूप से सातवें दशक के भारतीय समाज में सामाजिक सुधार एवं परिवर्तन दृष्टिगत होता है । कृषक वर्ग परम्परागत कृषि छोड़कर यांत्रिक कृषि की दिशा में अग्रसर हुआ हैं । विविध सरकारी योजनाओं द्वारा सरकार ने कृषक को समुन्नत बनाने का प्रयत्न किया हैं । राष्ट्र सुयोग्य नेतृत्व के अभाव में विदेशी सभ्यता के प्रति अंधी दौड़ के कारण राष्ट्र के राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में अगति का अनुभव हो रहा हैं । प्रजामानस चिर प्रतिक्षित हैं उस क्षण के लिए जब सुयोग्य मनीषी से राष्ट्र गतिशील हो और रामराज्य की कल्पना करानेवाले न्यायी समानता में श्रद्धा रखनेवाले शोषणमुक्त मंगलकारी राष्ट्र का उदय हो ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद आधुनिक अर्थ व्यवस्था एवं नारी शिक्षा प्रसार के कारण प्राप्त नारी स्वातन्त्र्य से स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में आमूलपरिवर्तन आया हैं । नारी अब हर क्षेत्र में आत्मविश्वासपूर्ण कदम रख रही है। साथ ही प्रेम तथा यौन सम्बन्धी समस्याएँ, स्त्री-पुरुष सम्बन्ध समस्याएँ नये रूप में जन्म ले रही हैं ।

आर्थिक असन्तुलन के कारण समाज में उच्च वर्ग, मध्य वर्ग, निम्न वर्ग आदि का उदय हुआ हैं । इनको लेकर अनेक सामाजिक समस्याएँ उठ खड़ी हुई हैं । आर्थिक दासता के कारण समाज में भ्रष्टाचार व्याप्त हो गया हैं ।

राजनीति के क्षेत्र में दलबंधी, गुटबाजी, स्वार्थ, सत्तालालसा आदि का अतिक्रमण हो गया हैं । जिससे आज का समाज विषम राजनीतिक परिस्थितियों से

ऊब गया हैं। राजनीतिक चुनावों ने वर्तमान राजनीतिक परिवेश को दूषित कर दिया हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् सामाजिक चेतना, राजनीतिक चेतना, आर्थिक चेतना एवं धार्मिक चेतना में आमूल परिवर्तन हुआ हैं। जिसके कारण भारतीय जन जीवन की संवेदनाएँ बदलती रही हैं। प्रेमचन्दयुगीन साहित्य में आदर्शवाद एवं आदर्शोन्मुख यथार्थवाद स्पष्ट रूप में दिखाई पड़ता हैं। तत्पश्चात् यथार्थवाद, नग्नयथार्थवाद, विकासवाद, मार्क्सवाद, फ्रायडवाद, अस्तित्त्ववाद आदि अनेक विचारधाराएँ आज साहित्य में प्रवर्तमान हैं। इन विचारधाराओं ने सारे विश्व में सभी दृष्टियों से क्रान्ति उपस्थित कर दी हैं। पाश्चात्य् जगत में भोगवादी प्रवृत्ति का आधिक्य है और जीवन के प्रति आस्था बढ़ रही है। वर्तमान युग में विनाश का संकट बढ़ता जा रहा है। ऐसी परिस्थितियों में मनुष्य भविष्य की चिन्ता को छोड़ वर्तमान को ही सबकुछ समझने लगा है। इन विचारधाराओं के कारण आज अस्तित्त्ववाद, व्यक्तिवाद, क्षणवाद जैसे वादों का आर्विभाव हुआ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि स्वाधीनता के पश्चात् सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक सभी क्षेत्रों में मूल्य परिवर्तन हो रहा हैं। उसी प्रकार संवेदनाएँ भी बदलती रही है। उन परिवर्तित संवेदनाओं का व्यापक रूप में चित्रण २० वीं शताब्दी के सातवें दशक के हिन्दी उपन्यासों में उपलब्ध होता हैं।

सातवें दशक के उपन्यासों मे राजनीति से दूषित समाज का चित्र मिलता हैं। यह चित्र समाज के बदलते हुए मूल्यों, भ्रष्टाचार, बेकारी, यौनकुण्ठा तथा व्यापक पाश्चात्य प्रभाव को व्यक्त करता हैं। जब व्यक्ति शोषण एवं दुराचारों से टक्कर लेने में असमर्थ होता हैं तब वह पलायन करता है, वह आत्मकेन्द्री बन जाता है या कायर होकर समर्थ के प्रति वैयक्तिक वफादारी दिखाता है। यही कारण है कि आज घासलेटी साहित्य का प्रचार बढ़ा है तथा धीरे धीरे सामाजिक दृष्टि कम होती जा रही हैं। शिव प्रसाद सिंह कृत 'अलग -अलग वैतरणी ' के युवा शिक्षितों का पलायन उल्लेखनीय है।

संक्षेप में कहा जा सकता हैं कि सातवें दशक के उपन्यासकारों ने उस काल की पारिवारिक,सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक व्यक्ति चेतना को वाणी दी हैं। उनकी रचनाओं में जीवन के विविध पक्ष अपने यथार्थ रूप में प्रस्तुत हुए हैं। उनकी प्रस्तुति युग सापेक्ष है।

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

क्रम	संदर्भ ग्रन्थ	पृष्ठ नं
१.	उपन्यास समीक्षा के नये प्रतिमान-डॉ.दंगल झाल्टे	पृ-१२
२	उपन्यास समीक्षा के नये प्रतिमान-डॉ.दंगल झाल्टे	पृ-१४
३.	काव्य के रूप -बाबू गुलाबराय	पृ-१५१
४.	हिन्दी साहित्य : सामाजिक चेतना-डॉ. रत्नाकर पाण्डेय	पृ-७२/७३
५.	द्विवेदी युगीन साहित्य समीक्षा-संकठाप्रसाद मिश्र	पृ-३३
६.	हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिगत इतिहास- प्रताप नारायण टंडन	पृ-५१०
७.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि-डॉ. स्वर्णलता	पृ-०८
८.	आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य -डॉ. हरदयाल	पृ-५१
९.	हिन्दी उपन्यास : सिद्धान्त और समीक्षा	पृ-२४१
१०.	हिन्दी उपन्यास : सिद्धान्त और समीक्षा	पृ-२४५
११.	आधुनिक हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास -डॉ. बेचेन उग्र	पृ-५२-५३
१२.	आधुनिक हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास -डॉ. बेचेन उग्र	पृ-५३
१३.	हिन्दी सहित्य की युगीन प्रवृत्तियाँ डॉ.नामदेव उतरकर	पृ,१६८/१६९
१४.	हिन्दी उपन्यास सं-सुषमा प्रियदर्शनी	पृ-१३८
१५.	आधुनिक हिन्दी उपन्यास :उद्भव और विकास	पृ-११८
१६.	प्रेमचन्द की प्रासंगिकता-अमृतराय	पृ-८३
१७.	प्रेमचन्द की प्रासंगिकता-अमृतराय	पृ-१०२
१८.	आधुनिक हिन्दी उपन्यास :उद्भव और विकास - हजारी प्रसाद द्विवेदी	पृ-२५०
१९.	आधुनिक हिन्दी उपन्यास :उद्भव और विकास - डॉ. हेमराज निर्मम	पृ-४०३
२०.	आधुनिक हिन्दी उपन्यास :उद्भव और विकास - डॉ. हेमराज निर्मम	पृ-४०५
२१.	हिन्दी उपन्यास-डॉ. शिवनारायण श्रीवास्तव	पृ-२९३
२२.	आधुनिक हिन्दी उपन्यास :उद्भव और विकास - डॉ. हेमराज निर्मम	पृ-२०५
२३.	हिन्दी उपन्यास-डॉ. शिवनारायण श्रीवास्तव	पृ,२०६/२०७

क्रम	संदर्भ ग्रन्थ	पृष्ठ नं
२४.	आधुनिक हिन्दी उपन्यास :उद्भव और विकास - डॉ. नगेन्द्र	पृ-६७५
२५.	आधुनिक हिन्दी उपन्यास :उद्भव और विकास - डॉ. बेचेन उग्र	पृ-११८
२६.	आधुनिक हिन्दी उपन्यास :उद्भव और विकास - डॉ. हेमराज निर्मम	पृ-४०८
२७.	हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा -डॉ. रामदरश मिश्र	पृ-११२
२८.	काव्य के रूप - बाबू गुलाबराय	पृ-१८९
२९.	हिन्दी साहित्य का इतिहास- डॉ. माधव सोनटक्के	पृ-३७२
३०.	हिन्दी उपन्यास -डॉ.सुषमा प्रियदर्शनी	पृ-१९१
३१.	हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा -डॉ. रामदरश मिश्र	पृ-१२६
३२.	विवेक के रंग - संपादक. देवीशंकर अवस्थी	पृ-२११
३३.	हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिद्रश्य- अज्ञेय	पृ-९५-९६
३४.	लेखः प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास -डॉ. रणवीर रांग्रा हिन्दी उपन्यास- संपादक . डॉ. प्रियदर्शिनी	
३५.	हिन्दी और गुजराती के ऐतिहासिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन- डॉ. श्री नारायण भारद्वाज (अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध)	पृ-२८
३६.	आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान- डॉ.देवराज उपाध्याय	पृ-१४
३७.	मैं इनसे मिला भाग-२- पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'	पृ-५४
३८.	हिन्दी उपन्यास -डॉ. शिवनारायण श्रीवास्तव	पृ-२९३
३९.	काव्य के रूप-बाबू गुलाबराय	पृ-१८७
४०.	विवेचना-इलाचन्द्र जोशी	पृ-१२३
४१.	हिन्दी साहित्य का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन -डॉ. गिरधरप्रसाद शर्मा	पृ-१५३
४२.	अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या -डॉ. रामस्वरूप चर्तुवेदी	पृ-१८०

क्रम	संदर्भ ग्रन्थ	पृष्ठ नं
४३.	अज्ञेय का कथा साहित्य-डॉ. ओम प्रभाकर	पृ-५०
४४.	सातवां दशक मूल्यांकन विशेषांक फरवरी-मई. -१९७१	पृ-६०
४५.	हिन्दी साहित्य का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन -डॉ. गिरधरप्रसाद शर्मा	पृ-१४७
४६.	संचेतना- उपन्यास विशेषांक १९७१ दिसेम्बर	पृ-१९
४७.	संचेतना- उपन्यास विशेषांक १९७१ दिसेम्बर	पृ-२३
४८.	आधुनिकता के आईने में हिन्दी उपन्यास लेख - परिशोध-१७ अक्टुबर १९७२	पृ-७२
४९.	आधुनिक बोध और आधुनिकीकरण -डॉ. रमेशकुन्तल मेघ	पृ-४३९
५०.	सम्मेलन पत्रिका- साहित्य,संस्कृति, भाषा विशेषांक चैत्र-मागशीर्ष -शक-१८९४	
५१.	अणिमा पत्रिका-अक्टुबर-डिसम्बर-१९६५	पृ-३४६
५२.	दो एकान्त- नरेश मेहता	पृ-८६
५३.	मछली मरी हुई - राजकमल चौधरी	पृ-३१
५४.	अन्धेरे बन्ध कमरे- मोहन राकेश	पृ-४६२
५५.	डाक बंगला- कमलेश्वर	पृ-६५
५६.	क्योंकि समय एक शब्द हैं- रमेश कुन्तलमेघ	पृ-२३
५७.	जल टूटता हुआ-रामदरथ मिश्र	पृ-१६
५८.	अमृत और विष- अमृतलाल नागर	पृ,५९९/६००
५९.	ऋर्तुचक्र- इलाचन्द्र जोशी	पृ-६७
६०.	मैं ,वे और आप- डॉ. देवराज	पृ-१२६
६१.	आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य 'प्रस्तावना' से - कुंजबिहारी मिश्र	

चतुर्थ अध्याय

समसामयिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में कमलेश्वर के उपन्यासों का अध्ययन

अध्याय-४

समसामयिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में कमलेश्वर के उपन्यासों का अध्ययन

क्रमांक	विगत	पृष्ठ संख्या
(क)	**प्रस्तावना ।**	२२३
(ख)	**कमलेश्वर के उपन्यासों का वर्गीकरण तथा प्रवृत्तिगत विश्लेषण :**	२२६
	अ-सामाजिक उपन्यास ।	२२७
	ब- राजनीतिक उपन्यास ।	२२९
(ग)	**कमलेश्वर के उपन्यासों का परिचयात्मक अध्ययन :**	२३०
	(१) एक सड़क सत्तावन गलियाँ ।	२३०
	(२) डाक बंगला ।	२३६
	(३) लौटे हुए मुसाफिर ।	२४२
	(४) समुद्र में खोया हुआ आदमी ।	२४९
	(५) काली आँधी ।	२५४
	(६) तीसरा आदमी ।	२५९
	(७) आगामी अतीत ।	२६४
	(८) वही बात ।	२७०
	(९) रेगिस्तान ।	२७३
	(१०) सुबह दोपहर शाम ।	२७८
	(११) कितने पाकिस्तान ।	२८१
	(१२) अनबीता व्यतीत ।	२८४
	(१३) पति पत्नी और वह ।	२९०
	(१४) अम्मा ।	२९७

क्रमांक	विगत	पृष्ठ संख्या
(घ)	**कमलेश्वर के उपन्यासों में समसामयिक चेतना :**	
	(अ) सामाजिक चेतना :	३०७
	(१) समाज के अत्याचार का चित्रण।	३०७
	(२) समाज पर व्यंग्य।	३०९
	(३) नारी की महिमा का चित्रण।	३१०
	(४) नारी जीवन की विसंगति।	३१२
	(५) नारी के दोहरे रूप का चित्रण।	३१७
	(६) नारी के अस्तित्त्व की माँग।	३१८
	(७) पति-पत्नी सम्बन्ध विच्छेद :	३२०
	(i)- 'तीसरे' व्यक्ति के आगमन से टूटते सम्बन्ध।	३२१
	(ii)- 'शक' से टूटते सम्बन्ध।	३२३
	(ब) राजनीतिक चेतना :	३२५
	(१) क्रान्तिकारी आन्दोलन।	३२६
	(२) साम्यवाद का चित्रण।	३२८
	(३) देश-विभाजन : एक अमानवीय अनुभव।	३२९
	(४) पारिवारिक विघटन।	३३२
	(५) समसामयिक राजनीति का चित्रण।	३३५
	(६) भ्रष्ट राजनीति।	३३७
	(७) वॉट की राजनीति।	३३९
	(८) गाँधी आदर्शों का पतन।	३३९
	(९) अंग्रेजों के अत्याचारों का चित्रण।	३४२
	(क) आर्थिक चेतना :	३४३
	(१) आर्थिक अभाव का चित्रण।	३४५
	(२) आर्थिक अभाव से टूटते परिवार।	३४७
	(३) पूँजपति व्यवस्था का चित्रण।	३४८
	(४) हर एक धन्धे की मान्यता।	३४९

क्रमांक	विगत		पृष्ठ संख्या
		(५) यान्त्रिकीकरण से गाँव-कस्बे में आये परिर्वतन ।	३४९
		(६) महानगरीय मध्यवर्गीय जीवन की विसंगति ।	३५१
		(७) वर्गगत भेदभाव ।	३५३
	(ङ)	सांस्कृतिक चेतना :	३५५
		(१) कपटी आध्यात्मिकता ।	३५५
		(२) मानवीय मूल्यों के महत्त्व का चित्रण ।	३५७
		(३) मानवीय मूल्यों का पतन ।	३५८
		(४) परम्परागत रीति-रीवाजों का अंकन ।	३५९
		(५) साम्प्रदायिकता का चित्रण ।	३६०
(च)	**निष्कर्ष ।**		३६१
(छ)	**संदर्भ ग्रन्थ सूची ।**		३६६

(क) प्रस्तावना

उपन्यास मानव - जीवन का बृहत चित्र है । उसकी यथार्थता इस बात पर निर्भर करती है कि उपन्यासकार कितने सशक्त रूप से समाज के चरित्रों को सहीं और कलात्मक ढंग से उभार पाया हैं, जिनमें हम अपने या अपने पार्श्ववर्ती समाज, व्यक्तियों का रूप देख सकते हैं । पूर्ववर्ती विवेचन में स्पष्ट किया जा चुका है कि सातवें दशक के उपन्यासों में समाज की अपेक्षा व्यक्ति और व्यक्तिमूल्यों की कथा का चित्रण किया गया है । आज उपन्यास में देश और समाज के अतिरिक्त व्यक्ति का सूक्ष्म और व्यापक विश्लेषण किया जाने लगा हैं ।

उपन्यास विधा हिन्दी गद्य साहित्य की एक ऐसी विशिष्ट विधा है जिसे हिन्दी साहित्य क्षेत्र में श्रेष्ठतम स्थान प्राप्त हुआ है । वर्तमान परिस्थितियाँ कुछ ऐसी हैं कि मानव के मन में उठनेवाले भावों को उपन्यास के अतिरिक्त अन्य विधाओं द्वारा प्रकट किया ही नहीं जा सकता । आज राजनीतिक और सांस्कृतिक भ्रान्तियों ने हमारा जीवन इतना भ्रमपूर्ण और शंकालु बना दिया है कि हमारा संपूर्ण व्यक्तित्त्व एक मशीन की भाँति बन गया है जो स्वतः चालित न होकर दूसरों द्वारा परिचालित होता हैं । आज का जीवन मात्र कल्पना का जीवन नहीं हैं, अपितु कटुता और तीखेपन से भरा हुआ जीवन है, जिसमें दुःख-दर्द, पीड़ा आदि सामिल हैं । स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् बदलते युग और मानव की गाथा को यथार्थवादी रूप में प्रस्तुत करना उपन्यास विधा की प्रमुख विशेषता है ।

सातवें दशक के उपन्यासकारों ने मानवजीवन के धरातल को अपना कथानक बनाया । जहाँ मूल्य टूट गये हैं, संवेदनाएँ बिखर गयी हैं और अनुभूतियाँ सैंकड़ों उतार-चढ़ाव के बाद इतने तनावों में बनती और बिगड़ती है कि उनका एक रूप और एक स्तर नहीं रह जाता । समाज द्वारा कुचले जाने पर समाज विद्रोही बनने या आत्महत्या की और प्रवृत्त होनेवाले व्यक्ति की सामाजिक विषमता के सामने टूटनेवाले जनों की , कुण्ठित नर-नारियों की तथा जीवन में पाये जानेवाले असित तत्त्वों की गाथा को साहित्य में संजोने का कार्य आज मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार कर रहे हैं । आज उपन्यासों में कथा का स्थान भाव ने तथा क्रमबद्ध घटनाओं का स्थान स्मृतियों ने लिया हैं । आज उपन्यासों में युग का नहीं घण्टों का चित्रण हैं ।

सातवें दशक का यह समय भारत के लिए निर्णयात्मक रहा है क्योंकि इस युग में राजनीतिक क्षेत्र में अनेक परिवर्तन हुए । कांग्रेस पक्ष के आंतरिक मतभेद बाहर

आये। तात्पर्य यह कि सातवें दशक की राष्ट्रीय राजनीति में कांग्रेस का प्रभाव कभी कम तो कभी विशेष रूप में पड़ा हैं । राष्ट्र की आंतरिक गुटबंदियों ने राष्ट्र विकास को अवरूद्ध किया । राष्ट्र की शासन व्यवस्था में बदलाव आया परन्तु शोषण से मुक्त वातावरण राष्ट्र को नहीं मिला । नेता, अधिकारी, कर्मचारी सब स्वार्थपूर्ति हेतु मुनाफाखोरी, घूस, कालाबाजार, तस्करी आदि के द्वारा राष्ट्र का रक्त चूस रहे हैं ।

सातवें दशक में सामाजिक परिस्थितियों में विशेष परिवर्तन दिखाई नहीं देता । सामान्य जन जीवन अत्यंत कठीन बन गया था। उसकी जड़ में जनसंख्या में हो रही वृद्धि, अंधविश्वास एवं परम्पराएँ तथा भाग्यवाद आदि तीन कारण दिखाई देते थे । तात्पर्य यह कि सातवें दशक के भारतीय समाज में अब परम्परित आस्थाएँ, मान्यताएँ तथा संस्कारों का स्थान नवजाग्रत उदार सामाजिकता ने लिया था । इसमें रूढ़ियाँ,अंधविश्वास, कुरीतियाँ विद्यमान थी। अशिक्षा के कारण इस वर्ग में अधिकाधिक दूषण पाये जाते थे ।

सातवें दशक में आर्थिक स्थिति में कोई बड़ा परिवर्तन दिखाई नहीं दे रहा था। गुलामी के दिनों में विदेशी शोषक थे तो स्वतन्त्र भारतमें स्वदेशी ही एक दूसरे का शोषण कर रहे थे। इस प्रकार भारतीय पूँजनीतियों की शोषक अर्थनीति से समाज बूरी तरह से निर्धन होता जा रहा था। सातवें दशक के भारतीय जन-जीवन में बेकारी के दर्शन होते थे,जिसके लिए शिक्षणवृद्धि तथा पढ़े-लिखे लोगों की नौकरी प्रिय मनोवृत्ति उत्तरदायी थी ।

सातवें दशक के सामाजिक जीवन में धार्मिक स्थिति का आंशिक रूप से परम्परित एवं नव्य दृष्टिकोण युक्त चित्र भी पाया जाता है । जहाँ ग्राम्य जीवन में अंधश्रद्धा, जातिवाद,इत्यादि हैं, वहाँ धर्म तथा मानवता को नव्य दृष्टि से देखने तथा जीने के संस्कार भी पाये जाते हैं। वर्तमान समय में मानव की शक्ति पर अधिक आस्था पायी जा रही हैं । अंधविश्वास, पुरानी मान्यताओं इत्यादि का स्थान मानवता एवं मानवकल्याण की दृष्टि ने लिया हैं ।

सातवें दशक में बाह्य और आन्तरिक संघर्ष के परिणाम स्वरूप संस्कृति में संकट के क्षण का उद्‌भव हुआ है। आज सर्वत्र कुण्ठा, निराशा और दिशाहीनता का वातावरण व्याप्त हैं। सदियों से संघर्ष मूल्यों के ह्रास तथा प्रतिपल परिवर्तन की स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को दिग्भ्रमित अनुभव करता हैं । ग्राम्य भारत में सांस्कृतिक परिवर्तनों की गति तेज हुई हैं। परम्पराबद्ध भारतीय दृष्टि को नवीन वैचारिक जगत

का परिवेश मिला तथा देश में शैक्षिक चेतना का प्रसार हुआ । सांस्कृतिक क्षेत्र में समन्वय तथा सहिष्णुता के स्थान पर अतिवादी प्रवृत्तियों का विस्तार हो रहा हैं । शिक्षित समाज में भी दहेज जैसी कुप्रथाएँ प्रचलित हैं । समाज मे उच्च वर्ग तथा मध्य वर्ग में कुत्रिमता,संकुचितता,दम्भ अकर्मण्यता तथा विलासिता अधिक हैं। फैशन तथा आधुनिकता के नाम पर मनमाना आचरण समाज करता हैं ।

सातवें दशक के समाज का सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से शोषण-पोषण हो रहा था । उसका प्रभाव पूर्ण चित्र इस काल के साहित्य में सहज ही प्राप्त होता हैं । सातवें दशक का राष्ट्रीय, सामाजिक जीवन नये लक्ष्य की दिशा में राष्ट्र-विकास में बाधक समस्याओं से लड़ता हुआ आगे बढ़ रहा था । इस लक्ष्य के संदर्भ में नवनिर्माण की संघर्षपूर्ण चेतना, प्रमुख राष्ट्रीय चेतना राष्ट्र को अनुप्रमाणित कर रही थी ।

स्वातन्त्र्योत्तर युग में साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में हमारी अपेक्षातीत प्रगति रही हैं । हिन्दी गद्य साहित्य में कथा साहित्य का तो खास महत्त्व है, क्योंकि इस काल में कथा साहित्य में अनेक नूतन प्रवृत्तियों का श्री गणेश हुआ था । स्वातन्त्र्योत्तरकालीन बदली राजनीतिक, सामाजिक,आर्थिक,धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों की असलियत तत्कालीन साहित्य वर्णित करता हैं । कमलेश्वर कस्बे के मध्यमवर्गीय परिवार के सदस्य होने के नाते इन बदलावों को भोगते रहे हैं जिनका जीवन्त उदाहरण उनके कथा साहित्य में मिलता हैं ।

स्वतन्त्रता से जुड़े देश विभाजन के दुष्परिणामों से एक ओर जनता बेसहारा और आतंकित थी तो दूसरी ओर भारतीय राजनीति एवं प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा बेईमानी से मामूली आदमी की यातना बढ़ने लगी । दिन-ब-दिन बढ़ते दल-बदल और राजनेताओं के कथनी और करनी के अन्तर के कारण समूची स्थिति इतनी निराशाजनक थी कि जनसाधारण में लोकतन्त्र के प्रति आस्था ही कम होने लगी । फलतः जनतान्त्रिक मूल्यों का धीरे-धीरे अवमूल्यन होता गया । इसका प्रभाव सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में दिखाई दिया । स्वतन्त्रता के बाद हुए औद्योगीकरण, यान्त्रिकीकरण,नगरीकरण और आर्थिक दबावों ने भारतीय संयुक्त पारिवारिक व्यवस्था को दुर्बल बना दिया । अतः संयुक्त परिवार तेजी से विघटित होकर विभक्त परिवार में बदल गया । इस बदलाव को पाश्चात्त्य सभ्यता एवं संस्कार ने बढ़ावा दिया । भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था के कारण देश की आर्थिक असमानता और आर्थिक अभाव ही है । राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र में हुए उथल-पुथल के परिणाम से नैतिक

एवं धामिक मूल्यों की च्युति हो गई । आम जनता जीने तथा अस्तित्त्व की रक्षा के लिए कोई भी रास्ता अपनाने से हिचकती नहीं थी । इस प्रकार स्वातन्त्र्योत्तर राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में हुए भ्रष्टाचार, मूल्यविघटन आदि का सफल अंकन करने में कमलेश्वर सक्षम थे । फलस्वरूप पुराने कथाशिल्प को नकारकर नूतन प्रयोगों द्वारा समकालीन समस्याओं की युगानुरूप अभिव्यक्ति हुई । नई कहानी के शिल्पी होने के नाते कमलेश्वर की रचनाएँ भी इस बदलाव को अत्यन्त सहज एवं यथार्थ रूप में अंकित करने में सफल रही हैं ।

हिन्दी कथा साहित्य जगत में 'नई कहानी' के प्रमुख वक्ता के रूप में कमलेश्वर का पदार्पण हुआ था । शिलाखण्ड को तराशनेवाले मूर्तिकार की वास्तुकारिता का उन्मेष उनके कथा साहित्य में मिलता हैं । कमलेश्वर की ख्याति का मुख्य आधार उनकी कहानियाँ ही हैं । उन्होंने मध्य वर्ग को अपनी रचना का विषय बनाया था । कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों में कस्बाई जीवन की विषम स्थिति का, मध्य वर्ग की असंगति एवं सामाजिक असमानता का चित्रण बड़ी मार्मिकता से किया हैं । कमलेश्वर के उपन्यास का समग्र परिचय प्राप्त करने के लिए उपन्यासों का वर्गीकरण तथा प्रवृत्तिगत अध्ययन आवश्यक हैं ।

(ख) कमलेश्वर के उपन्यासों का वर्गीकरण तथा प्रवृत्तिगत विश्लेषण

कमलेश्वर के उपन्यासों में बड़ी सूक्ष्मता और सांकेतिकता के साथ नये सामाजिक यथार्थ को निरूपित किया गया हैं । वे एक घोषित प्रगतिशील कथाकार थे । कस्बाई एवं महानगरीय निम्न-मध्यवर्ग के वर्ग-वैषम्य,शोषण और सामाजिक असमानता का चित्रण उन्होंने अपनी प्रगतिशील विचारधारा के आधार पर किया था । जीवन के संघर्षों से उत्पन्न उनकी यह विचारधारा हर मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी की हैं । आधुनिक संचेतना को कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों के द्वारा व्यक्त किया था । वे सदा अपने परिवेश से जुड़कर रहे थे । इसलिए उसके उपन्यासों में आम हिन्दुस्तानी की जिन्दगी उद्‌घाटित हुई हैं,अर्थात् उनके उपन्यासों में रोजी-रोटी, पति-पत्नी कलह, प्रेम-शंकाएँ, आस्था-अनास्था आदि सब कुछ अपने यथार्थ रूप में ही आते हैं । कमलेश्वर सदैव अपने युग की किसी समस्या पर सोचते रहे है । उनकी रचनाओं में इस चिन्तन की प्रमुखता देखने को मिलती हैं । उनका चिन्तन एक बुद्धिजीवी का चिन्तन है जो जनसाधारण के लिए हैं । जीवन के यथार्थों को सहज प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने के कारण ही पाठक अन्त तक पहुँचकर कुछ सोचने को मजबूर हो जाता हैं । पाठक के मन में इसके प्रति एक विशेष प्रकार की कचोटन का अहसास ही लेखक की सबसे बड़ी उपलब्धि हैं ।

कमलेश्वर के कुल चौदह उपन्यास हैं। वह प्रकाशित वर्ष के अनुसार इस प्रकार है -

(१) एक सड़क सत्तावन गलियाँ (१९५७)
(२) डाक बंगला (१९६२)
(३) लौटे हुए मुसाफिर (१९६३)
(४) समुद्र में खोया हुआ आदमी (१९६५)
(५) काली आँधी (१९७४)
(६) तीसरा आदमी (१९७६)
(७) आगामी अतीत (१९७६)
(८) वही बात (१९८०)
(९) रेगिस्तान (१९८८)
(१०) सुबह दोपहर शाम (१९९२)
(११) कितने पाकिस्तान (२०००)
(१२) अनबीता व्यतीत (२००४)
(१३) पति पत्नी और वह (२००६)
(१४) अम्मा (२००६)

कमलेश्वर के उपन्यासों को मुख्य प्रवृत्तियों के आधार पर निम्नलिखित दो प्रकारों में विभाजित किया जा सकता हैं।

(अ) सामाजिक उपन्यास (ब) राजनीतिक उपन्यास

(अ) सामाजिक उपन्यास :

हिन्दी उपन्यास साहित्य के इतिहास में सामाजिक प्रश्नों को लेकर जिन रचनाकारों ने अपनी सजागता का परिचय दिया हैं, उनमें कमलेश्वर प्रमुख हैं। कमलेश्वर के उपन्यासों में परिवर्तित सामाजिक स्थितियों का मार्मिक चित्रण हुआ हैं। विगत बीस वर्षों में उपन्यासों के सन्दर्भ में यह मान्यता द्दढ होती गयी कि उपन्यासकार अपने दायित्त्व को पूरी तरह से निभाये और रचना के प्रति प्रतिबद्ध हो। इस दृष्टि से,विशेष रूप से प्रतिबद्धता के सन्दर्भ में कमलेश्वर एक सचेत उपन्यासकार के रूप में हमारे सामने आते हैं। कमलेश्वर परिवर्तित सामाजिक मान्यताएँ, आस्थाएँ और मूल्यों के सन्दर्भ में बड़े जागरूक साहित्यकार दिखाई पड़ते हैं। आज तक कमलेश्वर के कुल चौदह उपन्यास प्रकाशित हुए, किन्तु उनके यह उपन्यास उनकी

सामाजिक प्रतिबद्धता को व्यक्त करते हैं । सामाजिक परिवेश की दृष्टि से यदि कमलेश्वर के उपन्यासों का अध्ययन किया जाए तो स्पष्ट होगा कि उनके सभी उपन्यासों में एक विशिष्ट प्रकार का कस्बाई तथा नगरीय जीवन देखने को मिलता हैं । कमलेश्वर ने छोटे शहर और कस्बों की सामाजिक स्थिति को, वहाँ के लोगों को,उनके दुःख-दर्द को और आशा-निराशाओं को बहुत निकट से देखा हैं । उन्होनें कस्बाई जिन्दगी की सारी भिन्नताओं को एकसूत्रता में पिरोने का प्रयास किया हैं । कमलेश्वर के उपन्यासों में सामाजिक धरातल महत्त्वपूर्ण हैं । उपन्यासों के चरित्र आदमी के भीतर की अच्छाइयाँ और बुराइयों को लेकर चले हैं । सामाजिकता के सन्दर्भ में उनके चरित्र कहीं पर भी कृत्रिम या अस्वाभाविक नहीं लगते । उनके चरित्रों में घृणा, प्रेम,हिंसा और अहिंसा का भी चित्रण हुआ हैं ।

कमलेश्वर के सभी उपन्यास अपने आकार और प्रकार में लघु है, पर लघुआकारी उपन्यासों में मध्य वर्गीय परिवारों के संस्कारों,कुण्ठाओं, और आर्थिक, सामाजिक विषमताओं का बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण हुआ हैं । कमलेश्वर के चरित्र जीवन में हर स्थल पर संघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं । जिस सामाजिक स्थिति में ये चरित्र रह रहे हैं, इस स्थिति के लिए उनका संघर्ष जारी हैं । जिन्दगी के अभावों के लिए लड़ते हुए अनेक चरित्र जीवन को अधिक बेहतर बनाने की कोशिश करते हैं । यदि हम सामाजिक परिवेश को ध्यान में रखकर उनके एक-एक उपन्यासों का अध्ययन करे तो हर उपन्यास में इस देश के आम आदमी का सामाजिक संघर्ष ही दिखाई देगा । कमलेश्वर ने कुल चौदह उपन्यासों में से नौ उपन्यास के अंतर्गत सामाजिक जीवन को चित्रित किया है ।

१. एक सड़क सत्तावन गलियाँ (१९५७)
२. डाक बँगला (१९६२)
३. समुद्र में खोया हुआ आदमी (१९६५)
४. तीसरा आदमी (१९७६)
५. आगामी अतीत (१९७६)
६. वही बात (१९८०)
७. अनबीता व्यतीत (२००४)
८. पति पत्नी और वह (२००६)
९. अम्मा (२००६)

कमलेश्वर ने सामाजिक उपन्यासों में महानगरीय जीवन की विसंगति, नारी जीवन की विडम्बना,आर्थिक अभाव आदि समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है ।

(ब) राजनीतिक उपन्यास :

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व भारतीय राजनीति जागरण का एक मात्र लक्ष्य भारत को दासता के बन्धन से मुक्ति दिलाना था । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् बदली हुई परिस्थितियों में राष्ट्रीय राजनीति जन सामान्य के जीवन का प्रमुख अंग बन गई है । प्रजातंत्रीय व्यवस्था में राजनीतिक जीवन का अपना एक महत्त्व रहता हैं । इन्हीं बदली हुई राजनीतिक चेतना और परिवेश का मार्मिक चित्रण कमलेश्वर के उपन्यासों में हुआ हैं । कमलेश्वर के राजनीतिक चेतना प्रधान उपन्यासों में प्रमुख हैं -'लौटे हुए मुसाफिर','काली आँधी ', 'सुबह दोपहर शाम', 'रेगिस्तान' आदि । कमलेश्वर के उपन्यास जहाँ मध्य वर्गीय चेतना से जुड़े हुए हैं ,वहाँ वह मध्य वर्ग राजनीतिक दृष्टि से कितना सजाग है यह भी उन्होंने अपने उपन्यासों में विविध चरित्रों के माध्यम से स्पष्ट किया हैं । इन उपन्यासों में राजनीतिक प्रमुख प्रतिपाद्य नहीं है, किन्तु चरित्रों के जीवन में राजनीतिक स्थितियों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं । उनके उपन्यास 'काली आँधी' में यह बात और भी अधिक स्पष्ट दिखाई देती हैं । राजनीतिक परिवेश का चित्रण कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों में जानबुझकर नहीं किया, वे तो स्वयं इस बात का स्वीकार करते हुए कहते हैं कि-'मुझे हंमेशा पात्रों ने ही और उनकी स्थितियों ने ही कहानियाँ दी हैं ।' कमलेश्वर का यह कथन स्पष्ट करता हैं कि उन्होंने उपन्यास की कथाभूमि को जीवन के यथार्थ से ही ग्रहण किया हैं । उनके उपन्यासों में चित्रित कथाभूमि स्थितियों और पात्रों के माध्यम से ही विश्वसनीय लगती हैं । राजनीतिक परिवेश की दृष्टि से हम उनके उपन्यास 'लौटे हुए मुसाफिर', 'काली आँधी', 'सुबह दोपहर शाम', 'रेगिस्तान' का अध्ययन करे तो ज्ञात होगा कि राजनीतिक परिवेश की स्थितियाँ कहीं भी आरोपित नहीं हैं । उनके उपन्यासों में राजनीतिक परिवेश वस्तु के अनुकूल हैं । राजनीतिक स्थितियों को महत्त्व देते हुए भी कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों मे मानवी पक्ष को संवेदना के धरातल पर बड़ी सहजता और कलात्मकता के साथ रूपायित किया हैं । निःसन्देह उनके उपन्यासों में भाषा अधिक महत्त्वपूर्ण है , जो वस्तु चेतना का निर्माण करती हैं । सामाजिक-राजनीतिक परिवेश की दृष्टि से हमें यहाँ उनके उपन्यासों का अध्ययन करना आवश्यक लगता हैं ।

१. लौटे हुए मुसाफिर (१९६३)
२. काली आँधी (१९७४)
३. रेगिस्तान (१९८८)
४. सुबह दोपहर शाम (१९९२)
५. कितने पाकिस्तान (२०००)

राजनीतिक उपन्यास में राजनीति से जुड़े विविध मामलों की अभिव्यक्ति होती हैं । स्वतन्त्रता संग्राम से लेकर समकालीन राजनीति गतिविधियों का दिग्दर्शन उनके उपन्यासों में हुआ हैं । साथ ही समकालीन राजनीति के शिकार आम जनता के जीवन की वास्तविकता को भी उभारा गया हैं ।

(ग) कमलेश्वर के उपन्यासों का परिचयात्मक अध्ययन :

(१) एक सड़क सत्तावन गलियाँ -(१९५७)

कमलेश्वर के अनेक उपन्यासों मे से यह उपन्यास कमलेश्वर के जीवन का सर्वप्रथम प्रकाशित उपन्यास हैं । सन् ई. १९५६ में लिखा गया एक सौ बीस पृष्ठ का यह उपन्यास सन् ई. १९५७ में 'हंस' नामक हिन्दी पत्रिका में प्रकाशित हुआ था बाद में श्री कृष्णचन्द बेरी ने इसे 'हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय' वाराणसी से भी प्रकाशित किया और प्रेम कपूर ने सन् १९६८-६९ में इस पर 'बदनाम बस्ती 'नामक फिल्म भी बनाई ।

लेखक को आर्थिक मजबूरी के कारण पंजाबी पुस्तक भण्डार-दिल्ली के श्री अमरनाथजी को यह उपन्यास सिर्फ ८०० रूपियें में बेच देना पड़ा । इस उपन्यास को बेच देने के बाद लेखक के रूप में उनका नाम तो रह गया लेकिन उपन्यास के सारे अधिकार छिन लिए गए । इस उपन्यास की प्रस्तावना में लेखक ने लिखा हैं कि- '' मेरे लिए यह उपन्यास उतना ही प्रिय है, जितनी प्रिय मेरे लिए मेरी माँ और मेरी जन्मभूमि मैनपुरी । इसे बेचकर करीब २० साल तक मेरी आत्मा दुखती रही-लगता रहा जैसे मैंने अपनी जन्मभूमि या माँ को बेच दी हो ।''[१]

२० साल के बाद लेखक की इस तकलीफ को उसके अभिन्न दोस्त श्री जवाहर चौधरीजी ने समझा और उन्होंने श्री अमरकान्तजी से बात की । श्री अमरकान्तजी को यह जानकार दुःख हुआ और उन्होंने इस उपन्यास के सर्वाधिकार बेहद शालिनता और अपनेपन से वापस कर दिए । उपन्यासकार के रूप में यह कमलेश्वर का प्रथम प्रयास था, परन्तु उनका यह प्रथम प्रयास ही इतना सफल रहा कि उन्हें प्रथम पंक्ति के उपन्यासकारों की श्रेणी में लाकर बिठा दिया । विवरणात्मक शैली में लिखे गए इस उपन्यास का शिल्प नया है, इसके साथ ही कथा की दृष्टि से भी उपन्यासकार ने नई कथा को, अपनी रचना का आधार बनाया हैं ।

कस्बाई बोध की पृष्ठभूमि पर लिखा गया 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ ' एक ऐसा उपन्यास है जो आधुनिक युगीन परिवर्तनों की ओर संकेत करता है । कमलेश्वर ने इस उपन्यास में स्वतन्त्रता के पूर्व और स्वतन्त्रता के बाद अपने ही कस्बे मैनपुरी में आए परिवर्तनों को बखूबी प्रस्तुत किया है । अपने कस्बे का परिवेश,उस परिवेश में रहते लोग,उन लोगों के सुख-दुःख, उनकी जीवन-रीति, उनकी भावात्मक दुनिया,आर्थिक संघर्ष,यान्त्रिकीकरण से कस्बे में आए परिवर्तन को लेखक ने अत्यन्त सूक्ष्मता एवं सहजता से उभारा है । इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में गाँव कस्बे की पृष्ठ भूमि पर सामान्य व्यक्ति के जीवन-संघर्ष को उद्‌घाटित करने का प्रयास हुआ है ।

'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आकार में लघु है पर विस्तार में यह काफी बड़ा है । इस उपन्यास की दूसरी विशेषता यह भी है कि इसमें पात्रों की संख्या अधिक है और उन तमाम पात्रों के बारें में प्रामाणिक जानकारी दी गई है । इस उपन्यास के सारे पात्र उस वर्ग के हैं, जिन्हें किसी-न-किसी रूप में सताया गया है ।

'एक सड़क सत्तावन गलियाँ 'उपन्यास के पुरुष पात्रों में प्रमुख लोरी ड्राइवर के रूप में डाकू सरनामसिंह और स्त्री पात्रों में प्रमुख बंसिरी है । डाकू सरनामसिंह मैनपुरी का रहने वाला हैं । वह भरी जवानी मैं फौज मे ड्राइवर की नौकरी करने चला गया था । हिन्दुस्तान के बाहर उनका जाना नहीं हुआ, पर फौजी ड्राइवर की नौकरी के दो वर्ष की अवधी में आसाम से रावलपिंडी, रावलपिंडी से पूना , पूना से मद्रास और फिर इम्फाल उनका तबादला होता रहा । दो वर्ष की तूफानी जिन्दगी के पश्चात सरनामसिंह मैनपुरी वापस आ जाता है । वहाँ वह लोरी ड्राइवर की नौकरी करता हैं । ड्राइवर की नौकरी के साथ-साथ वह डकैती में भी हिस्सा लेता है । एक डकैती में सरनामसिंह और बंसिरी का मिलन होता हैं । दोनों एक दूसरे को देखतें हैं । मटर की तरह भरी हुई बंसिरी सरनाम को आकर्षित करती हैं । भेदिया ने पहले ही गाँव के लोगों को इस डकैती के सम्बन्ध में सचेत किया था । डाकुओं और गाँववालो में संघर्ष होता है, उसमें डाकुओं का सरदार मारा जाता है । इन खतरों में भी सरनामसिंह सरदार की लाश को चादर की तरह कन्धें पर डाले हुए ओझल होता है । सरनामसिंह चार सौ आदमियों के घेरे को तोड़कर तालाब में से तैरते हुए चला जाता हैं । अन्य डाकू पकड़े जाते हैं और सरनाम बाद में अदालत में हाजिर होता हैं । डकैती के समय में बंसिरी ही चश्मदीद गवाह थी । बंसिरी को अदालत में शिनाख्त के लिए हाजिर किया जाता है । अदालत में बंसिरी की सरनाम पर मेहरबानी होती है,वह जान बूझकर सरनाम को पहचानने से इन्कार करती है । बंसिरी के व्यक्तित्त्व से सरनाम काफी प्रभावित होता है

और डकैती छोड़ देता है । पहलीबार सरनाम के दिल में स्त्री के प्रति आकर्षण निर्माण होता है । आज तक वह स्त्री जाति से नफरत करता आया था । स्त्री जाति से नफरत करनेवाले सरनामसिंह को एक स्त्री के जरिए जीवनदान मिलता हैं । जेल में जाने के बदले उसे छुटकारा मिल जाता हैं, लेकिन दोनों एक-दूसरे से मिल नहीं पाते हैं ।

दो वर्ष बीत जाते है । सोरों के मेले में सरनाम एक नौटंकी में ताडी पीकर जाता है, वहाँ पर उसे लैला की सुर्खियों में बंसिरी दिखाई देती है । उसे बंसिरी अब बिलकुल बदली-सी लगती है । वह हया, शरम खोकर मुँहफट औरत हो गई थी । सीधी-सादी बंसिरी नौटंकी के दौरान गंदे मजाक करना भी सिख गई थी । नौटंकी के दौरान बंसिरी की निगाह बीच-बीच में सरनाम पर बिछल जाती हैं । सरनाम ने स्टेज पर बंसिरी की नजर को पाने के लिए एक श्पया फेंका, पर नगाड़ों के शोर में वह बेकार चला गया उसको विश्वास नहीं होता है कि वह बंसिरी ही है । बाद में दर्शको में सरनाम को देख कर बंसिरी प्रसन्न होती हैं, और नौटंकी समाप्त होने पर सरनाम से मिलती है । वह सरनाम को बताती है की वह उसके साथ रहना चाहती हैं । वह सरनाम से कहती है कि नौटंकी कलाकार का जीवन पीड़ा दायक है । नौटंकी में काम करनेवाली हर स्त्री पवित्र नहीं होती किन्तु उसने अपने शरीर पर दाग नहीं लगने दिया ।

सरनामसिंह बंसिरी का दिवाना बन जाता हैं । बंसिरी अपना जीवन सरनाम के साथ गुजारना चाहती हैं । वह सरनाम को भी डाकू के पेशे से अलग कर नौटंकी में साथ देने की ईच्छा प्रकट करती हैं,क्योंकि वह सरनाम के लिए ही अपना गाँव, अपना परिवार त्यागकर इस स्थिति पर पहुँची है । मेला उठते-उठते तय हुआ था कि बंसिरी नाटक छोड़कर सरनाम के साथ चली जायेगी और सरनाम ने भी बंसिरी को विश्वास दिलाया था कि खाली लोरी लेकर आयेगा और उन्हें ले जायेगा ,पर सरनाम नहीं पहुँच सका । रंगीले की थोड़ी-सी असावधानी के कारण लोरी में रखी ठर्रे की बोतलें पकड़ी गई और सरनाम तथा रंगीले दोनों बन्द कर दिये गए। जमानत देर से हुई और वहाँ से वह सीधे सोरों के मेले में पहुँचा पर मेला खत्म हो गया था । बंसिरी को मजबूरन नौटंकी मण्डली के साथ चले जाना पड़ा । सरनामसिंह ने जिले के पूरे मेले छान मारे, पर बंसिरी का पता न चला । समय गुजरते सरनाम को पता चला कि वह सतार के साथ सर्कस में चली गई हैं । वह सर्कस भी कुछ दिन के पश्चात् तितर-बितर हो गया । सरनाम को बंसिरी नहीं मिली । वह बंसिरी की आशा छोड़ देता हैं ।

इधर बंसिरी ने भी सरनाम की बहुत प्रतीक्षा की थी । अब उसका चरित्र

कलंकित हो चुका था, वह बाजारू औरत बन चुकी थी । बंसिरी के शरीर में अदम्य पुरुषार्थ को स्थापित कर सरनाम ने ही लैला बनने की राह दिखलाई थी । पर बंसिरी का अरमान ही रह जाता है कि वह प्रथम प्रेमी सरनाम के साथ कभी नहीं रह पायी । असफल प्रेम ही बंसिरी के दुःखद जीवन का मूल कारण था । विपरीत सामाजिक स्थितियाँ तथा आपत्तियाँ बंसिरी के जीवन को झकझोर देती है । एक दिन औरत का सौदा करनेवाले गेंदा कवि के द्वारा,सरनाम को बंसिरी सिर्फ पाँचसौ रुपये में बेची गई । असहाय नारी बंसिरी को जानवर की तरह बेचा गया । इस उपन्यास में अवहेलना,अपनापन तथा दुःख सहन करनेवाली बंसिरी एक ऐसे नारीवर्ग का प्रतिनिधित्त्व करती है, जहाँ नारियों को जीने के लिए शरीर का सौदा करना पड़ता है ।

बंसिरी को रंगीले के लिए खरीदने के पश्चात् गेंदा कवि से बंसिरी का नाम सुनकर सरनाम के पैर काष्ठ के हो जाते हैं, क्योंकि स्त्री जाति से नफरत करनेवाला सरनाम बंसिरी पर लुब्ध हुआ था लेकिन अफसोस वे उसे पा न सका था । बंसिरी रंगीले की पत्नी के रूप में सामने आई तो सरनाम बेचैन हो गया । सरनाम एक डाकू होकर भी अपने साथी रंगीले की पत्नी बंसिरी पर डाका डालकर अपनी दोस्ती को खत्म करना नहीं चाहता था । अब बंसिरी दोस्त की पत्नी भी बन चुकी थी । पहले का रिश्ता टूटने का दर्द सरनाम बराबर महसूस करता है ।

रंगीले के साथ रहने की बंसिरी की इच्छा नहीं थी,लेकिन उस पर जबरदस्ती की गई । बंसिरी का जीवन उजड़ गया । बंसिरी अपनी इस स्थिति के लिए सरनाम को दोष देती है ,क्योंकि उन्होंने अपने दोस्त रंगीला के लिए गेंदा कवि से उनका सौदा किया था । बंसिरी के मन में सरनाम के प्रति हिंसा जागृत होती है । सरनाम की बेवफाई का जिक्र करते हुए सरनाम पर झपटती है,उसके मरने की मनौतियाँ माँगती हुई कहती है कि-''इस तन पर पड़े हुए इतने दाग, इतने घाटों का पानी और यह मन का जलन, कहाँ ले जाएगी तुझे ? यह हाय तुझे राख करके छोड़ेगी । यह हाय न होती तो तू आज फलता किसी कच्चे घर के आँगन में बैठकर गाता..... पर तू अकेला मरेगा....अनजाने आदमी के बीच । किसे अपना कहेगा ?.....कोई पेट्रोल छिड़ककर जला देगा ।.....एक दिन सुनूँगी, तेरी खबर मुझ तक आयेगी सरनाम । उस दिन घी के दीये जलाकर रातभर दिवाली मनाऊँगी ।''[२]

सरनामसिंह पुलिस से बचने के लिए रंगीले के घर आता है । उसे देखकर बंसिरी की प्रति हिंसा जाग उठती है । वह सरनाम को गालियाँ देती है । वह सरनाम का अपमान ही नहीं करती उस पर बेवफाई का आक्षेप भी लगाती है । वह प्रेम की

अपूर्ति और उपेक्षा के कारण सरनाम से घृणा करती है ।

एक दिन डकैती के दौरान अपने ही आदमी ने धोखा दिया । पकड़े जाने के डर से सरनाम फरार हो जाता है । बंसिरी को सरनाम की चिंता होती है । सरनाम और उसका साथी मंगल आश्रय के लिए रंगीले के घर आते हैं । सरनाम के चले जाने पर बंसिरी मंगल को घर से निकाल देती है और मंगल पकड़ा जाता है । सरनाम का खून खौल उठता है । वह रंगीले को डाँटता है,कुद्ध बंसिरी इरादा करती है कि...''अब नहीं सहेगी, बहुत हो लिया । ....बेईमान, दगाबाज, बेवफा, एक बार भी बीते हुए दिन याद नहीं आते ? हर जगह मेरी इज्जत इसके लिए खिलौना रही है.... औरत ही हूँ मैं । सराय में बिकी हुई औरत....जब तक पूरे श्रपये नहीं चूकाता यह, तब तक तुम रखो इसे । क्या समझता था घास-पात, रहम किया था मेरे ऊपर । मेरे रहम का बदला......... सड़-सड़कर मरेगा.... कैसा डरावना हो गया है, शक्ल से मनहूसियत टपकती है । ''[३] उपन्यासकार ने एक मजबूर औरत का आक्रोश अपने दगाबाज पुश्रुष के प्रति व्यक्त करके स्त्री की मनोभावनाओं का चित्रण किया है ।

मंगल पकड़ा जाने पर उसके साथियों ने रंगीले को दगाबाजी का सबक सिखाया । उसे बेहोशी की हालत में घर पहुँचाया गया । सरनामसिंह को यह घटना अच्छी नहीं लगी । बंसिरी सरनाम पर आक्षेप लगाती है कि उसने ही रंगीले को पिटवाया । बंसिरी को लगता है कि अब दुश्मनी शुश्रु हुई है तो सरनाम मेलेवाले किस्से को खोलेगा और उसे बदनाम करेगा । बंसिरी ने दिवानजी से बातें की । पुलिसवाले भी गवाही के लिए रंगीले को चाहते थे, क्योंकि उसकी गवाही पर सरनाम को सज़ा हो सकती थी । बंसिरी तो यही चाहती थी, लेकिन सरनाम के खिलाफ रंगीला गवाही देने के लिए राजी नहीं था । बंसिरी ने अभिनय किया और बताया कि सरनाम उसे पाने की कोशिश कर रहा है । शायद इसी कारण सरनामसिंह ने रंगीले का विवाह बंसिरी के साथ किया था । यह झुठी बात रंगीले को सच लगती है और वह सरनाम के खिलाफ सरकारी गवाह बन जाता है ।

डकैती का मुकदमा अदालत में पहुँचा तो सरनाम ने अपने को इजलास के सामने हाजिर कर दिया । रंगीले ने शिनाख्त कर दी । सब लोग फैसले के दिन की प्रतिक्षा में थे । फैसला अपेक्षा के अनुरूप नहीं हुआ । सजा होने के बदले सरनामसिंह तथा उसके साथी छूट गये । झूठी गवाही देने के जुर्म में रंगीले को तीन साल की कैद हो गई,सब अनपेक्षित हो गया ।

रंगीले को जेल होने के कारण सरनाम शिवराज को गर्भवती बंसिरी की अस्पताल में देखभाल करने की जिम्मेदारी सौंपता है । अस्पताल में बंसिरी बच्चे को जन्म देती है । अब बंसिरी को रंगीले को गवाही के झंझट मे डालने का पश्चाताप होता है । एक दिन सरनाम अस्पताल से बंसिरी को घर ले आता है और बंसिरी के बच्चे को गोद में लेता है । बंसिरी सरनाम की चट्टान जैसी पीठ को देखती है और पीछे चली जाती है । बंसिरी को पछतावा होता हैं । बंसिरी को घर पहुँचाकर सरनाम कहता है कि... '' घर में दिया बत्ती जला ले, मैं चल रहा हूँ । रंगीला नहीं है तो अकेला मत समझना अपने आपको । कुछ जरूरत हो तो मुँह खोलकर कह देना.... भीतर जा । '' [४] अपने घर की ओर जाते सरनाम के कानों में बंसिरी के रूदन की आवाज सुनाई पड़ती है ।

' एक सड़क सत्तावन गलियाँ ' उपन्यास के प्रमुख पात्र सरनामसिंह एवं बंसिरी इन दोनों के व्यक्तित्त्व ऊपर से बहुत ही कठोर लगते हैं, किन्तु भीतर-ही-भीतर फूलों से भी कोमल हैं । सरनामसिंह के प्रति बंसिरी का कथन उचित ही हैं -'' जब वह आँखों के सामने होता है, उसका होना अनुभव में होता है तो, प्रतिहिंसा दहकती रहती है, आँख से ओट होते ही व्याकुलता भरी छटपटाहट् सुलगने लगती है । न उसका जीना सह पाती और न मरना ।''[५] बंसिरी का मन उपन्यास के अन्त तक तड़पता रहता है । मजबूरन वह रंगीले के साथ घर गृहस्थी बसा लेती है । सरनामसिंह का चरित्र बंसिरी से अधिक ठोस धरातल पर है । वह बंसिरी से प्यार करता है बाद में नफरत करता है और फिर से प्यार करने लगता है,लेकिन बंसिरी का प्यार द्विधाजनक है ।

'एक सड़क सत्तावन गलियाँ 'उपन्यास में शिवराज नामक पात्र का चित्रण लेखक ने अलग ढंग से किया है । शिवराज पर नपुंसक होने का आरोप होता है । शिवराज और सरनाम के सम्बन्धों की चर्चा होती हैं । शिवराज लड़कियों की तरह साज शृंगार करता है । उसके भीतर हीनभावना है, बिना सरनाम के वह कुछ नहीं कर सकता । बंसिरी शिवराज के अंदर छिपी हीनभावना को दूर करने की कोशिश करती है । वह अपने गाँव के जवानों के किस्से शिवराज को सुनाती है । बाँके जवान 'अद्दा' के पुश्रुषार्थ की कहानी उसे कहती है और वह शिवराज को डाकुओं से अलग होने की सलाह देती है । नौकरी करके अपने भाई-भौजाइयों के साथ रहने की सलाह देती है । बंसिरी ने अपने जीवन में कितना सहा और झेला था कि उसकी दृष्टि में इन्सान की इज्जत काफी बड़ी चीज है । बंसिरी शिवराज पर लगे नामरद के लांछन को धोना चाहती है ।

कमलेश्वर ने प्रस्तुत उपन्यास में कस्बाई जीवन को, स्वतन्त्रता के बाद वहाँ

आए परिवर्तनों को,उन परिवर्तनों के शिकार वहाँ की आम जनता तथा उनके जीवन को, लोकनाट्य, नौटंकी, सरकस आदि के कलाकारों की जिन्दगी को तथा आध्यात्मिकता के नाम पर हो रहे अनैतिक व्यवहारों का पर्दाफाश किया है । प्रस्तुत उपन्यास उपन्यासकार के अपने कस्बे मैनपुरी के जीवनानुभवों का सहज दस्तावेज है । इसी कारण से यह अत्यन्त सहज एवं रोचक बन गया हैं ।

(२) डाक बंगला -(१९६२) :

'डाक बंगला ' कमलेश्वर का दूसरा बहुचर्चित और प्रसिद्ध उपन्यास है, जिसका सन् १९७५ में राजपाल, दिल्ली में प्रथम संशोधित संस्करण प्रकाशित हुआ है । इस लघु उपन्यास में कमलेश्वर ने पूर्व दीप्ति पद्धति के द्वारा 'इरा' नामक युवती की आपबीती को आत्मकथात्मक शैली में बहुत ही प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है । लेखक ने 'इरा' के माध्यम से 'डाक बंगला' के प्रतीक को रूपायित करने का प्रयास किया हैं ।

कमलेश्वर ने 'डाक बंगला' उपन्यास में व्यक्ति के जीवन के अकेलेपन और खोखलेपन को सामाजिक और असामाजिक दोनों सन्दर्भों में अत्यन्त संवेदनशीलता के साथ उजागर किया है । यह उपन्यास कश्मीर की सुन्दर पृष्ठभूमि में लिखा गया है । इस उपन्यास की नायिका 'इरा' के जीवन में आए विविध मोड़ों और तत्जनित समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है । कश्मीर की वादियों में मिली एक खूबसूरत औरत 'इरा' की बदसूरत कथा को अत्यन्त सूक्ष्मता, सहजता एवं यथार्थता के साथ 'डाक बंगला ' में उद्घाटित किया गया है ।

'डाक बंगला'की मुख्य कहानी 'इरा' और पाँच पुरुषों के बीच भटकती हैं । उपन्यास का केन्द्र 'इरा' नामक युवती है,जो जीवन के अनेक उतार-चढ़ाव, अच्छाई-बुराई तथा सौन्दर्य-कुरूपता के बीच से गुजरती हुई बिलकुल टूट चुकी है । इरा एक मध्य वर्ग की विधवा युवती है, जो अपनी कश्मीर यात्रा के दौरान तिलक एवं सोलंकी के साथ कुछ दिन के लिए आडू के डाक बंगले में ठहरती हैं । इसी यात्रा में वह तिलक के साथ इधर-उधर की सैर करते हुए, अपने भूतकाल की कहानी तिलक से कहती हैं । उसी प्रकार तिलक उसके वर्तमान की कहानी को आत्मचिन्तन के मुड़में कहता जाता हैं । वर्तमान कहानी एक यात्रावृत्तांत है, जो पहलगाम से लेकर कोल्हई तक की है ।

'डाक बंगला' उपन्यास में लेखक ने मूलतः इरा तथा तिलक दो पात्रों को मंच पर प्रस्तुत किया हैं । इस उपन्यास में स्त्री के सन्दर्भ में नये जीवन-मूल्यों की स्थापना का प्रयत्न हुआ है । इरा एक सुन्दर विधवा युवती है, जिसके इर्द-गिर्द विमल, महेन्द्र बतरा, डॉ. चन्द्रमोहन, फौजी सोलंकी और तिलक पाँच नाम, पाँच कोण से जुड़े हुए हैं । इरा इस रूप में प्रस्तुत की गई है कि स्वीकृत परम्परा के जीवन-मूल्य अर्थहीन हो जाते हैं ।

'डाक बंगला ' में उपन्यासकार ने इरा का चरित्र कुछ विशेष ढंग से प्रस्तुत किया है । वह हर बार पिछले जीवन को काटकर फेंक देती है तथा नई जिन्दगी आरम्भ कर देती है । महेन्द्र बतरा, डॉ. चन्द्रमोहन और सोलंकी के सम्बन्ध में उसने यही किया है । किन्तु वह विमल को आखरी साँस तक नहीं भूल सकी । वह विमल को चुनती है, किन्तु वह नहीं रहता और न उसका सपना साकार हो पाता है ।

डॉ.विरेन्द्र सक्सेना का इस उपन्यास के बारे में विचार है कि- ''जहाँ तक अनुभूतियों का प्रश्न है विशेषकर नारी जीवन की और कष्टदायक अनुभूतियों का 'डाक बंगला' अपने आप में एक उपलब्धि है, क्योंकि इसमें एक असाधारण नारी 'इरा' के माध्यम से एक साधारण नारी की आपत्ति और उसके आभ्यान्तरिक एवं बाह्य संघर्ष को रूपायित किया जा सका है । उपन्यास के अनेक स्थल ऐसे हैं जहाँ जीवन की गहन अनुभूतियाँ बोलती है और पाठक रूककर सोचने को विवश हो जाता है । '' [६]

'डाक बंगला' की नायिका इरा बीसवीं सदी के संक्रमण ग्रस्त भारतीय समाज का जीवंत और दयनीय चित्र प्रस्तुत करती है । इरा का अपना जीवन एक डाक बंगला बनकर ही रह गया हैं, जहाँ अनेक यात्री कुछ समय विश्राम पाने आते हैं, जी भरते ही वह डाक बंगले को बहुत ही निर्दयता से छोड़कर आगे की यात्रा के लिए लौट जाते हैं ।

'लिद्धखट'नामक एक बंगले में आधीरात के बाद इरा तिलक को अपने जीवन की बदसूरत कहानी सुनाती है । इरा का अब तक का जीवन बिना मंजिलों के चलता रहा । अतः वह एक चिर-पथिक रही है । उसने सिर्फ आदमी को प्यार करना चाहा, इसलिए ही उसके जीवन में एक के बाद एक पुरुष आते रहे । फल स्वरूप उसका जीवन आधुनिक वेश्या सा बन गया था ।

बचपन से ममता और प्यार से वंचित युवती जवानी में एक से ज्यादा पुरुष

को पाने की कोशिश करती है । एक ऐसी ही समस्या इरा के जीवन में चरितार्थ होती है । इरा के पिता फौज में थे और बीन माँ के कारण इरा नौकरानियों के हाथों पलती हैं । कॉलेज में पढ़ते वक्त वह नाटक लिखती तथा खेला करती थीं । कॉलेज काल में उसका परिचय विमल के साथ हो जाता है । दोनों एक क्लब की ओर से शिमला में हो रहे नाटक-समारोह में भाग लेने के लिए जाते है । वहाँ इरा विमल के प्रेमपाश में घिर जाती है । वह कुछ दिन शिमला में अपनी सहेली के साथ रहती है, बाद में किसी की परवाह किये बिना विमल के साथ रहने लगती है । इरा के डैडी ने इस सम्बन्ध का खूलकर विरोध किया, परन्तु इरा ने सब रिश्तों को तोड़कर विमल के साथ जीने का निश्चय कर लिया । वह समाज की परवाह किये बिना कहती है कि- '' दुनिया दिखावे के लिए कब तक अलग रहती ? उसमें रखा भी क्या था । मैं खूल्लमखूल्ला विमल के साथ रहने लगी थी । और डैडी से सम्पर्क सम्बन्ध......सब कुछ टूट गया था ।''[७] उसने अपने परिवार से सम्बन्ध भी तोड़ दिया क्योंकि इरा बगैर विवाह विमल के साथ रहने में अनैतिकता नहीं समझती थीं ।

इरा विमल के साथ रहने लगती है । अब उसने अपने जीवन में आए प्रथम पुश्रुष विमल को अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया । दोनों एक-दूसरे को बहुत चाहते थे, लेकिन तकदीर ने उनका साथ न दिया । विमल को रंगमंच पर ज्यादा सफलता नहीं मिली । इसलिए दोनों शादी करके दिल्ली चले जाते हैं । दिल्ली जाकर दोनों ने एक स्थायी रंगमंच स्थापित करने की जी-तोड़ कोशिश की लेकिन सब प्रयत्न विफल रहे और दिन-ब-दिन उनका जीना दूभर हो गया । आर्थिक अभाव से पीड़ित होकर अन्त में विमल ने इरा को बतरा के यहाँ नौकरी करने को मजबूर कर दिया । इरा को नौकरी तो मिल गई पर विमल अपने आप में टूट गया और शंकालु हो गया । अन्त में उसकी शंकालु वृत्ति ही उसे खा गई । तन-मन से शिथिल विमल इरा को अकेला छोड़कर बम्बई चला गया । कई बरस तक उसका कोई पता नहीं चला, फिर मालूम हुआ कि आगरा में क्रान्तिकारियों के साथ वह पकड़ा गया है और कैद में है । विमल के जाने के बाद असहाय इरा के पास और कोई चारा न बचा । उसने घर छोड़कर बतरा के यहाँ रहने का निश्चय किया । यहाँ इरा के जीवन का पहला अध्याय समाप्त होता है ।

हिन्दू समाज की विषमताओं के कारण स्त्री बगैर आदमी के न अच्छी जिन्दगी जी सकती है न बूरी । इरा समाज का विश्लेषण करती हुई तिलक से कहती है....''पर तिलक ! यह तुम्हारी दुनिया बहुत कमीनी है । यहाँ औरत बगैर आदमी के रह ही नहीं सकती । चाहे उसके पास उसका पति हो,या भाई, या बाप । कोई न हो तो नौकर ही हो । पर आदमी की छाया जरूर चाहिए । .....इसलिए हर एक लड़की कवच

ढूँढती है .... वह चाहे पति का हो, भाई या बाप या झुठे रिश्तेदार का । इस कवच के नीचे वह अच्छा या बूरा हर तरह का जीवन बिता सकती है । उसे पहनने के लिए जैसे एक साड़ी चाहिए ,वैसे भी यह कवच भी चाहिए । ''८ पुरुष प्रधान समाज पद्धति में नारी एक भोग्य वस्तु समझी जाने की परीपाटी है । हिन्दू समाज में स्त्री हमेंशा पुरुषों पर आश्रीत रहती आई है । वह पुरुष के बगैर अकेले में सुरक्षित जीवन व्यतीत नहीं कर पाती । उसे हमेंशा किसी-न -किसी पुरुष की आवश्यकता होती है, पुरुष के बगैर उसका जीना कठीन हो जाता है । विमल के बम्बई जाते ही इरा अकेली रह जाती है । इसलिए महेन्द्र बतरा इरा का कवच बनता है ।

इरा के जीवन का दूसरा अध्याय बतरा के घर से शुरु होता है । इरा बतरा के यहाँ टेलीफोन कोल अटेण्ड करने की नौकरी करती थी । बतरा अपने घर में अकेला रहता था । बंगला,फोन और कार रखना, क्लबों में जाना यही बतरा का पेशा था । वह दारू पीकर खेलने का बहुत शौकीन था और वक्त आने पर औरत के मनोभाव के साथ खिलवाड़ करके उसकी दलाली भी कर लेता था । सरकारी अफसरों और अमलदारों के साथ इसी माध्यम से दोस्तियाँ बाँधकर बतरा व्यापारियों और जरूरतमंदों का काम भी करवाता था । बतरा इरा से जी भर के खेलता है । बतरा का व्यवहार इरा को हर तरह से संतुष्ट करता है । इसी दौरान एक दिन बतरा के यहाँ अचानक शीला नामक औरत आती है । बतरा ने शीला का इरा के साथ अपनी पत्नी के नाते परिचय करवाया । इरा को शीला पसन्द आई, किन्तु बतरा के घर से शीला के चले जाने के बाद वह जान पाई कि शीला बतरा की पत्नी नहीं 'पेड वाईफ ' टाईप की नारी थी । अर्थात अर्थ के लिए वह कभी एक की पत्नी बनती है और कभी दूसरे की ।

पहले बतरा और शीला पड़ोसी थे, पर दंगे के वक्त बिछुड़ गए । फिर उसका मिलन बतरा के दोस्त की पत्नी ' वीना' के रूप में हुआ । उसके बाद से वे यों जिन्दगी बिता रहे थे क्योंकि बतरा शीला को अत्यधिक चाहता था । बतरा के जीवन की निरीहता से प्रभावित होकर इरा उसे समर्पण कर देती है । बतरा का व्यवहार इरा को हर तरह से संतुष्ट करता था इसलिए वह बतरा के साथ विवाहीत जीवन बिता रही थी । यही बात इरा जिन्दगी के दूसरे अध्याय के बारे में तिलक को बताती है ।

कुछ दिनों तक इरा दाम्पत्य जीवन का सुख अनुभव करती रही । किन्तु जब बतरा को मालूम हुआ कि इरा उसकी निशानी को ढो रही है तो उसने उसे विटामीन के बहाने अर्बारशन की दवा पिला दी । इरा असलियत का अहेसास होते ही टूट जाती है । इरा ने दूबारा जिस दाम्पत्य सुख का अनुभव किया था, वह भी अधिक दिनों तक

न रहा । बतरा ऐसा पात्र है, जो गृहस्थी जीवन में बँधा रहना नहीं चाहता । वह गृहस्थी जीवन के सारे सुख को भोगना चाहता था, किन्तु बीच में शीला के आ जाने से उनकी सतरंगी जिन्दगी बिखर जाती है । इरा को अपमानित करके नौकरी और बतरा के घर से निकाल दिया जाता है । इरा को धक्का लगता है । इरा सोचती है कि क्या सम्बन्धों की नींव इतनी खोखली होती है ।....उसी परेशानी में इरा सड़क पर आकर खड़ी होती है । बतरा का सहारा छूट जाता है । इस प्रकार इरा के जीवन का दूसरा अध्याय खत्म हो जाता है ।

इरा फिर से एक बार नितान्त अकेली रह जाती है । उसे डॉ.चन्द्रमोहन के यहाँ टयूटर -गार्डियन की नौकरी मिल जाने से उसके जीवन का तृतीय अध्याय आरम्भ होता हैं । डॉ. चन्द्रमोहन की उम्र पचास से ऊपर थी । इरा उनके दो बच्चों को पढ़ाने एवं देखभाल करने का काम करती थी । कुछ दिनों के पश्चात् डॉक्टर ने दिब्रुगढ में एक नौकरी स्वीकार कर ली तो इरा भी डॉक्टर के साथ वहाँ चली जाती है । दिब्रुगढ जाने के बाद डॉक्टर ने इरा से शादी का प्रस्ताव रखा तो उसने अस्वीकार कर दिया लेकिन धीरे-धीरे डॉक्टर से प्रभावित होकर तथा जीवन में और कोई सहारा न होने के कारण उसने अन्त में हारकर शादी को स्वीकृति दे दी । शादी के बाद वह डॉक्टर को अपनी कामभावना को सन्तुष्ट करने लायक न जानकर नाराज हो जाती है और उसे सताने लगती है । किन्तु सैडिज्म टाईप के डॉक्टर पर इसका कोई असर नही होता है । वह इरा के साथ शारीरिक सम्बन्ध रखने के बदले उसे परेशान कर सताता रहता है । इरा इस अत्याचार से तंग आकर नागपुर में अपनी सहेली के पास चली जाती है । वहाँ पहुँच ने के कुछ दिन बाद उसे खबर मिलती है कि डॉक्टर डकैतों की गोली का शिकार हो गया हैं । इरा के वहाँ पहुँचने के कुछ दिन बाद डॉक्टर की मृत्यु हो जाती है । मरते समय डॉ. चन्द्रमोहन इरा के नाम पच्चीस हजार श्रपये छोड़ जाता है । जो इरा की भावी जीवन की आधारशिला बनते हैं । डॉक्टर पच्चीस हजार के साथ एक वाक्य 'अब जैसा तुम चाहो ' की वसीयत भी छोड़ कर जाता है । डॉक्टर की दारूण मौत ने इरा को हिला कर रख दिया । जिस डॉक्टर को जीते-जी उसने तिरस्कृत किया, मृत्यु के पश्चात् उसी डॉक्टर को उसने सच्चा प्यार किया । इस प्यार का अहेसास करते हुए इरा डॉक्टर के बारे में तिलक को बताती है- '' डॉक्टर ने मुझे आन्तरिक सामर्थ्य दिया, मुझे अहेसास कराया कि मैं भी कुछ हूँ, और मेरे लिए श्रपया छोड़कर उसने मुझे परिस्थितियों का सामना करने का साहस दिया ।.....वह तिरस्कार और हिंसा का शिकार होता रहा.... पर उसका मन उजला था, वह साबित कर गया । औरों के साहस मुझे कुचलते रहे, मेरे अहं को चुर-चुर कर खुद जीत की भावना से भरते रहे और मुझे तोड़ते गए, पर डॉक्टर की कायरता ने ही मुझे साहस दिया । मेरे प्रेम की संकुचित सीमाओं को उसने

जबरदस्ती खींचकर फैला दिया। मेरी ममता को असीम कर दिया। मेरे पुरे व्यक्तित्त्व के कोने-कोने को मथकर छान दिया। आज मैं उतनी संकुचित नही हूँ जितनी पहले थी, उतनी निरीह और अपंग नही हूँ जैसे पहले थी...''[९] डॉक्टर की उदारता ने इरा को भी उदार बना दिया। इसप्रकार डॉक्टर की मृत्यु के बाद इरा के दुःखद दाम्पत्य का अन्त हो गया, साथ-ही-साथ उसके जीवन का तीसरा अध्याय भी समाप्त हो गया।

इरा की जिन्दगी में आनेवाला चौथा पुरुष मेजर सोलंकी था। किसी पुरुष को अपने जीवन साथी बनाने की जवानी की जहरीली प्यास इरा को इस बार मेजर सोलंकी की सहचरी बना देती है। तिलक के सामने मेजर सोलंकी इरा को अपना बनाने की लालसा में आ गया था। इरा का मेजर सोलंकी के साथ घूमना, फिरना, मेजर का घोड़ा दौडाते वक्त इरा के साथ डाक बंगले के चक्कर काटना तथा ग्लेशियर के पास उसके स्नेप्स लेना आदि तिलक के मन में इरा के चौथे प्रेमी के चित्र को साकार करता रहा। कथा के अन्त से भी शायद यह ध्वनि निकलती है कि इरा सोलंकी की हो गई। लेकिन अचानक इरा के जीवन मे मोड़ आ जाता हैं। इरा को आडू के डाक बंगले में आने पर खबर मिलती है कि विमल नागपुर में सहेली के यहाँ उसकी तलाश में आया था। तुरन्त ही इरा किसी से कुछ कहे बिना नागपुर चली जाती है। विमल को पाकर वह अत्यन्त सन्तुष्ट हो जाती है तथा फिर से जिन्दगी शुरु करने का निश्चय कर लेती है। इसके लिए उसने सोलंकी के बच्चे का अर्बारशन करवा डाला। इरा विमल के साथ जीवन का सुख भोगना चाहती थी परंतु जब उसे पता चला की विमल क्षयरोग का मरीज है तो उसके तन में जवानी की जो जहरिली आग उठ रही थी वो बुझ गई और विमल के प्रति रहम का भाव जाग उठा। इरा क्षयरोग की परवाह किए बिना उससे मिलजुलकर रहने लगी। वहाँ भी नियति ने उसका साथ न दिया। एक साल बाद विमल की मृत्यु हो गई और इरा को फिर अकेलेपन का शिकार होना पड़ा। इस प्रकार इरा के जीवन का चौथा अध्याय समाप्त होता है।

तिलक इरा की आप बीती सुनने के बाद इरा के प्रति आकर्षित होता है। वह इरा से कहता है - ''तुम शादी क्यों नहीं कर लेती ? क्या नहीं है तुम्हारे पास.... अपार रूप है, मन की निर्मलता है और ममता भी। कोई भी तुम्हें पाकर सुखी हो सकता है।''[१०] लेकिन इरा तिलक को यह भी स्पष्ट कर देती है कि वह अब उससे विवाह नहीं करेगी। जिसे मैंने जिन्दगी के सारे राज बताये हैं उससे शादी नहीं कर सकती क्योंकि व्यक्ति के मन की उदारता हमेशा नहीं रहती। वह तिलक को उसके प्रश्न के बारे में कहती है-'' लेकिन तिलक! ऐसा मैं नहीं कर सकूँगी... राज व्यक्ति की जिन्दगी के सबसे बड़े दुश्मन होते हैं। पिछली जिन्दगी बार-बार कुचले हुए साँप -सी पलटा

खाती है और डँस सकती हैं। जिसे मैंने सब कुछ बताया है उससे शादी नहीं कर सकती क्योंकि मैं यह नहीं कह सकती कि तुम मेरी जिन्दगी में पहले हो।'' [११]

इरा ने जिन्दगी में केवल विमल से प्रेम किया और कई बार प्रेम का नाटक किया। उसे मृत्यु स्वीकार नहीं थी, इसलिए उसने सच्चे प्रेम की खोज में ' प्रेम का खूबसूरत' फरेब किया। इरा शेष पुरुषो को प्यार नहीं करती, दया करती है। एक तिलक था, जिसे उसने अपना राज बताया क्योंकि वह इरा के नाटक का पात्र नहीं था। इरा के लिए विवाह एक नाटक था , यह नाटक तिलक के साथ खेल नहीं सकती थी। क्योंकि तिलक उसे पूरा जान चुका था।

इरा के जीवन में एक के बाद एक कई पुरुष आये परन्तु फिर भी इरा संतुष्ठ नहीं हो पायी। इरा सदैव सच्चा प्यार पाने के लिए तरसती रही। इरा ने हर वक्त यहीं चाहा कि कोई उसे अपनाये, अपना कहे, अपना भी एक घर हो। इसी प्यार की तरस निरंतर उसको कई-न-कई पुरुष की ओर खींचती रही। इसके बारे में इरा कहती है - '' कोई ऐसा हो जिसे मैं अपना कह सकूँ, एक नन्हा सा घर बनाकर रहूँ, किसी के आने का इन्तजार करूँ......''[१२] इरा को शुद्ध हृदय से प्यार करनेवाला कोई उसके जीवन में नहीं आया। फिर भी इरा को आशा है कि कोई-न-कोई शुद्ध प्रेम करनेवाला मिल जायेगा और इसलिए इरा जीवन भर इन्तजार ही करती रही।

कमलेश्वर के 'डाक बंगला' उपन्यास की इरा नारी के वैयक्तिक प्रेम एवं सामाजिक जीवन के परस्पर संघर्षशील युग पर गहरा तथा प्रभावकारी प्रकाश डालती है। इरा के जीवन का संघर्ष उपन्यास के प्रारंभ से अन्त तक चलता रहता है। यह संघर्ष सामाजिक व्यवस्थाओं तथा विधानों के प्रति मानवीय संघर्ष की क्रान्तिकारी आकांक्षा का अंश कहा जा सकता है।

(३) लौटे हुए मुसाफिर -(१९६३):

'लौटे हुए मुसाफिर' कमलेश्वर का महत्त्वपूर्ण और बहुचर्चित उपन्यास है। यह उपन्यास सन् १९७१ ई. को ज्ञानभारती प्रकाशन बम्बई से प्रकाशित हुआ है। इस उपन्यास की कथा देश विभाजन को लेकर लिखी गई है। लेखक ने भारत-पाकिस्तान के बँटवारे की भीषणता को तथा साम्प्रदायिक दंगों को यथार्थ रूप में चित्रित किया है। इस उपन्यास में लेखक ने तत्कालीन राजनीतिक परिवेश पर भी प्रकाश डाला है।

'लौटे हुए मुसाफिर'भारत के स्वतन्त्रता संग्राम,स्वतन्त्रता के साथ घटित विभाजन एवं उसकी विभीषिका पर आधारित उपन्यास है । इस उपन्यास में लेखक ने आस्था एवं विश्वास का आशावादी स्वर उभारकर मानवीय मूल्यों को बनाये रखने का प्रयास किया है । देश-विभाजन एक ऐसी राजनीतिक घटना साबित हुई कि जिसका भीषण परिणाम आज भी आम आदमी को भुगतना पड़ रहा है ,विशेषकर निम्न मध्यवर्गीय हिन्दू और मुसलमानों को राजकीय प्यादा बनाकर राजनेताओं अपने-अपने स्वार्थ और सत्ता के लिए उपयोग कर रहे हैं । स्वतन्त्रता पूर्व हिन्दू और मुसलमानों ने जो भारत की एकता और अखंडितता के सपने देखे थे वो देश-विभाजन के पश्चात् टूट गए । देश-विभाजन का परिणाम बाहरी रूप में हिंसा,मारकाट,भीषण हत्याकांड एवं बलात्कार में निकला , तो आन्तरिक रूप में नफरत, शंका, सन्देह, धोखा, विद्वेष और अविश्वास के रूप में प्रकट हुआ है । कमलेश्वर ने अपने इस उपन्यास में देश-विभाजन के बाहरी परिणामों से ज्यादा व्यक्तियों के आन्तरिक भेद-भाव को उभारने का प्रयास किया है ।

'लौटे हुए मुसाफिर' में कमलेश्वर ने भारत-विभाजन के पूर्व हिन्दू-मुस्लिम तनाव कैसे पैदा हुआ ? इस तनाव के बाद बस्ती कैसे उजड़ी ? फिर स्वाधीनता के लम्बे अर्से के बाद बस्ती कैसे आबाद हुई ? आदि समस्याओं का वास्तविक चित्रण किया है । इस उपन्यास में चित्रित समस्या वस्तुतः समूचे देश की समस्या रही है । इस उपन्यास के बारे में डॉ.सुरेश सिन्हा ने अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि- '' 'लौटे हुए मुसाफिर' में आस्था, आत्मविश्वास, कतर्व्यपरायणता, देशानुराग एवं दायित्त्व निर्वाह का जो उन्होंने महान संदेश दिया है वह आज के परिप्रेक्ष्य में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और इसलिए इस पीढ़ी के प्रकाशित उपन्यासों में कमलेश्वर का यह उपन्यास विशेष उल्लेखनीय हो जाता है ।''[१३]

'लौटे हुए मुसाफिर' में निम्न वर्ग तथा चिकवों की बस्ती की कस्बाई जिन्दगी को चित्रित किया गया है । इस उपन्यास की विशेषता यह है कि यह सिर्फ दो या तीन पात्रों की पीड़ा भरी कथा मात्र न रहकर एक पूरे समुदाय की परिस्थितिजन्य पीड़ा और त्रासदी को उद्घाटित करनेवाली कथा बन जाती है । लेखक ने इस उपन्यास में तीन स्थितियों का चित्र प्रस्तुत किया है... एक विभाजन से पूर्व की, दूसरी विभाजन के समय की और तीसरी स्थिति विभाजन के बाद की चित्रित की है । लेखक ने यह स्पष्ट कर दिया है कि समय के साथ व्यक्ति बदलता है, उसकी दृष्टि,उसके विचार, उसकी मैत्री, उसकी दुश्मनी सब कुछ बदल जाते हैं । समय की इस मार से कोई बच नहीं सकता । इसी वातावरण का चित्रण लेखक ने सहजता से किया है ।

इस उपन्यास का केन्द्र बिन्दु एक चिकवा नामक बस्ती है। हर धर्म के लोग यहाँ बड़े प्यार से रहते थे। चिकवा बस्ती में बड़ी एकता थी। हिन्दुओं की रामलीला के समय मुस्लिम और मुस्लिमों के ताजिया उत्सव में हिन्दू सम्मिलित होते थे। उन दोनों धर्मियों में किसी प्रकार का भेदभाव और द्वेष नहीं था। जब इस देश में स्वाधीनता का आन्दोलन जोर पकड़ने लगा तो, इस आन्दोलन का प्रभाव इस बस्ती पर भी हुआ। यहाँ कुछ क्रान्तिकारियों ने अंग्रेज अफ्सर का खून कर दिया। राधेश्याम और युनूस इस जूर्म में पकड़े गये। राधेश्याम को कालेपानी की सजा हुई और युनूस फाँसी के तख्ते पर लटकाया गया फिर भी बगावत का तुफान शान्त नही हुआ। कुछ हिन्दू और मुसलमान नौजवान छिप-छिप मीटींग किया करते थे। ''सन् बयालिस के आन्दोलन में चिकवों के जवान लड़कों ने बड़ा ऊधम मचाया था। उन्हें नहीं मालूम था कि देश कैसे आजाद होगा, पर इतना उन्हें मालूम था कि कुछ करना चाहिए, और वे जो कुछ कर सकते थे, वह उन्होंने किया था।''[१४] यह घटना इस बात को स्पष्ट करती है कि चिकवा बस्ती के लोगों में राजनीतिक चेतना थी, और इसी राजनीतिक चेतना के परिणामस्वरूप चिकवा बस्ती में एक ऐसा राजनीतिक परिवेश निर्माण हुआ जिससे वहाँ पर लगातार राजनीतिक गतिविधियाँ चलती रही। देश की सामान्य जनता में भी धीरे-धीरे राजनीतिक चेतना किस प्रकार से जड़ पकड़ रही थी, यही चिकवा बस्ती के उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है।

'लौटे हुए मुसाफिर' कमलेश्वर का एक ऐसा उपन्यास है जिसमें देश-विभाजन से पूर्व स्थिति का यथार्थवादी चित्रण किया गया है। स्वयं कमलेश्वर प्रगतिवादी विचार धारा से जुड़े होने के कारण उनकी रचनाओं में सर्वत्र यथार्थ के प्रति आग्रह देखा जा सकता है। यह उपन्यास उनके इस आग्रह से दूर नहीं रह सकता था। बात यह नहीं कि विभाजन से पूर्व हिन्दू-मुसलमानों में एकता नहीं थी। यह तथ्य है कि विभाजन से पूर्व हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे से हिल-मिलकर बन्धुभाव और सद्भावना के साथ रहते थे। कई स्थलों पर तो सर्वसामान्य व्यक्ति को देश के बदलते हुए राजनीतिक परिवेश का आभास भी नहीं था और चिकवा बस्ती इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

चिकवों की बस्ती के लोग स्वाधीनता के विषय में बहुत ही अनभिज्ञ थे, क्योंकि वे अपने व्यक्तिगत जीवन के संघर्ष से ही लड़ रहे थे। चिकवों की इस बस्ती में ही जुम्मन साई की कोठरी और नसीबन की झोपड़ी थी। ये दोनों तब भी यहीं थे और अब भी (देश-विभाजन के बाद) यहीं है। इसके अतिरिक्त गिरे और ढहे मकानों के निशान बाकी रह गये हैं। आज भी सब कुछ, वैसा ही है, जैसा स्वाधीनता से पहले था। चिकवों की बस्ती इन सब बातों को सुनकर उदासीन हो गई थी, ऐसा लगता था

कि उदासी ने मानों सारी बस्ती को जकड़ लिया हो । पहले तो जुम्मन साई की कोठरी के सामने अगरबत्तियाँ जलती रहती तथा लोबान का पवित्र धुआँ उठता रहता था । इक्के और ताँगवाले, स्टेशन के कुली तथा छोटे दुकानदार वहाँ शाम को एकत्रित होते और गप्पे लड़ाते । कई बार सुख-दुःख की चर्चाएँ होती, इसके साथ ही देश की आजादी के बारे में भी चर्चा हुआ करती थी । महात्मा गाँधी ने राष्ट्रीय कांग्रेस की बागड़ोर संभाली थी और ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विभिन्न अभियान चला रहे थे । कुछ दिनों के बाद मुस्लिम लीग के नेता राष्ट्रीय कांग्रेस का साथ नहीं देते है, वे कांग्रेस का विरोध कर पाकिस्तान का सपना देख रहे थे । भारत में दो मजहब के लोग इकट्ठा नहीं रह सकते थे, यह उनका विचार था । इफ्तिकार मुस्लिम लीग के विचारों का समर्थक नहीं था , इसलिए वह कहा करता था ...'' जिन्ना साहब किधर से मुसलमान हैं, सुना है नमाज तक नहीं पढ़ते ।''[१५] ब्रिटिश सत्ताधारियों ने फोड़ों-तोड़ों और राज करो नीति को अपनाया था और वे इसमें सफल हुए ।

सन पैंतालिस का जमाना आया । किसी भी प्रकार का दंगा चिकवों की बस्ती में नहीं हुआ । किसी-ने-किसी को गाली तक नहीं दी । हिन्दू और मुस्लिम शांति से जीवन व्यतीत करते दिखाई दे रहे थे, लेकिन भीतर-भीतर एक भूचाल आया था । वह भयानक भूचाल, जिससे बस्ती की चूल हिल गई थी । भीतर-भीतर सब कुछ बिगड़ गया था । ढीली इमारतें ढह गई थीं । अपनेपन का जज्बा मर गया था । नफरत की आग ने इस बस्ती को निगल लिया था । भरी पूरी चिकवों की बस्ती सबसे पहले उजड़ गइ थी । पता नहीं यह आग कहाँ छीपी हुई थी । साम्प्रदायिकता की आँधी ने उन्हें उजाड़ दिया था । नफरत की इस आग की चिन्गारियाँ बाहर से आयी थी ...दूसरें कस्बों से, शहरों से और अन्य सूबों से धर्मान्ध व्यक्ति सामान्य लोगों में जहर फैलाने में सफल होते जा रहे थे ।

सन् सैंतालीस में देश को आजादी मिली । देश दो टूकड़ों मे बँट गया । पाकिस्तान बनी चिकवों की बस्ती अपने-आप उजड़ गई । पाकिस्तान क्या बना ? सब टूटकर बिखर गया । आदमी के हौसले बिखर गये, मन की मुरादें टूट गई , दिलों के रिश्ते खत्म हो गये । इस बस्ती के मुसलमान पाकिस्तान जाने की आकांक्षा से भागे थे, परन्तु आर्थिक विपन्नता के कारण सुबा भी पार नहीं कर पाये । वे सब इधर-उधर जिले में बिखर गये । उनके दिल में दहशत पल रही थी कि ये तो हिन्दुओं का शहर है और वे हमारे साथ कैसा बर्ताव करेंगे । चिकवों की बस्ती में सिर्फ बच्चन ही रह गया था । लेकिन एक दिन वह भी लापता हो गया था । जुम्मनसाई नसीबन को कहता है कि अब इतने बरस हो गये इधर कोई नहीं आया तो बच्चन अब क्या आयेगा ? आजादी

के पूर्व राजनीतिज्ञों ने धर्म का आधार लेकर लोगों को भड़काया । उन्होंने दो धर्मों के बीच में साम्प्रदायिक दंगे भड़काये । पहले चिकवों की बस्ती में हिन्दू और मुस्लिम धर्म के लोग प्रेम तथा भाईचारे से जीवन बिताते आये थे । लेकिन राजनेताओं ने उनमें जहर घोल दिया । मुसलमानों को पाकिस्तान के सुनहरे सपने दिखाये । क्योंकि उन्हें अपना अलग देश चाहिए था, सत्ता और कुर्सी चाहिए थी । देश को आजादी मिली और पाकिस्तान भी बना । मुस्लिम पाकिस्तान के सुनहरे सपने अपने पल्लू में बाँधकर चिकवों की बस्ती से पाकिस्तान जाने के लिए निकले परन्तु अपना इलाका भी पार न कर सके । अपनी ही बस्ती में वापिस भी न आ सके । साम्प्रदायिक भेदभाव के कारण बस्ती उजड जाती है । बस्ती में जुम्मनसाई और नसीबन दोनों ही रह जाते हैं । जुम्मनसाई अपने किये पर पछताता है । कमलेश्वर ने इस उपन्यास में जुम्मनसाई के चरित्र के माध्यम से बदलते हुए राजनीतिक परिवेश और चेतना का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है । जुम्मनसाई को अपनी गलती का अहसास और पश्चाताप इस बात का स्पष्ट प्रमाण है ।

जुम्मनसाई रूढ़िवादी एवं कट्टर मुसलमान है, तो नसीबन मुसलमान होकर भी सबको समान माननेवाली ममतामयी नारी है । वह विधवा है । वह इधर-उधर छोट-मोटे काम करके अपने दोनों बच्चों को पाल रही है । सत्तार जो पहले सर्कस कम्पनी में था अब बस्ती में आ गया है । सलमा पति को छोड़कर पिता के यहाँ रहती है और बस्ती में जनाने अस्पताल में काम करती है । सतार और सलमा एक दूसरे से प्रेम करते हैं । बस्ती में बच्चन और रतन हिन्दू है । बच्चन विधूर है, उसके दो बच्चे हैं । नसीबन बच्चन की अनुपस्थिति में बच्चों की देख-भाल करती है । रतन साईकिल-मरामत की दुकान चलाता है । राजनीतिक उथल-पुथल से अनजान ये सब अपने सुख-दुःख में लीन बड़ी शान्ति एवं सुखचैन से रह रहे थे । एक दिन वहाँ अचानक सलमा के पति मकसूद और अलीगढ का सियासी कारकून यासीन आ जाते हैं । मकसूद, यासीन और साई ये तीनों मिल जाते हैं और यहीं से बस्ती में नफरत की आग फैलने लगती है ।

'लौटे हुए मुसाफिर' उपन्यास में खुलेआम मस्जिद का उपयोग मुस्लिमलीग हिन्दुओं के विरोध में मुसलमानों को भड़काने के लिए करती रहती है । जुम्मनसाई के नेतृत्त्व में मस्जिद में मुसलमानों की बैठक होने लगी । मुसलमानों के मन में हिन्दुओं के प्रति,कांग्रेस के प्रति तथा गाँधीजी के खिलाफ नफरत की आग फैलाने में मकसूद और यासीन सफल हो जाते हैं । साई भी इस आग को प्रज्वलित करने में अपना योगदान देता है । इसके खिलाफ 'संघ' भी हिन्दुओं को जुटाने के काम में लग जाता है । इस

प्रकार अफवाहों एवं धोखेबाजी की खबरें फैलाने का नतीजा यह हुआ कि कल तक के दोस्त, हमसाया हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे को अविश्वास एवं नफरत की नजरों से देखने लगे । अब दोनों जातियों में अपने हिन्दू और मुसलमान होने का अहसास बढ़ता गया । साई इस भेद को बढ़ावा देने का भरसक प्रयत्न करता रहा, लेकिन नसीबन,बच्चन, इक्केवान,इफ्तिकार,सत्तार आदि इसका विरोध करते रहें ।

पाकिस्तान की माँग तथा निर्माण की प्रकिया में मुस्लिमों का सक्रिय सहयोग शायद इसलिए था कि वे बहुसंख्यक हिन्दुओं के नेतृत्त्व में नहीं रहना चाहते थे । अल्पसंख्यक होने के नाते हिन्दुस्तान में रहने की उनकी तैयारी नहीं थी । इसका और भी एक कारण था की मुस्लिमों के मन में डर की मात्रा इसलिए बढ़ती गई के वे स्वतन्त्र भारत में अल्पसंख्यक होने से बहुसंख्यक हिन्दुओं के आधिन रहेंगे । इसलिए यासीन भी मस्जिद में बुलाई मीटिंग में मुस्लिमों को समझाता है ।

नसीबन हिन्दू बच्चन के बच्चों की देखभाल करती तो साई और अन्य मुसलमान कुपित होते थे । लेकिन नसीबन उनकी परवाह न करके उनका काम करती रही । जब कहीं साम्प्रदायिक भेदभाव की आग जली तो असंख्य हिन्दू एवं मुसलमान बेकार हो गए । इफ्तिकार के इक्के में पहले हिन्दू और मुस्लिम सवारियाँ बड़े शौक से बैठती थी लेकिन साम्प्रदायिक भेदभाव के कारण हिन्दू सवारियाँ हिन्दुओं के इक्कों में और मुस्लिम सवारियाँ मुस्लिम के इक्कों में बैठने लगी । फलस्वरूप सामान्य जनता का जीवन दूभर बन गया । सत्तार, सलमा को लेकर पाकिस्तान जाने का निश्चिय कर लेता है । सत्तार के मन में मकसूद और यासीन के प्रति द्वेष था ।

चिकवों की बस्ती में आजाद हिन्द फौज का प्रभाव पड़ने लगा । जुम्मनसाई के यहाँ मकसूद और यासीन इस पर चर्चा कर रहे थे तो सत्तार ने मुहम्मद अली जिन्ना को भला-बुरा कहकर यासीन और मकसूद को ललकारा । उन दोनों ने सत्तार को पीटा और उसे अपनी कोठरी से बाहर कर दिया । बाद में नसीबन सत्तार को अपनी झोंपड़ी में आश्रय देती है । इस बस्ती का बच्चन अवैद्य रूप से चोरी-छीपे शराब बेचकर अपना और अपने बाल-बच्चों का जीवन निर्वाह चलाता है इसलिए नसीबन के दिल में उनके बच्चों के लिए हमदर्दी है । बस्ती के दोनों धर्म के लोग यह सब पसंद नहीं करते हैं । इस बीच गाँव में अफवाह फैलती है कि बच्चन नसीबन को हिन्दू बना रहा है क्योंकि बच्चन जब गाँव में नहीं होता तब उनके बच्चों की देखभाल नसीबन ही करती थी । जुम्मनसाई को इस पर शक होता है । भारतभर में हो रहे व्यापक परिवर्तन का एहसास बस्ती में भी प्रकट होने लगा । वहाँ के हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के साथ शत्रु

जैसा व्यवहार करने लगे। संघ के लोग भी बस्ती में अपना रौब दिखाने एवं भाषण देने लगे। बस्ती के निम्न मध्य वर्ग ही इन सबका शिकार बनते रहे। इक्केवान इफ्तिकार सवारी न मिलने पर आवारा भटकने लगे। साई बच्चन से नाराज था इसलिए पुलिसवालों की मदद से बच्चन को फँसाने का जाल बिछाने लगा। एक दिन डाक बंगले की चोरी का इल्जाम बच्चन पर लगाया गया। यह खबर पाकर बच्चन बस्ती छोड़कर चला जाता है। बच्चन को पुलिस के हाथों से नसीबन ही बचाती है। इस पर पुलिस नसीबन को धमकियाँ देती है तथा उसके घर दिन-रात पहरा भी लगा देती हैं। बाप के अभाव में बच्चन के बच्चों को नसीबन अपने घर में ले आती है। संघ के लोग बच्चों की माँग में नसीबन के घर को घेर लेते हैं ,लेकिन नसीबन बच्चों को किसी के हाथों में देने को राजी न होती है। खतरों को मोल कर वह बच्चों की देखभाल करने का दृढ़ निश्चय लेती है।

सन् १९४६ अगस्त १६ के दिन मुसलमानों ने पाकिस्तान की माँग को लेकर काले झण्डे के साथ एक जुलूस निकाला। देशभर मे दंगा होने की खबरें मिलने लगी, लेकिन बस्ती शान्त थी। पाकिस्तान की घोषणा की खबर पाकर नसीबन को छोड़कर बाकी सब मुसलमान संतुष्ट हो जाते हैं। नसीबन दुःखी बन जाती है क्योंकि उसके मत में पाकिस्तान बनने से बस्तीवालों को कोई फायदा नहीं होगा। अर्थात् अपना नसीब जो है वही रहेगा। बच्चन का भेजा हुआ आदमी बच्चों के लिए नसीबन के पास पहुँचता है। नसीबन सत्तार के साथ बच्चों को बच्चन के पास भेज देती है। साथ ही एक पोटली भी सत्तार के हाथों मे देकर कहती है कि बच्चन के हालात खराब है ये पैसा उसके काम आएगा। देश-विभाजन के बाद बस्ती के धनिक मुसलमान पहले पाकिस्तान की ओर जाने लगे थे। फिर बाकी लोग भी नए-नए सपने सँजोकर पाकिस्तान की ओर रवाना होने लगे। बस्ती में से भी नसीबन और जुम्मनसाई को छोड़कर बाकी सारे पाकिस्तान चले गये थे। इसमें सलमा को मकसूद और यासीन के साथ पाकिस्तान जाने के लिए मजबूर होना पड़ा। इस बात को लेकर सत्तार दुःखी हो जाता है और आत्महत्या कर लेता है। अगले दिन सवेरे सत्तार की आत्महत्या की खबर फैल जाती है। नसीबन यह खबर पाकर दुःखी हो जाती है। जुम्मनसाई ने नफरत की आग फैलाकर बस्ती को उजाड़ दिया था। अब वह अपनी करनी पर पछताता है। गरीबी, भूख, अपमान और बेबसी से बस्तीवाले हारे थे पर नफरत एवं साम्प्रदायिकता की आग में बस्ती जल गई। कई साल बीत जाने पर भी चिकवा की बस्ती में कोई लौटकर नहीं आया। कभी-कभी इफ्तिकार वहाँ दिखाई दिया और उससे मालूम हुआ कि जो पाकिस्तान के लिए रवाना हुए वे पाकिस्तान न पहुँच पाये। केवल अमीर ही जा सके बाकी सब इधर-उधर भटकते रहने को मजबूर हो गये।

आजादी के बाद देशभर में परिवर्तन हो गया, लेकिन चिकवों की बस्ती वैसी की वैसी ही रही । उस उजड़ी बस्ती में अब पाताल तोड़ कुएँ खोदने के लिए जर्मन कारीगर आ गए। वहाँ मजदूरी करने अनेक युवक आ गए थे इसमें बस्ती से पाकिस्तान न पहुँचे हुए बच्चे भी थे दर-दर भटकने के बाद वे बच्चे अब युवक बन गये थे । एक दिन सन्ध्या समय वे अपने घरों की तलाश में जुम्मनसाई और नसीबन के पास पहुँचते हैं । अपने ही बस्ती के बच्चों को वापस पाकर नसीबन अत्यन्त सन्तुष्ट बन जाती है । नसीबन युवकों को अपना घर दिखाती है जहाँ उनका बचपन बिता था वही घर अब मलबा मात्र रह गया था । नसीबन उनका रहने एवं खाने का प्रबन्ध करती है ।

प्रस्तुत उपन्यास मे लेखक ने साम्प्रदायिकता के भीषण परिणामों तथा विभाजन की विभीषिका का चित्रण किया है । साथ ही मानवीय मूल्यों को भी महत्त्व दिया गया है । नसीबन के चरित्र के माध्यम से यह जाहिर होता है कि साम्प्रदायिकता से मानवीयता परे है । इस उपन्यास के अंतिम भाग में जो चित्र अंकित किया है वह उन लौटे हुए मुसाफिरों का है,जिन्हें देख नसीबन खुश हुई थी । इस रचना के माध्यम से रचनाकार ने देश-विभाजन के परिणामस्वरूप जो स्थितियाँ पैदा हुई और उनके परिणाम यहाँ कि युवा पीढ़ी को भुगतना पड़ा इसीका अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है । अपने राजनीतिक परिवेश में यह रचना मात्र उल्लेखनीय नहीं अपितु महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई है । मानवता की भूमि पर खड़ा यह उपन्यास निःसंशय एक मार्मिक कृति है ।

(४) समुद्र में खोया हुआ आदमी - (१९६५) :

'समुद्र में खोया हुआ आदमी'उपन्यास में निम्न मध्य वर्गीय समाज के सामाजिक,आर्थिक तथा वैयक्तिक जीवन का सजीव चित्रण किया गया है। कमलेश्वर ने 'तीसरा आदमी ' उपन्यास की तरह इस उपन्यास में भी महानगरीय जीवन के बिखराव और टूटन को अभिव्यक्त किया है । इस उपन्यास का आधार निम्न मध्यवर्गीय परिवार की कहानी है । कमलेश्वर ने इसमें बदलते हुए परिवेश में आर्थिक विषमताओं के कारण टूटकर बिखरती हुई जिन्दगी का बहुत ही संवेदनात्मक दृष्टि से स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत किया है । लेखक ने जिस निम्न मध्यवर्गीय परिवार की कथा इस उपन्यास में प्रस्तुत की वह अकेले दिल्ली में ही नहीं अपितु भारत के किसी भी महानगर की हो सकती है ।

'समुद्र में खोया हुआ आदमी ' यथार्थवादी शैली में लिखा हुआ एक प्रतीकात्मक उपन्यास है, इस उपन्यास में प्रतीकात्मकता का निर्वाह बहुत ही सहज रूप

में हुआ हैं । डॉ. विरेन्द्र सक्सेना का इस उपन्यास के बारे में मत है कि-'' 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' में कमलेश्वर ने घर को जहाज की संज्ञा से अभिहित किया है और इस चित्रण में उनकी भाषा बहुत ही महत्त्वपूर्ण हो जाती है, जो समूची स्थिति को प्रकट कर देती है... उसमें सांकेतिकता,रूपधर्मिता, प्रतीकात्मकता आदि गुण सहज ही मिल जाते हैं ''[१६] इस उपन्यास में लेखक ने वर्तमान सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों में निम्न मर्ध्यवगीय व्यक्ति चेतना के बदलते हुए एवं कुण्ठित रूप के यथार्थ चित्रण को अभिव्यक्त किया है ।

'समुद्र में खोया हुआ आदमी ' उपन्यास का प्रमुख पात्र श्यामलाल है ,जिन्हें अपने कस्बे इलाहाबाद से दिल्ली आये सात साल हो गये हैं । वे दिल्ली आते समय कुनबा बटोरकर लाये थे । वे बीमार पत्नी रम्मी, तारा और समीरा दो जवान लड़कियाँ तथा सोलह साल का लड़का वीरेन्द्र (बीरन), इन सबका भविष्य आजमाने तथा आर्थिक विपन्नता से छुटकारा पाने हेतु अपने कस्बे से महानगर में आये थे । अपना कस्बा छोड़ते वक्त श्यामलाल ने कभी यह नहीं सोचा था कि दिल्ली पहुँचने के एक साल के भीतर ही उन्हें नौकरी से अलग कर दिया जाएगा । वह इतने कंगाल हो जायेंगे कि अपने कस्बे भी न लौट पायेंगे । सिन्धी ट्रान्सपोर्ट कम्पनी की ब्रान्च जब दिल्ली में खुली तब श्यामलाल बुकिंग क्लर्क होकर चले आये थे, उन्होंने सोचा था कि धीरे-धीरे वह दिल्ली ब्रान्च के मैनेजर बन जायेंगे । लेकिन वह मुमकिन नहीं हुआ । एक दिन शेड़ में से सामान की चोरी हुई और दूसरे दिन श्यामलाल नौकरी से बर्खास्त कर दिये गये ।

श्यामलाल को नौकरी से बर्खास्त किये जाने पर परिवार की हालात बहुत खराब हो जाती हैं । श्यामलाल तरह-तरह के धन्धे ढूँढते हैं, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिलती । उन्हीं दिनों घर में हरबंस का आना -जाना शुरू हो जाता है । हरबंस की छोटी-सी दुकान है, जहाँ वह गालिचों, चादरों, पेटीकोट, ब्लाउजों तथा साड़ियों आदि पर फूल-पत्तियाँ ट्रेस कर देता है । श्यामलाल को हरबंस ने घर-घर जाकर आर्डर बूक करने का काम दे दिया हैं । इस काम के लिए हरबंस श्यामलाल को कमीशन देता है । इसी कमीशन के आधार पर ही मुश्किल से श्यामलाल के घर का खर्चा चलता है । धीरे-धीरे हरबंस के धन्धे में प्रगति होती है । थोड़े ही दिनो में हरबंस ने एक घड़ी वाले की आधी दूकान में अपना 'पैटर्न हाऊस' खोल दिया । अब उसे और भी काम करनेवाले लोगों की जरूरत होने लगी । इसी लिए हरबंस की मदद करने तारा और समीरा आस-पास के घरों से कढ़े हुए कपड़े माँग लाती और हरबंस के लिए नये-नये नमूने उतरवा देती । इस प्रकार परिवार का खर्चा चलाने में उनकी मदद होती हैं ।

तारा अब चालीस रुपये माहवार पर हरबंस के 'पैटर्न हाऊस 'में काम करने लगती है। श्यामलाल अपने मध्य वर्गीय संस्कारों से पीड़ित थे। वह कभी यह मानने को तैयार नहीं होते कि वह खुद परिवार को चला नहीं पायेंगे। इसलिए उसे समीरा और तारा का बाहर जाकर नौकरी करना पसन्द नहीं था। यहाँ श्यामलाल और तारा के माध्यम से बदलती हुई नैतिक मान्यताओं का प्रक्षेपण हुआ है। श्यामलाल का मात्र चालीस रुपये में अपनी बेटी तारा को हरबंस को सौंपना दिल्ली के ही नहीं, भारत के किसी भी निम्न मध्य वर्गीय परिवार की यथार्थ स्थिति को अनावृत करता है। श्यामलाल नौकरी से अलग हुए थे, उन दिनों कोई सहारा भी नहीं रह गया था। उस समय तारा बीस बरस की और समीरा सत्रह बरस की थी। हरबंस का श्यामलाल के घर में उठना-बैठना हो रहा था और दोनों जवान लड़कियाँ उसके आसपास घूमती रहती थी। श्यामलाल से यह सब बर्दास्त नहीं होता था। जैसे- '' 'पैटर्न हाऊस' में जब से तारा ने जाना शुरू किया, श्यामलाल भी किसी-न-किसी बहाने वहीं जमे रहते। तारा को यह रखवाली ज्यादा पसन्द नहीं थी।.... एक रोज श्यामलाल ने आकर घोषणा कर दी....कल से तारा नहीं जायेगी ''[१७] श्यामलाल का परिवार महानगर में आता है किन्तु वह इसी स्वीकार-अस्वीकार के भंवर जाल में चकराता रहता है, क्योंकि श्यामलाल उसे अकेले चलाने का परम्परागत दम्भ रखते है। वह यह भी बर्दास्त नहीं कर पाते कि जवान लड़की किसी पराये व्यक्ति की दुकान में नौकरी करे। स्त्रियों का नौकरी करना भी उन्हें पसन्द नहीं था। दूसरी बात यह भी है कि परिवार के मुखिया के रूप में श्यामलाल है, और जो कमाता है वही घर का मुखिया बनेगा। इसी कारण तारा का दुकान पर नौकरी करना उसे उचित नहीं लगता। वे स्त्रियों की कमाई पर घर का खर्चा चलाना उचित नहीं समझते हैं। उसके साथ ही वे यह भी चाहते है कि परिवार पर अपना अधिकार बना रहे। लेकिन उन्हें इसमें सफलता नहीं मिलती। पुरुष प्रधान समाज पद्धति में परम्परा से ,परिवार में पुरुष का ही अधिकार चलता आया है। पुरुष ही सदैव परिवार का मुखिया रहते आया है। लेकिन इस उपन्यास में नौकरी करनेवाली तारा के पास अधिकार चले जाते हैं। पुरुष श्यामलाल से यह बर्दास्त नहीं होता। श्यामलाल के द्वारा लेखक ने पुरुष की मनः स्थिति का चित्रण मार्मिकता से किया है।

श्यामलाल को यह बात बार-बार कचोटती है कि उनका वश अब किसी पर नहीं है। हरबंस का प्रभाव दिन-ब-दिन घर पर छाता जा रहा है। उन्हें लगने लगा है कि उनका रिश्ता किसी से नहीं रह गया है। किसी को उनकी जरूरत नहीं है। धीरे-धीरे उनके हाथ से फैंसला ले सकने की ताकत निकलती गई है। फैंसले और निर्णय लेने की ताकत अब तारा में समाती जा रही है। परिवार के मुखिया को आघात

होता है । श्यामलाल को आभास होता है कि –" वह सिर्फ फालतु चीज की तरह रह गये है जिसे फेंका नहीं जा सकता, सिर्फ बर्दास्त किया जाता है । जिसे सहेजा भी नहीं जाता, सिर्फ होने को महसूस किया जाता हैं "[१८] घर में सारे निर्णय हरबंस और तारा लेने लगते हैं । घर में श्यामलाल का सुननेवाला कोई न रह गया था । यहाँ तक कि उनकी पत्नी रम्मी भी तारा और हरबंस के पक्ष में जा खड़ी हो गई थी ।

श्यामलाल की सारी आशाएँ वीरेन्द्र पर ही टिकी हुई थी । वीरेन्द्र (बीरन) एक समझदार लड़का हैं । वह कभी अपने पिता को किसी चीज के लिए परेशान नहीं करता । वह जानता है कि बाबूजी दिक्कतों में है और घर भी मुश्किल से चला रहे हैं । श्यामलाल वीरेन्द्र को अपना पेट काट-काटकर पढ़ा रहे हैं । सबकी आँखों में वीरेन्द्र के भविष्य का सपना पल रहा था । वीरेन्द्र एक दिन आकर बताता हैं कि नौ-सेना में उसे चुन लिया गया हैं तब घर में खुशी की लहर दौड़ती है । वीरेन्द्र नौ-सेना की नौकरी पर चला जाता है । वह हर महिने पिता के नाम मनीआर्डर करता है । बीरन के मनीआर्डर के आते ही आठ-दस दिन श्यामलाल घर का फैसला लेने लगते हैं फिर पलड़ा पलट जाता है ।

कुछ समय बाद वीरेन्द्र का एक खत आता है कि शायद तीन महीने के बाद छुट्टी मिलने पर वह दिल्ली आयेगा । नौ-सेना में बीरन को वैज्ञानिकों और नाविकों की एक टीम के साथ दक्षिण ध्रुव प्रदेश में जाने का मौका मिलता है । इस यात्रा के प्रारंभ के जब उसे पता चलता है कि हिम प्रदेश में उतरनेवाले दल में उसे शामिल नहीं किया गया है बल्कि इन लोगों की सेवा करने के लिए नाविक के रूप में लिया गया है , तब वह गुस्से से भर जाता है । उसके स्वाभिमान को ठेस पहुँचती है । वह अपनी नाराजगी को पूरी हिम्मत और साहस के साथ दल के नेता के आगे व्यक्त करके कहता है कि मैं सिर्फ नाविक के रूप में क्यों आता ? मैं अपने जहाज पर भी रह सकता था । जहाज के नेता बीरन को जहाज पर देखरेख करने का काम सौंपते है । थोड़े दिन दक्षिण ध्रुव प्रदेश में रहने के बाद जहाज के नेता जहाज को वापस न्यूजीलैंड भेज देते है । निरन्तर गिरते हुए तापमान को देखकर अभियान दल के नेता ने यह निर्णय किया था । बीरन भी जहाज के साथ वापस न्यूजीलैंड पहुँचता है । वहाँ से पर्थ जाने के बाद मार्ग से वह दिल्ली जायेगा । न्यूजीलैंड पहुँचने के ग्यारह दिन बाद दूसरा जहाज मिलने वाला था । इतने दिन वह न्यूजीलैंड में आराम करता है और अपने घर चिट्ठी लिखकर दक्षिण ध्रुव की यात्रा का वर्णन भी करता है । वह यह भी बताता है कि इस यात्रा में इतना समय लग गया है इसलिए लंबी छुट्टी मिलना मुमकिन नहीं है ।

जब से बीरन का खत घर पहुँचा उसी दिन से उसकी राह देखी जाने लगी थी। पर खत के चार दिन बाद चरनजीतसिंह श्यामलाल के घर आता है और वह कहता है कि वीरेन्द्रनाथ का घर यही है ? वह बताता है कि मैं वीरेन्द्र का दोस्त हूँ। वीरेन्द्रनाथ जहाज से लापत्ता हो गया है । वह तो डयूटी पर ही था, लेकिन कोई पता नहीं चला। यह खबर पाकर घरवाले भी स्तब्ध रह गए। गुम हुए बीरन के केस को सरकार ने, पुलिस ने तथा नौ-सेना ने वहीं दफना दिया। लेकिन घरवाले बीरन की मृत्यु को मानने के लिए तैयार न हुए। अन्त में लाचार होकर एवं हारकर उन्हें बीरन की मौत को मंज़ूर करना पड़ा।

श्यामलाल का घर धीरे-धीरे टूटता और बिखरता जा रहा था। अब तो श्यामलाल का कबाड़ी माल के खरीद-फरोख्त का धंधा भी ठप्प हो गया था। बीरन के समुद्र में खो जाने से बीरन की मनपसन्द चीजें घर में बनना बन्द हो जाती है। लोगों को आशा है कि बीरन वापस घर आयेगा। इन्तजार को ही खोज मान लिया जाने लगा, बीरन की मौत को कोई भी स्वीकार करना नहीं चाहते थे।

हरबंस के निर्देशानुसार बीरन का मुआवजा मिलने के लिए भाग-दौड़ आरम्भ हो गई। इसी बीच श्यामलाल को शहर से बाहर लोहे के फावड़े बनानेवाली फैक्टरी में चौकीदारी का काम मिल गया। पचहत्तर रूपये की तनख्वाह में से पन्द्रह रूपया नौकरी दिलाने वाले को कमीशन देना पड़ता था। घर के हालात बिगड़ते जा रहे थे। किराया चढ़ता रहा तो मकान-मालिक ने एक कमरा खाली करवा के दूसरा किरायेदार रख दिया। तारा की हरबंस के साथ शादी कर दी गई और हरबंस की सहायता से समीरा नर्सिंग पढ़ने होस्टेल चली गई। बीरन का मुआवजा मिलने के लिए माँ को बेसहारा साबित करना था तो श्यामलाल का घर आना-जाना बन्द हो गया अर्थात् वह फैक्टरी में रहने लगे। उनका पूरा परिवार बिखर गया। घर पर अकेली रम्मी ही रह गई। अन्त में वह भी तारा के घर जाने को मजबूर हो गई। पुराना घर खाली कर दिया गया और श्यामलाल का परिवार बोरों में बन्द होकर तारा के घर की परछत्ती पर पहुँच गया। रम्मी के लिए यह असह्य था लेकिन कोई चारा न था। उसे लगता है कि....''अब यह घर इसी तरह बोरो में बंद घर की परछत्तियों पर रखा रहेगा.... धीरे-धीरे ये चीजें बेकार और बहुत पुरानी पड़ जायेंगी... कपड़ों में सीलन की गंध आने लगेगी। उनके तार-तार अलग हो जायेंगे। चीजों पर मुर्दनी छा जायेगी और एक दिन वह कूड़े-करकट में बदल जाएगा। तब इसे बगैर छाँटे ही बोरों के समेत फैंक दिया जाएगा।''[१९] लेखक ने श्यामलाल के टूटते बिखरते परिवार का चित्रण किया हैं।

अन्त में रम्मी और परिवार को असहाय होकर बेटे की मौत को मानना पड़ा। रम्मी को अपने ही हाथों से उसका बक्सा तथा चेक लेना पड़ा मानों बेटे की लाश ले जा रही हो।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने श्यामलाल की जिन्दगी, बिगड़ते पारिवारिक सम्बन्ध, बेटे की नियति तथा मध्य वर्गीय परिवार का महानगर के महासागर में डूबना आदि का सफल चित्रण किया है। इस उपन्यास में साकेंतिक माध्यम से संवेदनात्मक अनुभूति को बहुत ही सफलता से अभिव्यक्त किया है। पुलिस, हलवाई, मकानमालिक, मजदूर और मिल का वातावरण आदि का चित्रण यथार्थता के साथ हुआ है।

(५) काली आँधी -(१९७४) :

'काली आँधी' उपन्यास में कमलेश्वर ने स्वाधीनता के बाद भारत की राजनीतिक स्थिति का सम्यक तथा यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। आजादी के पश्चात जिस चीज ने जनता का ध्यान सबसे अधिक आकृष्ट किया और उसमें उत्साह जगाया, वह चुनाव था। इन चुनावों में होनेवाली धांधली का सही चित्र लेखक ने इस उपन्यास में चित्रित किया है। कमलेश्वर ने रचना में चुनाव के परिणामस्वरूप देश का माहौल जिस तीव्र गति से बदलता गया उसी का चित्रण किया है। इसमें संदेह नही कि राजनीतिक जागरण और चुनावों से सम्पूर्ण देश में एक नयी हलचल और परिवर्तन दिखाई देता है, किन्तु इसका दूसरा पक्ष और स्वरूप भी है,जो घातक नहीं अपितु विनाशकारी है। कमलेश्वर ने इस उपन्यास में चुनाव के इसी पक्ष को लेकर जीवन से जुड़े हुए कुछ मूल भूत प्रश्नों को बड़ी मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया है। हिन्दी के राजनीतिक समस्या प्रधान उपन्यासों में निःसंशय 'काली आँधी' एक मील स्तम्भ है।

यह रचना एक असफल दाम्पत्य जीवन की करुण कहानी है। इसके साथ- ही-साथ देश में व्याप्त राजनीतिक भ्रष्टाचार तथा छल-छद्म की भयावह गाथा भी है। कमलेश्वर ने इस उपन्यास में निम्न मध्यवर्गीय और उच्च वर्गीय समाज के राजनैतिक, सामाजिक तथा वैयक्तिक जीवन का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया है। 'काली आँधी' में लेखक ने कस्बाई तथा शहरी जीवन के निम्न मध्यवर्गीय समाज की सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं का उद्‌घाटन किया है। कमलेश्वर राजनैतिक एवं सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में करारा व्यंग्य प्रस्तुत करने में बेहद सफल हुए हैं। यह राजनीतिक उपन्यास होते हुए भी राजनीतिक संस्था के मंच पर व्यक्ति की सत्ताकांक्षा की गाथा है।

'काली आँधी' की नायिका मालती खजूराहो के बैरिस्टर प्रतापराय की इकलौती बेटी और जग्गीबाबू की पत्नी है । वह उच्च शिक्षित है । उसके पिता मालती को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के हेतु विदेश भेजने का आयोजन करते हैं, लेकिन मालती जग्गीबाबू से प्रेम करती है इसलिए वह विदेश जाना नहीं चाहती । मालती के पिता बैरिस्टर प्रतापराय बचपन से ही मालती को सोसायटी में उँचा स्थान दिलाने हेतु उनके भविष्य के प्रति सजग थे । उसे मालती का प्रेम-विवाह मंजूर नहीं था । मालती के प्रेम-विवाह प्रस्ताव को ठुकराकर बैरिस्टर प्रतापराय मालती को कहते हैं - ''तुम्हें अपने कैरियर का भी ख्याल रखना चाहिए । शादी तो कभी-भी कर सकती हो, पर कैरियर बनाने का वक्त आदमी के पास ज्यादा नहीं होता ।''[२०] अंततः मालती अपने पिता के विरोध में जाकर जग्गीबाबू से विवाह कर लेती है ।

जग्गीबाबू खजूराहो में टूरिस्ट होटल चलाते है । शादी के बाद मालती जग्गीबाबू से प्रेरणा ,हिम्मत और सहारा पाकर राजनीति मे प्रवेश करती है । जग्गीबाबू का मत है कि देश के निर्माण में औरतों को भी आगे आना चाहिए । हर कदम पर जग्गीबाबू उसे सहारा देते रहते थे । पहला चुनाव म्युनिसिपल वार्ड कमेटी का होता है और इस चुनाव में मालती बड़ी आसानी से जीत जाती है । यह उसके जीवन की पहली राजनीतिक विजय थी । इस के बाद दूसरा चुनाव जिला परिषद का होता है । अपनी सूझ-बूझ और राजनीति दाँव-पेंच से मालती यह चुनाव भी जीत जाती है । यह उसकी दूसरी राजनीतिक विजय थी । इसके बाद तीसरा विधानसभा का चुनाव आता है । यह चुनाव उसके लिए एक चुनौती थी किन्तु अपनी कुशाग्र बुद्धि और राजनीतिक दाँव-पेंच से मालती विधानसभा का चुनाव भी जीत जाती है । इन तीनों चुनाव की विजय ने मालती का रूप ही बदल दिया था । यहाँ से जग्गीबाबू के साथ उसका संघर्ष होता है । मालती पति जग्गीबाबू से अपनी होटल बंद करने को कहती है क्योंकि उससे उसकी पब्लिक इमेज खराब होती है । यही कारण पति-पत्नी के बीच अलगाव पैदा करता है । राजनीति के कामकाज में असंख्य स्वयंसेवक मालती की सहायता करते हैं । पति भी उसके कामों मे मददगार रहे यही वह चाहती है, लेकिन स्वाभिमानी जग्गीबाबू इसके लिए तैयार नहीं होते । इसके बदले वे मालती की छाया से दूर होने का निश्चय कर लेते हैं । वे अपनी मर्जी एवं अपने ढंग से जीवन बिताना चाहते हैं । पहली बार की सफलता मालती के भीतर व्यक्तिसत्ता को स्थापित करने की दुर्निवार महत्त्वकांक्षा को जन्म देती है । मालती किसी भी कीमत पर सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ना चाहती है । इस प्रक्रिया में बाधक न होने के लिए जग्गीबाबू उसकी जिन्दगी से दूर हो जाते हैं अर्थात् पति-पत्नी एक दूसरे से अलग हो जाते हैं ।

जग्गीबाबू अपने मध्य वित्तिय पारिवारिक जिन्दगी को छोड़ने के लिए तैयार नहीं होते । उन्हें सदैव संघर्षरत जीवन व्यतीत करने में ही आनन्द आता है । न तो वे अवसरवादी है,न स्वार्थी है । राजनीतिक फायदा उठाना और कमजोरों का शोषण करना उन्हें मान्य नहीं, जब मालती और जग्गीबाबू के बीच में बहस होती है तो जग्गीबाबू अपनी पत्नी मालती से स्पष्ट कहते है कि -'' मैं तुम्हारा पति हूँ...फायदा उठा सकनेवाला गैर आदमी नहीं .... मैं तुम से फायदा उठाऊँगा ? सोचो, क्या बात कही है तुमने ? ''[२१] जग्गीबाबू का यह विचार स्पष्ट करता है कि उन्हें कहीं पर भी अपनी पत्नी से फायदा उठाने की अवसरवादी बात मान्य नहीं है । वे स्वाभिमान और अपनी खरी कमाई पर जीना चाहते है ।

मालती का जीने का रवैया देखकर जग्गीबाबू महसूस करते हैं कि अब उसे रिश्तों की जरूरत नहीं रही । वे खजूराहो का टूरिस्ट होटल बंद कर देते है और अपनी बच्ची लिली को पंचमढ़ी पब्लिक स्कूल में भर्ति करवा देते हैं क्योंकि वे अपने और अपनी बच्ची लिली को घटिया राजनीति से दूर रखना चाहते हैं । होटल बंद करने के बाद खजूराहो से भोपाल जाकर जग्गीबाबू गोल्डन सन होटल के मैनेजर पद का काम करते हैं । मालती के सेक्रेटरी गुरूसरन और जग्गीबाबू की खूब पटती थी । गुरूसरन जग्गीबाबू की इज्जत करता था । वे चाहता है कि जग्गीबाबू की घर-गृहस्थी सदैव बनी रहे । मालती और जग्गीबाबू में समझौता हो आये और लिली को माँ का प्यार मिले इसलिए गुरूसरन सदैव तैयार रहता है लेकिन दोनों में समझौता नहीं होता । हरवक्त मालती अपनी जिद पर अड़ी रहती है । राजनीति के कारण पति-पत्नी, माँ-बेटी के रिश्तें ही खत्म हो जाते हैं । राजनीति के प्रभाव के कारण ही बनी-बनायी घर-गृहस्थी टूटकर बिखर जाती है । इसके बारे में एक बार गुरूसरन और जग्गीबाबू के बीच चर्चा होती है मालती की बात जब चलती है, तब जग्गीबाबू राजनीति से चिढ़ते है और गुरूसरन से कहते है-'' यार तुम्हारी राजनीति बड़ी घटिया चीज है । तुम लोग सिर्फ चीजों का बखूबी इस्तेमाल करना जानते हो ।.... बाढ आई तो उसे इस्तेमाल करो, सुखा पड़ा तो उसे इस्तेमाल करो.... कही कोई मर गया तो उसकी मौत को इस्तेमाल करो.... इससे ज्यादा घटिया बात और क्या हो सकती है कि दुःखी और मुसीबत जदा इन्सानों के सपनों तक का इस्तेमाल तुमने कर लिया...।''[२२] राजनीतिक लोग हर बात को राजनीतिक दृष्टि से देखते है और स्वार्थ साधते है, यह जग्गीबाबू को मंजूर नहीं है ।

लिली पंचमढ़ी में पढ़ती है । उसे अपनी माँ से फिर मिलने का मौका नहीं मिलता । कई साल बित गए । मालती आगे आगे चुनाव जीतती रही और एक दिन

मिनिस्टर हो गई । बीते कई साल मालती के लिए सफलता के और जग्गीबाबू तथा लिली के लिए अकेलेपन के बरस रहे । देश की राजनीति में मालती का बड़ा नाम हो जाता है पश्चात मालती अपने पति और बेटी को भूल जाती है ।

लोकसभा के एक चुनाव में मालती भोपाल की सारी जिम्मेदारी गुरूसरन नामक सेक्रेटरी को सौंप देती है, क्योंकि गुरूसरन का परिवार भोपाल में ही था । वहीं पर मालती का जग्गीबाबू से फिर मिलन होता है । लोकसभा चुनाव के लिए मालती भोपाल से उमेदवारी पत्रक भरने पहुँच जाती है । मालती के विरोधी दल ने उनका विरोध करने के लिए चुनाव कार्यालय में आग लगा दी । इसलिए मालती के पक्ष के कार्यकर्ताओं के रहन-सहन का इन्तजाम होटल गोल्डन सन् में किया जाता है । होटल गोल्डन सन् के मालिक नरसी सेठ मालती के पक्ष का होने के नाते इसको अपना भाग्य समझते है तथा उससे फायदा उठाना भी चाहते है ।

लोकसभा चुनाव प्रचार अभियान में मालती उसी होटल में रहती है,जिसके मैनेजर स्वयं उसके पति जग्गीबाबू हैं । मालती इस चुनाव में वे सारे दाँव-पेंच, पैतरे, तिकड़म-बाजियाँ और नाटक खेलती है, जो आज के भारतीय चुनावों में सफलता पाने के लिए खेले जाते है । सालों बाद होटल में जग्गीबाबू से मुलाकात होती है लेकिन आपस में मिलने पर भी दोनों दिल खोलकर बातें न कर सके । उस वक्त भी मालती यही चाहती थी कि चुनाव के दौरान उस पर कोई कलंक न लग जाए अर्थात् दोनों का रिश्ता वहाँ कोई न जान ले । स्वार्थ,महत्त्वाकांक्षा, सत्ताकांक्षा तथा अधिकाधिक सफलता ही मालती के जीवन का लक्ष्य था । विपक्षी दल को मालूम हो गया कि मालती के पति जग्गीबाबू है तो मालती अत्यन्त कुशलता एवं चालाकी से जग्गीबाबू का इस्तेमाल करती है । ऐसा करने में वह जरा भी हिचकिचाती नहीं । मालती की नीति का रहस्य था 'वक्त-जरूरत-जीत' । मालती के बारे में उसके सेक्रेटरी गुरूसरन का कथन सोलह आने ठीक था कि जरूरत पड़ने पर और वक्त आने पर मालतीजी कुछ भी कर सकती है । मालती के खिलाफ में जो पर्चा छापकर प्रकाशित किया गया उसका प्रत्युत्तर मालती ने एक खुले मंच में उमड़ते जन समुदाय के आगे एक-एक सबूत पेश करते-करते गलत साबित कर दिया । यह उसकी राजनीतिक क्षमता का द्योतक ही है, राजनेताओं के सारे प्रयत्न और युक्ति-प्रयुक्तियाँ सफलता के उस शिखर तक पहुँचने के लिए होते हैं, जिसे बुर्जुवा समाज ऊँचा और श्रेष्ठ मानता है ।

भोपाल लोकसभा चुनाव में मालती की जीत होती है । सब कहीं मालतीजी जिन्दाबाद के नारे लगाये जाते हैं । इसी दौरान लिली भी होटल में स्कूली छुट्टियों की

वजह से आ जाती है ,लेकिन माँ-बेटी दोनों आपस में पहचान नहीं पाते हैं । गोल्डन सन् होटल मे शहर के नागरिकों की ओर से मालती के लिए अभिनन्दन समारोह आयोजित किया जाता है । जय-जयकार से भरी सभा में लिली ओटोग्राफ लेने जाती है । चुनाव सफलता के मदहोश में मालती अपनी इकलौती बेटी को सामने पाकर भी न पहचान पाती है । यह नारी जीवन की विडम्बना ही है । मालती की यही राजनीतिक जीजीविषा का जग्गीबाबू और गुरूसरन दोनों मूक साक्षी बने रहे ।

मालती ने झुठी प्रतिष्ठा एवं सफलता के लिए पति और इकलौती बेटी को छोड़ा । गोल्डन सन् के स्वागत समारोह सम्पन्न होने के बाद गुरूसरन से खबर पाकर मालती अपनी बेटी से मिलने जग्गीबाबू के कमरे में आती है । लिली अपनी माँ को सामने देखकर भावातिरेक न हुई बल्कि अत्यन्त सहजभाव से किसी पराये से बातें करने के लहजे में वह केवल 'जी' में ही उत्तर देती है । इतने निकट रहते हुए भी वे फिर जुटकर जीने को तैयार न होते है । अन्त में लिली को पंचमढ़ी भेजने के लिए जग्गीबाबू स्टेशन पर पहुँचते और मालती दिल्ली जाने के लिए स्टेशन जाती है । दोनों की गाड़ीयाँ पाँच मिनिट के अन्तराल से दो दिशाओं की और छुटती है । पति और पत्नी का प्रवास भी भिन्न दिशाओं की ओर जाता है । जग्गीबाबू भिन्न दिशा की ओर चल दिये और मालती भिन्न दिशा की ओर । दोनों के जीवन की विडम्बना यह है कि दोनो ने जीवन की यात्रा साथ में आरम्भ की थी किन्तु अन्तः दोनों एक दूसरे से इस प्रकार बिछुड़ गए कि मिलने की सम्भावना ही न रही । सब कुछ देखकर गुरूसरन सकपकाते है और यादों में खो जाते हैं । कमलेश्वर ने इस उपन्यास में पति-पत्नी के सम्बन्धों के घात-प्रतिघातों और द्वन्द्वों का मार्मिक चित्र अंकित किया है । इस संघर्षपूर्ण जीवन के कारण ही 'काली आँधी' उनका एक बहुचर्चित उपन्यास सिद्ध हुआ है ।

इस उपन्यास में हम देखते है कि जग्गीबाबू और लिली की मालती सारे देश की 'मालतीजी ' हो जाती है । एक और मालती की सत्ताकांक्षा एवं सफलता की चाह उसके व्यक्तिगत जीवन को नष्ट कर देती है, तो दूसरी ओर वह नैतिक सामाजिक, राजनीतिक और मानवीय मूल्यों का तिरस्कार भी कर देती है । मालती की दृष्टि में पति,बच्ची एवं परिवार का कोई महत्त्व नहीं रह गया है । उसके लिए अपनी सफलता एवं सत्ता ही सर्वोपरि है । इसके लिए वह अपने साथियों का इस्तमाल करती है । जनता की गरीबी का इस्तमाल करती है, धर्म और जातीय भावना का इस्तमाल करती है और यहाँ तक कि अपने परित्यक्त पति का भी इस्तेमाल करती है । उसके लिए सब है लेकिन वह किसी के लिए नहीं ,यही उनकी नीति है । चुनाव जीतने के लिए मालती जनता पर आश्वासनों की झड़ी लगाती है, भोली-भाली जनता इन आश्वासनों में विश्वास

करती है । व्यक्ति सत्ता की चेतना जब प्रबल हो जाती है, तब सामाजिक चेतना फीकी पड़ जाती है । अर्थात् सामाजिक चेतना नष्ट हो जाती है और व्यक्ति सत्ता कायम रहती है । अतः मालती जैसे व्यक्ति जन्म लेते है । पूँजीवादी समाज व्यवस्था की तथा स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय जनतान्त्रिक शासन प्रणाली की यही त्रासदी है ।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि 'काली आँधी' कमलेश्वर की ऐसी रचना है जिसमें स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय राजनीति का वह पहलू स्पष्ट किया गया है, जिसे बहुत कम रचनाकारों ने चित्रित करने का प्रयास किया है । वह अपनी इसी साफगोई के कारण यह उपन्यास स्वातन्त्र्योत्तर कालीन भारतीय उपन्यासों का दस्तावेज बन गया है । कमलेश्वर का जीवन की विसंगतियों के बीच तालमेल बिठाने का प्रयास इस उपन्यास में जिस रूप में उभरकर आया है उससे युग सत्य उद्घाटित हुआ है । उन्होनें बड़ी सुक्ष्मता और सांकेतिकता के साथ राजनीति के संदर्भ और सामाजिक यथार्थ को व्यक्त किया है । कमलेश्वर ने अपने युग के सत्य को बहुत यथार्थ के साथ अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है । इस उपन्यास में राजनीतिक समस्याओं का चित्रण करते समय कई स्थानों पर चिन्तन प्रमुख हो गया है, पर यह चिन्तन कहीं पर भी दार्शनिकता के बोझ से बोझिल नहीं हुआ । वास्तव में उनका यह चिन्तन एक मध्य वर्गीय बुद्धिजीवी का चिन्तन है और इस संदर्भ में इस उपन्यास की महत्ता और भी बढ़ जाती है । इस उपन्यास में स्वाधीन भारत के राजनीति का चित्रण है,विशेषकर चुनाव के समय में जो बेईमानियाँ, दंगा-फसाद और तिकड़मबाजियाँ की जाती है । इसका सत्य-दर्शन इसमें होता है ।

'काली आँधी' में कमलेश्वर ने पारिवारिक विघटन, महत्त्वकांक्षा से ग्रस्त मालती का चित्रण तथा समसामयिक राजनीति की चालों का दिग्दर्शन कराया है ।

(६) तीसरा आदमी -(१९७६) :

कमलेश्वर का ' तीसरा आदमी ' उपन्यास निम्न मध्यवर्गीय परिवारों की कुंठाओं, हताशाओं, आर्थिक असमर्थताओं और अटूट संदेह वृत्ति से उत्पन्न विफल जीवन की कथा है । यह उपन्यास भी 'डाक बंगला'उपन्यास की तरह प्रथम पुरूष 'मैं' की शैली में लिखा हुआ है । प्रथम पुरूष 'मैं' अपनी पत्नी की ऐसी कहानी कहता है, जिसके बीच में एक 'तीसरा आदमी' है । उस तीसरे आदमी तथा पत्नी के अंतरंग प्रसंगो का खुला वर्णन 'मैं' अपने माध्यम से नहीं करते हुए संकेतो और जो कुछ वह देखता है, उसके आधार पर करता है । इस विशेष स्थिति के कारण 'मैं' के मन का

संदेह एवं आंतरिक द्वन्द्व,उसके भीतर के द्वेष तथा घृणा के भाव सामने आते है ।

'तीसरा आदमी' उपन्यास में महानगरीय जीवन की यांत्रिकता, कोलहल, भीड़ तथा व्यक्ति का अकेलापन एवं संवादहीनता की स्थिति का चित्रांकन हुआ है । इस उपन्यास की कथा पति-पत्नी के सम्बन्ध के बीच तीसरे आदमी की अनुभूति ही सम्पूर्ण उपन्यास में व्याप्त रहती हैं । शादी, नौकरी, ट्रान्सफर, पति-पत्नी और बच्चे, इन सब के बीच वही तीसरा आदमी सदैव छाया रहता है । आज के व्यस्त जीवन में यह असंभव ही है कि व्यक्ति रोजी-रोटी पाने के झंझट के अलावा अन्य सामाजिक स्थितियों के प्रति जागृत रहे । इस उपन्यास के पात्रों में अहम् की प्रबलता इतनी तीव्र है कि पात्र इसकी रक्षा के हेतु अपना पारिवारिक जीवन सन्देह तले बिताते हैं । उनके अहम् का अन्त परिवार के विघटन में होता है ।

'तीसरा आदमी' उपन्यास में एक तरफ संकट के बोझ से संघर्ष करता तथा इस सबके बीच से अपनी पहचान एवं व्यक्तिगत सार्थकता की खोज करता पुरुष है, तो दूसरी ओर परम्परागत रूढ़ियों से मुक्त होकर अपने स्वतंत्र व्यक्तित्त्व का विकास चाहती हुई नारी है । लेखक ने इस उपन्यास में विवाहित जीवन में किसी 'तीसरे' की उपस्थिति से उत्पन्न मानसिक स्थितियों एवं तत्जनित समस्याओं को उद्घाटित किया है । साथ ही उन्होंने महानगर के बदले हुए परिवेश में आर्थिक अभाव, घुटन, कुण्ठा, तिरस्कार, अकेलापन, बेगानेपन के घेरे में फँसे दम घुटते एवं जीने को विवश मध्य वर्गीय परिवार का जीवंत चित्र भी अंकित किया है ।

'तीसरा आदमी' उपन्यास में समकालीन जीवन के विभिन्न रूपों की झाँकी मिलती हैं । लेखक ने दिल्ली जैसे महानगर के जीवन में टूटते तथा बिखरते मूल्यों को सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है । डॉ. अमरप्रसाद जायसवाल के शब्दों में - '' आकार में लघु होते हुए भी अपने विस्तार और गुणधर्म में यह कृति विस्तृत है । उसमें कम शब्दों में सांकेतिक भाषा द्वारा एक कस्बे का आदमी महानगरों में आते-आते कैसे टूट जाता है, इसका सशक्त चित्रण लेखक ने इस रचना में किया है । आत्मकथात्मक शैली और सांकेतिक भाषा में लिखा हुआ यह लघु उपन्यास कस्बाई और महानगरीय जिन्दगी की जुड़ती हुई कड़ी के रूप में सामने आता है ।'' [२३] कमलेश्वर ने इस उपन्यास में वर्तमान सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के आधार पर निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति की चेतना के परिवर्तित रूप का चित्र प्रस्तुत किया हैं ।

'तीसरा आदमी' उपन्यास का मुख्य पात्र 'मैं' अर्थात् नरेश है । नरेश

इलाहाबाद में रेड़ियो स्टेशन मे अनाउन्सर (उद्घोषक) के पद पर काम करता है । उसका विवाह लखनऊ की सुन्दर युवती चित्रा से हो जाता है । दोनों की शादी में नरेश के रिश्ते का भाई सुमन्त भी आता है । नरेश विवाह के दिन से ही अनुभव करता है कि सुमन्त उसके वैवाहिक जीवन पर छाता जाता है । पहलीबार नरेश को सुमन्त से इर्षा हो जाती है, इतना ही नहीं नफरत भी करने लगता हैं । नरेश सोचता है कि- '' और पहली बार उस दिन मुझे अपने और चित्रा के बीच एक हलकी-सी छाया मंड़राती दिखाई दी थी ।''[२४]

शादी के बाद नरेश को इलाहाबाद एक छोटा शहर लग रहा था । वह इलाहाबाद जैसे छोटे शहर से ऊब गया था । उसकी इच्छा थी कि दिल्ली जैसे महानगर में चित्रा को लेकर जाये और मजे से जिन्दगी व्यतीत करे । छोटे शहरों के मिजाज कुछ अलग होते हैं । यहाँ का रिवाज निराला होता है । वहाँ बीवियों को लेकर घूमने का रिवाज भी नहीं होता । नरेश को महानगरीय जीवन के प्रति आकर्षण हो रहा था । इसलिए नरेश अपना तबादला दिल्ली करवा लेता है । नरेश पत्नी के साथ दिल्ली पहुँचता है । नरेश का रिश्ते का भाई सुमन्त कुतुब रोड़ पर आराम नगर के एक निहायत गंदे कमरे में रहता है । सुमन्त दिल्ली में एक प्रेस में काम करता है । दिल्ली जैसे महानगर में आर्थिक अभाव, आवास तथा अन्य सुविधाओं के अभाव में वे दोनों सुमन्त के साथ उसके एक कमरेवाले मकान में रहने के लिए विवश हो जाते हैं । यही विवशता उसके जीवन में अभिशाप बन जाती है । यही से उनके जीवन में 'तीसरे' से सम्बन्धित संघर्ष जन्म लेता है, विवाह के दिन से ही नरेश में यह 'शक' के रूप में समा गया था । अब नया रूप धारण कर सामने आता है । नरेश को ऐसा लगता है कि सब कहीं वह तीसरा समाया हुआ है । इसलिए वह अपनी पत्नी से खुलकर बाते न कर सकता है । यहाँ तक की शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति भी वह न कर सकता हैं । दोनों एक-दूसरे के लिए अपरिचित-से लगने लगते हैं । पति-पत्नी दोनों को बात करने तक का समय नहीं मिलता है । इसके बारे में नरेश का कथन है कि- '' मेरे पास ऐसा कोई वक्त ही नहीं था जिसमें मैं चित्रा से बात कर पाता । एकान्त मिलना तो दुर्लभ ही हो गया था ।''[२५] एक समय तो एकांत पाने के लिए नरेश चित्रा को लेकर राजपथ वाले गार्डन में ले जाता है । वहाँ एक पुलिसमैन उन्हें कॉलेज युवक-युवती समझकर थाना चलने की धमकी देता है । नरेश उसको तीन श्रपये दंड के रूप में देकर अपनी जान छुड़ा लेता है । नरेश और चित्रा के जीवन की गाड़ी अनमनेपन से गुजर रही थी । वे विवाहीत होकर भी अविवाहीत-सा जीवन गुजारते थे ।

नरेश इस स्थिति को समझ नहीं पाता था । इससे मुक्त होना चाहता है किन्तु

महानगरीय परिस्थितियों में उसकी सीमित आय में अलग घर लेकर रहना असंभव है । नरेश और चित्रा की अनेक भावनाएँ और इच्छाएँ अतृप्त रहती है । इस इच्छापूर्ति के अभाव मे दोनों बेचैनी का अनुभव करते हैं । यहाँ तक की उनकी पति-पत्नी की सहज कामेच्छाओं को भी एक-दूसरे के समक्ष व्यक्त नहीं कर सकते हैं । आसपास के पड़ोसी भी अपने-अपने काम में मग्न रहते हैं । महानगरीय जीवन की यांत्रिकता तथा कोलाहल में भी जीवन के अकलेपन को वे महसूस करते है ।

नरेश,चित्रा और सुमन्त एक ही कमरे में रहने को विवश है । धीरे-धीरे समय बीतता चला जा रहा है । नरेश का सशंकित मन सुमन्त और चित्रा के मध्य आकर्षण के लक्षण अनुभव कर सदैव उद्विग्न रहता है । चित्रा दिनभर अकेली ऊब जाती है । वह अपना अलग घर बसाना चाहती है । वह एक उच्च शिक्षित युवती है । इसलिए खाली बैठे बेचैनी महसूस करती है । सुमन्त उसे प्रेस में प्रूफ दुरस्त करने का काम दिलवाता है । इस काम के सिलसिले में सुमन्त और चित्रा करीब आ जाते हैं । सुमन्त के साथ चित्रा का अकेले रहना नरेश को बर्दाश्त नहीं होता । सुमन्त की डयूटी हर हफ्ते बदलती रहती थी । नरेश दिन में अपने काम पर जाता था तब सुमन्त दिन में घर पर ही रहता था । नरेश अनुभव कर रहा था कि दुनिया की किसी चीज पर उसका एकात्म अधिकार नहीं है । फिर भी उसे बार-बार लगता है कि चित्रा किसी दूसरे पुश्रुष के साथ शारीरिक सम्बन्ध तो नहीं रख रहीं ?

नरेश दिल्ली के वातावरण से ऊब जाता है । उसका कहीं बाहर जाने का मन करता है । इसी बीच एक प्रोग्राम के सिलसिले में सात दिन नरेश को घर से बाहर जाने का अवसर प्राप्त होता है । इसकी जानकारी नरेश चित्रा और सुमन्त को देता है । नरेश टूर के सात दिन के बाद दिल्ली पहुँचता है । इसी बीच उसे लगता है कि सुमन्त और चित्रा की दूरियाँ कम हो गई है । वास्तव में पहले से अधिक वे करीब आ गए है । इतना ही नहीं नरेश अपनी अनुपस्थिति में नई दिल्ली रेल्वे-स्टेशन पर चित्रा और सुमन्त को पति-पत्नी के रूप में घूमते हुए देखता है । घर आ जाने पर उसका संदेह और बढ़ जाता है । वह मन की बातें खुलकर कहने में हिचकता है साथ ही वह छोटेपन का अनुभव भी करता है ।

नरेश के मन में सुमन्त को लेकर चित्रा पर संशय मजबूत हो जाता है ऐसी स्थिति में नरेश को पता चलता है कि चित्रा गर्भवती है । वह दिल्ली से बाहर तबादला करने की सोचता है । वह पंद्रह दिन की छुट्टी लेकर चित्रा को अकेली छोड़कर अपने पिता के पास भोपाल चला जाता है । उसने अपने घर पहुँचकर छुट्टी बढ़ाने का प्रयत्न

किया , लेकिन नाकाम रहा । वह दिल्ली वापस पहुँच गया, लेकिन सुमन्त के वहाँ रहने को नहीं आता । नरेश ने अपने एक दोस्त के यहाँ रहने का प्रबन्ध कर लिया । नरेश के भोपाल चले जाने के बाद चित्रा प्रसव के लिए अपने मायके चली जाती है । वह एक बच्चे की माँ बन जाती है । नरेश की सुमन्त से बहस होती है , फिर वह अपने को गलत महसूस करने लगता है । नरेश ने चित्रा से सब बातें भूलकर वापस आने का अनुरोध किया । चित्रा बच्चे के साथ आ जाती है और दोनों के बीच फिर एक नई जिन्दगी की शुरुआत होती है ।

नरेश अपनी पत्नी चित्रा के साथ अपने अन्य मित्र के कमरे में रहने के लिए चला जाता है । चित्रा भी नरेश के साथ नये सिरे से जीवन बिताती है लेकिन पुत्र गुड्डु की आकस्मिक बीमारी में सुमन्त पुनः घर में प्रवेश पाता है,जाने-अनजाने यह प्रवेश बढ़ता ही जाता है । नरेश बहुत ही दुःखद स्थिति में जीवन व्यतीत करता है । तीसरे आदमी के पुनःप्रवेश से नरेश परेशान हो जाता है । आर्थिक तंगी की वजह से चित्रा पति से पूछे बगैर सुमन्त की सहायता से एक हायर सेकेण्डरी स्कूल में नौकरी हाँसिल करती है । इसी समय नरेश मानसिक संघर्ष से गुजर रहा था । चित्रा दुबारा गभर्वती बन गई परन्तु नरेश उस बच्चे को नहीं चाहता था । नरेश बच्चे को गिराने के लिए चित्रा से कहता है, लेकिन चित्रा उसके लिए तैयार नहीं होती । नरेश अपना विचार प्रकट करते हुए कहता हैं कि अगर मेरे साथ जिओगी तो जिन्दगी का दर्शन भी मेरे साथ करना पड़ेगा । चित्रा इस विचार से बोखला जाती हैं और नरेश से कहती है.. '' मैं जानती हूँ कि मुझे पहले जैसी हालत में छोड़कर फिर भाग जाओगे....तुम यही करोगे, तुम्हारे पास और कोई रास्ता नहीं है....हो या न हो , पर मैं इतनी बेचारी नही हूँ, जितना तुम समझते रहे हो ।'' [२६] इस झगड़े के बाद चित्रा और नरेश के दिलों में पड़ी दरार और भी चौड़ी हो जाती हैं । इतने दिन अपनी सुविधाओं और मजबुरियों के कारण साथ-साथ जी रहे थे । नरेश व्यावहारिक जीवन के साधन जुटाने में अकर्तव्यता के कारण सुमन्त का पल्ला नहीं छोड़ पाता । यही दुर्बलता पुनः उसके लिए अभिशाप सिद्ध होती हैं ।

नरेश सुमन्त के प्रभाव से घर और पत्नी को बचाने के लिए दिल्ली से तबादला कराकर पटना चला जाता हैं, किन्तु चित्रा उसके साथ नहीं जाती, वह दिल्ली में ही रह जाती है । चित्रा अपनी नौकरी तथा दिल्ली छोड़ने के लिए तैयार नहीं थी । नरेश की अनुपस्थिति में सुमन्त तथा चित्रा नये पति-पत्नी के रूप में साथ रहने लगते हैं । एक बार नरेश दिल्ली आता है और सुमन्त की अनुपस्थिति में उसकी पत्नी चित्रा को अपना बनाकर मानों दोनों से बदला लेने की सोचता है । वह कहता हैं..... '' और

तब मेरे भीतर का हिंसक पशु जागा था । प्रतिशोध की भावना उफनाने लगी थी और मैं ने चित्रा को पकड़ लिया था । मन में मात्र इतना ही था कि अब सिर्फ एक बार उसे अपनी पत्नी बनाकर ठुकराऊँ और हमेशा के लिए चला जाऊँ । शायद इससे मेरा आहत अहं तृप्त हो जाता ।'' [२७] लेकिन चित्रा की दृढ़ता के कारण उसे सफलता नहीं मिलती । नरेश चित्रा को छोड़ पटना लौट आता है । उसे बहुत बाद में पता चलता है कि किसी होल के कमरे में जाकर सुमन्त ने आत्महत्या कर ली । संभवतः आत्महत्या 'पति-पत्नी' के बीच तीसरे आदमी नरेश के आने के कारण की है ।

नरेश को लगा कि अब शायद चित्रा बच्चों समेत वापस आएगी, लेकिन ऐसा नहीं हुआ । चित्रा वापिस पटना नहीं आती । नरेश अपने व्यक्तित्त्व को आकार नहीं दे पाता, यही पर उसकी हार हो जाती है । नरेश ने सुमन्त को इतने अधिकार दिये कि अन्त में उसे अपने ही अधिकार से वंचित होना पड़ा । वह भी पहले के समान चित्रा के साथ न रह सकता था । क्योंकि अब भी उसे उस 'तीसरे' की छाया सताती हैं तथा उससे छुटकारा पाना उसके लिए असम्भव था । इस प्रकार जीवनभर उस तीसरे की वजह से तड़पते रहने को वह विवश बन जाता है ।

इस प्रकार कमलेश्वर ने प्रस्तुत उपन्यास में वर्तमान आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर मध्य वर्गीय व्यक्ति चेतना के बदलते स्वरूप का सफल चित्रण किया है ।

(७) आगामी अतीत -(१९७६) :

कमलेश्वर ने इस उपन्यास में धन एवं मान-सम्मान के लिए अपना सर्वस्व कुरबान करने को विवश एक व्यक्ति की ट्रेजड़ी का पर्दाफाश किया है । आधुनिक युग में यान्त्रिकीकरण की प्रवृत्ति ने व्यक्ति के जीवन को गतिशील बनाया है और यह गतिशीलता प्रतिदिन बढ़ती जा रही है । आज हर व्यक्ति विशिष्ट बनने की होड़ में भाग लेना चाहता है । लेकिन खेद की बात यह है कि ये सारे साधन समाज के एक खास वर्ग (उच्च वर्ग) को मात्र उपलब्ध होता है । आधुनिक जीवन व्यवस्था में इसका महत्त्व बढ़ गया है कि इनके आगे सारे जीवन मूल्य खोखले हो गये हैं । आधुनिक जीवन की यह बहुत बड़ी विडम्बना है कि अभूतपूर्व सफलता के बाद व्यक्ति बिलकुल अकेला रह जाता है । इस मनः स्थिति का दिग्दर्शन कराना ही उपन्यास का लक्ष्य है । साथ ही महत्त्वाकांक्षा के शिखर की ओर बढ़ते वक्त कुचले गए जीवन की करुण गाथा भी है जो नारी जीवन की दारूण वास्तविकता का नग्न चित्र प्रस्तुत करती है ।

कमलेश्वर का 'आगामी अतीत' एक बहुचर्चित नवीनतम उपन्यास है, जो पुस्तक के रूप में छपने के पूर्व 'धर्म युग' साप्ताहिक में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ था। लेखक ने 'काली आँधी' उपन्यास की भाँति 'आगामी अतीत' में दो या तीन व्यक्तियों के असफल सम्बन्धों की परिणति किस प्रकार होती है, इसका मार्मिक चित्रण किया है। इस उपन्यास का मूल विचार यह है कि आज के सामन्तवादी तथा पूँजीवादी समाज के स्पर्धा मूलक परिवेश में पड़कर व्यक्ति किस तरीके से 'सफलता' प्राप्त करने के लिए गलत एवं घातक रास्तों को अपना लेता है और अपने निजी वर्ग से पूर्णतःकट जाता है। इस उपन्यास का नायक कमलबोस निम्न वर्ग का उच्च शिक्षित युवक है, जो अपनी आर्थिक विपन्नता को संपन्नता में बदलने के लिए पूँजीवादी व्यक्तियों से समझौता ही नहीं करता, बल्कि अपने वर्ग तथा परिवेश को भी भूल जाता है। इतना ही नहीं वह तटस्थ होकर जीवन की सफलता को चुन लेता है। वह इतना आगे बढ़ जाता है कि पीछे पलटकर देखना नहीं चाहता। वह सफलता की स्पर्धा में जीतता चला जाता है और जब उसे होश आता है तब वह पश्चाताप से भरकर अपनो को याद करता है, लेकिन उसके बीच वर्ग विभाजन की एक रेखा खींच गई थी, जो उसे अपनो की तरफ जाने से रोकती है।

'आगामी अतीत' में कमलेश्वर ने कस्बे की वेश्याओं की जिन्दगी को बहुत ही सूक्ष्मता तथा सहजता से चित्रित किया है। वस्तुतः चाँदनी एक ऐसा चरित्र है जो अन्य किसी उपन्यास में देखने को नहीं मिलता। कमलेश्वर ने वेश्या चाँदनी जैसे चरित्र को अपने अभिव्यक्ति कौशल से नितान्त सजीव रूप में चित्रित किया है।

कमलेश्वर ने अपने अन्य उपन्यासों की भाँति 'आगामी अतीत' उपन्यास में उपेक्षित व्यक्तियों की जिन्दगी का बहुत ही मार्मिक चित्रण किया हैं। उस उपन्यास को ध्यान से पढ़ने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यासकार ने उपेक्षा से बर्दाश्त जिन्दगी को व्यतीत करनेवाले पात्रों को मुखरित किया हैं। समाज से उपेक्षित तथा आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए निम्न वर्ग के व्यक्तियों के जीवन का लेखक ने सहज, स्वाभाविक और यथार्थ चित्रण इस रचना में किया हैं। डॉ. अमरप्रसाद जायसवाल का इस उपन्यास के बारे में मत है कि- ''कमलेश्वर ने इस रचना में जिस सामाजिक भूमिका तथा मध्य वर्गीय एवं निम्न वर्गीय परिवेश में चित्रण किया है, वह स्वाधीन भारत की स्वतंत्र भूमि हैं। जो अपने आप में विशेष तो है ही साथ-ही-साथ आसपास की दुनिया से भी वह जुड़ी हुई हैं। जिस स्थिति और परिवेश को लेकर कमलेश्वर ने यह रचना लिखी है,उसमें इस देश की कटी हुई जमीं के संसार की परिवर्तित स्थितियों के साथ तथा बिखरते हुए और टूटे मूल्यों की प्रकिया को मध्य वर्गीय परिवार के संदर्भ में चित्रित किया गया है।''[२८]

'आगामी अतीत' उपन्यास का नायक कमलबोस और नायिका चंदा है। कमलबोस युवावस्था में एम.बी.बी.एस. परीक्षा की तैयारी करने हेतु कुछ दिन दार्जिलिंग जाकर रहता है। वहाँ एक गरीब वैद्य दिल बहादूर थापा की लड़की चंदा से उसकी भेंट होती हैं। चंदा अपने पिता के वैद्यकिय व्यवसाय में मदद करती है। हर दिन जड़ी-बुटियाँ बिनकर घर ले आती है। एक दिन कमलबाबू सीढ़ियों से लुढ़क जाते है और उनके पैर में मोच आ जाती है। कमलबोस को सीढ़ियों से गिरते देख अन्य लड़कियाँ के साथ चंदा भी खिलखिलाकर हँसती है। उसके मनमें कमलबोस के प्रति करुणा जागती है और वह कमलबोस के पैर के जख्म पर अंडी का पत्ता बाँध देती है, और अपने पिताजी से इलाज कराने की सलाह देती है। कमलबोस जब चंदा के घर इलाज करवाने हेतु जाता है, तब चंदा अपिरिचत-सा व्यवहार करती है। वह कमलबोस के सामने भी नहीं आती। दूसरे दिन चंदा और कमलबोस की भेंट होती है, तब वह कहता है, तुमने कल अपरिचित-सा व्यवहार क्यों किया ? क्या तुम मेरा नाम भी नहीं जानती थी ? तुम इतनी आसानी से बदल कैसे जाती हो ? चंदा कहती है हमारे यहाँ घर में लड़कियाँ बड़ो के सामने खुलकर बोल नहीं सकती। वह कमलबोस से कहती है........'' मैं..... तुम्हारे कलकत्ते की लड़की नहीं हूँ, कुछ लाज-शरम भी होती है।''[२९] बड़ो के सामने पराये लड़को के साथ घुलमिल जाना उचित नहीं समझा जाता है। इसलिए चंदा कमलबोस को जानते हुए भी अपरिचित-सा व्यवहार करती है। चंदा कमलबोस को समझाती है कि मैं एक कस्बे की अशिक्षित लड़की हूँ, कोई महानगर की बेशर्म लड़की नही हूँ।

कमलबोस और चंदा दोनों एक दूसरे से बेहद प्यार करने लगते हैं, उनमें विवाह का वादा भी होता है और घर बसाने का सपना भी देखा जाता है। चंदा कमलबोस को कहती हैं..... '' हम अपने घर के पास छोटा-सा सेब का बाग लगायेगें हाँ और हर पेड़ में तुम एक चाकू लटका देना कि जब सेब तोड़कर खाऊँ, किड़ावाला हिस्सा काट देने की याद रहे।''[३०] इतना ही नहीं विवाह के बाद उन्हें जो संतान होगी उसका नाम भी वे निश्चित कर लेते है। बच्चों के नाम के बारे में चंदा कमलबोस से कहती है.. ''हाँ... जैसे कि यदि हमारा लड़का होगा तो उसका नाम हम कमल रखेंगे...और लड़की हो तो नाम रखेंगे चाँदनी।.... ठीक है न ...? ''[३१] कमल चंदा से वादा करता है, डॉक्टरी पास होने के बाद दार्जिलिंग वापस आ जायेगा और विवाह करेगा। भोली चंदा विवाह के पहले कमल को शरीर भी अर्पण कर देती है लेकिन कमल वादा भूल जाता है और मानसी केमिकल्स के मालिक की बेटी निश्चपमा से विवाह करता हैं। चन्द्रमोहन सेन की अमीरी और उसकी बेटी निश्चपमा का सौदर्य कमलबोस को आकर्षित करता है। यह धन की प्रेम पर विजय थी। कमलबोस अपनी

प्रेमीका चंदा और अपने मध्य वर्गीय जीवन को भूल जाता है ।

कमलबोस अपना वादा भी भूल जाता है और वह दार्जिलिंग लौटकर भी नहीं आता । दार्जिलिंग में चंदा कमलबोस का इन्तजार करती रहती है । जब उसकी शादी की बात चलती है तब वह शादी से साफ इन्कार करती है । सबने उन्हें समझाया, मनाया परन्तु वह मानती ही नहीं । तीन साल तक वह अपनी जिद् पर अड़ी रहती है, इसलिए बुढ़े वैद्य की समाज में बदनामी होती हैं । छोटे से कस्बे में जवान लड़की को शादी के बगैर रखे जाने की परिपाटी नहीं होती । चंदा की बदनामी के साथ बिरादरी ने चंदा के पिता और उनके परिवार का भी बहिष्कार किया । वैद्य का हुक्का पानी बंद करा दिया गया । चंदा के बारे में कई अफवाहें फैलने लगी । निम्न वर्गीय परिवार में जवान युवती को विवाह के बगैर रखना उचित नहीं समझा जाता है । कमलेश्वर ने इस बात का चित्रण में मार्मिकता से किया है ।

वैद एक इज्जतदार आदमी था । बिरादरी के बहिष्कार से वैद्य बहुत दुःखी रहने लगे । अपने दुःखी पिता के खातिर चंदा विवाह के लिए तैयार होती है । उसका विवाह उसकी उम्र से काफी बड़े लंगड़े हरकरे हरिचरन से होता है । शादी के बाद वैद्यजी की मृत्यु हो जाती है । चंदा शरीर से हरकरे हरिचरन के साथ रहते हुए मन से कमलबोस का इन्तजार करते जीवन व्यतीत करती है । चंदा एक लड़की को जन्म देती है, और कमलबोस से जो वादा किया था उसके अनुरूप लड़की का नाम चाँदनी रखती है । एक लडकी की माँ बनकर भी चंदा के जीवन मे खुशियाँ दिखाई नहीं देती । कमलबोस का इन्तजार उनकी जिंदगी का एक हिस्सा ही बन गया था । चंदा का इसके प्रेमी के प्रति इन्तजार दिन-प्रतिदिन उसको जिन्दा लाश की तरह बना देता है । चंदा का पति जंगल में गश्त देने जाता था । एक बार गश्त देने गया और लौटकर नहीं आया । जंगली जानवर ने हरिचरन को मार डाला था । अपने पति की मौत की खबर सुनकर चंदा लाश को भी ढूँढने नहीं जाती । एक बूढ़ा कमलबोस को चंदा के बारे में बताते हुए कहता है - ''उसका आदमी मरा तो लाश खोजने भी नहीं गयी । क्या कहा जाये ऐसी औरत को ऐसी पत्थर दिल औरत अपने पति की लाश तक के लिए जंगल में नहीं गयी । आदमी तो फिर आदमी है, साहब ।''[३२]

चंदा के पति हरिचरन हरकरे की मृत्यु के बाद चंदा को मदद करनेवाला कोई नहीं रहा । उसका कोई साथ भी नहीं देता है । वह रोजी-रोटी की तलाश में दार्जिलिंग छोड़कर, दूसरी जगह चली जाती है । वह नीली घाटी, घौलपुर, सिलीगुड़ी मे रोजी-रोटी के लिए घूमती फिरती है और अपनी बच्ची चाँदनी को पाल-पोसकर बड़ा

करती है । वह जीवन के आखिरी साँस तक कमलबोस का इन्तजार करती है । वह दर-दर भटकती है और इसी भटकन में पीड़ा और संत्रास से जीवन बिताती हैं । ऐसे ही कुछ दिनों के पश्चात् चंदा कमलबोस की स्मृतियों के कारण पागल हो जाती है । चाँदनी अपनी माँ के पागलपन के दौरे को देखकर परेशान हो जाती है । आखिरकार वह अपनी माँ को पागलखाने में भर्ती कर देती है । इसीके द्वारा लेखक ने चंदा के जीवन की त्रासदी का चित्रण किया है ।

पागलखाने में चंदा की मृत्यु हो जाती है । लाश उठाने के लिए डॉक्टरी पर्चा नहीं मिला था । इसलिए पागलखाने में ही चंदा की लाश चादर से ढँक कर रखी जाती है । चाँदनी अपनी माँ की लाश के पास रातभर रहती है । इसी रात मातृविहीन निराधार चाँदनी को पागलखाने का एक कैदी दया भावना की दृष्टि से कहता है ..... '' तुम्हारी माँ मर गई है न, तुम बहुत अकेली हो गयी हो फिक्र मत करो । सुबह मैं सारा इन्तजाम कर दूँगा । ''[३३] वही दया बताने वाला क्रुर कैदी चाँदनी पर बलात्कार करता है । उस भयानक रात ने चाँदनी के जीवन को दूसरा मोड़ दिया । पागलखाने का यह कैदी सही रूप में पागल नहीं था, वह खून के इल्जाम से छुटकारा पाने के लिए पागल होने का ढोंग करता था । कैदी से चाँदनी भ्रष्ट हो जाती है । बाद में उसे जीने का और कोई सहारा नहीं होता मजबूरन वह वेश्या बन जाती है ।

इधर कमलबोस की पत्नी निश्चपमा मानसिक रोग से पीड़ित होकर आत्महत्या कर लेती है । निराश होकर कमलबोस चंदा की खोज में दार्जिलिंग जाता है । वह नीलीघाटी, धौलपुर और सिलीगुड़ी से चंदा की खोज करते-करते कार्सियांग में पहुँचता है । कार्सियांग में चंदा जैसी लड़की कमलबोस को दिखाई देती हैं । वह चाँदनी नामक वेश्या थी ।

चाँदनी वेश्या के धन्धे को बुरा और हेय नहीं मानती । इस धन्धे को अपनाने का उसे कभी पश्चाताप भी नहीं होता है । चाँदनी ने अपनी माँ को प्रियतम की यादों में पागल होकर सड़कों पर घूमते देखा था । पागलखाने में हुई माँ की मृत्यु का आघात उसने बर्दाश्त किया था । इतना ही नहीं जीवन को बदल देनेवाला अमानुष बलात्कार भी मजबूर होकर उसने सहा था । चाँदनी को देखते ही कमलबोस उनके करीब आना चाहता है । ग्राहक बनकर कमलबोस एक महिने का कोन्ट्राक्ट करके चाँदनी को बंगले पर ले जाता है । कमलबोस चाँदनी को बेटी के रूप में स्वीकार करना चाहता हैं । चाँदनी का उपभोग कमल नहीं कर सकता, लेकिन चाँदनी के लिए वह सिर्फ एक ग्राहक था । चाँदनी वेश्या जीवन की वास्तविकता को कमलबोस के सामने इन शब्दो

मे प्रकट करती है...''तुम अमीरों के ये इश्क-विश्क के चोंचले अपने लिए बेकार हैं। हम इश्क नहीं करते, पेट भरते हैं पेट।''[३४] चाँदनी 'प्रेम' शब्द से घृणा करती है क्योंकि उसकी अम्मा ने भी किसी से प्यार किया था और वह उसका परिणाम जिन्दगीभर भोगती रही। अंत में पागल होकर उसकी मृत्यु हुई। विश्वासघाती प्रेमी के कारण उसकी अम्मा की दुर्दशा हुई, यह चाँदनी जानती है। इसलिए उसके मनमें प्रेम का कोई महत्त्व नहीं है।

एक दिन कोठी से वापस आई चाँदनी के गले में चंदा को दिया हुआ हार देखकर कमलबोस अत्यन्त दुःखी बन जाता है। चाँदनी कमलबोस नामक उस ग्राहक को अपनी माँ की करुण कहानी सुनाती हैं। सब कुछ सुनने पर वह उससे बता देता है कि उसकी माँ का प्रेमी डॉक्टर खुद हैं तथा अब उसकी खोज में वहाँ आया हैं। यह रहस्य जानकर चाँदनी केवल इतना बोलती है '' वो तो पागल होकर मर गई। उनकी जिन्दगी तो तुमने चौपट कर दी ''[३५] वह कमलबोस को गालियाँ देती हुई बँगला छोड़कर कोठी चली जाती है। कमलबोस चाँदनी की कोठी पर पहुँच जाते है। वे चाँदनी के जीवन के बारे में तथा चंदा के बारे में सबकुछ जानना चाहते है। कमलबोस का बेटी-बेटी पुकारना चाँदनी को अच्छा नहीं लगता। चाँदनी के कुछ वाक्यों में अश्लीलता झलकती है, किन्तु यह वेश्या जीवन की वास्तविकता है। कमलबोस चाँदनी से बिनती करता है तुम मेरा साथ दो,मेरी बच्ची बनकर बाकी जीवन व्यतीत करो। यहीं समझ लो कि मैं तुम्हारे पिता की तरह तुमसे माँग रहा हूँ। पर चाँदनी कमलबोस की बेटी बनकर फिर जीवन से जुड़ने को तैयार नहीं होती हैं। तन-मन से हताश कमलबोस वहाँ से लौट जाता है।

इस प्रकार कमलेश्वर ने इस उपन्यास में धन-दौलत की होड़ में रत कमलबोस का सजीव चित्रण किया है। लेखक ने चंदा के द्वारा नारी-जीवन की विसंगति तथा यातनापूर्ण जीवन बिताने वाली चाँदनी का सफल अंकन किया है। इसमें पूँजीवादी व्यवस्था का विरोध, समाज का अत्याचार आदि का सबल एवं यथार्थ चित्रण किया गया है। व्यक्ति की दृष्टि से देखे तो यह नारी समस्या पर आधारित उपन्यास है, लेकिन वर्तमान समाज को ध्यान में रखकर देखा जाये तो यह एक सफल सामाजिक उपन्यास माना जाता है।

'आगामी अतीत' स्पर्धात्मक युगीन-बोध के मध्य मानवीय सत्ता की विकल्पहीन स्थिति का संकेत करता हैं। इसी बिन्दु पर कमलबोस की कहानी प्रासंगिकता के दायरे को लाँधकर समकालीन बोध को स्पर्श करने लगती हैं। इसलिए

प्रस्तुत रचना उपन्यास की गुणवत्ता को चरितार्थ कर सकी हैं । इस उपन्यास को 'मौसम' नाम से गुलजार ने फिल्माया हैं । इस प्रकार आज के आधुनिक बोध से संवेदित मानव की बड़ी ही मार्मिक कहानी इस उपन्यास में उद्घाटित हो पाई है, जो उपन्यासकार की आधुनिक संवेदना से 'संवेदित' हृदय की परिचायक हैं ।

(८) वही बात -(१९८०):

'वही बात 'उपन्यास का प्रकाशन सन् १९८० में द्वितीय संस्करण के रूप में शब्दकार प्रकाशन दिल्ली से हुआ था । कमलेश्वर द्वारा लिखित 'वही बात' उपन्यास उनकी एक सहज सरल व स्वाभाविक कृति है । इस उपन्यास में घटनाएँ एक स्वाभाविक कम में घटित होती है । इसमें सफलता प्राप्त करने की मानवीय प्रवृत्ति का सफल निरूपण हुआ है । उपन्यास नायक जीवन में नाम कमाना, सफलता तथा उच्चतम पद को प्राप्त करने में ही जीवन की सफलता मानता है । इस दौड़ में वह जीवन का महत्त्वपूर्ण अंश दाव पर लगा देता है । वह स्वाभाविक रूप से पारिवारिक सम्बन्धों की ओर ध्यान नहीं दे पाता । इसके कारण अकेलापन बढ़ता है और यह अकेलेपन की वजह से पारिवारिक सम्बन्ध टूट जाते है । कमलेश्वर लिखित इस उपन्यास का नायक प्रशांत महत्त्वकांक्षी होने के कारण सफलता प्राप्त करने के लिए पारिवारिक सम्बन्धों को भी नजरअंदाज करता है ।

'वही बात' उपन्यास का नायक प्रशांत कोई एक कंपनी में चीफ इंजीनियर था । वह कंपनी बाँध बनाने का काम करती थी । उसी सिलसिले में पहाड़ी प्रदेश में एक बाँध बाँधने की योजना थी । वहाँ का काम प्रशांत को सौपा गया था । इस योजना के सिलसिले में प्रशांत अपनी पत्नी समीरा को बम्बई से बहुत दूर पहाड़ी प्रदेश में अपने साथ ले जाता है । इसी कंपनी के डिप्टी इजीनियर नकुल ने उनके रहने का प्रबन्ध वहीं एक बंगले में करवा दिया था । प्रशांत ने आते ही प्रोजेक्ट का काम शुरु कर दिया और समीरा भी वहाँ के पहाड़ी प्रदेश का मनोरम्य वातावरण को देखकर समय व्यतीत करती थी । शुरु -शुरु में समीरा प्रशांत के साथ काम पर भी जाने लगी । लेकिन काम बढ़ने की वजह से प्रशांत को बाँध के प्रोजेक्ट पर देर तक रूकना पड़ता था, इसीलिए समीरा धीरे-धीरे घर पर ही रहने लगी । बाँध बनाने के काम में एक बड़ी समस्या पैदा हो गई थी । जहाँ बाँध बनाने का काम हो रहा था वहाँ आदिवासियों का गाँव बसा हुआ था और वह पुरे गाँव को खाली करना जरूरी था । लेकिन आदिवासियों ने गाँव खाली करने से इन्कार कर दिया । अब तक कंम्पनी को इस बाँध के प्रोजेक्ट में करोड़ो रुपये का खर्च भी हो चूका था । आदिवासियों की मनोदशा को चित्रित करते हुए

कमलेश्वर लिखते है -'' लगातार सुनाई पड़ रहा था कि बारहों गाँवो के आदिवासी मरने-मारने को तैयार हैं, पर अपने-अपने गाँव अपनी-अपनी जमीनें छोड़कर जाने को तैयार नहीं हैं.....खबरे यहाँ तक फैलने लगी थी कि आदिवासी अपने हथियारों से लैस होकर बाँध-कॉलोनी पर धावा बोलनेवाले हैं ।'' [३६]

प्रशांत ने नकुल को आदिवासियों को समझाने का काम सौंपा था । नकुल ने अपनी जिम्मेदारी पूरी ईमानदारी से निभाई और बहुत लम्बे प्रयासों के बाद आदिवासियों को गाँव खाली कर देने के लिए राजी कर लिया गया । इसी घटना के दौरान कई बार संघर्ष भी हो गये और इसी संघर्ष मे नकुल को चोटें भी आई । लेकिन आखिरमें नकुल ने धीरज और खंत से ये काम पूरा कर दिखाया ।

इन सभी समस्याओं को लेकर राजधानी व साइट के बीच प्रशांत के चक्कर शुरू हो गये थे । इसी सिलसिले में प्रशांत घर से बहार रहता था । शुरू में तो प्रशांत के साथ समीरा फोन पर भी बात कर लेती थी या तो प्रशांत भी फोन करता, लेकिन धीरे-धीरे बढ़ती हुई जिम्मेदारियाँ प्रशांत को समीरा से दूर करने लगी । इसी दौरान समीरा का मन इन पहाड़ी प्रदेशो में अकेलापन महसूस करने लगा । यही अकेलापन इन पहाड़ी प्रदेश में रहनेवाले आदिवासियों की समस्याओं को हल करने वाले नकुल की कार्यनिष्ठा को देखकर उनकी और खींचने लगा और कम्पनी के लिए सब प्रकार के कष्ट झेलनेवाले नकुल ने समीरा के हृदय में जगह बना ली ।

आदिवासियों की समस्या हल होने के बाद सारा श्रेय प्रशांत अपने पर ही लेने लगा । प्रशांत ने रिपोर्ट द्वारा सभी अधिकारियों को प्रसन्न कर लिया था । रात को प्रशांत बंगले से ही मुख्यमंत्री को, मुख्यसचिव को, कलक्टर और तहसीलदार सबको फोन करता रहा । सबसे करीब-करीब एक ही तरह की बातें हुई थी जैसे ....
'' जी..सब ठीक हो गया है.... अब कोई अड़चन नहीं है । आखिर मानते कैसे नहीं ? ..... जी हाँ, बड़े धीरज से काम लेना पड़ा, नहीं तो यह योजना कभी पूरी नहीं हो सकती थी । ....जी हाँ, बहुत भाग-दौड़ करनी पड़ी । कई-कई बार आदिवासी इलाको में जाना पड़ा ....जी हाँ , पर काम तो करना ही था ....हाँ, अब उनके लिए हाउसिंग का इंतजाम करना पड़ेगा .... जी हाँ, अब कोई अड़चन नहीं है....नहीं नहीं इसमें मेरा क्या हैं । जो काम करना है वह तो करना ही है । अच्छा यही हुआ कि पुलिस फोर्स की जरूरत नहीं पड़ी ।...जी.. मैं कल ही डिटेल्ड़ रिपोर्ट भेज दूँगा.....जी ।''[३७]

बंगले में हो रही इसी बातचीत को समीरा दूसरे कमरे में सुनती रही समझती

रही । समीरा का ध्यान इस ओर था कि प्रशांत ने एक बार भी नकुल का जिक्र किसी से नहीं किया । प्रशांत मसला सुलझा लेने का सारा श्रेय बहुत शालीनता से खुद ही लेता जा रहा था । नकुल की जगह सारे कार्य का सेहरा प्रशांत ने अपने सिर पर ले लिया था । यही बातों से समीरा प्रशांत से ओर भी विरक्त होने लगी और प्रशांत भी मानने लगा था कि समीरा उससे विरक्त होने लगी है ।

थोडे समय के बाद कम्पनी के सहयोग में एक बहुत बड़े थर्मलप्लोट में स्थान पाने की प्रशांत की लालसा जाग उठी । प्रशांत इस स्थान प्राप्त करने के लिए समीरा की इच्छा न होने के बावजूद दिल्ली चला गया । यहाँ समीरा अकेली हो गयी । प्रशांत के अकेलेपन से तंग आकर समीरा ने नकुल से अपनापन प्राप्त कर लिया । दिन बीतते जा रहे थे । प्रशांत नया स्थान प्राप्त करने की पूरी कोशिश में लग गया था । एक दिन समीरा ने स्पष्ट शब्दों में प्रशांत से कह दिया कि अब वह नकुल की हो चुकी हैं । नकुल को उसी दिन नयी नौकरी में नियुक्ति मिल गई थी और प्रशांत का जाना भी निश्चित हो गया था । प्रशांत समीरा को नये जीवन की शुभकामनाओं के साथ अपना घर व पोष्ट नकुल के लिए छोड़कर चला जाता है ।

नकुल व समीरा ने शादी के बाद अपना पुराना घर भी बदल लिया, क्योंकि समीरा को वहाँ का अतीत कचोटता रहता था । समीरा को नये घर में जाने के बाद भी उसका मन नया नहीं हो पाया था । नकुल की व्यस्तताओं के कारण उसके जीवन का अकेलापन और भी बढ़ता जा रहा था । जगह बदल लेने से भला जिन्दगी कभी बदल सकती है ? वह जिन्दगी जीने की बजाय सिर्फ सह रही थी ।

एक दिन प्रशांत को दुबारा साइट पर जायजा लेने के लिए बुलाया गया । वह जब आ रहा था तब उसने समीरा को देखा, समीराने भी उसे देख लिया । प्रशांत निरीक्षण करके शिघ्र ही लौटना चाहता था । प्रशांत नकुल के घर के आगे से जब गुजर रहा था तब समीरा दरवाजे पर खड़ी थी । प्रशांत ने समीरा का हाल पूछा और अपने बंगले पर चला आया । प्रशांत सोचता रहा कि समीरा ने उससे बात क्यों की ? नकुल ने प्रशांत को शाम को खाने पर बुलाया । दूसरे दिन प्रशांत वापस जा रहा था तब उसने समीरा और नकुल को आते हुए देखा । वह हैरान रह गया ,क्योंकि समीरा उसके लिए रास्ते का खाना बनाकर लायी थी । बस उसी समय प्रशांत बिदा होकर चला गया और उसे बिदा करते वक्त नकुल व समीरा की आँखे नम थी ।

यह कहानी सीधे मशीनीकरण के चित्र खींचती हैं । बाँध बनाना मानव की

उपलब्धि हैं। उसके लिए निर्दयता से प्रकृति के स्वाभाविक रूप को तोड़ना पड़ता है। वर्तमान दाम्पत्य सम्बन्धों की नींव पर रचे हुए इस उपन्यास में आधुनिक बोध, तलाक और पुर्नविवाह के नये सामाजिक मूल्यों से उदित होता है और अपना वृत्त अकेलेपन से पुरा करता है। भारतीय समाज का विचित्र मानसिक द्वन्द है कि न तो वह रोमांटिक रह पा रहा है , और न ही यथार्थ को पहचान कर पा रहा है। इससे अतीत के प्रति लापरवाही और वर्तमान के प्रति असंतोष और भविष्य के प्रति चिंता लक्षित होती है। समीरा प्रशांत को छोड़कर नकुल के पास जाती है। लेकिन पूरी तरह प्रशांत को भूल नहीं पाती। रोमांटिकता और यथार्थ के बीच की स्थिति समीरा के चरित्र के द्वारा व्यक्त हुई है। इस दृष्टि से वह परम्परागत भारतीय नारी ही रह पाई है। इस द्वन्दमयी स्थिति की कड़वाहट को अनैतिक यौन सम्बन्धों ने भी बढ़ाया है। अपने जीवन को सार्थकता देने की जी-तोड़ कोशिश में लगे प्रशांत और समीरा के सन्दर्भों ने इस कर्कशता को दोहराया है। समीरा घर में सार्थकता खोजना चाहती है और प्रशांत अपनी नौकरी में अधिकाधिक आगे बढ़ना चाहता है। दोनों इस बेताबी में दाम्पत्य सम्बन्धों को तोड़ देते हैं।

औद्योगिक सभ्यताने सम्पूर्ण वातावरण में जैसे बनावटीपन घोल दिया है। मनुष्य को सजीव प्रकृति में भी जीवन का स्पष्ट अनुभव नहीं होता। मानवजीवन की यह कितनी विचित्र त्रासदी है ? कमलेश्वर ने जीवन में समाप्त होते जा रहे एहसास को बहुत ही सहज अभिव्यक्ति दी है- ''जंगली लकड़ी के खंभो से बंदनवार की तरह लटके बिजली के तारों में यहाँ-वहाँ चमकते हुए पीली-मरीयल रोशनी के बल्ब जैसे जिन्दगी के एहसास को जिन्दा रखे हुए थे।''[३८] आधुनिक जीवन की यह त्रासदी पारिवारिक विघटन में घटित होती है और विघटन की यह पीड़ा पूरे उपन्यास में बहुत गहराई से व्याप्त पाई है।

(९) रेगिस्तान -(१९८८) :

सन् १९८८ में 'राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली' से प्रकाशित उपन्यास 'रेगिस्तान' हिन्दी भाषा को महत्त्व देता है। कमलेश्वर ने 'रेगिस्तान' उपन्यास में गाँधी विचारधारा को अधिकांश महत्त्व दिया है। 'रगिस्तान' उपन्यास में स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान देश में भाषा जागृति के लिए हिन्दी प्रचार के कार्य का वर्णन किया है। लेखक ने इस उपन्यास में गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित विश्वनाथ की कथा को आलेखा है।

विश्वनाथ को उपन्यासकार ने एक आदर्श हिन्दी प्रचारक के रूप में उभारा

है। विश्वनाथ की पढाई गाँव की प्रायमरी स्कूल में हुई थी, फिर सरकारी स्कूल में वह स्कूल की बोडिँग में रहकर पढ़ता है । विश्वनाथ के बाबूजी उसे मिडिल तक पढ़ाकर कलक्टर-कचहरी या नहर के दफ्तर में मुलाजिम बनाना चाहते थे, लेकिन विश्वनाथ के मन में पढाई के दौरान गाँधीवादी विचार की छाप उभरने लगती है । विश्वनाथ अच्छी तरह पढ़-लिखकर गाँधीजी के आन्दोलन में शामिल होना चाहता था, इसलिए विश्वनाथ ने गाँधीजी की भाषा-नीति पर चलना तय कर लिया था । उसने मिड़िल के बाद हाईस्कूल की शिक्षा प्राप्त की तथा अंग्रेजी में पूरे जिले में अव्वल आया । बाबूजी ने उसे बार-बार समझाया कि कहीं नौकरी कर ले,लेकिन विश्वनाथ मानने को तैयार न हुआ । वह स्वदेशी स्कूल में अध्यापक बन गया । महात्मा गाँधी की भाषा-नीति को सही बताते हुए रामविलास शर्मा ने निम्न प्रकार से छःसूत्रो में वर्णित किया है -

‘‘ १. भाषा समस्या का समाधान जनता के हित में हो ।

२. राष्ट्रीय आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए अंग्रेजी का प्रभुत्त्व खतम करो ।

३. भारतीय जनता की अमली राष्ट्रभाषा हिन्दी है ।

४. कांग्रेस की अपनी राजनीतिक कार्यवाही की भाषा हिन्दी होनी चाहिए।

५. भारत का विकास और राष्ट्रीयता की रक्षा प्रादेशिक भाषाओं को दबाकर नहीं, उसके पूर्ण विकास से ही संभव है ।

६. हिन्दी-उर्दू बूनियादी तौर से एक ही भाषा है और आगे चलकर उसका एक ही सम्मिलित साहित्यिक रूप होगा ।’’ [३९]

इन्हीं सूत्रों के कदम पर चलता हुआ विश्वनाथ हिन्दी प्रचार में जिन्दगी के अमूल्य वर्ष बिताता है ।

कुछ दिनों बाद जब विश्वनाथ पिताजी की गंभीर हालत को देखने के लिऐ गाँव वापस आया तो पिता की बातों का अर्थ उसे मालूम हो गया, घर की हालत अत्यन्त बिगड़ गई थी । घरबार सब ताऊजी के कब्जे में हो गया था । तब उसे ऐसा एहसास हुआ कि अपनी जमीन एवं घरबार संभालने के लिए ही बाबूजी ने उसे पढ़ाया था । अब तो देर हो चुकी थी । वह कुछ न कर सका और वहाँ से सीधा गाँधीजी के आदेश को मानकर सन् १९३० में देश को अपनी भाषा देने के लिए स्कूल की नौकरी,घरबार सबकुछ छोड़कर दक्षिण भारत की ओर चला गया । दक्षिण भारत की

ओर चले जाने के बाद विश्वनाथ को बाबूजी की तबियत देखने का अवसर नहीं मिला । विश्वनाथ पिता की मृत्यु की खबर भी वक्त पर नहीं पा सका । उनकी अंत्येष्ठी करने का अवसर भी उसे प्राप्त नहीं हुआ । विश्वनाथ के मन में केवल एक ही विचार था - ‘‘ देश निरक्षर है.. ऐसे देश कैसे बढ़ेगा ! भविष्य कैसे बनेगा....अपनी भाषाएँ नहीं आएगी तो...अपनी भाषा अपना देश अपना राज अपना वेश यह कैसे हो ? ’’[४०]

जब विश्वनाथ वर्धा से नागपुर पहुँचा तब ताऊजी की बेटी मुन्नी से पता चला कि उसके घर में ताऊजी ने दखल दिया है । मुन्नी ने विश्वनाथ को यों भटककर जीवन बरबाद न करने को कहा, लेकिन उसके पास सुनने को वक्त नहीं था । मुन्नी ने उसे दादा की दूसरी शादी की बात कही जो अगले महिने इलाहाबाद में होने वाली थी । मुन्नी ने तब उसे भी घर बसाने का अनुरोध किया तो उसने ‘सारा देश मेरा घर है ’ कहकर टाल दिया ।

इलाहाबाद कैम्प में होते हुए विश्वनाथ को ताऊजी के कहने पर दादा की शादी में जाना पड़ा । शादी के बाद बारात के साथ अपने गाँव मैनपुरी जाने को विश्वनाथ विवश हो गया, यही नहीं उसे भाभी के साथ एक डिब्बे में बैठना भी पड़ा । यह उसके जीवन का पहला अनुभव था । ऐसी एक नवविवाहित नारी के पास बैठकर बातें करने पर प्राप्त सुख से वह आत्मविभोर हो गया क्योंकि अब तक की जिन्दगी में ऐसा कभी न हुआ था । उनकी भाभी सुशीला ने उसे नागमणि की बात की । मणि को साँप कभी नहीं छोड़ता है तथा वह बहुत उजास देती है । अगर कहीं मणि खो जाएँ या साँप उसे भूल जाएँ तो पागल हो जाता है । अनजाने ही विश्वनाथ भाभी से प्रभावित हो जाता है । एक दिन भाभी से मालूम होता है कि रतनलाल ने पहले (अपनी)सुशीला की बात विश्वनाथ के लिए की थी, लेकिन घरवालों ने कोई जवाब नहीं दिया । वे इन्तजार करते रहे तथा घर में विश्वनाथ की चर्चा भी होती रही । सुशीला की छोटी बहन सुशीला को कालीकट-कोचीन कहकर चिढ़ाती रहती थी । सुशीला भाभी के मुँह से ऐसी बातें सुनकर विश्वनाथ चकित हो जाता है । आश्चर्य के साथ वो कहता है कि मुझे इस बात का कुछ भी पता नहीं । विश्वनाथ ने अपनी सफाई देनी चाही, लेकिन बीच में ही सुशीला ने कहा कि घरवालों से पता चला कि आपने इन्कार कर दिया है । सुशीला की बातों से विश्वनाथ हताश हो गया तब उसे मुन्नी की घर बसाने की बातें याद आई । जो होना था सो हो गया । एक सुखद -सुन्दर भविष्य एवं जिन्दगी बिखर जाने का दुःख विश्वनाथ को जरूर हुआ । पूरी रात दोनों ने यों बातें करके बिताई ।

घर से वापस जाते वक्त सुशीला भाभी ने एक कागज के टूकडे में पता लिखकर दिया जो अब भी उसके पास सुरक्षित था। फिर से कालीकट-कोचीन वाला अपना सफर जारी रखा। घर से वापस जाते वक्त विश्वनाथ ने किसी की बात न सुनी, न बाबूजी की, न मुन्नी की, न औरों की, क्योंकि सुनने को वक्त और मन नहीं था। अब तो सबकुछ छूटता महसूस होने लगा।

विश्वनाथ सड़सठ वर्ष की अवस्था में भी अपने आदर्शो पर अड़िग रहता है। भारतभर में हिन्दी प्रचार करते-करते जब आजादी के बाद विश्वनाथ अपने गाँव आ जाता है तब उसे मालूम होता है कि जहाँ पहले हिन्दी थी, वहाँ अब हिन्दी नहीं रही है। इस दुःखद सत्य को मानने को विवश विश्वनाथ फिर वहाँ हिन्दी प्रचार के लिए 'हिन्दी मन्दिर' बनवाने में लग जाता है। उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। विवश विश्वनाथ के स्मृतिपथ पर अतीत की यादें उभर-उभरकर आती है। गाँव आते ही अपने गाँव में हिन्दी-मन्दिर के लिए खुब दौड़-भाग करने लगता है। जब अन्त में बाकर मिस्त्री से पता चलता है की हिन्दी-मन्दिर बनाने के लिए जमीन सुशीला भाभी से मिली है तब यह खबर पाकर वह भाभी से मिलने सीधा घर जाता है। घर में भाभी अकेली थी। उसका रूप-भाव सब कुछ नष्ट हो गया था। लेकिन उनका बातें करने का ढंग बदला नहीं था। उन्होनें अत्यन्त अपनेपन से पूछा कि जिन्दगी में किसी साँप ने उसका रास्ता नही काँटा ! असल में भाभी भी उसे शादी -शुदा देखना चाहती थी क्योंकि उसका वंश बना रहे। अब सब कुछ खो जाने पर वह जरूर पछताता है, क्योंकि जिसके लिए उसने अपनी जिन्दगी एवं सारा सुख कुरबान किया था वह तो अब निरर्थक साबित हो चुका था। विश्वनाथ को ऐसा लगने लगा कि देश के लिए जान देनेवालों को दुनिया भुल जाती है।

विश्वनाथ ने बाकर मिस्त्री की सहायता से हिन्दी-मन्दिर बनाया। उसने गाँव भर दौड़-भाग करके गाँधीजी की तस्वीर तथा पाठशाला के लिए जरूरी चीजें खरीद ली। लेकिन कहीं से भारत-माता की तस्वीर न मिली। देश बदल गया था। अब उन्हें इन तस्वीरों की जरूरत नहीं थी। सब कहीं फिल्मीं सितारों की तस्वीरों के सिवा कुछ भी जरूरत नहीं रही थी। आखिर विश्वनाथ सब सामान खरीदकर थका-मांदा वह हिन्दी-मन्दिर पहुँच जाता है। विश्वनाथ वहाँ के कमीश्नर साहब से उद्घाटन करवाने का इरादा रखता है, पर वहाँ भी अपमानित हो जाता है। अन्त में बाकर मिस्त्री से उद्घाटन करवाता है। देश की बदलती हालात से वह परेशान हो जाता है।

विश्वनाथ के बचपन के दोस्त बाकर मिस्त्री देश-विभाजन के बाद पाकिस्तान चले गये थे। अब वह पाकिस्तान से अपने बेटे के पास रहने आ गए थे। वह अपनो के साथ यही रहना चाहते थे। इसलिए पुलिस की धमकियों के बावजूद भी उसने अपनी पहचान के सारे कागजात थाने से लेकर जला दिये। ऐसा करने पर बाकर मिस्त्री को जबरदस्ती पकड़कर पाकिस्तान वापस भेजने का प्रबन्ध कर दिया गया तो बाकर मिस्त्री पागल हो जाता है।

विश्वनाथ जिन्दगी के इस सायंकाल में आकर अपनी बेवकुफी पर पछताता है। उसका अब कोई अपना नहीं, अपनी भाषा नहीं,अपना देश नहीं यहाँ तक कि अपना घर भी नहीं है। बाकर मिस्त्री विश्वनाथ की आलोचना करते हुए कहता है कि - ''आखिर किस लिए उसने जिन्दगी बरबाद कर ली। राष्ट्रभाषा प्रचार के लिए ? हिन्दी के प्रचार और प्रसार के लिए ? पर हुआ क्या ? ''[४१] विश्वनाथ अकेलेपन की कड़वी घूँट पीकर हिन्दी-मन्दिर में ही रहने लगता है। अब वह किसी से मिलता जुलता नही, बात भी नहीं करता है। कभी-कभी पुराने परिचित एक दो आ जाते है। अब विवश होकर विश्वनाथ भी अपनी जान से प्यारी हिन्दी के स्थान पर अंग्रेजी का प्रयोग करने लगता है। यहाँ ध्येयनिष्ठ व्यक्ति के आदर्शों का पतन हम देख सकते हैं। आजकल विश्वनाथ अपने में सिमटता दिखाई देता है। आखिर एक दिन बेहोशी की हालत में विश्वनाथ हिन्दी-मन्दिर में दिखाई दिया तो पास-पडोसवालों ने उसे अस्पताल पहुँचाने का इन्तजाम किया।

जीवनभर हिन्दी प्रचार में लगे एक आदर्श हिन्दी प्रचारक विश्वनाथ के जीवनमूल्यों एवं आदर्शों का घोर पतन इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। साथ ही लेखक ने ध्येयनिष्ठ व्यक्ति के जीवन की निस्सारता,गाँधीवादी आदर्शो का पतन, एवं स्वातन्त्र्योत्तर भारत की राजनैतिक चालें तथा राजनीतिक मूल्यों के पतन की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। इस सम्बन्ध में लेखक का कथन है कि- '' महात्मा गाँधी ने जो आदर्श रखे थे और जिनके लिए अनगिनत व्यक्तियों ने अपने जीवन तथा सुख सुविधाओं का बलिदान दिया, वे स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद न जाने कहाँ लुप्त हो गए, और जो व्यक्ति इनको लेकर चले थे उनका जीवन भी नष्ट-भ्रष्ट होकर मानों एक हाहाकार करता रेगिस्तान बन गया ''[४२] इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में स्वातन्त्र्योत्तर भारत के सभी क्षेत्र में हुए मूल्यों के पतन को उभारा गया है।

(१०) सुबह दोपहर शाम-(१९९२) :

यह उपन्यास सन् १९९२ में राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास का कथानक पराधीन भारतीय परिवेश को प्रस्तुत करता है। यह कमलेश्वर का भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम पर आधारित प्रमुख उपन्यास है। उस समय के समाज के सामाजिक,सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिवेश का चित्रण इस में किया गया है।

जसवन्त के परिवार में पत्नी, बेटी, माँ-बाप और बड़ी दादी है। बड़े दादा सन् १८५७ में हुए स्वतन्त्रता संग्राम में शहिद हो गए। बड़ी दादी अपने पति के अरमानों की पूर्ति अपने पुत्र एवं पौत्र से करना चाहती थी, लेकिन सब अंग्रेजों के सेवक बन गए। दादी में पशु-पक्षियों से बातें करने तथा प्रकृति को समझने की अदभूत क्षमता थी। दादी जसवन्त पर भरोसा रखकर जीवन बिता रही थी, लेकिन जसवन्त भी दादी की ईच्छा के विरूद्ध अंग्रेजों की रेल की नौकरी करने लगता है। जसवन्त हर तरह से दादी को समझाने का प्रयत्न करता था पर दादी कहती है -''देख जसवन्त! रोटी तो कुत्ता भी खाता है, जो टुकड़ा फेंक दो उसे ही खा लेता है, पर मनुष्य 'रोटी-रोटी' में भेद करता है...तू रोटी का भेद भूल गया है।''[४३] दादी को लगता था कि जसवन्त अंग्रजों की गुलामी करने जा रहा है। बड़ी दादी इससे निराश होकर घर छोड़कर चली जाती है और आखिरकार जसवन्त रेल की नौकरी करने शहर चला जाता हैं।

जसवन्त और उसकी पत्नी शहर में रेलवे क्वाटर्स में रहने लगते है। उनकी बेटी सन्तो (शान्ता) दादी के पास रहती थी। जब से दादी चली गई थी तब से शान्ता भी उदास रहती थी। जसवन्त उसे शहर ले जाना चाहता था पर वह अपनी बड़ी दादी की प्रतीक्षा में शहर नहीं गयी। कुछ दिनों बाद दीवाली मनाने के लिए गाँव से जसवन्त के माता-पिता भी शहर पहुँचते हैं। सब बड़ी दादी के बारे में चिन्तित थे। एक दिन जंगल के हरकारे से पता चला कि बड़ी दादी जंगल में बैठी हुई है। हरकारे की सहायता से वे सब बड़ी दादी के पास पहुँचते हैं। दादी समाधिस्थ होकर जानवरों से धिरी बैठी थी। जहाँ बड़े दादा शहीद हुए थे वहाँ दादी पत्थर की मुर्ति के समान बैठी थी। बड़ी दादी से पूछने पर दादी ने बताया कि बड़े दादा की ईच्छाओं की पूर्ति को असम्भव मानकर उसने घर छोड़ा था। दादी सब को देखकर ममता से भर जाती है। बड़ी दादी बहुत मनाने के बाद घर चलने को तैयार हुई पर अपने घर की खातिर बाबू के पास मैनपुरी में ही रहने लगी थी। यह भी मानलिया था कि अब यह संसार गोरे-लंगूरो का हो गया है। दादी ने मृत्यु की एक रात पहले अपनी पौती सन्तो से कहा था -'' देख

बेटा ! अब हम तो कभी भी चली जाएगी .....पर अपने घर परिवार का कुछ नेम होता है ... तेरी बड़ी अम्मा और तेरी अम्मा भी तुझे बताएगी । पर बेटा, मेरी इन आँखों में एक ही सपना कौंधता है तेरे बड़े बाबा की मर्जाद रखनेवाला अब कोई नहीं है । अपने बड़े बाबा को याद रखना बेटा और उनकी मर्जाद की रक्षा करना... बस बेटा ! तुम से इस लिए बोल दिया ... कि तू सबसे छोटी है और सबसे ज्यादा जियेगी ।''[४४] मृत्यु के कुछ क्षण पहले तुलसीदल और गंगाजल ले के बापू और बाबू आगे बढ़े तो बड़ी दादी ने इशारे से कहा कि दोनों चीज शान्ता को दे दो ।

जसवन्त अब उस बस्ती का बड़ा लाला है । शान्ता जब बड़ी हो गई तो उसकी शादी कुन्दनलाल के बेटे प्रवीन से हो जाती है,जो स्कूल का मास्टर है । शादी धूमधाम से सम्पन्न होती है । प्रवीन का घराना एक क्रान्तिकारियों का घराना था । नवीन प्रवीन का छोटा भाई जो एक क्रान्तिकारी है और अंग्रेजी पुलिस को उसकी हरतरह से तलाश रहती है । रेलबाबू बारात के जाने का सब इन्तजाम रेलगाड़ी में कर देते हैं । बारात में नवीन बुरखा पहनकर अपनी भाभी से मिलने आता है । यह खबर पाकर पुलिस रेल गाड़ी की तलाशी लेती है, पर उसके पहले ही भाभी उसे बता देती है । बारात के पहुँचने पर नवीन के घर में तलाशी ली जाती है लेकिन पुलिस को खाली हाथ लौटना पडता है । प्रवीन और उसके बापू को चेतावनी भी दी जाती है कि नवीन से कह दे कि सरन्डर कर ले । नवीन और प्रवीन के बीच मे एक दिन उसी बात पर वाद-विवाद होता है । प्रवीन अहिंसावादी है इसलिए वह नवीन का साथ देने को तैयार नहीं होता है । शान्ता बहू मरते दम तक नवीन की रक्षा करने का वादा करती है तो सब चकित हो जाते हैं । लेकिन यह सब शान्ता के मुख से बड़ी दादी कह रही थी । अंग्रेजों ने शान्ता के बाप को भी आज्ञा दी कि क्रान्तिकारी परिवार के साथ कोई सम्बन्ध न रखे । इसलिए गर्भवती शान्ता को प्रसुति के लिए पिता घर बुलाने को मंजूर नहीं होते है पर माँ उसे जबरदस्ती घर ले आती है । एक दिन नवीन शान्ता के पड़ोसी सूरज से खबर पाकर मुन्ने को देखने वहाँ आ जाता है । भाभी नवीन को मून्ने जैसा प्यार देती है, फिर होली में आने का वादा करके चला जाता है ।

एक-एक के बाद पाँच होली बीत गई लेकिन नवीन नहीं आया । नवीन की अनुपस्थिति में अब तक भाभी ने भी होली नहीं मनाई थी । इस बार घर में होली की तैयारियाँ हो रही थी तो अचानक नवीन वहाँ दिखाई दिया । सब मिलकर धूम-धाम से होली मनाते है । सबके चेहरे एवं शरीर रंगो से भर गया है । उस खुशी की बेला में अंग्रेजी इन्स्पेक्टर अपने गारद लेकर अचानक वहाँ आ जाता है । शान्ता ने अत्यन्त

कुशलता से मुँह धुलाई के पानी ले आने के बहाने नवीन को वहाँ से बचा लिया। प्रवीन को नवीन समझकर इन्स्पेक्टर प्रवीन का मुँह धुलवाता है। शान्ता ने निड़र होकर इन्स्पेक्टर पर अपनी बेइज्जती तथा त्यौहार भंग करने का आरोप लगाया तो अंग्रेज तिलमिला उठा और प्रवीन एवं पिता को थाने आने की आज्ञा देकर चला गया।

अगले दिन प्रवीन पिता के संग थाने गया। पुलिसवालों ने प्रवीन को अकेले अन्दर बुलाकर पूछताछ करके खूब पिटा। बेटे की कराह सुनकर पिता भी अन्दर घुसे तो उन्हें भी खूब पीटा गया। प्रवीन पुलीसवालों का अत्याचार न सह सकने के कारण तथा घर पर पड़ने वाली विपत्ती के बारे में सोचकर नवीन का पता-वता सब कुछ बता देता हैं। पुलिस दोनों को जमानत पर छोड़ देती है। प्रवीन की करनी पर शान्ता पति से भिड़कर कहती है कि तुम मेरे सुहाग जरूर हो लेकिन देश के लिए कलंक हो। दोनों में बहस होती है।उस समय आँगन में कोलाहल मच जाता है। नवीन अपने भाई प्रवीन की बात को धोखेबाजी मानकर असलियत जानने को अपने घर पहुँचता है। नवीन आया है यह खबर पाकर पुलिस भी प्रवीन के घर पहुँच जाती है। शान्ता नवीन को पकड़कर ऊपर छत पर ले जाकर दरवाजा बन्द कर देती है। उसके पीछे दरवाजा तोड़कर नवीन को जिन्दा पकड़ने का आदेश पाकर गारद भी ऊपर पहुँचता है। तब शान्ता अपनी धोती खोलकर खिड़की से बाहर फेंककर गरज ने लगती है - '' अरे तुम हिन्दूस्तानी होकर फिरंगी की चाल चलने लगे, अपनी माँ-बहन को नंगा देख पाओगे तो तोड़ो दरवाजा।''[४५] शान्ता को ऐसी हालत में न देख पाने के कारण वे सिपाही सिर झुकाकर खड़े रह जाते हैं। इन्स्पेकटर ने चीखकर पिस्तोल निकालकर अपने ही सिपाहियों के सामने तान दी थी। उसी समय गोली चलने की एक गूंजती आवाज आई। यह नवीन की पिस्तोल से गोली चली थी और अंग्रेज इन्स्पेक्टर की लाश वही छत पर गिर पड़ी थी। बाबूजी के मुँह से निकला की यह बहू नहीं एक और बड़ी दादी पैदा हुई है। इस प्रकार एक और बड़ी दादी की इच्छाओं की पूर्ति करनेवाली तथा दूसरी ओर अंग्रेजों से लड़कर देवर की रक्षा करने वाली शान्ता का सशक्त चित्र इस उपन्यास में खींचा गया है।

कमलेश्वर के इस उपन्यास में अंग्रेजी राज में भारतीय जनमानस मे व्याप्त राष्ट्रीयता की भावना, स्वतन्त्रता प्राप्ति में क्रान्तिकारियों की भूमिका और तत्कालीन परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत हुआ है। इस उपन्यास की कथा स्वातन्त्र्य पूर्व की तनावपूर्ण स्थितियों का सजीव चित्र प्रस्तुत करती है।

(११) कितने पाकिस्तान -(२०००):

यह उपन्यास जनवरी सन् २००० में राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली से प्रकाशित हुआ है । कमलेश्वर का 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास काफी प्रसिद्ध और चर्चित रचना है । कमलेश्वर हिन्दी साहित्य की तीसरी पीढ़ी के ऐसे रचनाकार है, जिन्होंने नई शताब्दी के ऐतिहासिक शुभारंभ में अपनी यह रचना से न केवल पिछले सभी साहित्यकारों और उनके कृतित्त्व को पीछे छोड़ दिया है बल्कि स्वयं उन सब के साथ आगे जा खड़े हुए है । उन्होंने भारतीय के साथ विश्व-साहित्य को भी सार्थक लेखन की एक बिलकुल नयी विधा, एक नया भूगोल, एक नया दृष्टिकोण प्रदान कर भविष्य का एक नया मार्ग खोल दिया है ।

यह उपन्यास मनुष्य के आज तक जिये समग्र जीवन और इतिहास को नैतिकता के तराजू पर नाप-तौल कर दूध और गंदा पानी अलग कर देता है और इतिहास पर फैसला देता है जैसा साहित्य में कभी नहीं हुआ और इसकी आज सबसे ज्यादा जरूरत महसूस की जाती है । लेखक ने उपन्यास के प्रारम्भ में स्वयं कहा है कि- '' यह उपन्यास मन के भीतर लगातार चलने वाली एक जिरह का नतीजा है । दशकों तक सभी कुछ चलता रहा । मैं कहानियाँ करता और कोलम लिखता रहा । नौकरियाँ करता और छोड़ता रहा... एक ओर ऐसी तमाम रचनाओं विचारों, इतिहास की सैकड़ों सर्जनात्मक दस्तकों और व्यवधानों के बीच रूक-रूककर 'कितने पाकिस्तान' का लिखा जाना चलता रहा ।''[४६]

कमलेश्वर का यह उपन्यास इतिहास और संस्कृति के माध्यम से अनेक जटिल सवालों से साक्षात्कार करता है । लेखक इन सवालों की तह में जाने का प्रयास करते है । लेखक ने देवताओं को आलसी, अकर्मण्य और उपजीवी माना है । वह कहते है कि तुम्हारे सारे आचरण अवैद्य है, इसलिए तुम किसी वैद्य सभ्यता या संस्कृति का निर्माण नहीं कर सकते हो । तुम्हारे पास केवल वासना है, प्रेम नहीं । केवल वैयक्तिक श्रेष्ठता का द्वेष है, मित्रता नहीं । जब मनुष्य के पास प्रेम और मित्रता है ।

संस्कृति के निर्माण में सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व श्रम है, श्रम के बिना किसी संस्कृति और सभ्यता की कल्पना नहीं की जा सकती । देवता श्रम नहीं करते इसलिए वे किसी संस्कृति का निर्माण भी नहीं कर सकते । देवताओं ने अपने अस्तित्त्व और वर्चस्व के लिए युद्ध का आविष्कार किया, लेकिन मनुष्य ने श्रम के साथ कर्म और शान्ति जैसे महत्त्वपूर्ण जीवन मूल्यों को खोजकर उन्हें विकसित किया है । इसके बारें

में संदेशी कहता है कि-'' मनुष्य ने जिन महाशक्तियों का अन्वेषण किया है, वे आपके पास नहीं है । उसने आविष्कृत कर लिया है-जीवन,कर्म,श्रम,प्रेम, मित्रता और शान्ति जैसे महातत्त्वों को....इसलिए उसकी अमरत्त्व की कामना अनुचित नहीं है ।''[४७]

हमारे कुछ नेता रामराज्य को आदर्श मानकर आज भी उनकी पुनः स्थापना की उद्घोषणा कर रहे हैं । किन्तु क्या वे तत्कालीन समाज व्यवस्था एवं नियमों से पूर्ण परिचित है ? -''शायद वे भूल रहे हैं कि जिस राज्य अथवा समाज में असमानता की गहरी खाई हो, बुद्धि और विवेक का सत्ता के साथ उपयोग न हो ,एक वर्ग विशेष के हितों की पूर्ति हो, वह रामराज्य भी दलितों एवं अवर्णो पर सवर्णो के अत्याचारों का द्योतक है ।''[४८]

लेखक ने उस समय कि स्थिति के बारे में कहा कि तब धर्मशास्त्रों के तप, अध्ययन और साधना से मोक्ष को प्राप्त करने का अधिकार केवल ब्राह्मण,क्षत्रिय और वैश्य के पास था । किन्तु रामराज्य में शुद्रवंशी शम्बुक अपने दास धर्म को त्यागकर मोक्ष के लिए साधना कर रहा था । नारदजी ने सूचना दी कि इस महापाप के कारण ही ब्राह्मण पुत्र की मृत्यु हुई है । फिर राजा रामचन्द्रजी ने क्षत्रिय धर्म का पालन किया और ब्राह्मण धर्म की रक्षा के लिए शुद्र शम्बुक जैसे ऋषि तपस्वी की गर्दन काटकर धड़ से अलग कर दी । यहाँ उपन्यासकार स्पष्ट घोषणा करते है कि आज समाज में जो जातिगत द्वेष और वैमनस्य का वातावरण है, वह उपरोक्त व्यवस्था की ही देन है ।

इस तथाकथित भारतीय संस्कृति में नारी की स्थिति सदैव निम्नतम स्तर पर रही है, इस संस्कृति की पुरोधा नारी को 'देवी' जैसे शब्दों से अलंकृत तो करते रहे हैं किन्तु उसे सम्मानजनक स्थान कभी प्रदान नहीं किया गया । यहाँ तक कि बिना किसी कसूर के उसे पुरूष का कोपभाजन बनना पड़ता है । उपन्यासकार ने अहिल्या के प्रसंग से इस बात को रेखांकित किया है । यहाँ कमलेश्वर अपनी संस्कृति की मर्यादाओं को भी बेबाक शब्दों मे अभिव्यक्त करते हैं । ऋषि गौतम, इन्द्र, चन्द्रमा और अहिल्या तीनों को सजा देते हैं । तब लेखक प्रश्न उठाते है कि इन्द्र और चन्द्रमा को ऋषि गौतम ने सजा दी यह बात ठीक है किन्तु अहिल्या को क्यों सजा दी ? उसका कुसूर क्या था ? लेखक कहते है कि विलासी आर्यो ने हंमेशा औरतों को अपनी सम्पति माना है ।

जिन्ना इतिहास में एक खलनायक की तरह वर्णित है । यह सही है कि भारत-पाकिस्तान के विभाजन में उनकी जाने-अनजाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका थी । लेकिन इतिहास में इस तथ्य को मजबूती से उभारा गया है कि ब्रिटिश साम्राज्य इस

कुकृत्य के लिए जिम्मेदार है । जिन्ना तो उसके शतरंज की चाल के मोहरे बन गये । पाकिस्तान का निर्माण सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक सभी दृष्टिकोणों से एक गलत फैसला था । इतिहास इस बात का साक्षी है कि गलत निर्णय अनेक विद्रुपताओं को जन्म देता है । इस उपन्यास में इतिहास और संस्कृति का गहन परिक्षण किया गया । इसमें भारतीय इतिहास के महत्त्वपूर्ण पक्ष शाहजहाँ का समय और उसके पश्चात सत्ता के लिए उत्पन्न होनेवाले संघर्ष का जीवन्त एवं कलात्मक चित्रण है । यह वही काल खण्ड है जिसके परिणाम स्वरूप बहुत दुःखद परिणाम झेलने पड़े । शाहजहाँ का शासन काल अर्न्तविरोधी खींचावों का दौर है, यहाँ कट्टर धर्मान्ध भी है और उदार न्यायवादी तथा जनवादी भी है ।

इस उपन्यास में इस तथ्य को लेखक हमारे सामने रखते है कि दाराशिकोह और औरंगजेब के बीच युद्ध वैचारिक मतभेदों के परिणाम स्वरूप नहीं था, बल्कि उसका लक्ष्य सत्ता प्राप्ति था । लेखक ने वर्तमान समय की समीक्षा करके राजनैतिक पसंद को भी रेखांकित किया है । वह कहते है कि– ‘‘ लेखक कारगिल के प्रसंग में खुलि चिट्ठी लिखकर प्रधानमंत्री और रक्षामंत्री की ‘अक्षम्य लापरवाही’ और ‘नैतिक पतन’ की पराकाष्ठा पर टिप्पणी भी कर सकता है ।’’[४९]

यह उपन्यास कई स्तरों पर एक साथ सक्रिय होकर बढ़ता है । वर्तमान के आईने में अतीत की घटनाएँ ऐसे तथ्यों के साथ पेश है कि लगता है इतिहास को अगर सही परिप्रेक्ष्य में न देखा जाएँ तो समय हमारे साथ कितना बड़ा अनर्थ करके चला जाता है । ‘बाबरनामा’ के २० पृष्ठों को गायब करके अंग्रेज शासकों ने तथ्य हमारे सामने रखे, वे उजालों पर कालिख पोतने का पर्याय है ।

कमलेश्वर का यह उपन्यास हमारे सामने इतिहास को देखने की नई दृष्टि रखता है और तथ्य भी उजागर करता है कि अगर सही नजरिए से आप अपने समय को नहीं देखेंगे तो इन्सान का हर खूबसूरत इलाका तकसीम की वेदी पर कुरबान होता रहेगा । इतिहास के चरित्रों पर ऐसी टिप्पणियाँ है कि उन्हें पढ़कर एक रचनाकार की सूक्ष्म दृष्टि का हिसाब लगाया जा सकता लेखक इतिहास की गर्त में छिपे तथ्यों को जिस तर्कबद्धता से व्यक्त करता है, उससे उसका इतिहास सम्बन्धी अध्ययन का बाहूल्य स्पष्ट होता है ।

यह उपन्यास समय सीमा के दायरें को लाँधकर विस्तृत फलक पर लिखा गया है । इस सन्दर्भ में कन्हैयालाल नन्दन ने ठीक ही कहा है – ‘‘यह फलक इतना

व्यापक है कि कारगिल युद्ध के प्रकरण से जुड़कर सदियाँ सामने खड़ी हो जाती है । आर्यो का भारत आगमन, सिन्धु घाटी सभ्यता, युनानी बेबीलोनियन, मेसोपोटामियन, सुमेरीअक्कादी सभ्यताएँ अनेक नियमों का उल्लेख करते हुए उपन्यास की कथावस्तु में इस तरह गुँथकर प्रस्तुत है जैसे इतिहास में वर्णित सदियों एक मुहल्ले की बाशिन्दा हो । कमलेश्वर उन मुहल्ले की गलियों में इस तरह भ्रमण करते है जैसे सुबह में कोई 'मोर्निंग वॉक' के लिए निकले और बगलवाले घर में दस्तक देता हुआ अपनी बात कहकर आगे बढ़ जाएँ ''[५०]

यह उपन्यास वर्तमान धार्मिक उन्माद, वैमनस्य, विवेकहीनता, युद्ध लोलुपता आदि पर एक प्रश्न चिह्न है । कमलेश्वर का यह उपन्यास मानवता के दरवाजे पर इतिहास और समय की एक दस्तक है । लेखक ने इस उम्मीद के साथ कहा कि भारत हीं नही, दुनिया भर में एक के बाद एक दूसरे पाकिस्तान बनाने की लहू से लथपथ यह परम्परा अब खत्म हो । मैत्री,शान्ति और सद्भावना का आशाभरे सन्देश के साथ यह उपन्यास समाप्त होता है ।

(१२) अनबीता व्यतीत -(२००४) :

'अनबीता व्यतीत' कमलेश्वर का बहुचर्चित एवं प्रसिद्ध उपन्यास है । जिसका प्रकाशन सन् २००४ ई. में लोकभारती प्रकाशन-इलाहाबाद से हुआ है । लेखक ने इसमें सर्दियों में सायबेरिया और उत्तरी गोलार्ध से उड़कर भारत आनेवाले सुन्दर और मासूम पंछियों का वर्णन किया है । लेखक ने इसके द्वारा इन मासूम पंछियों के पीछे मृत्यु की ओछाय पडी रहती है । जगह-जगह उसे मारा या पकड़ा जाता है और उनका व्यापार किया जाता है । लेखक ने इसी यथार्थता को उजागर करने का प्रयास किया है । नीलझील पर यह पंछी जीवन पाने के लिए आते हैं, बसेरा करते हैं परन्तु शिकारी की एक गोली छूटती है और सारा वातावरण कोलाहल से भर जाता है । यह उपन्यास इसी दारूण मृत्यु परम्परा के अंधे अभियान से मुक्ति का आख्यान है ।

उपन्यास के प्रारम्भ में लेखक ने सुमेरगढ का वर्णन किया है । दूर-दूर तक फैली अरावली पर्वतमाला की गोद में एक ऊँची समतल सपाट पहाड़ी पर सुमेरगढ की कोठी बनी हुई थी । सुमेरगढ राज्य भारत देश में विलीन हो चुका था । इसलिए अब दुर्ग की वह आन-बान और चहल-पहल नहीं रही थी । भारत में विलीन हो जाने के बाद ही दुर्ग के सैनिकों और पहरदारों को ही नहीं, दर्जनों दास-दासियों को भी छुट्टी दे दी गई थी । सुमेरगढ के राज परिवार के लोग अन्य नगरों में चले गए थे ।उनके

तलवार उठानेवालें हाथों ने तरह-तरह के व्यवसाय करने का आरम्भ कर दिया था। इससे 'तलवार छोड़कर तराज़ू' उठा लेनेवाली कहावत यथार्थ में परिवर्तित हो गई थी।

आज सुमेरगढ के विशाल दुर्ग में गहरा सन्नाटा छाया हुआ था। सुमेरगढ के महल में नानी माँ राजलक्ष्मी सबसे ऊँपरी छत पर इस छौर से उस छौर तक बड़ी बेचैनी से चक्कर से चक्कर लगा रही थी। उनके चहेरे पर पीड़ा की रेखाएँ, बड़ी-बड़ी आँखों में भय तथा विषाद की छांया झाँक रही थी। आज उनका मन बहुत ही अशान्त था। वह इस तरह चौंक पड़ती थी जैसे कोई भयानक दृश्य देखा हो। उनकी आँखों के आगे एक बार फिर वह दृश्य साकार हो उठता था। सचमुच वह दृश्य बहुत भयानक था। महल के विशाल दिवान खाने के संगेमरमर के फर्श पर दूर-दूर तक खून फैला हुआ था। वहाँ कई आकार-प्रकार के छोटे बड़े पक्षियों के मृत शरीर पड़े थे। एक कोने में मादा हिरणी की रक्तरंजित लाश पड़ी थी। नानी माँ महारानी राजलक्ष्मी देर तक उन पथराई आँखों को नहीं देख पाई क्योंकि उनकी आँखों से उमड़ते आँसूओं की चादर ने पूतलियों को ढंक दिया था। ऐसा प्रतीत होता था कि वह देखने की शक्ति खो बैठी थी।

महारानी राजलक्ष्मी यह दृश्य देखकर एकदम शिथिल हो जाती है। उनका सिर चकराने लगता है। वह ईश्वर को कहती है-''हे भगवान ! जब तुने इन जीव-जन्तुओं को जीवन दिया था तो इन्हें इतनी शक्ति भी देता कि ये बेचारे अपने जीवन की रक्षा कर पाते।......तेरी दी धरोहर को उन निर्दयी हाथों से बचा पाते जो तूने इन्हें दी थी। विचित्र है तेरी माया .....जीवन-मृत्यु का यह दुःखमयी संयोग....काश इन्सान इसे समझ पाता ...।''[५१] दर्द की तेज लहरों से बेचैन होकर एक लम्बी सांस छोड़ती हुई वह अपने शयन कक्ष की ओर चली जाती है। लेखक ने इसके द्वारा निर्दयी, बेरहम और जालिम इन्सान पर प्रकाश डाला है।

महारानी राजलक्ष्मी उनकी पुत्री विजया और उसकी नातिन समीरा तीनों को पशु-पक्षियों से अधिक प्रेम था। समीरा सुबह उठकर नीलीझील पर नहीं जाती तब तक नाश्ता नहीं करती थी। वह झील पर घण्टों भर बैठी रहती और उसी मासूम पंछियों को देखती रहती थी। जब की विजया को पंछी आकाश और पेडों पर अच्छे लगते थे। वह पंछियों को पिजरों में कैद करना पसंद नहीं करती थी। सुमेरगढ के राजा सुरेन्द्रसिंह का स्वभाव इन सभी से बिलकुल भिन्न था। भारत के स्वतन्त्र होने के कारण सारे देशी राज्यों की रियासते चली जाने से सुमेरगढ मे अन्धकार और सन्नाटा था।

इस सन्नाटे ने महाराजा के तन-मन को भी नहीं छोड़ा था । सारी संपत्ति सरकारी तिजोरी में कैद थी । महाराजा को धन्धे या व्यापार में ज्यादा नुकशान होता था तो शानो-शौकत और एय्यासी की ज्यादा नुमाइश करते थे । आज वह अपनी मित्र-मण्डली के साथ शिकार के लिए निकल रहे थे । समीरा सोचती थी नानाजी के लौटने के बाद नानी माँ की प्रतिक्रिया क्या होगी ? नानी माँ उनकी महफिलों से नाराज नहीं होती थी, पर शिकार पर जाना, जंगल में जश्न मनाना और अपने साहस तथा निशानेबाजी की क्रुर निशानी के तौर पर किसी बड़े शिकार को लेकर महल लौटना उसे कतई पसन्द नहीं था । यह सब सोचकर समीरा का मन आशंकाओं से भर उठा था ।

महाराजा सुरेन्द्रसिंह को हंमेशा की तरह प्रकृति के प्रति वीतराग था । वैसे भी शिकार से लौटने के बाद महाराज कुछ ज्यादा ही परेशान रहते थे । मानसिक हलचल के ऐसे मौको पर अंदरूनी तनाव के ऐसे क्षणों में जब उनकी समझ में कुछ नहीं आता था, तो वे अपनी बंदूके गिनने, सँभालने या साफ करने लगते थे । वह ऐसे मानसिक तनाव में थे कि तभी आसमान में काले बादलों के बीच तेज बिजली कड़की और एकाएक दीवानखाने की तरफ से कुछ तेज आवाजें आने लगी । ऐसा लगा कि पंछियों का कोई झुण्ड दिवानखाने में घुस आया हो । भयग्रस्त चीखें, पंख फड़फड़ाने, इधर-उधर टकराने और फिर काँच के टूटनें की आवाजें और तेज होती चली गई । महाराज दिवानखाने में पहुँचे तो देखा कि काकातुआ भयग्रस्त होकर छत से लटकते शाही झुमर से बार-बार टकराते थे । काकातुओं के पंखों की चोंट और उनकी मार से झुमर दीवानखाने के फर्श पर आ गिरा । सुरेन्द्रसिंह ने क्रोध से बन्धुक काकातुआ की ओर उठा दी और धमाको के साथ दोनों काकातुआ चीखते हुए फर्श पर गिर गये । उस समय महारानी पूजा कर रही थी । अचानक गोली की आवाज सुनकर दीवानखाने में दौड़ आती है । काकातुआ को मरे देखकर विह्वल हो जाती है । वह महाराज को दोषी मानती हुई कहती है- ''महाराज किसी की जान लेना तो बहुत आसान है लेकिन मुश्किल है किसी को जिन्दगी देना । ''[५२] इस घटना के बाद महारानी की तबियत दिन-ब-दिन बिगड़ती चली गई । समीरा को लगा कि जैसे महारानी की जान काकातुआ में बसी थी । थोडे दिन के बाद महारानी राजलक्ष्मी की मौत हो जाती है ।

महारानी की मृत्यु के बाद महाराज अकेले हो जाते है । महारानी साहिबा की मृत्यु के लिए वह अपने आपको जिम्मेदार मानते थे । वह उसके बाद ज्यादा व्यस्त दिखाई देने लगे । थोड़े समय के बाद भारतीय पुरातत्त्व विभाग से एक अफसर सुमेरगढ रियासत के पुराने भवनों, खण्डरों, इमारतों की खोजबीन करने आया था । मास्टर दीनानाथ सुमेरगढ के अध्यापक थे । उनकी पुत्री दिव्या समीरा की सहेली थी । वह

नौजवान दीनानाथ की सहायता से एक कमरा किराये पर रखता है । दिव्या के पूछने पर वह बताता है कि इन नीलीझील, मन्दिर आदि सौंदर्य की रक्षा अब राजाओं के बस की बात नहीं है,इसलिए देश की सरकारने यह काम हमारे विभाग को सौंप दिया है । पुरातत्त्व विभाग का गौतम कई स्थान पर घूमता है ,दिव्या भी उसके साथ जाकर सुमेरगढ का पूरा परिचय देती है । एक दिन गौतम ,सुमेरगढ में परमार राजा द्वारा अपनी प्रेमीका के लिए पहाड़ी पर बनाया गया कलात्मक महल देखने जाता है ।उसे देखने के बाद वह सीधा नीलझील पर पहुँचता है वहाँ उसकी मुलाकात समीरा के साथ होती है । दोनों बातो में लीन हो जाते हैं, उसी वक्त दिव्या झील तक आती है दोनों को हँसता देखकर चली जाती है । उसे लगने लगता है कि गौतम के साथ वह इतने दिनों से थी पर वह कभी इस तरह हँसता नहीं था । दिव्या को न जाने क्यों ऐसा लगता है जैसे की उसका स्थान समीरा ने ले लिया हो ।

दिव्या की मनःस्थिति विचित्र हो जाती है । आज से पहले तो उसने ऐसा कभी महसूस नहीं किया था । दोनों बरसो तक एक दूसरे को सगी बहन ही समझती रही थी । दोनों के दिलों में एक दूसरे के लिए बेहद प्यार था । महारानी राजलक्ष्मी के देहान्त के बाद समीरा एक बार भी दिव्या के घर नहीं आई थी, जब कि दिव्या ने शोक के दिनों में समीरा को एक पल के लिए भी अकेला नहीं छोड़ा था । सुमेरगढ में आने के बाद शायद ही कोई ऐसी शाम गुजरी थी जब वे दोनों साथ न रही हो । अब एक-डेढ़ महिना बीत चुका था । जब से समीरा अपनी माँ साहिबा के पास वापस आई थी,तब से उनका रवैया बिलकुल बदल चुका था । समीरा की उसके प्रति उदासीनता और उपेक्षा और साथ ही गौतम के बदलाव से दिव्या को बड़ा मानसिक आघात लगा था । उसने सपने में भी नहीं सोचा था कि समीरा और गौतम इस तरह बदल जायेंगे । इसी आघात से वह चली जाती है । सारी जगहों पर ढूँढने के बाद दिव्या नहीं मिलती । एक दिन झील की चट्टान पर से दिव्या की शॉल, चप्पलें और उसका पर्स मिलता है, तो समीरा बहुत शोक में डूब जाती है क्योंकि समीरा अभी नानी माँ के देहान्त का दुःख और शोक को भूला नहीं पाई थी कि अब दिव्या की गुमशुदगी ने उसे दिल पर एक और गहरी चोंट कर दी । मास्टर दीनानाथ ने पत्नी की मृत्यु के बाद दिव्या के सहारे ही अपनी जिन्दगी के इतने साल बिताये थे । दिव्या की आत्महत्या एक ऐसा रहस्य बनकर रह गई थी जिसे सुलझा पाना तो दूर, उसके कारण तक का कोई अनुमान नहीं लगा सका ।

महाराज सुरेन्द्रसिंह की तबियत दिन-ब-दिन गिरती जा रही थी इसलिए उन्होंने अपनी बेटी विजयालक्ष्मी और दामाद कुँवर नरेन्द्रसिंह को सुमेरगढ बुला लिया

था। समीरा की माँ साहब और बाबूजी साहब ने आते ही सारी जिम्मेदारीयाँ संभाल ली थी, साथ ही वे दिनों-दिन घटती शाही आमदनी में इजाफा करने के लिए नये कारोबार शुरु करने की योजनाओं में व्यस्त भी रहने लगे थे। एक रात समीरा चीड़ियो की चहचहाने-चीखने की तेज आवाजें सुनती है और उसी दिशा में चली जाती है। पिजरों में कैद पंछियों की दर्दभरी आवाजें ,उसकी छटपटाहट देख समीरा की आत्मा चीख उठती है। समीरा पिता साहब के हाथों बर्बरता भरा व्यवहार देख वह राजपूतों का धर्म समझाती हुई कहती है - ''परिन्दो को एक्सपोर्ट करना था ? इन मासूम परिन्दों को ! जिन्होंने आपका कभी कोई नुकशान नहीं किया... जिन पर किसी का कोई अधिकार नहीं और फिर इन परिन्दों ने आपका क्या बिगाड़ा था ?...ये कुदरत की सन्तान है..... ये मासूम परिन्दे आपकी मिल्कियत नहीं है..... आपके राज्य की प्रजा नहीं है.... ये तो न जाने कहाँ -कहाँ से .... जाने किस-किस देश से, सैकड़ों-हजारों मील दूर के देशों से यहाँ झील पर शरण लेने आते हैं।.... क्या शरणागतों पर यह अत्याचार आप जैसे राजपूतों का धर्म रह गया है ? क्या धन की भूख ने आपकी मान-मर्यादा और धर्म सबकुछ निगल लिया है।''[५३]

इस हादसे के बाद कुँवर नरेन्द्रसिंह ने समीरा के घूमने-फिरने पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। समीरा को पिता की इन बातों से स्पष्ट हो गया था कि उसके झील पर जाने पर ही नहीं, गौतम से मिलने पर भी रोक लगाई जा रही है। एक दिन वह झील के किनारे बहेलियों को जाल फैलाये देख लेती है। वह नानाजी के कमरे से बन्दूक लेकर सीधा झील पर पहुँचकर आकाश की ओर उठाकर ट्रिगर दबा देती है और पंछियों को बचा लेती है। समीरा गौतम के साथ सुमेरगढ राज्य पर सरकार अधिकार कर लेगी तो ना इन्साफी होगी ? इसके बारे में बातचीत करती है तो गौतम कहता है कि वह अतीत के एक-एक स्मारक के इतिहास को खोजकर उसका अच्छी तरह अध्ययन करके यह सब कुछ देश-दुनिया को बताना चाहता है कि- '' यह देश भिखारियों, मदारियों,बाजीगरों, ढिढोरा और सँपेरों का देश ही नहीं जिसका ढिंढोरा अंग्रजो ने वर्षो तक पीटा था .....बल्कि यह देश कितना धन,वैभव,शक्ति,पराक्रम और विभिन्न कलाओं से परिपूर्ण देश है।''[५४] उपन्यास में गौतम के द्वारा व्यक्त किये गये इन शब्दों से लेखक अपने देश-प्रेम को व्यक्त करते है।

समीरा की शादी रतनपुर राज्य के युवराज जयसिंह के साथ हो जाती है। जयसिंह का आयात-निर्यात का कारोबार सफलता की चोटी पर पहुँचा हुआ था। शादी के पश्चात समीरा रतनपुर में घुल-मिल गई थी। समय के साथ समीरा को पुत्र जन्म होता है पुत्र जन्म के उपलक्ष्य में युवराज जयसिंह ने रतनपुर में बहुत शानदार समारोह

का आयोजन किया था। धार्मिक परम्परा के अनुसार रानी -महारानियों के लिए अलग से एक भजन संध्या का आयोजन भी किया गया। भजन संध्या में तानपुरे की झंकार के साथ दीपशिखा का स्वर समीरा को परिचित लग रहा था। समीरा ने उसी क्षण सोचा कि भजन संध्या का कार्यक्रम समाप्त होने बाद ही वह दीपशिखा को अपने कक्ष में बुलाकर सच्चाई जानने की कोशिश करेगी। परन्तु कार्यक्रम के समाप्त होने के पहले ही दीपशिखा चली गई थी।

समीरा को रतनपुर आये डेढ़ साल बीत चुका था। समीरा को किसी चीज का अभाव नहीं था, लेकिन कभी-कभी एक अजीब-सा सूनापन उसे घेर लेता था। पति जयसिंह अचानक कई दिनों के लिए रतनपुर से बाहर चले जाते थे तब वह अकेली हो जाती थी। समीरा को सिर्फ इतना पता था कि आयात-निर्यात का वह कोई फलता-फूलता कारोबार करते हैं और उनका कारोबार दिल्ली, बम्बई के अलावा भारत के कई छोटे-छोटे नगरों में फैला हुआ है। एक दिन जयसिंह समीरा को उदास देखकर कहते है कि तुम हमारे साथ फार्म हाउस चला करो। वहाँ की पहाड़ियाँ तुम्हे खूब अच्छी लगेगी। समीरा पति के साथ फार्म हाउस पहुँची तो फार्म में खड़ी फँसलों, दूर-दूर फैली हरी-हरी पहाड़ियों को देखकर उसके तन-मन पर छाई थकान दूर हो गई। फार्म हाउस मे आकर आँखों के लिए दृश्य तो बदला था, लेकिन यहाँ भी रात का गहरा होता अँधेरा उसी तरह उतर रहा था जैसे वह महल में उतरा करता था।

जयसिंह रात को देर से आता है उसके शरीर से आती हुई गन्ध ने समीरा को कुछ अनासक्त-सा और कुछ-कुछ बेचैन कर दिया। उसी रात को ढेर सारी चिड़ियों की आवाजे उसके कानों में टकराई। उसने उसी आवाज को सुनने और समझने की कोशिश की। वह झटके के साथ उठी और खिड़की के सामने आ खड़ी हुई। परन्तु पति जयसिंह ने उसे लिटा दिया। सुबह समीरा उन पहाड़ियों को देख रही थी कि अचानक उसकी नजरें फार्म हाउस की दीवार के साथ जाती हुई सड़क की ओर चली गई। उस सड़क पर कुछ ट्रक खड़े थे, जिनमें चीड़ की बड़ी-बड़ी बक्सेनुमा पेटीयाँ लदी हुई थी। फिर भी समीरा की समझ में कुछ नहीं आया। सोचा, कुँवरजी के निर्यातवालें कारोबार से इन ट्रकों और पेटियों का सम्बन्ध होगा। तभी जयसिंह आये उन्होंने समीरा से कहा कि मैं तुम्हें सबसे शानदार और नायब कलेक्शन दिखाऊँगा। दुनिया में किसी के पास ऐसा म्युजियम नहीं है। तुम देखोगी तो हैरत से देखती रह जाओगी।

संग्रहालय एक शानदार इमारत में था। दीवारों पर तमाम देशी-विदेशी

पंछियों की बड़ी ही जीवंत तस्वीरे लगी थी। वहाँ के पंछी विशेषज्ञ ने समीरा को सारे पंछियों की जानकारी दी। समीरा बड़ी उत्सुकता और व्यग्रता से यह विवरण सुन रही थी। जब संग्रहालय को देख रही थी तब लाईट चली जाती है। दूसरे दिन समीरा यह संग्रहालय देखने के लिए उतावली होती है। वहाँ जयसिंह उसे काँचके शो केस में रखे तरह-तरह के बंदी पंछियों को दिखाते हैं और कहते है कि यह अब कही नहीं जा सकते तुम जब चाहो इसे देख सकती हो। एक-एक को देखो समीरा कितनी खूबसूरती से इन्हें सिला ओस्फट किया है। यह सुनकर समीरा की यादों की दुनिया टुकड़ों -टुकड़ों में बिखर गई। वह कुँवर को कहती है कि मैं मुर्दों की इस दुनिया से बाहर जाना चाहती हूँ।

समीरा फिर से सुमेरगढ चली जाती है। लेकिन वहाँ पर उसे पहले जैसा मान-सम्मान नहीं मिलता। कभी-कभी वह झील पर जाकर अपने मन को हल्का करती हैं। थोड़े दिन बाद फिर जयसिंह उसे लेने के लिए आते है तभी समीरा कहती है कि आप पंछियों का व्यापार बंद कर दे तो ही मैं आ सकती हूँ। समीरा की ऐसी सोच और हरकतों के लिए सारे लोग गौतम पर शंका करने लगते है और उसे मारने की हिलचाल करते है थोड़े ही दिनों में सारा षडयंत्र रचा जाता है लेकिन समीरा उसके बारे में जान जाती है। समीरा गौतम को बचाने के लिए सुबह से ही झील पर चली जाती है। जयसिंह समीरा को झील की ओर जाते देखकर उसके पीछे आकर गोली मार देते हैं और समीरा की मृत्यु हो जाती है।

कमलेश्वर ने इस उपन्यास में सामन्ती अहंवादिता का वर्णन किया है झूठे ठाठ और अहं की वजह से समीरा की मृत्यु के द्वारा लेखक ने व्यंग्य भी किया है। कथा के अन्त में गौतम नीलीझील खरीदकर उसे पंछियों की धर्मशाला बनाता है। यही बात से उपन्यासकार ने इस उपन्यास को मानवीय जीवन के साथ पंछियों का नाता जोड़कर उसे अन्य उपन्यासों से अलग ही पहचान देने की कोशिश की है।

(१३) पति पत्नी और वह-(२००६) :

'पति पत्नी और वह ' कमलेश्वर का बहु चर्चित एवं प्रसिद्ध सिने-उपन्यास है। इसका प्रकाशन सन् २००६ ई. में राजकमल प्रकाशन दिल्ली से हुआ हैं। इसमें लेखक ने 'तीसरे आदमी' उपन्यास की तरह तीसरे व्यक्ति का चित्रण किया है। पति-पत्नी के सम्बन्धों में कोई तीसरा आ जाने से कैसे कटुता आ जाती है इसका सजीव चित्रण इस उपन्यास में किया गया है।

इस उपन्यास की कहानी में रंजीत दिल्ली का रहनेवाला है और गुड्स बनानेवाली कम्पनी में बोम्बे ब्रान्च का मैनेजर है । उसके परिवार में माता-पिता, भाई-बहन कोई नहीं है । वह एकाकी जिन्दगी से ऊब जाता है । जब शारदा के साथ उसकी मुलाकात होती है तो उसके जीवन में खुशियाँ आ जाती है । यह मुलाकात एक दिन शादी में बदल जाती है । शादी के आठ साल बाद रंजीत और शारदा के घर एक बेटे का जन्म होता है । दोनों इनका नाम रिन्कु रखते हैं ।

रंजीत की शारदा से शादी होने के बाद वह दफ्तर से सीधा घर ही आता था । शाम के पाँच बजने पर उसे घर जाने की उतावली रहती थी । वह शारदा के प्रेम में डूब जाना चाहता था । रंजीत का जीवन व्यस्त होने के कारण उसकी शादी के पहले का मित्र दुरानी अकेला पड़ गया था । दुरानी का वक्त दफ्तर में साथियों के साथ हँसते बोलते तो गुजरता था लेकिन शाम को घर पहुँचता तो घर काँटने को दौड़ता था । इस भरी दुनिया में वह अकेला रह गया था । दूर या पास कोई ऐसा सम्बन्धी भी नहीं था जो उसके लिए लड़की तलाश करता और उसकी शादी करवा देता ।

रंजीत के दफ्तर में एक लड़की निर्मला सेक्रेटरी की नौकरी पर आती है । वह जवान और खूबसूरत थी । वह डिक्टेकशन लेने के बाद टाइपवाले कागज चपरासी गंगादिन के हाथ भिजवा देती थी । लंच टाईम में वह दुरानी के साथ केन्टीन में खाना खाने चली जाती थी । रंजीत ने निर्मला को खासतौर से परखना भी चाहा परन्तु निर्मला ने उसे घास नहीं डाली । रंजीत को ताज्जुब भी होता था कि क्या यह वही ज्वाइन करनेवाली पहले दिन वाली निर्मला है या कोई और.....? एक दिन दुरानी रिजर्व बेंक ऑफिस की केन्टीन में निर्मला को लंच खिलाने ले जाता है ।जब रंजीत को इसका पता चला तो वह बोखला उठता है । वह मन ही मन तय कर लेता है कि निर्मला को 'रास्ते पर लाकर रहेगा ' आखिर वह उसकी सेक्रेटरी है ।

इसी बात को लेकर रंजीत निर्मला को अपने प्रेमजाल में फाँस लेता है । दोनों रोज-रोज दफ्तर के बाद बाहर मिलने लगते हैं । रंजीत को डायरी लिखने की आदत थी, वह दूसरी डायरी खरीदकर निर्मला के बारें में लिखने लगता है । वह डायरी घर के बाथरूम में छिपा के रखता था । एक बार घर की साफसूफी में यह डायरी शारदा के हाथों लग जाती है और घर में भूचाल आ जाता है । उसी समय तो रंजीत शारदा को जैसे तैसे करके मना लेता है । दूसरे दिन शारदा रंजीत का पीछा करती है । घर से एक कैमेरा भी साथ में ले लेती है । शारदा छिपती-छिपाती जहाँ सूने स्पोट पर रंजीत निर्मला को बाँहों में लिए बैठा था वहाँ पहुँचती है । शारदा कैमेरे का एंगल एडजस्ट

करके एक फोटो लेकर तेजी से वापस घर पहुँच जाती है । उस रात शारदा सो नहीं पाती,रात को वह धीरे से उठकर वाड्रोब के पास जाकर वाड्रोब में से अपनी शादी का जोड़ा और रंजीत का कुर्ता पायजामा निकालकर उसे सीने से लगाकर चुपचाप रो पड़ती है । लेकिन कुछ कर नहीं पाती ।

आज रंजीत देर से घर आनेवाला है ,यह सोचकर शारदा टैक्सी करके निर्मला के घर पहुँच गई । निर्मला को बातों-बातों में बता दिया कि वह ही रंजीत साहब की पत्नी है । निर्मला ने स्पष्ट शब्दों मे स्वीकार कर लिया कि वह रंजीत से प्यार करती है । इस प्यार के लिए उसने जो दलीलें दी थी वे भी अनुचित नहीं थी । ऐसी स्थिति में भावुक और संवेदनशील नारी और कर भी क्या सकती थी । निर्मला की बातों से स्पष्ट हो गया था कि उसने किसी आर्थिक या व्यक्तिगत लाभ अथवा यौनसुख प्राप्त करने के लिए रंजीत से रिश्ता नहीं जोड़ा था । यह स्थिति तो विशुद्ध मानवीय संवेदना पर आधारित थी । शारदा सोचती है कि अब रंजीत के दिल में उसके लिए जो प्यार और आकर्षण था, वह समाप्त हो चुका हैं । शारदा के स्थान पर कोई और स्त्री होती तो सारी बातें जानने के बाद रंजीत के साथ अपना रिश्ता तोड़ देने के बारें में सोचती, लेकिन शारदा एक बेहद समझदार औरत थी । जो तैश में आकर पति के विश्वासघात और फरेब का शिकार हो जाने के बावजूद उससे अलग होने की जल्दी में नहीं थी । क्योंकि उसका एक बेटा था, उसका अपना घर था जिसे उसने तिनका-तिनका जोड़कर बनाया था । अपने प्यार से जिसे सजाया,सँवारा था । उस घर को छोड़ना आसान नहीं था । रंजीत भटक सकता था लेकिन शारदा का भटक जाना संभव नही था ।

रात को रंजीत दफ्तर से लौटता है वह खुशी भरी ऊँची आवाज में शारदा को कहने लगता है कि मैं तुमको एक खुशखबरी सुनाता हूँ ,अब मेरा प्रमोशन पक्का हो गया है । तब शारदा कहती है कि मैं दूसरी खुशखबरी सुनाऊँ ? वह सारी बातें जो जानकर आई थी वह कहने लगती हैं । उसी समय दरवाजे पर निर्मला भी आ जाती है । दोनों मिलकर रंजीत को धोखा देने के बारे में पूछते है । शारदा निर्मला से पूछती है कि तुमने तुम्हारी दो गुनी उम्रवाले आदमी से प्यार क्यों किया ? तभी वह कहती है कि मैं ने पैसे के लिए प्यार किया था । लेखक ने निर्मला के चरित्र के द्वारा निम्न मध्य वर्ग की स्थिति का भी परिचय दिया है । इस परिस्थिति का वर्णन करते हुए निर्मला कहती है - ''मेरा वश चलता तो मैं कभी नौकरी न करती पर हमारे जैसे घरों की हालत का आप अन्दाजा नहीं लगा सकती । जरूरते हमें एक बार एक ओर धकेलती है, दूसरी बार दूसरी तरफ..... लेकिन जहाँ हमारी जरूरते एक साथ पूरी हो जाती है वही हम बेबस हो जाती हैं- मैं भी बेबस हो गई थी ।''[५५]

यह सब होने के बाद भी रंजीत में कोई बदलाव नहीं आया। वह दफ्तर में निर्मला को आधे घण्टे मिलने के लिए कहता है। परन्तु निर्मला नहीं आती। वह निर्मला के घर जाकर उनके नानाजी के आपरेशन के लिए दस हजार रुपये दे आता है। निर्मला स्वाभिमानी लड़की है, वह यह रुपया शारदा को लौटा ने आती है। रंजीत को यह पूछने पर गलत जवाब देता है तब शारदा रंजीत से कहती है -'' जब आदमी बूरे और गलत काम करने का आदी हो जाता है और उन कामों को छिपाता है तो उसकी आत्मा इतनी कमजोर हो जाती है कि वह सच्चाई में जी नहीं पाता। अच्छी बातों को सामने रखने का उसमें हौसला भी नहीं रह जाता ....। औरत को आदमी ही खराब करता है और औरत को बर्बाद भी आदमी ही करता है। ''[५६] इस प्रकार उपन्यास में लेखक शारदा के जरिए बदचलन आदमी की आदतों को चित्रित करते हैं ।

दफ्तर में हुई बात को सुनकर दुरानी रंजीत को समझाने लगता है। दुरानी निर्मला के विचार रंजीत को मन से निकाल देने के लिए कहता है। वह कहता है कि ईमानदारी से रहो और काम करो। वह दार्शनिक अन्दाज में समझाते हुए कहता है कि - ''दफ्तर और घर यही ही अपने मन्दिर-मस्जिद। घर मन्दिर है तो दफ्तर मस्जिद है। इस मन्दिर की मूर्ति घर में रहती है।'' [५७] दुरानी रंजीत का भला चाहनेवाला मित्र और हितेच्छु है, इसलिए वह घर चलाने के लिए सलाह देता है।

कथा के अंत में रंजीत अपने केबीन में बैठा है,तभी एक क्लर्क नयी सेक्रेटरी को लेकर आता है। वह कहता है सर यह आपकी नयी सेक्रेटरी मिस शेफाली है। रंजीत उसे सर से पाँव तक देखता है। शेफाली निर्मला से कम सुन्दर और आकर्षक नहीं थी। रंजीत उसे पूछता है कि पहले वह कहाँ नौकरी करती थी ? उसे छोड़ने का कारण क्या था ? यह सुनकर शेफाली के चहेरे की मुस्कुराहट आक्रोश में बदल जाती है। वह ऊँची आवाज में बोली जिन्दगी में सिर्फ पैसा ही महत्त्वपूर्ण नहीं होता, हम लड़कियों के लिए तो पैसे से तो कहीं ज्यादा अपनी इज्जत और आबरू होती है। रंजीत के दिल को शेफाली की इस बात से एक जोरदार झटका लगा था। शेफाली की बात सुनकर वह समझ गया कि निर्मला और शेफाली में बहुत बड़ा फर्क है। एक मामूली सी योजना बनाकर जितनी आसानी से निर्मला को हाँसिल कर लिया था ,उतनी आसानी से वह शेफाली को हाँसिल नहीं कर पाएगा। फिर से रंजीत ओफिस के कामों में डूब ने की झूठी कोशिश करने लगा परन्तु उसका दिमाग शेफाली के ब्लाउज की जिप में अटका था। उसका हाथ दवाइयों की शीशियों पर चला ही गया।

इस प्रकार लेखक ने रंगमिजाजी मैनेजर साहब का वर्णन पूरे उपन्यास में

किया है। अपनी बातों को छिपाने के लिए वह कैसे-कैसे झूठ अपनी पत्नी के सामने कहता है उसका सजीव चित्रण लेखक ने किया है। इसके द्वारा लेखक यह भी चित्रित करना चाहते है कि सचमुच औरत कमजोर होती है ,वह गैरो से नहीं किसी दूसरे से नहीं लेकिन खुद अपनों से ही धोखा खाती हैं। औरत की जिन्दगी 'शायद' पर खड़ी रहती है और जब शायद टूट जाता है तो वह भी टूट जाती है। शारदा की स्थिति भी ऐसी ही है। अपने बेटे के खातिर वह अपनी हालत से समझौता करती है।

'पति पत्नी और वह ' उपन्यास का दूसरा भाग 'रंग-बिरंगी' नाम से छपा हैं। इसमें कमलेश्वर ने निर्मला की यादों में खोएँ रंजीत का चित्र अंकित किया है। शारदा का इस घटना के बाद पूरा तौर-तरीका बदल चूका है। रंजीत अपने दफ्तर में बैठे-बैठे शारदा और निर्मला दोनों की तुलना करता है। उसे दफ्तर में यादों की वजह से थकान महसूस होती है। सेक्रेटरी न होने के कारण काम का बोझ भी बढ़ गया है। वह थका-थका घर पहुँचता है पर घर भी उसके दिल की तरह सूमसाम है। वह सोचता है कि अभी शारदा उसके पास चाय और नास्ता लेकर आयेगी। परन्तु शारदा चाय का प्याला टेबुल पर रख कर चली जाती है। उसे लगता है शारदा ने उसे अभी तक माफ नहीं किया है। रंजीत के दफ्तर में अब एक भी पर्सनल सेक्रेटरी न होनेकी वजह से काम का बोझ बढ़ जाता है। रंजीत दुरानी को कहता है कि हेड क्वाटर्स से कोई स्मार्ट और सुटेबल सेक्रेटरी मँगवा लो वरना यह काम का ढेर लगता ही जायेगा।

दफ्तर की नयी सेक्रेटरी के रूप में नीना फर्नाडीज को रखा जाता है। नीना एकदम सुन्दर,मोहक और कजरारी आँखों वाली लड़की थी। उनकी आवाज में मधुरता थी, उसे देखते ही रंजीत निर्मला को भूलकर नीना को प्राप्त करने के तरीके सोचने लगता है। नीना को पाने के लिए वही पुराने तरीके आजमाता है। वह अपनी पत्नी की बीमारी का बहाना करके नीना को अपनी ओर आकर्षित करता है। नीना रंजीत साहब की पत्नी की बीमारी की बात सुनकर कहती है कि आज दुनिया में दूसरों के दुःख-दर्द सुनकर हँसनेवाले तो बहुत मिल जाते हैं लेकिन उन्हें बाँटनेवाला एक भी नहीं मिलता । रंजीत यह सुनकर कहता है कि इस दुनिया में कुछ ऐसे लोग अभी मौजूद है जो दूसरों के दुःख-दर्द को भले ही बाँट न सके लेकिन महसूस जरूर कर सकते हैं। इन गिने-चूने लोगों में शायद एक आप भी है।

नीना अपने कैथेलिक फेमिली की बात करती है। वह बाइबल के सन्देश को सुनाती हुई कहती है कि -'' प्रभु ईसा ने कहा है कि सारी दुनिया को प्यार करो।

जो दुःखी है उनके दुःख को मिटाने की कोशिश करो । जरूरतमन्दों की जरूरते पूरी करो । यहीं परमात्मा की सबसे बड़ी पूजा है । ''[५८] इतना कहते-कहते नीना की धार्मिक भावनाएँ जाग उठी । वह रंजीत से कहती है कि मुझे अपनी सेक्रेटरी ही नहीं, अपना हमदर्द भी समझिए। रंजीत ने अपने दिल के बोर्ड पर लिखे निर्मला नाम को बड़ी आसानी से मिटाकर 'नीना फर्नाडीज' नाम को लिख लिया ।

रंजीत निर्मला की तरह नीना को भी रोज दफ्तर से घर तक छोड़ने लगा । कभी-कभी दफ्तर में दोनों देर तक काम में डूबे रहने लगे । रंजीत बम्बई की सड़को पर नीना को घुमाने लगा। दोनों के बीच की दुरियाँ गायब हो गई थी। रंजीत ने निर्मला के लिए जो सपनें देखें थे वह नीना से पूरा करना चाहता था । निर्मला के जवान और कँवारे बदन को अपनी बाहों में भरकर प्यास बुझाने की चाहत उसकी अधुरी रह गई थी वो नीना को देखतें ही और तेजी से भड़कने लगी थी । नीना के सिलसिले में वह अब और ज्यादा वक्त बर्बाद नहीं करना चाहता था। इसलिए उसने सुबह से ऑफिस आते ही होराईझन होटल में रात के लिए एक कमरा बुक करा लिया था । शारदा की इस कमी को वह नीना से पूरी कर लेना चाहता था ।

नीना सुन्दर और स्मार्ट होने के साथ-साथ चालाक भी थी । नीना की श्नबी डिसिल्वा आन्टी ने उसे सर्विस के दौरान क्या-क्या घटनाएँ घटती है इसके बारे में समझाया था । ऐसी घटनाएँ घटे तो क्या करना चाहिए यह भी नीना को मालूम था । वह रंजीत के चंगुल से भाग निकलती है । उसे रंजीत के स्वभाव का पता चल जाता है। वह घर आती है तो दुरानी साहब उसके घर पर ही होते है । यह घटना के बाद नीना की आन्टी की तबियत खराब होने की वजह से नीना दफ्तर से छुट्टियाँ ले लेती है । नीना की छुट्टियों की वजह से काम बढ़ जाता है । रंजीत टाइपिस्ट मिस रोजी को अपने पास बुला लेता है। नीना के साथ का सिलसिला रोजी के साथ शुश्न हो जाता है। रोजी करीब तीस साल की उम्र की कँवारी लड़की थी । बोस के इस प्रकार के व्यवहार से वह खुश हो जाती है । उसका रूप खिल उठता है वह सभी के साथ हँस बोलकर बातें करने लगती हैं । रंजीत उसे एक फ्लेट भी खरीद कर देता है । जहाँ दोनों आराम से बैठते हैं और मोज मस्ती करते हैं । रोजी के साथ सम्बन्धों की गहराई से वह नीना को भूल चुका है । नीना अचानक एक दिन दफ्तर आती है तो उसके साथ भी रंजीत बेहुदा वर्तन करता है । वह अपना हिसाब निपटाकर चली जाती है । दुरानी भी इसके पीछे-पीछे चला जाता है ।

श्नबी डिसिल्वा दुरानी और नीना की शादी पक्की कर देती है । दोनों का

मजहब अलग-अलग होते हुए भी अजमदभाई इस शादी को मंजूर कर देते हैं। वह कहते है कि - '' जब तक हम इन मजहबी दायरों में सिमटे-बँटे रहेंगे, हमारा मुल्क तरक्की नहीं कर सकता। मैं ने मजहब को कभी अहमियत नहीं दी।''[५९] इस प्रकार कमलेश्वर ने धर्म विषयक मान्यताओं को अमजदभाई के द्वारा सुलझाया है।

रंजीत की पत्नी शारदा भी विक्रम तन्ना के ऑफिस में पर्सनल सेक्रेटरी की नौकरी करने लगती है। शारदा सुन्दर तो थी ही परन्तु सेक्रेटरी बनने के बाद उनके रूप में और निखार आता है। उनकी वेशभूषा, हेयर स्टाइल ही नहीं बल्कि उसकी बोलने की स्टाइल भी बदल जाती है। इससे ऐसा लगता था कि उसकी उम्र दस साल कम हो गई हो। रंजीत को जब पता चला तो वह नाराज हो गया क्योंकि ,विक्रम तन्ना के नाम से उसे भारी चीड़ थी। वह जासूसी किताबों को खरीद लेता है और खुन करने के तरीके के बारे में पढ़ने लगता है। वह अपने मित्र हरिश की सहायता से अमरिकन सायलेन्सर वाली रिवोल्वर खरीदता है।

रंजीत रीन्कु के खिलौने की बन्दुक में नकली गोलियाँ भरकर निशाने लगाने की प्रेकिटस करता है। वह विक्रम खन्ना के साथ शारदा के चेप्टर को भी खत्म कर देना चाहता है। इन दोनों के बाद दुरानी और नीना को भी मारकर आराम की जिन्दगी जीना चाहता है। वह हररोज शारदा से उसका प्रोग्राम पूछता है।

एक दिन वह शारदा से कहता है कि तुम विक्रम खन्ना से कहना मैं उसे मिलना चाहता हूँ। शारदा रात ही तय कर चुकी थी वह आज इस नाटक का पटाक्षेप कर देगी। वह होटल और कमरा नम्बर भी बता देती है। रंजीत अपने प्लान के मुताबित होटल पहुँचता है। होटल के कमरे में वह देखता है कि विक्रम खन्ना और शारदा दोनों एक-दूसरे के निकट बैठकर धीमी आवाज में बातें कर रहे थे। यह देखकर रंजीत का खून खौल उठता है। वह नकाब चहेरे पर लगाकर रिवोल्वर में सायलेन्सर लगाकर विक्रम खन्ना के सीने को निशाना बनाकर ट्रिगर दबा देता है। विक्रम खन्ना तड़ाक से कमरे के फर्श पर गिर पड़ता है। रंजीत के सीने में धधकती हुई प्रतिशोध की ज्वाला शान्त नहीं होती है वह बाकी की सातों गोलियाँ विक्रम के सीने में उतार देता है। वह रिवोल्वर की नाल से निकलते धुएँ को फूँक मारते हुए जेब में रख रहा था तभी ३०२ नम्बर के ड्रोइंग होल में तालियों और कहकहों का सैलाब उमड़ पड़ता है। वह सभी को देखकर अचम्भें में पड़ जाता है। ड्रोइंग रूम के फर्श पर पड़ा विक्रम जोरदार ठहाका मारते हुए इस तरह उठकर खड़ा हो जाता है जाने कोई भूत खड़ा हो गया हो। रंजीत यह सब देखकर बेहोश हो जाता है। शारदा ठण्डे पानी की बूंदो से उसे होश में लाने

की कोशिश करने लगती है । शारदा के पिता दामाद को समझाने की कोशिश करते है । विक्रम खन्ना भी रंजीत से कहता है कि ये तुने क्या स्वांग बना रखा है । विक्रम खन्ना से यह सुनकर रंजीत फिर गुस्सा हो जाता है और कहता है कि मैं तुम्हे छोड़ूँगा नहीं । शारदा के पिता विक्रम खन्ना का परिचय दते हुए कहते है कि यह शारदा का भाई है जो आज तक अमेरिका में था परिवार में इन दोनों भाई-बहन के अलावा कोई नहीं है ।

शारदा के पिता से विक्रम खन्ना का परिचय प्राप्त करते ही रंजीत की निगाहे झूक जाती है । वह होठ बन्ध कर लेता है । शारदा रंजीत को औरत का महत्त्व समझाते हुए कहती है कि -'' हमारी शादी को लगभग दस साल बीत चूके हैं । मैं ने कभी भी तुम से कोई बात नहीं छिपाई । बल्कि तुम्हारी गलतियों को भी ढाँकती रही । मैं ने तो जो कुछ किया वह सिर्फ तुम्हें सबक सिखाने के लिए किया था । क्योकि तुम खुद मर्द होने के अहंकार के कारण तानाशाह समझने लगे थे । तुम्हारे सामने औरत की न तो कोई इज्जत रही थी न अधिकार ! मेरा खयाल है कि आज की इस घटना के बाद तुम इस सच्चाई को कभी नहीं भूलोंगे कि औरत भी एक व्यक्ति होती है । उसे खिलौना मत समझो । उसके महत्त्व को स्वीकार करो और उसके अधिकारों का सम्मान करो ।''[६०]

इस प्रकार कमलेश्वर ने इस उपन्यास में एक औरत की व्यथा का चित्रण किया है । पति के रंगीन स्वभाव को एक समझदार औरत किस प्रकार से ठिकाने लाती है इसका स्वाभाविक चित्रण हल्के और नाटकिय ढंग से किया है ।

(१४) अम्मा-(२००६) :

'अम्मा' कमलेश्वर का अधिकांशतः प्रसिद्ध एवं चर्चित सिने-उपन्यास है । इसमें लेखक ने अपनी अनुभवजन्य संवेदना को प्रस्तुत किया है । इसका प्रकाशन सन् २००६ ई. को राजकमल प्रकाशन दिल्ली से हुआ है । लेखक ने इसकी भूमिका में लिखा है कि इसकी सामाजिकता सिने-माध्यम की आवश्यकता तक सीमित हैं । लेखक ने इसमें क्रान्तिकारियों के माध्यम से देश प्रेम का वर्णन किया है । साथ ही एक माँ के जीवन का सजीव चित्रण भी किया है ।

उपन्यास का प्रारंभ शान्ता की शादी से होता है । नासिक नगर की रेलवे कोलोनी में बड़ी धूम-धाम थी । शान्ता नासिक रेलवे स्टेशन के असिस्टन्ट स्टेशन मास्तर की बेटी है । इस वजह से पूरी कोलोनी को इस छोर से उस छोर तक केले, आम

के पत्तों तथा रंग-बिरंगे कागजों की झण्डियाँ लगाकर सजाया गया था । शान्ता शादी के मौके पर होनेवाली रस्म-रिवाजों को पूरा करते थक गई थी । इसलिए दादीमाँ ने उसे आराम करने की सलाह देकर एक कमरें में लिटा दिया था । शान्ता बिस्तर पर लेटे-लेटे सोचती है कि वह अनजाने व्यक्ति के साथ अजनबी शहर में अपरिचित लोगों के साथ अनजाने वातावरण में कैसे रहेगी । उसकी आँखों के आगे बचपन के गुड़े-गुड़ियों का खेल तैर जाता है ।जब उसकी उम्र सात साल की थी और पड़ोस में रहनेवाले सलीम की उम्र दस साल की थी । सलीम के गुड्डे के साथ शान्ता की गुड़ियाँ की शादी होती थी । इस खेल में कोलोनी भर के बच्चे शामिल होते थे ।

आज सचमुच शान्ता दुल्हन बनीं थी । शान्ता और प्रवीन को शुभमुर्हुत में पंड़ितों ने वेदमन्त्रों और अग्नि को साक्षी बनाकर एक सूत्र में बाँध दिया । शान्ता के पिता प्रवीन के पिता कुन्दनलाल को अपनी बेटी सौंपते है और क्षमा माँगते है कि हम जैसा होना चाहिए वैसा स्वागत नहीं कर पाएँ। कुन्दनलाल भी कहते है कि शान्ता बेटी को पाकर आज हम धन्य हो गये है । शान्ता के पिता की स्थिति को देखकर एक बाराती कहता है कि -'' लड़की का विवाह पिता पर सबसे बड़ा कर्ज होता है । भगवान की कृपा से आज आप इस कर्ज से मुक्त हो गये । ''[६१] उपन्यास में लेखक ने शादी के दौरान बेटी के पिता की मनःस्थिति का आलेखन किया है । साथ ही शादी के मौके पर निभाये जाने वाले परम्परागत रिवाजों का अंकन भी किया है ।

शान्ता की डोली अभी दरवाजे पर लगी ही थी कि अचानक फायर की आवाज आने लगती है । जहाँ से आवाज आ रही थी उसी दिशा में लोग भयभीत होकर देखते हैं तो सार्जन्ट टाम खड़ा था । वह प्रवीन को कड़ककर पूछता है कि नवीन कहाँ है ? वह तुम्हारा छोटा भाई है तुम्हारी शादी में जरूर आया होगा । प्रवीन साहस करके कहता है कि महिनों बीत गये हमने उसकी शकल भी नहीं देखी । वह सिपाहियों को आदेश देता है कि घर का कोना-कोना छान मारों । नवीन वहाँ न मिलने पर उसका क्रोध बढ़ जाता है । इसके बाद बाबू कुन्दनलालजी शान्ता के पिता श्यामसुन्दर से बिदा लेकर स्टेशन पर खड़ी ट्रेन में बारातियों सहित आ बैठते हैं ।

ट्रेन में सारे बाराती तरह-तरह की बातें कर रहे थे । एक सीट के आगे चादर बाँध दी गई और उस पर्दे में शान्ता को अपनी ननंद मंजू के साथ बिठा दिया गया । कोई कहता कि आपका बेटा नवीन मुट्ठी भर सरफिरे छोरों की मदद से उस अंग्रेजी राज का तख्ता पलट देना चाहता है, तो कोई कहता आप उसे समझाये अंग्रेज सरकार का विरोध छोड़ दे और शरीफ आदमियों की जिन्दगी बसर करे । सारे लोग नवीन की

ही बात कर रहे थे । तभी एक बुर्कांपोश औरत आकर डिब्बे में बैठ जाती है । वह औरत बुर्कां हटाकर अपना परिचय देती है । औरत के भेष में आया हुआ नवीन, भाभी के पाँव छुता हैं । मंजू भी उसे पहचान लेती है । भाभी और देवर में कई बातें होती है । वह अपने हाथों से अपने देवर को खिलाती है । अगले स्टेशन पर पुलिस को देखते ही वह भाग जाता है ।

शान्ता ससुराल में सबका दिल जीत लेती है । हर कोई शान्ता की प्रशंसा करते हुए कहता है कि प्रवीन की माँ तुमने सुन्दर बहू पायी है जो साक्षात सरस्वती है। आसपास की स्त्रियाँ भी शान्ता को खूब चाहती थी । शान्ता सबकी प्रिय हो चुकी थी। शान्ता का पति प्रवीन भी शान्ता को खूब प्यार करता था । वह कहता है कि किसी भी तरह तुम नवीन को सही रास्ते पर ले आओ । मेरा भाई मेरे लिए कोई खुशबुदार फूल से कम नहीं है । शान्ता ने घर के सारे कामकाज की जिम्मेदारी अपने कन्धों पर ले ली थी । घर में सिर्फ उसकी ननंद मंजू ही छोटी थी, उसकी देखभाल और पढ़ाई लिखाई की ओर शान्ता ने पूरा-पूरा ध्यान दे रखा था । पति प्रवीन के अलावा सास-ससूर थे । वह उसकी जी-जान से सेवा करने लगी थी । शान्ता के मन में अपने देवर नवीन के प्रति जहाँ चिन्ता रहती थी वहाँ गर्व भी था । देश की आजादी के लिए उसके मन में प्रगाढ़ श्रद्धा और सम्मान की भावना थी । नवीन के साथ हुई पहली मुलाकात शान्ता के लिए जैसे एक मूल्यवान धरोहर बन गई थी ।

बाबू कुन्दनलाल लोअर कोर्ट में चल रहा पुरखों की हवेली का मुकदमा जीत गये थे । कुन्दनलाल पत्नी सरस्वती से कहते है कि भगवान के घर देर है अन्धेर नहीं है । बस भगवान से यह प्रार्थना है कि नवीन को सद्‌बुद्धि दे, ताकी सही रास्ते पर आ जाए । कुन्दनलाल को नवीन की चिन्ता अधिक सता रही थी । परन्तु सरस्वती कहती है कि हमारा बेटा कोई गलत काम नहीं कर रहा है । मेरा नवीन तो भारत माँ की आजादी के लिए लड़ रहा है ।

सरस्वती कुन्दनलाल को शान्ता माँ बनने वाली थी यह खुश खबरी सुनाती है। परन्तु सरस्वती की धीमी आवाज भी हवेलीवाली के कानों तक पहुँच जाती है। वह सुनकर उसके सीने पर दो-दो विषैले नाग फन मारने लगे । रात-दिन वह यह सोच ने लगती कि इन सांपो की फन को किस तरह कुचले जाएँ। वह अपने नौकर चौरंगी को कहती है कि मैं चाहती हूँ कि दुश्मनों की इस बढ़ती फौज को न सही कम-से-कम एक को ठिकाने लगा ही दिया जाएँ। दोनों इसके मौके ढूँढने लगते हैं ।

नवीन का क्रान्तिकारी आन्दोलन हथियार और धन के अभाव में तेजी से नहीं चल रहा था । धन के लिए सरकारी खजाने को लूटने की योजना बनायी जाती है । तयशुदा दिन योजना के मूताबिक सब लोग अपने-अपने काम पर तैनात हो जाते हैं । सरकारी खजाना लूट लिया जाता है । किसी को कुछ नहीं होता केवल दत्तु के पाँव में गोली लग जाती है । दूसरे दिन अखबार में दिया गया था कि क्रान्तिकारियों ने सरकारी खजाना लूट लिया । यह खबर सुनकर प्रवीन का खुन खौलने लगता है ।

सार्जन्ट टाम नवीन को पकड़ कर तरक्की प्राप्त करना चाहता था । पर नवीन हरबार उसे धोखा देकर गायब हो जाता था । होली के दिन नवीन को पकड़ न सकने की वजह से सार्जन्ट टाम का गुस्सा अधिक बढ़ गया था । वह नवीन का पता लगाने के लिए नवीन के बड़े भाई प्रवीन को घर से उठाकर पुलिस स्टेशन ले आता है । सार्जन्ट टाम और उनके सिपाहियों ने मिलकर प्रवीन की बुरी तरह पीटाई की थी । प्रवीन के शरीर के घावों से रिसतें खून और नीले बदन से उनकी पीटाई का अंदाजा लगाया जा सकता था । प्रवीन की पीटाई करके सार्जन्ट टाम ने नवीन के ठिकाने का पता लगा लिया था । सारी जानकारियाँ प्राप्त करने के बाद अंग्रेज सिपाही प्रवीन को घर छोड़ देता है । प्रवीन की हालत देखकर घरवालें सकते में आ गये थे । बाबू कुन्दनलाल और सरस्वती भी प्रवीन की हालत देखकर दुःखी और चिन्तित हो गये थे । पर शान्ता ने अपनी आँखों में से छलकते आँसुओं को बाहर आने नहीं दिया था । उसने तत्काल डॉक्टर को बुलाया और पति की दवा-दारू और देखभाल में लग गयी थी । प्रवीन हालत सुधरते ही दबे हुए आक्रोश से उत्तर देते हुए कहने लगा कि वैसे जो कुछ नवीन कर रहा है, मैं उससे सहमत नहीं हूँ , आज पुलिस ने जो दरिंदगी मेरे साथ की है उसका कारण नवीन है । प्रवीन की बात से शान्ता को दोनों भाइयों के नजरियों का फर्क साफ दिखाई दे रहा था । प्रवीन उसका पति था, पर उसकी सहमति और सहानुभूति नवीन के साथ थी । इसलिए जब शान्ता को पता चला कि प्रवीन ने सार्जन्ट टाम को नवीन की खुफियाँ जानकारी दे दी है तो वह क्रोध से तिलमिला उठी, उनके मुँह से निकल गया कि-''तुमने नवीन के साथ विश्वासघात नहीं किया बल्कि अपने देश के साथ गद्दारी की है...तुम गद्दार हो .....देश के दुश्मन हो ...आज से मेरा तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं ।. ...देश के माथे का कलंक मेरे माथे की सुहाग की बिंदी नहीं बन सकता । जो अपने सगे माँ जाये भाई का साथ नहीं दे सकता, वह मेरा क्या साथ देगा ? ''[६२] यहाँ शान्ता के विचारो से देश प्रेम का परिचय मिलता है । लेखक ने शान्ता के माध्यम से देश प्रेम का चित्रण किया है । शान्ता देश प्रेम के लिए अपने पति से रिश्ता तोड़ देती है ।

प्रवीन की दी गई जानकारी के अनुसार सार्जन्ट टाम अंग्रेज सिपाहियों को लेकर नवीन के ठिकाने को घेर लेते हैं । लेकिन नवीन और उनके साथीदार नदी में उतरकर पुलिस के सिपाहियों पर गोलियाँ बरसाते हुए घने जंगलों के बीच गुम हो जाते हैं । नवीन और उनके साथीदारों को लगता है कि हमारे यह ठिकाने की जानकारी पुलिस को किसने दी ? सबको नवीन पर शक होने लगा क्योंकि नवीन होली के अवसर पर घर गया था । नवीन को अपने भाई पर विश्वास होने कि वजह से अपने पते की जानकारी दी थी । नवीन को अपनी भूल का अहसास हुआ । नवीन अच्छी तरह जानता था कि उसका और प्रवीन का वैचारिक मतभेद था । इस कारण से वह अपनी भाभी को एक पत्र लिखता है । पत्र अपने साथी के द्वारा भाभी तक पहुँचाता है । भाइयों के बीच सैद्धांतिक मत-भेद होने के बावजूद पति प्रवीन की हालत देखकर शान्ता बेहद परेशान थी । पति होने के नाते उन पर उसे दया आ जाती लेकिन दूसरे ही पल देश के प्रति की गई उनकी गद्दारी याद आ जाती तो उनका खून क्रोध से उबल पड़ता । शान्ता सोचती कि उसके पति को अपने अपराध का जो दंड मिला है ठीक ही मिला है । शान्ता संसार की हर वस्तुओं एवं रिश्तों से भी अपने देश को बढ़कर मानती थी । इसलिए उनके मन में अपने देवर नवीन और उसके आन्दोलन के प्रति गहरा स्नेह, लगाव और सहानुभूति थी । शान्ता इन्हीं विचारों में डूबी बैठी थी तभी दरवाजा खोलकर एक छोटा-सा लड़का बिना कुछ कहे-सूने शान्ता को चिट्ठी थमाकर दबे पाँव निकल जाता है । शान्ता इधर-उधर नजर डालकर जल्दी से चिट्ठी पढ़ने लगती है । शान्ता को चिट्ठी पढ़ते हुए प्रवीन देख लेता है । वह शान्ता से चिट्ठी पढ़ने के लिए माँगता है । जब शान्ता चिट्ठी देने से इन्कार करती है तो प्रवीन झपटकर शान्ता को दबोच लेता है और जमीन पर गिरा देता है । शान्ता उसी चिट्ठी को ब्लाउज से निकालकर मुँह में डालकर निगल लेती है । नवीन की चिट्ठी को शान्ता के मुँह से निकाल न सकने के कारण प्रवीन का गुस्सा चरमसीमा पर पहुँच जाता है । वह शान्ता को बड़ी बेरहमी से पिटना शुरू कर देता है । शान्ता की दर्दभरी चीखें सुनकर अम्मा बाबूजी शान्ता को बचाने के लिए प्रवीन को पकड़ ने की कोशिश करते है । तभी गुस्से में आकर प्रवीन हाँफते हुए कहता है कि निगल ली चिट्ठी ,जिस नवीन की वजह से मेरा यह हाल हुआ है, मैं उसे हरगिज माफ नहीं करूँगा । बता क्या पता है नवीन के नये ठिकाने का ? दाँत पिसकर प्रवीन गुस्सा होकर जब शान्ता की ओर देखता है तब अचानक न जाने कहाँ से एक गोली आई और प्रवीन के सिने को चिरती हुई पीठ के आरपार चली गई ।

प्रवीन की मौत के बाद उनकी माँ सरस्वती का रूप बिलकुल बदल जाता है । बेटे के गम ने एक माँ को एकाएक परम्परावादी सास में बदल दिया था । वह प्रवीन की पत्नी शान्ता से कहती है कि तू सती सावित्री है तो पति के साथ सती क्यों नही हो

जाती ? सारे लोग उसे जबरदस्ती प्रवीन की चित्ता के साथ सती बना देने का प्रयास करते है । इसी वक्त बाबू कुन्दनलाल समाज के खिलाफ जाकर सारे लोगों को रोकते हैं और शान्ता को जबरदस्ती चित्ता से नीचे खींच लेते हैं । वह कहते है कि-''अधर्मियो, औरत जननी है । औरत धरती है , औरत माँ है । इस सृष्टि को धारण करनेवाली औरत ही है । औरत ही सृष्टि की कारक है,संचालक है । जिस दिन औरत की छाती का दूध सूख जाएगा, सृष्टि का निर्माण रूक जाएगा और वही सृष्टि के विनाश का अन्तिम दिन होगा ।''[६३] लेखक ने इसके द्वारा सतीप्रथा का विरोध किया है । कई लोग सती प्रथा को धर्म के साथ जोड़ देते है । लेखक सतीप्रथा को पाप, अधर्म और गैर कानूनी मानते हैं ।

शान्ता का स्मशान से वापस आने पर उनकी सास सरस्वती उसे अधिक दुःख देने लगती है । बाबू कुन्दनलालजी अपनी पत्नी सरस्वती और समाज के तानों से तंग आकर यात्रा पर चले जाते है उसके बाद सरस्वती अपनी बहू शान्ता को काल कोठरी में बंद कर देती है । रूखे-सुखे टुकड़े खाकर भी शान्ता के बदन में जान रहती है । वह दुःख से तंग आकर अपनी सास के सामने विद्रोह करती है । ससुर आने पर उससे भी कहती है कि मुझे क्यों बचा लाएँ ? शान्ता पढ़ी-लिखी एक सभ्रान्त परिवार की लड़की थी । फिर भी उसे अपनी सास के अत्याचारों का सामना करना पड़ा ।

इस तरफ सार्जन्ट टाम के दुःख , पछतावे और क्रोध की सीमा का पार नहीं था । नवीन हर बार उसके हाथों मे आकर मछली की तरह फिसलकर निकल जाता था । प्रवीन की मौत के बाद उसे विश्वास हो गया था कि नवीन के ही किसी साथी ने प्रवीन को गोली मारी थी । अगर आज प्रवीन जिन्दा होता तो उसे मार-पीटकर नवीन के दूसरे ठिकानों का पता लगाया जा सकता था । लेकिन जानकारी प्राप्त करने का सूत्र भी उसके हाथ से निकल चुका था ,इसलिए नवीन और उसके साथियों के प्रति सार्जन्ट टाम के मन में क्रोध और भी बढ़ गया था । सार्जन्ट टाम ने चारों ओर सेनाओं का जाल फैला दिया था । वह जंगलों और पहाड़ों मे भी नवीन को ढूँढने के लिए भटक रहे थे । सार्जन्ट टाम ने अपने मातहतों को निर्देश दिया था जहाँ भी नवीन के ठिकाने का पता चले गोलियों की ऐसी धुआँधार बारिश करो और कोशिश करो कि उनमे से कोई एक जख्मी हालत में हमे मिल जाए । कोई जख्मी हालात में हमें मिल गया तो उससे सब कुछ उगलवा लेना हमारे बायाँ हाथ का खेल है । नवीन और उसके साथी जंगलों और पहाड़ियों मे भटकते-भटकते परेशान हो उठे थे । वे जिस ओर भी जाते पुलिस या फौज की किसी टूकड़ी के होने की खबर उन्हें मिल जाती थी । देश के सीधे-सादे देहातियों के मन में उनके लिए आदर-मान और स्नेह था । वे पुलिस और

सेना के जवानों को देखते ही नवीन को सुचना भेज देते थे । नवीन और उसके साथी वेश बदलकर शहर में ही रहने लगते हैं । एक दिन बलराम घूमते हुए अपने घर पहुँच जाता है । बलराम का वेश बदला होने पर भी उसे पुलिस पहचान लेती है । बलराम से सार्जन्ट टाम नवीन के नये ठिकाने का पता लगाता है । दोनों ओर से गोलियाँ चलती है । भागने का कोई रास्ता उपलब्ध न होने की वजह से नवीन और उसके साथी सरैंडर कर लेते हैं । प्रवीन की मृत्यु के लगभग सात-आठ वर्ष के बाद सार्जन्ट टाम को नवीन को गिरफतार कर पाने में सफलता मिली थी । इन सात-आठ वर्षों तक नवीन उसे तिनगी का नाच नचाता रहा था ।

इसी बीच सरस्वती का देहान्त हो चुका था । सरस्वती के देहान्त के बाद शान्ता अपने खाली घर में जीवन-यापन के लिए कपड़े की सिलाई करती है । लेकिन शान्ता को अपने मुन्ने और मुन्नी की पढ़ाई के खर्च के साथ-साथ अपनी ननंद मंजु की शादी की चिन्ता दिन-रात सताती थी । रात-दिन की मेहनत और चिन्ताओं ने शान्ता की उम्र को दस साल और बढ़ा दिया था । कुन्दनलाल भी घर का खर्चा चलाने के लिए मजदूरी करने जाते थे । घर में उन्होंने बताया था कि वह अपने पुराने मित्र के लड़के को टयुशन देने जाते हैं लेकिन वास्तव में कुन्दनलाल रेलवे-स्टेशन पर मजदूरी करने जाते थे । एक दिन रेलवे-स्टेशन पर मजदूरी करते सलीम उसे पहचान लेता है । बाबू कुन्दनलाल उसे लेकर घर आते है तरह-तरह की बातें होती है । सलीम हाईकोर्ट मे वकील है । इसलिए वह इस शहर में रहने के लिए आता है । वह कुन्दनलाल की हवेली का केस लड़ता है और कुन्दनलाल उनके पुरखों की हवेली का केस हाईकोर्ट में जीत जाते हैं ।

शान्ता अब कपड़े की सिलाई के साथ-साथ आचार-मुरब्बा का कारोबार भी चलाती है । जिससे घर की स्थिति में धीरे-धीरे सुधार आने लगता है । बाबूजी ने जिस लड़के को मंजू के लिए पसन्द किया था उसके साथ बड़ी धामधूम से मंजू की शादी हो जाती है । आचार-मुरब्बा का कारोबार शुरू होते ही पैसे की कोई कमी नहीं रही थी । शान्ता का कारोबार देश के विभिन्न शहेरों में फैल जाता है । मुन्ने की शादी उसके साथ कॉलेज में पढ़नेवाली सम्पन्न परिवार की लड़की किरण से होती है । मुन्नी की शादी जीत से होती है । जीत की नजर उनकी सास शान्ता की दौलत पर रहती है । वह शान्ता से कहता है कि आपकी जमीन , जायदाद और सम्पति पर अशोक याने मुन्ने का जितना हक है उतना ही हक मुन्नी का भी है । यह सुनकर शान्ता कहती है कि मैं तुम्हारे सुझाव पर विचार करूँगी । वह वकील की सलाह लेने अपने बचपन के दोस्त और अपने परिवार को सुख के दिन दिखाने वाले वकील सलीम के पास जाती है ।

शान्ता सलीम के पास जाकर पूरी बात करती है। शान्ता सलीम को वसीयत तैयार करने के लिए कहती है । सलीम उसका वसीयतनामा तैयार करता है । वसीयतनामे के अनुसार जीत को कुछ हाँसिल नहीं होता है। वक्त गुजरने पर सलीम को अल्सर हो जाता है। उनका दर्द इतना फैल जाता है कि अब बचने का कोई उपाय नहीं रहता । एक दिन शान्ता की गोद में सलीम सदा के लिए आँखे बंद कर लेता है । शान्ता यह देखकर अवाक् रह जाती है । शान्ता की आँखों में आँसू भर आए। आँसुओं के पार सलीम का चेहरा ठीक वैसा ही नजर आ रहा था जैसा गुड्डे-गुड़ियाँ की शादीवालें दिन दिखाई दिया था ।

इस प्रकार कमलेश्वर ने शान्ता के जीवन के उतार-चढ़ाव का वर्णन किया है। शान्ता के चरित्र के द्वारा लेखकने देश प्रेम को भी अंकित किया है। उपन्यास के अन्त में भी नवीन का स्मारक बनाकर शान्ता क्रान्तिकारी का सम्मान करती है। लेखक ने सतीप्रथा के चित्रण के द्वारा धार्मिक मान्यताओं और अंधविश्वासों का विरोध किया है।

कमलेश्वर के समग्र उपन्यासों का अध्ययन करने के पश्चात् कहा जाता है कि उन्होंने सामाजिक,राजनीतिक,आर्थिक,धार्मिक,सांस्कृतिक आदि समस्याओं का चित्रण किया है। सन् १९५० ई. के बाद जिन रचनाकारों ने इसी समस्या का वर्णन किया है उन में कमलेश्वर अधिक सचेत और सजग रचनाकार है । कमलेश्वर की औपन्यासिक यात्रा 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' से लेकर 'अम्मा' तक चलती है, उनमें लेखक ने समाज की अनेक समस्याओं को वाचा देने का प्रयत्न किया है । सामाजिक उपन्यासों में लेखक ने नारी-जीवन की विसंगतियाँ,समाज के अत्याचार का चित्रण,तीसरे व्यक्ति के आगमन से बिगड़ते पति-पत्नी सम्बन्ध, आर्थिक अभाव का चित्रण,नारी के दोहरे रूप का चित्रण, समाज पर व्यंग्य, शक से टूटते पति-पत्नी सम्बन्ध आदि समस्याओं का चित्रण किया है । नारी युगों-युगों से प्रताड़ित है । तुलसीदास के समय में देखे तो नारी को तिरस्कार के योग्य माना जाता था । आज आधुनिक काल में भी नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। इसका वर्णन कमलेश्वर ने 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ', 'डाक बंगला',तीसरा आदमी', 'आगामी अतीत','वही बात','अम्मा','पति पत्नी और वह' आदि उपन्यासों में किया है।

यान्त्रिकीकरण से गाँव-कस्बे में आए परिवर्तन, महानगरीय मध्यवर्गीय जीवन की विसंगति,आर्थिक अभाव से टूटते परिवार, आदि का चित्रण कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों में किया है। आर्थिक अभावों के कारण व्यक्ति के बनते-मिटते रिश्तों

का वर्णन 'तीसरा आदमी' उपन्यास में देखा जा सकता है। 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' उपन्यास में अर्थाभाव के कारण ही श्यामलाल का परिवार छिन्न-भिन्न हो जाता है। समाज एक समुद्र है, जिसमें हर दिन की परेशानियों के त्रस्त आज का मानव खो गया है अर्थात् डूब गया है। समुद्र में लापता हुए लोग शायद कभी बरसों बाद लौटकर आ जाते है लेकिन समाज के समुद्र खोया हुआ मानव लौटकर नहीं आ सकता। कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों में स्वाधीन भारत की राजनीति का चित्रण किया है। कमलेश्वर ने 'काली आँधी' उपन्यास में राजनीति के दाव-पेंच, जातिय भावना, राजनेताओं की कथनी-करनी मे अन्तर आदि को अंकित किया है। लेखक ने राजनीतिक उपन्यासों में साम्यवाद का चित्रण, साम्प्रदायिकता का चित्रण, क्रान्तिकारी का आह्वान, और देश प्रेम को 'रेगिस्तान', 'लौटे हुए मुसाफिर', 'कितने पाकिस्तान', 'अम्मा' आदि उपन्यासों में चित्रित किया है।

कमलेश्वर ने अपने उपन्यास में कपटी आध्यात्मिकता, महत्त्वकांक्षा का पतन, मानव मूल्यों का चित्रण, परम्परागत रिवाजों का अंकन किया है। लेखक ने धर्म की आड लेकर किये जाने वाले गोरख धंधे, सती प्रथा जैसे कुरिवाजों को भी अपने उपन्यासों में उद्घाटित किया है। कमलेश्वर के सभी उपन्यास हमारे सामने समाज का एक प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करते हैं। कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों की कथाओं के द्वारा समसामयिक समस्याओं का उद्घाटन करके समाज में चेतना लाने का प्रयास किया है।

(घ) कमलेश्वर के उपन्यासों में समसामयिक चेतना :

उपन्यास आधुनिक युग का एक विशिष्ट साहित्य अंग है। जीवन की नाना प्रकार की समस्याओं का उद्घाटन आज के उपन्यास का प्रधान विषय है। उपन्यासकार सामाजिक प्राणी होने से वह विविध समस्याओं और परिस्थितियों से प्रभावित होता रहता है और तभी अपनी रचनाओं में वह उस प्रभाव को प्रदर्शित करता है। आज का युग समस्याओं का युग है। जैसे-जैसे परिस्थितियाँ बदल रही है वैसे-वैसे अनेक नई-नई समस्याएँ मनुष्य के सामने आ रही हैं। सामान्य मनुष्य परिस्थितियों से प्रभावित होता है और समस्याएँ उसे उलझाती है किन्तु वह उन समस्याओं को झेलता हुआ स्वयं तक ही सीमित रह जाता है, जब कि साहित्यकार अपनी उलझनों को साहित्य में सजीव कर देता है। साहित्य के विभिन्न अंग कविता, कहानी, निबन्ध एवं आलोचना में भी परिस्थितियों का चित्रांकन तो होता है, किन्तु जितना उपन्यास में होता है उतना नहीं।

उपन्यासकार मनुष्य और उसकी दुनिया से हमारा नया परिज्ञान कराता है। हम उपन्यास में वह पाते है, जिसे हम सच करके पहचानते है। उपन्यासकार अपने काल के भितरी चहेरे को, चेतन-अवचेतन प्रवृत्तियों और द्वन्द्वों को उद्घाटित करते हैं। किसी काल-खण्ड के उपन्यासों को पढ़ना और उसके इतिहास को जानना महत्त्वपूर्ण है। साथ ही उपन्यासकार उपन्यास के माध्यम से आदमी को कुछ बुनियादी सच्चाइयों से परिचित कराते हैं।

पहले जीवन इतना जटिल नहीं था और समस्याएँ भी कम थी अतः उपन्यास लेखकों की दृष्टि भी केवल घटनाओं के वर्णन तक सीमित थी। धीरे-धीरे समस्याओं के युग में लेखकों का ध्यान जटिलताओं ने अपनी ओर खींचा और विभिन्न साहित्यांगो में युग चेतना का वर्णन होने लगा।

कमलेश्वर ने हिन्दी कथा साहित्य की अनेक विधाओं में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। स्वातंत्र्योत्तर काल के प्रमुख कथाकारों में कमलेश्वर का स्थान महत्त्वपूर्ण है। कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों में अपने युग को वाचा दी है। लेखकों को अपने साहित्य में समय और संदर्भ में रहनेवालें लोगों की कहानी कहनी होती है, भले ही लेखक उनके नाम और रूप का इस्तेमाल करके अपनी ही कहानी कह रहे हो। कमलेश्वर ने स्वतन्त्रता के बाद पहली बार अपने साहित्य में मध्य वर्ग, निम्न मध्यवर्ग को अंकित किया है। जीवन की असंगतियों के बीच तालमेल मिटाने का प्रयत्न करनेवाले मध्य वर्ग का यथार्थ अंकन कमलेश्वर के साहित्य में मिलता है। उनके उपन्यासों में बड़ी सूक्ष्मता और सांकेतिकता के साथ नये सामाजिक यथार्थ को निरूपित किया गया है। यही नहीं स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य को विकास और नयी दिशा देने में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। युग और समाज को एक सम्पूर्ण परिवेश में प्रकट करने की लेखकीय उत्कण्ठा के परिणाम स्वरूप लिखे गये उपन्यासों में पूर्ण चित्रफलक प्रस्तुत किया गया है। युग बोध और युग सत्य को कमलेश्वर ने सदैव प्राथमिकता दी है।

यह सजग कलाकार अपनी रचनाओं में सदा अपने युग की कोई-न-कोई समस्या लेकर चला है। आम तौर पर उनकी सभी रचनाओं में एक प्रकार से वर्तमान समस्याओं के प्रति चिन्तन है। रचनाओं को पढ़ने के पश्चात् अन्त में वे समस्याएँ पाठकों को झकझोर कर रख देती है और एक अजीब सी कसक पाठक महसूस करते हैं यही कमलेश्वर के उपन्यासों की सबसे बड़ी सफलता एवं विशेषता है।

(अ) सामाजिक चेतना :

भारतीय समाज को कमलेश्वरजी ने भली-भाँति अनुभवित किया और पाया कि सामाजिक जीवन का हर क्षेत्र अस्थिरता के दौर से गुजर रहा है । सामाजिक समस्याओं की इस बढ़ती भीड़ में व्यक्ति अपने आपको अकेला और अजनबी महसूस करने लगा है । रूढ़ियों और परम्पराओं से जकड़ा हुआ सम्पूर्ण समाज अंधेरे में पड़ा छटपटा रहा है, सड़ रहा है, जो सामाजिक मूल्य कभी उसका विकास कर रहे थे वे आज उसे बूरी तरह से झुलसा रहे हैं । कमलेश्वर की सामाजिक चेतना में आक्रोश नहीं बल्कि परिणाम की जीवट है, जो व्यक्ति को सोचने के लिए मजबूर कर देती है । कमलेश्वर व्यक्ति चेतना को कुण्ठित करनेवाले परम्परागत बोझ और सामाजिक विसंगतियों को अस्वीकार करने की हिमायत देते हैं । समाज की विषम परिस्थितियों में बदलाव लाने के लिए लेखक ने बड़ी ईमानदारी के साथ सामाजिक व्यवस्था द्वारा उत्पन्न समस्याओं, जटिल रागात्मक स्थितियों और उनसे उत्पन्न होनेवाली विषमताओं, विकृतियों तथा असंतुलन का परिहार एवं परिष्कार करने का भगीरथ प्रयत्न किया है ।

कमलेश्वर ने अपने सामाजिक उपन्यासों में निम्न मध्यवर्ग के जीवन को उभारा है, क्योंकि इन लोगों के जीवन से कमलेश्वर भली-भाँति परिचित थे । साथ ही वे स्वयं अनुभवी थे । जो साहित्यकार अपना निजी अनुभव रचना में अभिव्यक्त करता है निःसन्देह वह रचना अधिक जीवन्त एवं सहज बन जाती है । समाज की विभिन्न समस्याओं के चित्रण के साथ-ही-साथ उसके समाधान के रूप में अपने सिद्धान्त की अभिव्यक्ति करने का प्रयास भी उन्होंने किया है ।

(१) समाज के अत्याचार का चित्रण :

लेखक ने 'आगामी अतीत' उपन्यास में समाज के खोखलेपन की पोल को उखाड़ा है । बच्ची कह कर बलात्कार करनेवाले दो पैरोंवाले जानवरों की असलियत का उद्‌घाटन चाँदनी द्वारा प्रकट होता है । जब कमल बोस चाँदनी को बच्ची कहकर बातें करने लगा तो वह उस पर फूट पड़ी । उसने फिर उनसे पूछा - ''बाबू.........? तुमने बच्ची कहकर मुझे क्यों पुकारा था तुम्हें नहीं मालूम, बच्ची बनाकर मुझ पर क्या जुल्म तोड़ा गया था ... !''[६४] असमंजस में खड़े कमलबोस से वह पागलखाने में घटित अमानवीय घटना का पर्दाफाश करती है । पागलखाने में चंदा की मृत्यु के बाद उनकी लाश के पास अकेली एवं असहाय बैठी हुई चाँदनी पर उन पागलों में से एक आदमी ने बलात्कार किया था । वह वास्तव में पागल नहीं था हत्यारा था । वह भी चाँदनी

को तुम मेरी बच्ची की तरह हो यह कहकर ज्यादा समेटने और लपेटने लगा था । बच्ची कहकर ही उसने बलात्कार किया था । समाज के कलंकित लोगों द्वारा उस पर किये गये अमानवीय बलात्कार का नग्न चित्र दुःख भरे दिल से चाँदनी ने अभिव्यक्त किया है । उस पर क्या बीती है यह कहनेवाला या सुननेवाला कोई नहीं था । जिस समाज में चाँदनी जी रही थी वहाँ उसके लिए अकेला जीवन बिताना असम्भव था । इस घटना ने चाँदनी को वेश्या बना दिया था ।

लेखक ने चाँदनी के द्वारा वेश्या की समस्या को समाज के सामने चित्रित किया है । लेखक ने इस समस्या के चित्रण के द्वारा सामाजिक चेतना लाने का प्रयास किया है । समाज के अत्याचार से चाँदनी वेश्या बन जाती है । यदि समाज ऐसे व्यक्ति को सजा नहीं देगा तो हर एक दिन ऐसी चाँदनी पैदा होगी जो सभ्य समाज के लिए कलंक है ।

'अम्मा' उपन्यास में कमलेश्वर ने समाज के अत्याचार का चित्रण किया है । प्रवीन की मृत्यु के पश्चात् शान्ता को जबरदस्ती सती बनाया जाता है । शान्ता की सास सरस्वती उसे जल्दी-जल्दी शादी का जोड़ा पहना देती है और मुहल्लेवाली औरतों को सती मैया के गीत गाने को कहती है । जो ब्राह्मण सती प्रथा के पक्षधर थे वह भी जल्दी सारा कर्मकाण्ड कर डालना चाहते थे । प्रवीन की अर्थी के आगे बेन्ड बाजेवालों, ढोलवालों के अलावा रामनाम का कीर्तन करती एवं सती मैया के गीत गाती कई टोलियाँ थी । प्रवीन की अर्थी के पीछे नववधू जैसा शृंगार किये शान्ता को ले जाया जाता है । कोई शान्ता की मरजी को पूछनेवाला नहीं था । समाज के अत्याचार के सामने एक नारी विवश होकर मौन हो जाती है । सारे लोग शान्ता से कहते हैं कि सती होना गर्व की बात है । पति के बिना पत्नी के जीवन का कोई मूल्य नहीं होता ऐसी बेहुदी विचारधारा वाले समाज को चित्रित किया है । लेखक ने शान्ता के द्वारा सती प्रथा का चित्रण किया है लेकिन लेखक का मूल उद्देश्य 'अम्मा' उपन्यास के द्वारा समाज के अत्याचार का चित्रण करना है ।

लेखक ने इसके द्वारा निम्न मध्य वर्ग में किये जाने वाले बूरे रिवाजों का वर्णन भी किया है । ऐसे रिवाजों को निभाने की तरफदारी करनेवाले अनेक लोग होते है , जिससे शान्ता जैसी नारी को समाज के सामने मौन हो जाना पड़ता है । यदि समाज जागृत नहीं होगा तो सती प्रथा का कलंक कभी नहीं मिटेगा । इस उपन्यास के द्वारा लेखक का यही विचार मूर्तिमंत होता है । लेखक का स्वप्न एक स्वस्थ समाज को स्थापित करना है । इसलिए वह हर एक समस्या को समाज से उखाड़कर फेंक देना

चाहते है । कमलेश्वर का उद्देश्य केवल व्यक्ति चेतना लाने का नहीं परन्तु समाज को चेतनवान बनाना है ।

(२) समाज पर व्यंग्य :

कमलेश्वर ने 'डाक बंगला' उपन्यास में भारतीय समाज की परम्परा के स्वरूप पर व्यंग्य किया है । 'इरा' ने नारी को वेश्या और पत्नी बनाने वाले सामाजिक व्यवस्था की ओर व्यंग्य प्रहार करके कहा है कि- '' लोग आत्मा की बात करते हैं,तन,मन एकांतिक अधिकार चाहते है ऐसा अधिकार जो उनकी वासना की धरी के मुताबिक चलता है ।...उनके लिए बूरी-से-बूरी औरत एक क्षण में पूरी-की-पूरी अच्छी बन सकती है । अगर वह उन्हें समर्पित हो जाए ।''[६५] पुश्रुष एवं समाज के सम्बन्ध में इरा की मान्यता है कि- '' आज मैं किसी के लिए निहायत बूरी औरत हो सकती हूँ...पर अगर उसीको अपना तन दे दूँ तो बहुत अच्छी हो जाऊँगी ।''[६६] फिर वह कभी उस औरत को बूरा नहीं कहेगा तथा वह उसका मसीहा बनने की कोशिश करेगा । वह तिलक से इस सामाजिक व्यवस्था के खोखलेपन को उद्घाटित करती हुॅ कहती है कि तुम्हारे समाज में हर आदमी कुछ करने आता है और हर औरत कुछ भोगने आती है । इसलिए हर कँवारी माँ की कोख से तुम्हारे प्यार-भरे पापों ने जबरदस्ती सन्तानें पैदा की है और उन सन्तानों को तुमने पैगम्बर का दर्जा दिया है, पर उसकी जननी की ओर उपेक्षाभाव ही दिखाया है ।

स्वाधीनता के बाद विवाह एक समझौता या मैत्री सम्बन्ध के रूप में स्वीकार किया जा रहा है । इसी तरह का चित्रण कमलेश्वर ने 'डाक बंगला' उपन्यास में किया है । डाक बंगला की 'इरा' विवाह के बगैर खूल्लम-खूल्ला विमल के साथ पति-पत्नी के रूप में रहने लगती है । वह तिलक से कहती है कि - ''शादी से आत्मा को कोई सम्बन्ध नहीं है । अगर आत्मिक मिलन की बात होती तो शादियाँ करने की उम्र पचास के बाद होती । यह महज एक शारीरिक आवश्यकता है जिसे आदर्श का ताज पहनाकर गरिमा प्रदान की गई है ।.....हर विवाहित जोड़ा पच्चीस से पैंतीस तक आदमी और औरत की तरह है, पैंतीस से पैंतालीस तक पति-पत्नी की तरह, पैंतालिस से पचपन तक दोस्तों की तरह, पचपन से पैंसठ तक भाई-बहन की तरह और पैंसठ की उम्र पार करते ही वे माँ और पुत्र की तरह हो जाते हैं ।''[६७] इस उपन्यास में परम्परागत विवाह संस्था का विरोध किया गया है । विवाह आत्मिक मिलन के लिए नहीं शारीरिक तृप्ति के लिए रचे जाते हैं । लेखक ने आध्यात्मिक मिलन की बात को यहाँ नकारा है ।

आधुनिक युग में पत्नियाँ भी किरायें पर मिलने लगी हैं । इसलिए प्राचीन परम्परा के अनुरूप चलनेवाली पत्नी की आवश्यकता नहीं रही । 'डाक बंगला' उपन्यास की शीला एक ऐसी ही पत्नी है, जिसे आप जब तक चाहो पत्नी बनाकर रखो तथा जब न चाहो तो उसका बिल अदा करके उस से बिदाई ले लो । शीला महेन्द्र बतरा के साथ और अन्य कई पुरूषों के साथ अस्थाई रूप में अच्छी पत्नी का पार्ट अदा करती है । लेखक कहते है कि वह हर घर में बीवी का नकाब लगाकर रहती है और घर का ध्यान रखती है जितना की बीवियाँ भी नहीं रख सकती । लेखक ने किराये पर मिलनेवाली पत्नियों का एक रूप इस उपन्यास में अंकित किया है । स्वातन्त्र्योत्तर काल में सामाजिक मूल्य बदलते जा रहे हैं । कमलेश्वर ने बदलते सामाजिक मूल्यों का चित्रण ऐसे उपन्यास द्वारा समाज को दिखाया है ।

कमलेश्वर ने 'आगामी अतीत ' उपन्यास के द्वारा समाज पर व्यंग्य किया है । कोई भी औरत अपनी मर्जी से वेश्या न बनती उसे बनाई जाती है । इसके लिए पुरूष एवं समाज जिम्मेदार है । चाँदनी के द्वारा समाज के विरूद्ध आवाज उठाना भी लेखक का लक्ष्य रहा है । समाज सुधार ही लेखक का मूल उद्देश्य है ।

(३) नारी की महिमा का चित्रण :

कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों में नारी के विविध रूपों को अंकित किया है । 'यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवता :' उक्ति का अनुकरण करनेवाले भारतीय समाज में पलने वाले लेखक ने भी नारी को महत्त्व दिया है । 'सुबह दोपहर शाम' उपन्यास में लेखक ने नारी महिमा का चित्रण किया है । नारी केवल बहू,पत्नी,माँ या बहन मात्र नहीं उसमें देश का इतिहास रचने की अद्भूत क्षमता एवं शक्ति है । शान्ता के जरिए लेखक ने मातृभूमि तथा परिवार की रक्षा के लिए खतरों का कुशलता एवं साहसपूर्ण ढँग से सामना करनेवाली नारी का चित्र खिंचा है । नारी लक्ष्मी, सरस्वती और दुर्गा भी है । शान्ता में हम तीनों रूपों को देख सकते हैं । शान्ता लक्ष्मी के रूप में ससुराल में पैर रखती है , सरस्वती के रूप में हर मामलों को निपटाती है ओर दुर्गा बनकर अंग्रेजों से अपने देवर की जान बचाती है । इस प्रकार वह अपनी दादी की मनोकामना की पूर्ति करती है ।

'अम्मा' उपन्यास में भी लेखक ने शान्ता के महत्त्व को अंकित किया है । हर संघर्ष और परिस्थितियों के सामने लड़नेवाली शान्ता जीवन के अन्तिम समय में सुख प्राप्त करती है । लेखक ने शान्ता के साक्षात लक्ष्मी स्वरूप और दुर्गा स्वरूप को

अंकित किया है । शान्ता को उसके पति की मृत्यु के बाद सास सरस्वती अँधेरी कोठरी में बंद कर देती है । जब शान्ता में अन्याय और सास की ज्यादतियों के विरूद्ध विद्रोह करने की ताकत आती है तो वह उठ खड़ी होकर सास को ठोकर मारकर चली जाती है । शान्ता साक्षात दुर्गा का स्वरूप धारण कर सास सरस्वती को एक ओर हटाकर कहती है कि-'' मैं इन्सान हूँ । मुझ में भी जान है । मैं इस अँधेरी सीलन और बदबू-भरी कोठरी में घुट-घुटकर नहीं मर सकती ... जिसमें साँस लेने के लिए हवा तक नही आती ....'' [६८] इस प्रकार 'अम्मा' उपन्यास में शान्ता अन्याय के खिलाफ आवाज उठाती है ।

लेखक ने शान्ता को उपन्यास के प्रारम्भ में गृहलक्ष्मी के रूप में चित्रित किया है । घर की विकट परिस्थितियों का सामना करने के लिए वह कपड़ों की सिलाई करके घर की गाड़ी को धकेले जाती है । शान्ता आचार का व्यापार भी करती है, सलीम की मदद से और रात-दिन की मेहनत से व्यापार देश-विदेश में फैल जाता है । सिलाई-कढ़ाई से दोनों वक्त की रोटी मुश्किल से प्राप्त करने वाली शान्ता करोड़ों श्रुपयों की मालिक बन जाती है । शान्ता के महत्त्व का अंकन लेखक ने सजीव और मार्मिक ढँग से किया है ।

लेखक ने 'पति पत्नी और वह' उपन्यास में शारदा के पत्नी रूप को महत्त्व दिया है । शारदा एक समजदार पत्नी है । वह अपने पति रंजीत के सारे इरादों को भाँपकर भी शान्ती से काम लेती है, क्योंकि वह किसी भी किमत पर अपने घर को बिखरने देना नहीं चाहती । एक दिन रंजीत की गलती पकडी जाने पर शारदा कहती है कि - '' मैं तुम्हारी पत्नी हूँ, हमारी शादी को लगभग दस साल बीत चुके है । मैंने कभी तुमसे कोई बात नहीं छिपाई । बल्कि तुम्हारी गलतियों को भी ढाँकती रही । मैंने तो जो कुछ किया वह सिर्फ तुम्हे सबक सिखाने के लिए किया था । क्योंकि तुम खुद को मर्द होने के अहंकार के कारण तानाशाह समझने लगे थे । तुम्हारे सामने औरत की न तो कोई इज्जत रही थी न अधिकार !.....औरत भी एक व्यक्ति होती है । उसे खिलौना मत समझो । उसके महत्त्व को स्वीकार करो और उसके अधिकारों का सम्मान करो । ''[६९] शारदा अपने पति रंजीत की हरकतों से परिचित होते हुए भी अपने घर को बचाने का प्रयत्न करती है । जिस घर को उसने तिनका-तिनका जोड़ कर बनाया था उसे छोड़ना आसान नहीं था । लेखक ने शारदा के माध्यम से पति परायणा पत्नी का परिचय दिया है । लेखक ने शारदा के मुँह से कहलवाया है कि रंजीत भटक सकता है लेकिन उसका भटकना संभव नहीं ।

कमलेश्वर के चौदह उपन्यासों में से तीन उपन्यासों में नारी के महत्त्व को अंकित किया गया है। ‘सुबह दोपहर शाम ’ की सन्तो, ‘अम्मा’ की शान्ता और ‘पति पत्नी और वह’ की शारदा के द्वारा नारी जीवन को उजागर किया है। लेखक ने नारी महिमा का चित्रण करके समाज में चेतना लाने का प्रयत्न किया है। कहा जाता है कि ‘ एक माँ सौ शिक्षक के बराबर है ’ यदि नारी को महत्त्व नहीं दिया जाएगा तो यह समाज का उत्थान नहीं होगा। स्त्री और पुरूष समाज रूपी रथ के दो पहिए है। एक कमजोर होगा तो रथ बराबर नहीं चल पाएगा। इसलिए नारी का मान सम्मान करना उसे महत्त्व देना स्वस्थ समाज बनाने के लिए आवश्यक है। ऐसी विचारधारा से प्रभावित होकर लेखक ने उपरोक्त उपन्यासों के द्वारा समाज में चेतना लाने का प्रयत्न किया है।

(४) नारी जीवन की विसंगति :

महानगरीय जीवन में व्याप्त नारी जीवन की विसंगति जैसा चित्रण कस्बाई जीवन में भी दिखाई देता है, अन्तर केवल इतना है कि महानगरीय चालाकी का अभाव कस्बें में हम देख सकते हैं। ‘एक सड़क सत्तावन गलियाँ ’की बंसिरी जीने के लिए नौटंकी कलाकार बन जाती है। वहाँ भी वह मान-सम्मान को बनाए रखने का ख्याल रखती है। जब एक नट ने बंसिरी को छेड़ा तो वह बिफर जाती है क्योंकि बंसिरी अपने जीवन में आए पहले पुरूष के प्रति मोहित हो जाती है।

बंसिरी को जीने के लिए अनेक कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती है। वह कल्की अवतार के कृष्ण की गोपियों में एक गोपी जैसी बन जाती है। सरनाम ने उसे देखा तो लगा कि अब वह बिलकुल बदल चुकी थी। वह गेंदे कवि के हाथ का बिकाउ माल बन गई थी। जो कोई भी चाहे तो उसे खरीद सकता था। उसे खरीदने के लिए सराय में भीड़ लगी हुई थी। सरनाम भी रंगीले के लिए वहाँ आ गया था। गेंदे कवि ने अपनी बेटी की शादी का सौदा कराने के भाव से मुँह फेर बैठी हुई उस युवती से कहा- “ बिटिया देख! इन लोगों से सरम कैसी.... सब अपने हैं! मुसीबत में काम आनेवाले कहाँ मिलते है। ये सब हमारे दुर्दिन के साथी हैं। ”[७०] उस बेबस औरत से ऐसी झुठमूठ बातें सुनकर सरनाम को तरस आता है। उसे लगता है कि -“ सब बकवास है।....जैसे कसाई बकरी खरीद रहे हो। लेकिन और होगा भी क्या इसके साथ! बिक्रि न हुई तो यहीं किसी कोठरी में पेशा करेगी ....या दर-दर भटकना ....जब तक जवानी है तब तक..... और उसके बाद ? ”[७१] नारी जीवन के अभिशाप के दिग्दर्शन के लिए इससे ठोस सबूत और कोई नहीं है।

अबला नारी के प्रति मर्दों के अमानवीय रवैयों का पर्दाफाश मगन मिस्त्री के जरिए उपन्यासकार ने किया है – ‘‘ नखरे दिखा रही है......जरा मेरे साथ अकेला छोड़ दो...दो मिनट में हारा कर दूँ। ’’[७२] आखिर पाँच सौ में अकेला उसका सौदा तय हो गया। एक नारी का मूल्य केवल पाँच सौ श्र्पया, कितनी बड़ी बिडम्बना है। नारी जीवन की मूल्य हीनता एवं नैतिक पतन की अभिव्यक्ति ‘एक सड़क सत्तावन गलियाँ ’उपन्यास में हुई है।

सरनाम ने रंगीले के लिए उस औरत का सौदा किया था। सौदे का श्र्पया पूरा न दे सकने के कारण सरनाम गेंदा कवि से कहता है कि एक सौ कम है, जब तक ये श्र्पया पूरा नहीं चुका देता तब तक तू इसे रख। वहाँ भी बंसिरी के साथ माल के व्यापार की तरह का बर्ताव होता है।

लेखक ने नौटंकी कलाकारों के जीवन की विड़म्बना के साथ-ही-साथ कमला के जीवन का असंगत चित्रण भी ‘एक सड़क सत्तावन गलियाँ ’उपन्यास में किया है। अगर नारी अकेली है तो उसका जीवन दुःखपूर्ण ही है , चाहे वह गाँव में हो या महानगर में। नारी को सब ओर से तंग आकर तथा हारकर उसे जीने के लिए शरीर का सौदा करना पड़ता है। नारी को वेश्या का दर्जा तथा लक्ष्मी का दर्जा देनेवाला मर्द एवं समाज ही है। ये नारियाँ भी प्रतिष्ठा एवं मान-सम्मान के साथ जीना चाहती है, लेकिन समाज ही इन्हें वेश्या का दर्जा प्रदान करता है। प्रस्तुत उपन्यास में उपन्यासकार ने बाजारू औरत को अन्त में पारिवारिक सुख भोगने का अवसर प्रदान किया है।

बंसिरी बाजारू औरत होते हुए भी जीवन मूल्यों को बनाए रखना चाहती है। उसके पास आनेवाले शिवराज को वह बदचलन न होने देती है। शिवराज को बाजारू औरत बंसिरी में नारी के माँ, बहन और मित्र ये तीनों रूप एक साथ मिल जाते हैं। इस कथन से बंसिरी का महत्त्व उभर आता है। वह जीने के लिए तन का पेशा करने को मजबूर होने के बावजूद भी वे मानवीय मूल्यों को खोने नहीं देती है। इस प्रकार कमलेश्वर ने बंसिरी के जरिए नारी-जीवन की विसंगतियों को खूब उभारा है।

कमलेश्वर ने ‘आगामी अतीत’ उपन्यास में भी नारी विसंगति का नग्न चित्रण प्रस्तुत किया है। एक ओर प्रेम का शिकार होकर अभिशप्त जीवन जीने को विवश माँ चन्दा है, तो दूसरी ओर अकेलेपन के कारण वेश्या बना दी गई बेटी चाँदनी है। ये दोनों आधुनिक सभ्य समाज के निर्मम अत्याचार के शिकार है लेकिन दोनों में

अन्तर है । माँ चन्दा अतीत प्रेम की याद में जीवनभर तड़पती रही लेकिन बेटी चाँदनी अपनी जवानी में ही सामाजिक अत्याचारों का कड़वा घूँट पीकर भी हारती रही ।

चाँदनी एक शोषित नारी की बेटी होने से ही उसका जीवन उनकी माँ से भी बदतर बन जाता है । जीवन की लड़ाई में वह अपने सर्वस्व की बाजी लगाती है । चाँदनी जीवन में जिस वास्तविकता का सामना करती है या समाज का जो अत्याचार उसे भुगतना पड़ा उसके साथ जो अमानुषिक बलात्कार हुआ उसका यथार्थ वह कमलबोस से खूल्लम-खूल्ला कह देती है । चाँदनी ने बचपन में ही अतीत प्रेम की यादों में तड़पकर जीवन की होड़ में रत माँ को देखा है । फिर जवानी में उसने उसी प्रियतम की यादों में पागल होकर सड़कों पर प्रियतम को खोज करनेवाली माँ को भी देखा । आखिर पागल खाने में अपना एक मात्र आधार एवं सहारा माँ की मृत्यु के आघात से स्तब्ध उन्हीं दुःखद क्षणों में जीवन को बदल देनेवाला अमानुषिक बलात्कार भी चाँदनी ने असहाय होकर झेला है । चाँदनी को जीने के लिए मजबूर होकर वेश्या बनना पड़ा । इसका मूल कारण माँ चन्दा को धोखा देनेवाला प्रेमी कमलबोस ही है । वही कमलबोस एक ग्राहक की भाँति चाँदनी को एक महिने के सौदे पर उसे बंगले पर ले आता है । चाँदनी के लिए वह केवल एक ग्राहक मात्र है । उससे बढ़कर कोई वास्ता नहीं । चाँदनी इसलिए कोई छिपाव-दुराव के बिना अपने भोगे हुए यथार्थ, वेश्या जीवन की वास्तविकता एवं समाज के अमानुषिक व्यवहार का पर्दाफाश कमलबोस के सामने करती है । चाँदनी खुलकर अमीरों की निन्दा तथा अपनें धन्धें की सफाई देती हुई कमलबोस से कहती है कि- '' तुम अमीरों के ये इश्क-विश्क के चोंचले अपने लिए बेकार है । हम इश्क नहीं करते पेट भरते हैं पेट ।''[७३] यथार्थ सदा कड़वा होता है । हर धन्धे की अपनी मान्यता होती है । वेश्या जीवन की कड़वी सच्चाई और नारी जाति की ट्रेजड़ी चाँदनी के शब्दों से एक साथ जाहिर होती है ।

नारी की विवशता एवं किसी एक के साथ जुड़कर रहने की चाँदनी की इच्छा भी उसके कथन में स्पष्ट हैं -'' ये मामूली काम नहीं है बाबू, बहुत दिमाग का पिता मारकर अनजाने आदमी को सहना होता है । तुम औरत होते तो समझ पाते !....हर आदमियों के साथ एक-एक बार सोना और एक आदमी के साथ हजार बार सोना... इसका फर्क तुम नहीं समझ सकते । इसे औरत ही समझ सकती है ।''[७४] चाँदनी ने नारी जीवन की दुर्दशा एवं विडम्बना का पर्दाफाश किया है । असल में चाँदनी के उक्त कथन कभी न सफल होने वाले सपने लेकर जीने को अभिशप्त नारी के मन का उद्‌गार है ।

कमलेश्वर के सफल उपन्यासों में एक 'डाक बंगला' भी है । नारी जीवन की विडम्बना का इतना सूक्ष्म एवं जीता जागता चित्रण शायद ही अन्यत्र देखने को मिलता । नारी जीवन के विभिन्न पहलुओं का वर्णन अत्यन्त ही रोचक रहा है । एक नारी के जीवन में आए उतार-चढ़ाव को, दुःख-दर्द को, बेबसी एवं अकेलेपन को तथा जीवन में आए हर एक मोड़ को कमलेश्वर ने अपनी पैनी आँखों से देखकर अत्यन्त सहजता एवं सार्थकता के साथ प्रस्तुत किया है । इसलिए पढ़ने पर ऐसा लगता है कि लेखक उसके जीवन भर का हमसफर रहा हो ।

'इरा' आधुनिक नारी की प्रतिनिधि है । माँ विहीन इरा बचपन में दादी माँ से सुनी कहानियों के राजकुमार की तलाश में बचपन और कैशोर्य बिताती है । यौवन में कॉलेज के दिनों उसका परिचय विमल से हो जाता है । दोनों एक- दूसरे को चाहने लगते हैं । इरा ने अपने जीवन में आए प्रथम राजकुमार को तन-मन से अपनाना चाहा । इसके लिए उसने परिवार से भी नाता तोड़ा । यहीं से उसके जीवन का जंग आरम्भ होता है । जिन सपनों को साकार बनाने के लिए वह विमल की हो गई थी वह सब टूटकर बिखरने में देर न लगी ।

बेकारी, मोहभंग, आत्मग्लानी, निराशा एवं व्यथा से पीड़ित विमल जिन्दा रहने के लिए अन्त में हारकर अपनी पत्नी को नौकरी करने भेज देता है । वहाँ से इरा की जिन्दगी की विसंगतियाँ शुरू होती है । जिन्दगी की रफ्तार में अपने को पराजित महसूस कर विमल इरा को अकेला छोड़कर चला जाता है । इरा जीवन से पलायन करने के बदले जीना चाहती है, लेकिन समाज में अकेली नारी असुरक्षित है । इरा का तिलक से किए उक्त कथन से यह स्पष्ट होता है -'' यहाँ औरत बगैर आदमी के रह ही नहीं सकती ।....तुम शायद इसे नहीं समझते, क्योंकि तुम औरत नहीं हो । पर मैंने बड़ी गहराई से यह महसूस किया है । किसी भी आदमी की आड़ में चाहे वह आदमी काठ का ही हो..... अच्छी-से-अच्छी और बूरी-से-बूरी जिन्दगी शान से चल सकती है, पर बगैर आदमी के न वह अच्छी जिन्दगी जी सकती है और न बूरी ।''[७५] नारी सहज भावना हम इरा में देख सकते हैं । इरा ने बतरा के साथ रहकर पहली बार स्त्री के रूप का अनुभव किया था और अपने जीवन की सार्थकता को महसूस किया था । यहाँ पर हम उसमें एक भारतीय नारी का अहसास पाते हैं । माँ बनने की नारी सहज चाह इरा में भी देखी जाती है । इसलिए ही बतरा के द्वारा टोनिक के रूप में अबोरशन की दवा पिलाने की बात जानकर वह टूट जाती है ।

बतरा इरा को अपनी पेड वाइफ द्वारा घर से निकाल भी देता है । इरा फिर

जीवन में अकेली हो जाती है। हर आदमी उसे मासूम लगता है यही तो उसकी मजबूरी है। उसकी इस मजबूरी ने उसे चिर-पथिक बना दिया, साथ ही पुरुषों की चालाकी का परिचय भी मिल गया। इरा भी उसे नचाने में समर्थ थी। उसने हर एक से कहा कि तुम मेरी जिन्दगी में पहले हो, तुम प्रथम हो! यह खूबसूरत फरेब मैं करती रही हूँ।..... मैं हर पुरुष से यही चाहती रही हूँ कि वह मुझे अपना अन्तिम प्यार दे, मेरे बाद उसकी जिन्दगी में कोई न हो। इरा के प्रस्तुत कथन में भी किसी एक से जुड़कर जीवनभर जीने की नारी सहज कामना एवं चाह प्रकट होती है। इस कामना ने ही उसे यों एक के बाद एक की तलाश की ओर उन्मुख किया है, साथ ही उसमें यौन भावना भी प्रबल है।

इरा अतृप्त यौनभावना का शिकार है। उसकी अतृप्त यौनेच्छा ही उसे डॉ.चन्द्रमोहन को सताने की प्रेरणा देती है। अतृप्त जीवन जीने को विवश इरा अपनी नियति को कोसती है। आसाम में डॉ.चन्द्रमोहन के साथ रहते दिनों में औरों की खुशियाँ देखकर उसे रूदन आता है। यह अतृप्त जीवन बिताने को विवश इरा के मन का उद्गार ही है। इरा डॉ.चन्द्रमोहन से सदा के लिए मुक्त हो जाती है, लेकिन जीवन की विसंगतयाँ उस का हर जगह पीछा करती रही। इरा ने किशोरवस्था के बाद कभी चैन की साँस न ली थी। अब उसके जीवन में दुबारा उसका पति विमल पूर्ण रूप से क्षत-विक्षत एवं तपेदिक का मरीज बनकर आता है। एक साल के अन्तराल में वह विधवा एवं अकेली बन जाती है। अतृप्त चाह के लिए जीने को वह मजबूर बन गई थी, जीने के लिए उसे फिर नई मंजिलों की तलाश करनी पड़ी।

इरा अपने पति की मृत्यु के बाद बिलकुल टूट गई थी। उसने जीवन में सब कुछ खोकर 'अकेलेपन' को पाया। इस अवस्था में भी वह अकेलेपन से छुटकारा पाना चाहती है। इरा जीवनभर विसंगतियाँ झेलने पर भी जीने को आतुर नई मंजिलों की तलाश में रत है। व्यक्ति या समाज अपनी जरूरतों के बाद औरत पर थूंकता है और उसे वेश्या की संज्ञा देता है। यही नारी जीवन की नियति और विसंगति है।

कमलेश्वर ने 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' की बंसिरी, 'आगामी अतीत' की चाँदनी और 'डाक बंगला' की इरा के द्वारा नारी जीवन की विडंबना को आलेखित किया है। स्वतन्त्रता के पश्चात् हर क्षेत्र में प्रगति हुई परन्तु अबला के प्रति पुरुष के रवैये में कोई फर्क नहीं पड़ा। बंसिरी को नारी होते हुए भी माल की तरह बेचा गया। लेखक ने नारी जीवन की पीड़ा को नजदीक से देखा है, इस कारण से उपन्यास के द्वारा नारी पीड़ा को दूर करने का उनका लक्ष्य रहा है। बंसिरी को कथा के अन्त में

गृहस्थ जीवन बिताते चित्रित करके स्थिति में सुधार लाने का लेखक ने प्रयत्न किया है ।

लेखक ने युगानुरूप नारी मानसिकता में आये परिवर्तनों को 'आगामी अतीत ' उपन्यास की चाँदनी और ' डाक बंगला 'की इरा के माध्यम से वर्णित किया है । नारी का अभाव के कारण शोषण होता है यह चाँदनी के द्वारा चित्रित किया है । जबकि इरा मन बहलाव के लिए सम्बन्धों को बाँधती है । इसके चित्रण के द्वारा लेखक का मूल उद्देश्य नारी जीवन की विसंगतताओं को दूर करने का है ।

(५) नारी के दोहरे रूप का चित्रण :

लेखक ने 'डाक बंगला' उपन्यास में नारी के दोहरे रूप का चित्रण शीला के द्वारा किया है । इरा बतरा के यहाँ काम करती थी, एक दिन वहाँ एक खूबसूरत औरत आ गई । बतरा ने इरा से उसका परिचय अपनी वाइफ शीला के रूप में करवाया । दोनों की मिली-जुली जिन्दगी देखकर इरा को अचरज एवं शक हुआ, क्योंकि अभी तक बतरा ने पत्नी के बारे में उसे एक लब्ज़ भी न बताया था । अचानक एक दिन शीला अपना सामान बटोर कर चली गई तो इरा के मन में कई सवाल उठ खड़े हुए ।

बतरा ने ही इरा के सारे सवालों का जवाब दिया । शीला सालों पहले उसकी पड़ोसिन थी । दोनों एक-दूसरे को चाहते थे ,लेकिन दंगे ने दोनों को अलग कर दिया । सालों बाद उसके एक दोस्त की पत्नी 'वीना' के रूप में दुबारा उसका मिलन हुआ । बतरा शीला का 'वीना' नाम सुनकर पहले तो अचकचाया भी था,लेकिन अब तो उसके कई नाम जान चुका था । पैसे की मार ने और घर की जिम्मेदारियों ने शीला को ऐसा बना दिया था । शीला का भाई दंगे में मारा गया था और किसी तरह बच-बचकर वह अपनी बहनों और माँ को लेकर भागी थी । जीने के लिए उसने क्या नहीं किया ? शीला तरह-तरह के आदमियों की बीवी बनकर जब तक वे चाहते थे तब तक रहती थी । यही तो उसके जीवन की विडम्बना है । अपनी शारीरिक और आर्थिक जरूरतों को पूरा करने का यही साधन उसके पास है । बतरा के लिए वह एक शरीफ औरत है । वक्त और पैसे की मार ने उसे बूरा बनाया है । इस पर इरा का कथन है कि- '' उकताकर मैं खड़ी हो गई थी । मुझे उस वक्त बतरा की दुनिया झूठ और विलासिता की नकाब पहनकर असलियत साबित करने की दुनिया लगी थी । पर आज मैं इन राहों से गुजरकर आई हूँ , कुछ भी मान सकने को तैयार हूँ।''[७६] पहले इरा ऐसी

दोहरी जिन्दगी जीनेवाली औरतों को मानती नहीं थी लेकिन जीवनानुभावों ने उसे सबक सिखाया । इसलिए अब वह कुछ भी मानने को तैयार है । इरा नारी की नियति और दोहरी जिन्दगी के बारे में तिलक से कहती है कि सौ में से पचहत्तर औरतें ऐसी ही जिन्दगी जीने की आदी हो चुकी हैं । ऐसी दोहरी जिन्दगी जीनेवाली शीला बतरा के साथ इरा के सम्बन्ध को बर्दाश्त न कर सकी । एक नारी दूसरी नारी के लिए बाधा बनकर खड़ी हो गई ।

इरा को शीला के कारण ही अपने जीवन का नक्शा बदलना पड़ा । शीला ने ही उसके जीवन को बर्बाद कर दिया । शीला की मनोवृत्ति सम्बन्धी लेखक का कथन सौलह आने सही ही है –'' कोई भी औरत यह नहीं बर्दाश्त कर सकती कि उसका कोई पुराना प्रेमी उससे प्रेम करना छोड़ दे ....वह जिसे घृणा भी करना चाहती है...उससे प्यार का भी प्रतिदान चाहती है ।....यही उसकी सब से बड़ी धरोहर है ।'' [७७] शीला की वजह से ही इरा को जीवन में भटकना पड़ा ।

कमलेश्वर ने 'पति पत्नी और वह ' उपन्यास में नारी के दोहरे रूप का चित्रण निर्मला के माध्यम से किया है । निर्मला रंजीत के ऑफिस में टाईप राइटींग का काम करती है । निर्मला की खूबसूरती से रंजीत निर्मला की ओर आकर्षित होता है और उसे अपने प्रेम जाल में फाँस लेता है । जब यह बात रंजीत की पत्नी शारदा को मालुम होती है तो वह निर्मला के घर पहुँचकर सारी बात का पता करती है । निर्मला शारदा को दुःखी होकर कहती है कि –'' मेरा वश चलता तो मैं कभी नौकरी न करती । पर हमारे जैसे घरों की हालत का आप अंदाजा नहीं लगा सकती । जरूरतें हमें एक बार एक ओर धकेलती है, दूसरी बार दूसरी तरफ......लेकिन जहाँ हमारी जरूरतें एक साथ पुरी हो जाती है वही हम बेबस हो जाती है । मैं भी बेबस हो गयी थी....... ।''[७८] निर्मला आर्थिक अभाव के कारण रंजीत से प्रेम करती है । लेखक ने 'पति पत्नी और वह' उपन्यास के द्वारा औरत मजबूरी में क्या-क्या करने को विवश हो जाती है इसका चित्रण निर्मला के जरिए किया है । यहाँ वास्तविकता का पता चलने पर निर्मला का जीवन बरबाद हो जाता है ।

(६) नारी के अस्तित्त्व की माँग :

कमलेश्वर ने 'तीसरा आदमी' उपन्यास में नारी की स्वतन्त्रता एवं अस्तित्त्व की माँग को वर्णित किया है । चित्रा पढ़ी लिखी है । इसलिए दिल्ली पहुँचने पर वह कहीं कोई नौकरी करना चाहती है । इस चाह की अभिव्यक्ति करते हुए चित्रा कहती है

कि-'' एक दफा घर ठिकाने का हो जाए तो मैं भी कहीं छोटी-मोटी नौकरी कर लूँ।....सारा दिन अकेले यहाँ मन भी तो नहीं लगता।''[७९] लेकिन परिस्थिति वश ऐसा नहीं होता। फिर सालों बाद पति-पत्नी के मन-मुटाव के कारण वह सुमन्त की सहायता से एक नौकरी हाँसिल करती है। वह अपने पारिवारिक सम्बन्ध को बनाए रखने के लिए नौकरी छोड़ने को तैयार नहीं होती, क्योंकि वह अपने पैरों पर खड़ी होकर जीवन जीना चाहती है। किसी पर बोझ बनकर जीने को वह तैयार नहीं होती। चित्रा 'अहंवादिनी' है। वह अपने 'अहं' को बनाए रखना चाहती है। इसलिए ही वह अपने पति के सामने झुकने को तैयार नहीं होती है ,साथ ही वह अपने को निर्दोष साबित करने का प्रयत्न भी नहीं करती। पति द्वारा परित्यक्त हो जाने पर भी वह 'अहं' छोड़कर उसके पास नहीं जाती, बल्कि अपने 'अहं' को बनाए रखने के लिए और आर्थिक स्वतन्त्र रहने के लिए नौकरी हाँसिल करती है। वह अपने अस्तित्त्व को बनाए रखने तथा स्वतन्त्र जीवन जीने के लिए नौकरी से जुड़कर जीवन-यापन करती है। साथ ही चित्रा अंत तक अपने अहं की रक्षा करती है।

'आगामी अतीत' उपन्यास की चाँदनी एक स्वाभिमानी एवं आत्मनिर्भर नारी है। चाँदनी के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसे जीवन के प्रति गहरी आस्था है। शरीर को जीने का साधन बनानेवाली नारी के लिए न भविष्य होता है न वर्तमान। यातना एवं त्रासदी से पूर्ण जीवन होते हुए भी चाँदनी साहस के साथ जीवन व्यतीत करती है। उसने आपत्तियों का मुकाबला पूरी शक्ति लगाकर किया है। अपनी मर्यादाओं में जीते समय उसने आत्मविश्वास को कायम रखा है,जो उसे जीवन की प्रेरणा से मिला है। वह आत्म विश्वास के साथ कमलबोस को कहती है कि- '' जो होना था सो हो गया। अब चाँदनी किसी के हत्थे नहीं चढ़ेगी। इस धन्धे की भी दुनिया बूरी नहीं है ....। ''[८०] चाँदनी जीवन से हारती नहीं है। उसके मन में आत्महत्या की बात भी नहीं आती। वह जीने का रास्ता ढूँढ लेती है। वह वेश्या व्यवसाय को बूरा नहीं समझती। वह परिस्थितियों से समझौता करती है। वह संकट से संघर्ष कर जीना चाहती है, जीवन से हारकर आत्महत्या नहीं करती।

चाँदनी के सामने कमलबोस के सारे रहस्य खूल जाते हैं। कमलबोस को चाँदनी की स्थिति देखकर पछतावा होता है और चाँदनी को बाकी की जिन्दगी उसकी बच्ची बनकर व्यतीत करने के लिए कहता है। चाँदनी समाज की नकली तथा ढोंगी मान्यताओं से नफरत करती है इसलिए कमलबोस के प्रस्ताव का अस्वीकार करती है। चाँदनी चाहती तो अपना शेष जीवन सम्पन्नता के साथ बिता सकती थी लेकिन उसे यह मंजूर नहीं था कि अपनी माँ और उसका जीवन बरबाद करनेवाले से समझौता

करे। इस उपन्यास में चाँदनी अपने अस्तित्त्व को बनाये रखने के लिए परिस्थितियों के सामने लड़ती है।

'अम्मा' उपन्यास में नारी की स्वतन्त्रता एवं अस्तित्त्व की माँग को वर्णित किया गया है। शान्ता पढ़ी-लिखी एवं संस्कारशील नारी है। अपने पति प्रवीन की मृत्यु के बाद सास सरस्वती उसे कोठरी में बन्द कर देती है, तब शान्ता सास के अत्याचार का विद्रोह करती है। शान्ता परिस्थितियों के सामने हार नहीं मानती बल्कि लड़कर मार्ग निकालती है। वह अपने देवर नवीन को सार्जंट टाम से बचाने के लिए विविध उपाय करती है। कथा के अन्त मे अपने दामाद जीत के द्वारा सम्पत्ति का आधा हिस्सा माँगने पर भी शान्ता विचलित नहीं होती। वह अपनी वसीयत बनाकर अपनी बुद्धि एवं शिक्षा का परिचय देती है। शान्ता के जीवन में कई उतार-चढ़ाव आते हैं पर अन्त तक वह अपने अस्तित्त्व को बनाये रखने के लिए परिस्थितियों के सामने झूझती है। अपने पति की मृत्यु के पश्चात आजीविका का कोई साधन न होने पर कपड़ों की सिलाई करके जीवन यापन करती है। आर्थिक अभाव में भी शान्ता अपना 'अहं' बनाये रखती है। वह किसी के सामने झुकती नहीं है।

इस प्रकार 'तीसरा आदमी' उपन्यास की चित्रा,'आगामी अतीत' की चाँदनी और 'अम्मा' उपन्यास की शान्ता ऐसे नारी चरित्र है जो अपने अस्तित्त्व को बनाये रखने के लिए परिस्थितियों से लड़ती है। कोई भी परिस्थितियों के सामने हार माननेवाले ये पात्र नहीं है। समाज में ऐसी अनेक नारी है जो पढ़ी-लिखी एवं बुद्धिमान है। चित्रा जैसी नारी पति के चले जाने के बाद भी दिल्ली जैसे महानगर में अपने अस्तित्त्व को बनाये रखती है। चाँदनी वेश्या होते हुए भी किसी के सामने हाथ फैलाती नहीं है,या कमलबोस के कहने पर भी पुत्री बनना स्वीकार करती नहीं है। जब कि शान्ता भी विपरीत परिस्थितियों में भी अपने अस्तित्त्व को बनाये रखना चाहती है। इन नारी चरित्रों के द्वारा लेखक ने सामाजिक चेतना लाने का प्रयास किया है।

(७) पति-पत्नी सम्बन्ध विच्छेद :

कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों में स्त्री-पुरुष या पति-पत्नी के सम्बन्धों का वर्णन किया है। कमलेश्वर के विचार में पति-पत्नी का वह परम्परागत रिश्ता आज टूटता जा रहा है। शादी तो इस बात की गारंटी नहीं है कि स्त्री और पुरुष आखिरी साँस तक प्यार करेंगे ही। कमलेश्वर ने यह विचारों को अपने उपन्यासों के जरिए व्यक्त किया है। कमलेश्वर के उपन्यासों में दो प्रकार के सम्बन्ध विच्छेद देखे जाते हैं।

(i)- 'तीसरे' व्यक्ति के आगमन से टूटते सम्बन्ध

(ii)- 'शक' से टूटते सम्बन्ध

(i) 'तीसरे' व्यक्ति के आगमन से टूटते सम्बन्ध :

पति-पत्नी अपने बीच किसी प्रकार का अन्तर या भेद सह नहीं पाते । 'तीसरा आदमी' उपन्यास का नरेश अपनी शादी के पहले दिन ही उनके जीवन में तीसरे व्यक्ति का आगमन सुमन्त के द्वारा महसूस करता है । जो वह अपनी पत्नी के लिए करना चाहता है वह सब उसके पहले ही तीसरा (सुमन्त) कर देता है । इस प्रकार उनके विवाहित जीवन पर सुमन्त एवं उसकी छाया हावी हो जाती है ।

नरेश परिस्थितिवश पत्नी के संग महानगर दिल्ली में सुमन्त के एक कमरेवाले घर में रहने को बाध्य हो जाता है । यही विवशता उनके जीवन में अभिशाप बन जाती है । सुमन्त तीसरा व्यक्ति बनकर उनके जीवन में उपस्थित होता है तथा नरेश के अचेतन में एक छाया बनकर सदा के लिए बस जाता है । तीसरे व्यक्ति की वजह से नरेश और चित्रा अपने मन की बातें आपस में प्रकट नहीं कर पाते । उनकी अधिकांश भावनाएँ और इच्छाएँ अचेतन स्तर पर ही रह जाती है । वे कभी व्यक्त नहीं हो पाती । इस इच्छापूर्ति के अभाव में दोनों अतृप्ति का अनुभव करते हैं । यहाँ तक कि पति-पत्नी की सहज यौनेच्छा को भी वे एक दूसरे के सम्मुख व्यक्त नहीं कर पाते । इस प्रकार अतृप्त इच्छाएँ दबा-दबाकर जीने को दोनों विवश हैं । यही अतृप्त इच्छाएँ अचेतन में दब-दबकर कुण्ठा का रूप धारण करती है ।

नरेश और चित्रा दोनों शक के शिकार है । छोटी-छोटी बातों का सन्देह दोनों के बीच बढता गया और दोनों खामोश होते गए । अब उसे लगने लगा है कि उनकी अनुपस्थिति में चित्रा और सुमन्त के बीच अवैद्य सम्बन्ध भी हो गया है । नरेश के शक को एक बार सबूत भी मिल जाता है । वह एक दिन रेड़ियो स्टेशन से समय से पहले घर पहुँचा तो वहाँ ताला बन्द था । वह गली में आ गया तो देखा कि सुमन्त चित्रा के कन्धे पर हाथ रखे हुए बड़े मुक्त भाव से धीरे-धीरे चल रहा था और चित्रा हँसती हुई उससे कुछ कह रही थी । उस वक्त नरेश अपने आपको कहीं किसी अनजान स्टेशन पर छूटा हुआ महसूस कर रहा था । उसके मन में संघर्ष शुरू होता है और वह द्वन्द्व का शिकार हो जाता है । नरेश इस सन्दर्भ में कहता है कि -'' यह रिश्ता तो सिर्फ रहम का रह गया है । इसके अलावा और क्या है इसमें ? नारी पुरूष पर रहम करके उसकी वासना की तृप्ति के लिए अपना शरीर दे देती है और पुरूष उस पर रहम करके उसे

सुरक्षा प्रदान कर देता है । अंततः यह रहम की उन दोनों को जोड़े रहता है । जहाँ यह रहम नहीं रह जाता, वहाँ सब कुछ टूट जाता है ।''[८१] नरेश को लगता है कि पति-पत्नी के सम्बन्धों का अब कोई अर्थ नहीं रह गया है ।

नरेश आखिर द्वन्द्व में हार जाता है । वह उन दोनों के बीच 'तीसरे'की छाया का अस्तित्त्व मानने लगता है । अनेक समझौते के बाद वह अन्त में चित्रा को छोड़कर पलायन करता है । वह समझता है कि चित्रा सुमन्त के साथ बँध जायेगी, लेकिन सुमन्त की आत्महत्या की खबर पाकर उसका अहं टूट-टूटकर बिखर जाता है । उसकी शंका समाप्त हो जाती है तथा उसके अचेतन का द्वन्द्व भी समाप्त हो जाता है, लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी । चित्रा अपना स्वनिर्मित एवं स्वावलंबी जीवन आरम्भ कर देती है । वह नरेश को फिर अपने जीवन में स्वीकार नहीं करती । नरेश टूटकर बिखर जाता है ।

इस प्रकार 'तीसरे' की उपस्थिति से टूटते पति-पत्नी के सम्बन्ध की अभिव्यक्ति अत्यन्त मनोवैज्ञानिक ढँग से उपन्यासकार ने प्रस्तुत की है । फ्रायड़ के मनोविश्लेषण सिद्धान्त के जरिए व्यक्ति मन के अचेतन की स्थिति द्वन्द्व, शंका,डर, हीनभावना एवं अहं का सफल अंकन लेखक ने किया है । 'तीसरा आदमी ' उपन्यास में जिन सामाजिक, व्यक्तिगत, परिस्थितियों के बीच नरेश तथा चित्रा के सम्बन्धों में जो कटूता आ जाती है उसे उपन्यासकार ने फिर से मानवीय व्यक्तित्त्व का रूप देने का प्रयास किया है ।

कमलेश्वर ने 'पति पत्नी और वह ' उपन्यास में तीसरे व्यक्ति के आगमन का वर्णन किया है । लेखक ने इसमें 'तीसरा आदमी ' उपन्यास से बिलकुल अलग ही वर्णन किया है । रंजीत के ओफिस में जितनी भी सेक्रेटरी आती है उसके साथ वह प्रेम का नाटक रचाता है । रंजीत शादी के आठ साल बाद वह अपनी सेक्रेटरी निर्मला की ओर आकर्षित होता है । रंजीत की पत्नी शारदा की चालाकी और समयसूचकता की वजह से यह सम्बन्ध विकसित होने से पूर्व ही खतम हो जाता है ।

रंजीत का यह सिलसिला शुरु ही रहता है । दूसरी सेक्रेटरी नीना फर्नान्डीज शेफाली, मीस रोजी आदि उनके जीवन में आती है । हर एक को वह अपनी पत्नी की बीमारी की बात करके अपनी ओर आकर्षित करता है । रंजीत की पत्नी शारदा अपने घर को टूटते देखना नहीं चाहती थी । जिस घर को उन्होंने तिनका-तिनका जोड़कर बनाया था उसे हर हाल में बचाना चाहती है । वह कहती है कि रंजीत भटक सकता

है पर मैं तो एक बच्चे की माँ हूँ भटक नहीं सकती । इस प्रकार कमलेश्वर ने ‘पति पत्नी और वह ’ उपन्यास के द्वारा एक ऐसी पत्नी का वर्णन किया है कि जो हर हाल में पति पत्नी सम्बन्ध को बनाये रखती है ।

‘वही बात’ उपन्यास में लेखक ने तीसरे व्यक्ति के आगमन का वर्णन किया है । प्रशांत और उसकी पत्नी समीरा बाँध बाँधने के सिलसिले में मुंबई से बहुत दूर एक पहाड़ी प्रदेश में आते है । इस कम्पनी में डिप्टी इंजीनियर पद पर नकुल है । यहा पर आकर प्रशांत अपने काम में डूब जाता है । प्रशांत को समीरा क्या करती है यह देखने की फूरसद भी नहीं रहती । प्रशांत की बढ़ती हुई जिम्मेदारियों की वजह से समीरा अकेलापन महसूस करती है । समीरा अकेलेपन से तंग आकर नकुल से अपनापन जोड़ लेती है ।

इस प्रकार लेखक ने जीवन की व्यस्तताओ के कारण तीसरे व्यक्ति के आगमन से पति-पत्नी के सम्बन्ध विच्छेद का वर्णन किया है । समीरा के जीवन में तीसरे व्यक्ति के आगमन से वह खुश नहीं है ,क्योंकि उसे अतीत कचोटता है । जब नकुल व्यस्त हो जाता है तब प्रशांत की याद बनी रहती है अर्थात् उसके जीवन में तीसरा जुड़ा रहता है ।

(ii) ‘शक’ से टूटते सम्बन्ध :

कमलेश्वर ने ‘डाक बंगला’ उपन्यास में ‘शक’ से टूटते पति-पत्नी सम्बन्ध को भी उभारा है । शंका तो एक मनःस्थिति है जिसके लगने से केवल उसका ही नहीं उससे जुड़े व्यक्तियों का भी पतन होता है । इसमें इरा का पति विमल ‘शंका ग्रस्त’ व्यक्ति है । इरा और विमल नये रंगबिरंगी सपने देखकर ही पारिवारिक जीवन में प्रवेश करते हैं । उसमें पूर्णरूप से उतरने पर उन्हें जीवन भार सा महसूस होता हैं । आर्थिक कठिनाई के कारण विमल इरा को बतरा के यहाँ नौकरी करने भेजता है, तब से वह ‘शंका’ का शिकार हो जाता है । विमल की हालत का चित्रण करते हुए इरा कहती है कि- ‘‘ मैं गवाह हूँ इस बात की जब आदमी का विश्वास टूटता है तो वह दृश्य कितना दारूण होता है ।..... वह मुझ पर एकांतिक अधिकार चाहता था । ...बतरा के बारे में जान-बूझकर वह मुझ से कभी कुछ नहीं पूछता था और उसका यह न पूछना ही बहुत खतरनाक था । ....उसके मन में बार-बार यही बात उठती थी कि मैं बतरा के साथ किसी समझौते पर पहूँच गई हूँ। अपने शक के बावजूद वह मुझे बर्दाश्त करता था ।’’[८२] शक्की व्यक्ति अन्तर्मुखी बन जाता है । विमल में भी यह अन्तर्मुखीपन प्रकट

है । इरा इसका वर्णन करते हुए कहती है कि उन दिनों मैंने देखा वह अन्तर्मुखी होता जा रहा था और जान पहचानवाले सभी लोगों को शक की निगाह से देखता था, पर उसका विश्वास लगातार टूटता जा रहा था । जब विश्वास टूटता है व्यक्ति मजबूर हो जाता है । विमल भी विश्वास टूटने के कारण मजबूर हो गया विश्वास के क्षण उसके पास भी कम होते जा रहे थे । वह खुद मजबूर था । दिन-ब-दिन उसका मन शंकालु होता जा रहा था । अब वह बड़ी मुश्किल से किसी भी बात को सच मान पाता था । विमल जैसा आँख मूँदकर बात मान लेनेवाला आदमी अब खूली आँखों से देखते हुए भी किसी बात पर एकदम विश्वास करने को तैयार नहीं होता था । इसका परिणाम यह निकला कि वह तनाव ग्रस्त बन गया । मन को दिलासा देने के लिए वह बतरा के घर के इर्द-गिर्द चक्कर काटने लगा । शंका की व्याख्या अत्यन्त सही एवं रोचक है जैसे कि -'' शंका तो दिल-दिमाग में कुण्डली मारकर बैठा हुआ सर्प है ।''[८३] वह कब उठता है यह तो कोई नहीं जानता । विमल को कुसमय उस घोर संशय के सर्प ने काटा तो इरा को अकेला छोड़कर उसने जीवन से पलायन किया ।

युगीन परिवेश के संदर्भ में कमलेश्वर के साहित्य में निहित सामाजिक चेतना का दृष्टिपात करने पर निःसंकोच कहा जा सकता है कि उसकी सामाजिक चेतना स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिवेश की उपज है । सामाजिक क्षेत्र मे व्याप्त विविध पाखण्डों एवं प्रपंचों तथा पूँजीपतियों एवं विज्ञान से उत्पन्न विभीषिका के दंश से कराहते इन्सान को पीड़ा मुक्त कराना ही उनका लक्ष्य रहा है । समाज में फैले विविध अर्न्तविरोधों को उन्होंने बड़े निकट से सिर्फ देखा-परखा ही नहीं, जाना भोगा और उर्जा भी वहीं से प्राप्त की, तभी तो सामाजिक असंगतियों की तह में जाकर सुधार के बिन्दु खोज सकने में समर्थ हुए ।

स्वतन्त्रता के पश्चात् जीवन मूल्य बदल गए हैं और समाज की जाति व्यवस्था में परिवर्तन आया है । आर्थिक दबाव ,आद्योगिकीकरण, आधुनिकीकरण तथा नगरीकरण के कारण भारतियों ने जातीय सीमाएँ तोड़ दी, जिससे उसकी परम्पराओं रूढ़ियों और रहन-सहन में परिवर्तन आया है । समाज के व्यापक परिवर्तनों ने परिवार और समाज के परम्परागत सम्बन्धों पर प्रश्न चिहन् लगा दिए हैं । स्वतन्त्रता के बाद हर क्षेत्र में हुई प्रगति के कारण जीवन मूल्य विघटित हो गए हैं । इसका असर पारिवारिक रिश्तों में खूब झलकता है । आजकल घर के सदस्यों के बीच पहले जैसा पवित्र, उष्मल एवं गाढ स्नेह सम्बन्ध तथा विश्वास नहीं रह गया है । सब पारिवारिक रिश्तें याने पति-पत्नी, पिता-पुत्र, पिता-पुत्री, भाई-बहन, भाई-भाई, बहन-बहन आदि नाम मात्र

रह गए हैं। यह भी नहीं आज यह रिश्तें भी हर एक के अस्तित्त्व को बनाए रखने के लिए ही ढोते है उससे बढ़कर कोई मूल्य नहीं रखता है।

समसामयिकता को उसके वास्तविक परिवेश में उभारने के लिए कमलेश्वर ने भी मानवीय रिश्तों और सम्बन्धों में आए अलगाव को बेहद ईमानदारी के साथ दर्शाया है। मानवीय सम्बन्धों में सबसे अधिक परिवर्तन दाम्पत्य जीवन में हुआ है, जिसकी सफल अभिव्यक्ति 'तीसरा आदमी', 'आगामी अतीत', 'काली आँधी', 'लौटे हुए मुसाफिर', 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' आदि उपन्यासों में देखी जाती है। लेखक ने पिता-पुत्री और माँ-बेटी सम्बन्ध का भी चित्रण युगीन संदर्भों में किया है। उन्होंने नारी की मानसिकता में युगानुरूप आए परिवर्तनों को खूब दर्शाया है। स्वतन्त्रता के बाद पहले से कई गुना ज्यादा समाज में नारी का शोषण हो रहा है। कभी-कभी बेसहारा होने से, आर्थिक अभाव से, मन बहलाव के लिए तथा अन्य कारणों से नारी समाज में छिपे दरिन्दों का शिकार बन जाती है।

कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों में इन सभी विसंगतियों का जीवन्त चित्रण किया है। लेखक ने इन सभी को निकट से देखा है बाद में अपने साहित्य में वर्णित किया है। इसके द्वारा लेखक का मूल उद्देश्य इन विसंगतताओं को दूर करने का है। इस कारण से ही उन्होंने सामाजिक चेतना के लिए समाज के सम्बन्धों का सूक्ष्म-से-सूक्ष्म आवरण को खोलकर रख दिया है।

(ब) राजनीतिक चेतना :

२० वीं शताब्दी में राजनीतिक दृष्टि से काफी उथल-पुथल हो रही थी। कमलेश्वर भी इसी युग की उपज थे, इसलिए कमलेश्वर समसामयिक राजनीतिक परिस्थितियों को अनदेखा नहीं कर सके। देश-विदेश में घटने वाली राजनीतिक घटनाएँ एवं नेताओं की शतरंजी पैंतरेबाजी पर अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करते हुए राजनीतिक अर्न्तविरोधों को बेहिचक उभारते रहे। उनके साहित्य में घिनौनी दलगत रंग बदलती राजनीति, षड़यंत्रों एवं तत्कालीन घटनाओं का प्रभाव परिलक्षित होता है। कमलेश्वर ने स्वार्थी सत्तान्ध शासकों की निरंकुशता एवं राजनीतिक भ्रष्टाचार तथा राजनेताओं की गलत राजनीतियों का जमकर प्रतिकार किया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति हमारे देश के इतिहास की बहुत बड़ी घटना है, लेकिन स्वतन्त्रता के उल्लास को विभाजन की उदासी ने ग्रस लिया। इसलिए देशवासियों के

स्वतन्त्रता के सपने टूटकर मोहभंग में परिणित हो गए। एक ओर बाहरी शक्तियों की गुलामी टूटी दूसरी ओर से भीतरी शक्तियों ने जनता को जकड़ लिया। स्वतन्त्रता के नाम पर केवल सत्ता का हस्तान्तरण हुआ। स्वतंत्रता के बाद की स्थिति डॉ. मंजुलता सिंह के उक्त कथन से स्पष्ट होती है –''स्वतन्त्रता प्राप्ति के बााद राष्ट्रीय मानस में 'टुच्चे' स्वार्थों ने जन्म लिया और लोग अपना घर भरने तथा आजादी की परवाह न करने के लिए आजाद हो गए।''[८४] साहित्यकार भी अपने समय की राजनीति के प्रभाव से मुक्त नहीं रह सकता, चाहे उसका विश्वास राजनीतिक मतमतान्तरों में हो या न हो किन्तु राजनीतिक गतिविधियों का प्रभाव उस पर जरूर पड़ता है। इसका सफल चित्रण कमलेश्वर के उपन्यासों में भी हुआ है। कमलेश्वर ने समकालीन राजनीतियों पर तीखा व्यंग्य किया है तथा समाजवाद की स्थापना पर भी जोर दिया है। उनके 'लौटे हुए मुसाफिर', 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ', 'काली आँधी', 'सुबह दोपहर शाम', 'कितने पाकिस्तान', 'अम्मा' आदि उपन्यासों में राजनीतिक गतिविधियों का चित्रण हुआ है।

(१) क्रान्तिकारी आन्दोलन :

कमलेश्वर सच्चे वाम पंथी थे। इसका खूब प्रभाव उनके उपन्यासों में हम देख सकते हैं। वे क्रान्ति या साम्यवादी आन्दोलन से समाजवाद की स्थापना करना चाहते हैं। उनके 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ', 'डाक बंगला', 'सुबह दोपहर शाम' आदि उपन्यासों में इस विचारधारा की सफल अभिव्यक्ति हुई है। कमलेश्वर के 'सुबह दोपहर शाम' उपन्यास में स्वतन्त्रता आन्दोलन का उल्लेख हुआ है। अंग्रेजी शासन से मुक्ति पाने के लिए एक ओर देश में स्वतन्त्रता संग्राम हो रहा था तो दूसरी ओर क्रान्तिकारी आन्दोलन भी होते थे। वे अंग्रजों को तहस-नहस कर देना चाहते थे। वे अंग्रजों की नीति के विरूद्ध खूलकर जवाब देते थे। लेखक ने इस उपन्यास में क्रान्ति के द्वारा देश की मुक्ति का आह्वान दिया है और यही लेखक का लक्ष्य भी है। लेखक के अन्दर जो क्रान्ति की ज्वाला प्रज्वलित है उसे इस उपन्यास के नायक नवीन के जरिए अभिव्यक्त किया है। नवीन ने देश की आजादी के लिए क्रान्ति का मार्ग अपनाया, इसलिए अंग्रेजी पुलिस को उसकी तलाश रहती है। पुलिसवाले नवीन के घरवालों को सदा सताते रहते थे। फिर भी नवीन के पिता कुन्दनलाल उसके समर्थक थे। कुन्दनलाल का क्रान्तिकारियों के बारे मे विचार है कि – ''क्रान्तिकारियों को आतंकवादी कहना गलत है......वे भी देश की उसी आजादी के लिए लड़ रहे है, जिसके लिए हमने प्रतिज्ञा ली है.... अन्तर सिद्धान्तों का है।''[८५] एक बार क्रान्तिकारियों ने रेलगाड़ी से सरकारी खजाना लूट लिया, उसमें नवीन भी शामिल था। इस घटना के सम्बन्ध में एक हवालदार का मनोभाव अपने देश के प्रति स्वतन्त्रता के लिए लड़ रहे क्रान्तिकारियों

के लिए कैसा है वही भावना प्रस्तुत करता है -'' नहीं ! ऐसा नहीं होगा ... वो लूटेरे नहीं थे ...वो इन्कलाबी थे ! वो हमें नहीं.... सरकारे बर्त्तानिया का खजाना लूटने आए थे । ''[८६] इस प्रकार जान की परवाह किये बिना देश के मान की रक्षा में रत क्रान्तिकारी नवीन का यथार्थ अंकन 'सुबह दोपहर शाम' उपन्यास में हुआ है । आजादी के बाद जो बुनियादी परिवर्तन राजनीतिक क्षेत्र में होना चाहिए था वह नहीं हुआ । राजनेता केवल वादे दोहराते रहे, करते कुछ नहीं । आम जनता की मनःस्थिति में व्यापक परिवर्तन दिखाई दिया । वाम पंथी प्रभाव से नक्सलवादी आन्दोलन को बढ़ावा मिला । इसलिए तो कमलेश्वर के उपन्यास भी इससे छूट नहीं पाये ।

कमलेश्वर के 'डाक बंगला' और 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' उपन्यासों में क्रान्तिकारी आन्दोलन की अभिव्यक्ति हुई है । 'डाक बंगला' उपन्यास की नायिका इरा का पति विमल उसे छोड़ने के बाद क्रान्तिकारियों के साथ काम करने लगता है । कई बरस उसका पता ही नहीं चलता बाद में मालूम होता है कि वह आन्ध्र में क्रान्तिकारियों के साथ है और वहीं कहीं पकड़ा गया है । सालों बाद जेल से छूटकर वह इरा से मिलता है और दोनों फिर से जीवन शुरु करते हैं । उस वक्त विमल ने वर्ग वैषम्य का कारण बताया । असल में उपन्यासकार की सबल वाम पंथी सोच ही विमल के मुँह से फूट पड़ी है कि - '' अगर हमें सार्थक होकर जीना है तो सब कुछ बदलना होगा ...जिस अवरुद्ध क्रान्ति में हम फँस गए हैं, उसे पूरा करना होगा .... जब तक सड़ती हुई इस क्रान्ति के किटाणु नहीं खत्म होंगे, तब तक इस देश में हम और तुम यों ही सड़-सड़कर और अपमानित होकर मरने के लिए मजबूर होंगे ।''[८७]

' एक सड़क सत्तावन गलियाँ ' उपन्यास में भी उपन्यासकार के समाजवादी स्वर मुखरित है । इसका उद्‌घाटन उन्होंने सरनामसिंह के द्वारा किया है । इस प्रकार देश की आम जनता की उन्नति एवं खुशहाली के लिए समाजवाद की स्थापना पर उपन्यासकार बल देते हैं । सरनामसिंह का साथी रंगीला भी आजादी की लड़ाई में शामिल हुआ था । वह सुभाषचन्द्र बोझ की शूरता और वीरता की बाते लोगों को सुनाया करता था । रंगीला आजादी की लड़ाई के लिए रात में होने वाली मीटिंग में हिस्सा लेता था और मीटिंग में तय हुई बातों पर अमल करता था । रंगीले ने दस-पन्द्रह साथियों के साथ मिलकर डाकघर को आग लगा दी थी । कचहरी पर छापा मारने वालों के दल में भी वह शामिल था । रंगीले ने जगह-जगह क्रान्ति की आग भड़काई थी । रंगीले के क्रान्तिकारी आन्दोलन से प्रभावित होकर लोग उसे 'नेताजी' कहते थे । रंगीला महान स्वातन्त्र्य सेनानी था, उसकी वीरता और शूरता के गीत गाये जाते थे । किन्तु रंगीले ने जिस स्वतन्त्र भारत के सुन्दर स्वप्न देखे थे,वे मात्र स्वप्न ही

रहे । वह अत्यन्त पतित एवं घिनौने राजनीतिक परिवेश का परिणाम था कि रंगीला जैसा स्वातन्त्र्य सेनानी स्वाधीन भारत में झुठी गवाहियाँ देकर पेट का गुजारा कर रहा था ।

कमलेश्वर ने 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ ' उपन्यास में वर्तमान भारतीय राजनीतिक परिवेश का बिल्कुल सही और यथार्थ निरूपण किया है ।

(२) साम्यवाद का चित्रण :

कमलेश्वर ने 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' उपन्यास में साम्यवाद का चित्रण किया है । लेखक का साम्यवादी स्वर सरनामसिंह के डॉक्टर साहब से हुई बातचीत में मुखरित होता है । डॉक्टर साहब सरनाम से अपने जिले में मोटर यूनियन बनाने और मालिकों से अपनी जरूरतों के लिए लड़ने की बात कहता है, तब सरनाम खूल्लम खूल्ला कह देता है कि ऐसी लड़ाई महानगरों में ही सम्भव है जहाँ कारखाने तथा अन्य सुविधाएँ है । सरनाम कहता है कि मैनपुरी जैसी बस्ती में यह तो सम्भव नहीं क्योंकि -'' यहाँ सब जीने के लिए संघर्ष कर रहे हैं । मालिक और मजदूर, वकिल और मुहर्रिर, दूकानदार और नौकर सभी एक नाव में हैं और उस नाव के चारों ओर एक तरह का तूफान उमड़ रहा है ।''[८८] लेखक समाजवाद की स्थापना के लिए सब सामाजिक अर्थव्यवस्था एवं कुरीतियों के प्रति संघर्ष करने का आह्वान सरनाम के जरिए देते हैं । वह कहते है कि -''यहाँ किसी मालिक की छत ऊँची नहीं, किसी सेठ का मकान चमचमाता हुआ नहीं ! पर यहाँ हर ब्राह्मण की इज्जत ऊँची है, हर कायस्थ का माथा चमचमाता हुआ है,हर क्षत्रिय की नाक ऊँची है ! इस झूठी इज्जत को धूल में मिलाइए, उस चमचमाते खोखले माथे को झुकाइए, उन ऊँची नाकों को काटिए, तब बराबरी होगी ! ...बराबरी .....।''[८९] यानि यहाँ जातीयता से परे समाजवाद का स्वर गूँज उठता है । इस प्रकार कमलेश्वर ने आम जनता की उन्नति के लिए समाजवाद पर जोर दिया है ।

आजादी के बाद भारत में गरीब और भी अधिक गरीब होते गए और धनी और भी अधिक धनी होते गए । इसका कारण संभवतः यह रहा कि इस देश के नेताओं ने सदा ही बेईमानी से राजनीति का उपयोग किया है । नेताओं के लिए राजनीति एक ऐसा साधन बन गई जिसका वे मनमाने ढंग से बिना किसी मूल्य के उपयोग करते रहे । नेताओं के साथ-साथ इस देश का प्रशासन चलाने वाले प्रशासक और अफ्सर भी इन नेताओं की गलत नीतियों का शिकार हुए और कुशल प्रशासन देने के बजाय

स्वयं स्वार्थसिद्धि में मग्न रहे । अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए नेताओं और अधिकारियों ने खूल्ले आम जातीयता तथा साम्प्रदायिकता का आश्रय लिया और समय पड़ने पर मुक्त रूप से हिंसा का भी प्रयोग किया । साम्यवाद का चित्रण करते हुए सरनामसिंह डॉ.लालचन्द को कहता है कि-'' उन सप्लाई अफ्सरों से पूछिए जो सिमेन्ट की बोरियाँ बनियों को बाँटकर खत्म कर देते हैं । उन ठाकुरों से लड़िए जो अहिंसा और गाँधीजी के नाम पर जिला कमेटी के सभापति पद के लिए दस-बीस के सर तुड़वा देते हैं..... उन नेताओं से लड़िए जो रिश्वत ले-लेकर जमीनें बाँटते है । उन अफ्सरों के बंगलों पर धरना दीजिए जो नशाबंधी कानून के नोटिस पर दस्तखत करके अंग्रेजी शराब की चुस्कियाँ लेते है,उन काली टोपीवाले संधियों से लड़िए जो घृणा फैलाकर मुसलमानों को चैन की नींद नहीं सोने देते ......कितनी लडाईयाँ है डॉक्टर साहब । आँखें खोलकर देखिए डॉक्टर साहब । लड़ाई कहा है ? ''[९०] कमलेश्वर ने यहाँ सरनामसिंह के द्वारा दोगली अर्थव्यवस्था का पर्दाफाश किया है । स्वाधीन भारत के नेतागण, अफ्सर जातीयवादी संगठन अपने स्वार्थ के लिए जनता का शोषण करते है उसे सरनाम मिटाना चाहता है ।

'डाक बंगला' उपन्यास में भी लेखक के साम्यवादी स्वर मुखरित हुए हैं । लेखक ने विमल के जरिए इसको अभिव्यक्त किया है । विमल ने एक सच्चे साम्यवादी के समान अपनी विचारधाराओं की अभिव्यक्ति की है । पहले उसने शोषण से मुक्ति का आह्वान किया, बाद में वह इरा से कहता है कि- '' तुम मेरी बेचैनी नहीं समझ पाओगी ....पर उस मजबूरी को जरूर समझ सकती हो, जो तुमने मेरे साथ भोगी थी !.... क्यों हम इस तरह सड़ने गलने और मर जाने के लिए मजबूर है ? ''[९१] विमल के मत में गरीबों के जीवन को सार्थक बनाना है तो यहाँ सबकुछ बदलना होगा । इसके लिए पहले दोगली अर्थव्यवस्था एवं पूँजीवाद को समाप्त करना है । यहाँ व्याप्त असमानता को जड़ से उखाड़ने के लिए वह क्रान्ति का आह्वान करता है । लेखक के साम्यवादी विचार ही विमल के कथनों से उभर आते है । लेखक ने शोषण, असमानता एवं पूँजीवाद का उन्मूलन करके समाजवाद की स्थापना का आह्वान इस उपन्यास के जरिए किया है ।

(३) देश-विभाजन : एक अमानवीय अनुभव :

स्वतन्त्रता प्राप्ति से जुड़ा देश-विभाजन देश के लिए एक ऐसी अप्रत्याशित घटना थी जिसने मात्र मानवीय मूल्यों को ही नहीं बल्कि जन मानस की चेतना को भी तहस-नहस किया । देश-विभाजन की व्यथा को व्यक्त करते हुए रघुवीरसिंह का

विचार है –'' विभाजन की विभीषिका ने व्यक्ति चेतना को हिलाकर रख दिया। उसने जो कुछ देखा,अनुभव किया और सुना उससे उसकी आत्मा तक हिल गई। जो उसके सामने आया, उसने अपने अस्तित्त्व की रक्षा को ही सबसे बड़ा मूल्य बना दिया और अस्तित्त्व की इस चुनौती के सामने सारे ऊँचे-ऊँचे परम्परागत सांस्कृतिक मूल्य निरर्थक हो उठे।''[९२] देश-विभाजन से उत्पन्न धन सम्पति की क्षति से लोगों ने एक हद तक छुटकारा पाया लेकिन अपने प्रियजनों से बिछुड़ने पर जो घाव लगा वह सालों बाद भी न भर पाया है। असंख्य परिवार इस दुःखद स्थिति के शिकार हो गए। विभाजन से उत्पन्न विकृतियों, मानवीय मूल्यों एवं नैतिक पतन की सशक्त एवं सहज अभिव्यक्ति तत्कालीन कथाकार करते रहे है। कमलेश्वर ने धर्म सम्प्रदाय और राजनीतिक सीमाओं से परे अपनी धरती की चाह में डूबे व्यक्तियों की वेदना एवं तड़प का वर्णन अपने उपन्यासों में किया है।

भारत-पाकिस्तान विभाजन से अधिकतर शासन यंत्रणा में परिवर्तन आया है। लेकिन मनुष्य की आन्तरिकता में कोई बदलाव नहीं आया। देश-विभाजन से जुड़ी मानवीय संवेदनाओं को अपने नजरिए से व्यक्त करते माधुरी शाह लिखती है – ''इन बाहरी विभाजनों से परे मानव के भीतर एक सहज मानवीय संवेदनाओं का स्त्रोत बहता है, जो धर्म और जाति की संकिर्णता को लाँघ दूसरे मनुष्य के प्रति मनुष्य होने के नाते आकर्षित होता है।''[९३] विभाजन की निरर्थकता एवं निस्सारता वापस आये हुए लोगों से प्रकट होती है।

साम्प्रदायिक एवं विभाजन के दुष्परिणामों की यथार्थ अभिव्यक्ति 'लौटे हुए मुसाफिर' में हुई है। उपन्यास के आरम्भ में ही जाति विद्वेष का उल्लेख है ....'' सिर्फ नफरत की आग ने इस बस्ती को जलाया था।''[९४] चिकवों की खूबसूरत बस्ती में जहाँ हिन्दू और मुसलमान कन्धें से कन्धा मिलाकर रहते थे वहाँ साम्प्रदायिकता का बीज बोने में मकसूद और यासीन सफल हो जाते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि ...''दोनों जातियों में अपने हिन्दू और मुसलमान होने का अहेसास बढ़ता जा रहा था। हिन्दू शायद अपने को एकाएक ज्यादा हिन्दू समझने लगे थे और मुसलमान अपने को ज्यादा मुसलमान।''[९५] संघ के लोग तथा साई भी इस भेदभाव को बढ़ावा देते रहे। धीरे-धीरे सब कहीं कुछ बदलने लगा। संघी स्वयंसेवक और मुसलमान के वालेंटियरों की आमदरफ्त बढ़ती गई। इसी बीच पाकिस्तान बनने का एलान हुआ। लेखक ने विभाजन से देश व्यापी भीषणता का चित्र इसप्रकार प्रस्तुत किया है – '' विभाजन हुआ तो पंजाब में खून की नदियाँ बही... बंगाल में मारकाट हुई। सूबे के बड़े शहरों में कत्ल हुए और बस्तियाँ जलाकर राख कर डाली गई।''[९६] लेकिन चिकवों की बस्ती में

एक बूँद रक्त नहीं गिरा पर एक उबलता हुआ नफरत का दरिया नीचे-ही-नीचे बह रहा था, शक और डर सब के दिल में समाए हुए थे। विभाजन हो जाने पर चिकवों की बस्ती से नसीबन और जुम्मन साई को छोड़कर बाकी सब पाकिस्तान चले गए, लेकिन नियति ने उनके साथ कूरता दिखाई। जिसके पास धन एवं शक्ति थी वे पाकिस्तान पहुँच गए,गरीब व्यक्ति आर्थिक अभाव के कारण सूबे भी पार न कर सके। वे इधर-उधर भटक-भटक कर जीने को मजबूर हो गए। विभाजन से जो सुखद एवं सुन्दर जीवन का सपना वे देखते रहे ये सपने केवल सपने मात्र ही रह गए, बदले में उन्हें केवल मूल्यहीन दुःखपूर्ण जीवन मिला। इस प्रकार आजादी के सालों बाद भी विभाजन की विभीषिका से वे छूटकारा न पा सके। लेखक ने साम्प्रदायिकता से परे मानवीयता है इसका वर्णन 'लौटे हुए मुसाफिर' उपन्यास में स्त्री पात्र 'नसीबन' के जरिए किया है। नसीबन के मन में जातीयताका जरा भी असर नहीं है। वह अन्त में साई से कहती है कि धूल उड़ जाती है,मिट्टी भी उड़ जाती है पर धरती कहीं नहीं जाती। जिस प्रकार धूल महत्त्वहीन है उसी प्रकार जाती भी। धरती मूल्यवती है उसी प्रकार मानवीयता एवं मानव मूल्य मूल्ययुक्त एवं सनातन है।

दलगत राजनीतिक स्वार्थ के कारण विभिन्न राजनीतिक पार्टियाँ एक-दूसरे को बदनाम करती है और वे साम्प्रदायिक दंगों को भड़काने का काम भी करती है। कमलेश्वर ने इन सबका 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ ' उपन्यास में यथार्थ चित्रण किया है। भारत में हिन्दू-मुस्लिम समस्या युग पुरानी समस्या है। इसके राक्षसी शिकंजे से आज तक हमारा देश मुक्त नहीं हो पाया है। स्वतन्त्रता के पूर्व जैसे ब्रिटिशों ने कूटनीति को अपनाकर हिन्दू-मुसलमानों के फसादों को उत्तेजना दी, उसी भाँती स्वाधीनता के पश्चात अपने ही देश के कुछ राजनीतिक दल राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ जैसी संस्थाए इस भेद नीति का घृणित उपयोग कर रहे हैं। इस सारी प्रक्रिया में तबाह हो जाते हैं गरीब लोग जो न हिन्दू है न मुसलमान अपितु केवल एक इन्सान है। इस उपन्यास में मास्टर हबीब जो इस शहर के बुजुर्ग प्रगतिवादी है। पहले वे सरकारी पाठशाला में इतिहास के मास्टर थे। भारत पाकिस्तान विभाजन पूर्व और बाद के समय में 'इप्टा' में काम किया था। राष्ट्रप्रेमी मास्टर हबीब साहब हिन्दू-मुसलमानों के साम्प्रदायिक दंगों को रोकने का प्रयास करते रहे थे। उन्होंने दोनों मजहब के लोगों में सामंजस्य निर्माण करने का प्रयत्न किया था। इसलिए हबीब साहब का हिन्दू और मुसलमानों में सम्मान था। देश-विभाजन के बाद फिरका परस्त और मजहब परस्तों ने उनकी बूरी हालत कर दी थी। हिन्दू उन्हें सन् ४२ के गद्दार समझते हैं और मुसलमान वे प्रगतिवादी होने के नाते धर्म के गद्दार समझते हैं। परिणाम यह होता है कि उन्हें सरकारी नौकरी से हाथ धोना पड़ता है। वह विवश होकर एक नाटक कंपनी

चलाते है परन्तु गोतानंद के काँग्रेसी अखबार हर दिन हबीब साहब का वैयक्तिक चरित्रहनन तथा नाटक के बारे में अफवाहें फैलाता है । हबीब साहब इस हादसे से पागल हो जाते है ।

(४) पारिवारिक विघटन :

कमलेश्वर ने 'काली आँधी' उपन्यास में 'मालती' के सत्तामोह से पारिवारिक विघटन की स्थिति पैदा होती है इसका वास्तविक चित्रण किया है । इसमें पारिवारिक विघटन के जरिए मूल्यों के पतन की ओर भी संकेत किया गया है । जग्गीबाबू और मालती दोनों का प्रेम विवाह होता है । जग्गीबाबू मध्यवर्गीय परिवार में से है और मालती अमीर घराने की लड़की है । इसलिए ही दोनों के जीवनस्तर में काफी अन्तर है । जग्गीबाबू से प्रेरणा पाकर ही मालती राजनीति में कदम रखती है । पहले वह म्युनिसिपल बोर्ड़ कमेटी का चुनाव जीतती है । वहाँ से उनके पारिवारिक सम्बन्ध में दरारें पड़ने लगती है । जग्गीबाबू तो अपना सारा वक्त खजूराहों वाले होटल में बिताते थे । मालती के होटल बन्द करने के प्रस्ताव से दोनों के बीच मानसिक स्तर पर अलगाव आरम्भ होता है । दोनों के बीच का अलगाव मालती के उक्त कथन से जाहिर होता है - '' मैं पब्लिक में यह नहीं सुनना चाहती कि हम लोगों ने होटल को बहाना बना रखा है...इससे मेरी पब्लिक इमेज पर धब्बा लगता है ।''[९७] जग्गीबाबू स्वाभिमानी थे, अपना व्यक्तित्त्व खोने के बदले बनाए रखना चाहते थे । इसलिए मालती जब उससे उसकी सत्ता का फायदा उठाने की बात करती है तो जग्गीबाबू बिगड़ते हैं । मालती और जग्गीबाबू दोनों 'अहं ' से ग्रस्त थे । इसलिए ही एक दूसरे के आगे झुकने के लिए वे तैयार नहीं होते । मालती की नजर में पति-पत्नी रिश्ते का तात्पर्य यह है कि पति-पत्नी के रिश्ते कामों को आसान करने के लिए होते हैं बेड़ियाँ डालने के लिए नहीं । सही बात यह है कि आप अभी तक मेरी इस सेवा और त्याग की जिन्दगी, पब्लिक सर्विस की जिन्दगी से अपने को जोड़ नहीं पाए हैं । मालती में दिन-ब-दिन आए परिवर्तन से तंग आकर जग्गीबाबू उससे लड़ने के बजाय उसकी छाया से दूर जाने का निर्णय ले लेते हैं । असल में दोनों मानसिक रूप से कोसों दूर हट गए थे केवल नाम मात्र के रिश्ते को ढो रहे थे । मालती अपने पति की बातों को हेय समझकर उसकी उपेक्षा करती है । यहाँ मालती का अहंवादी पत्नी का स्वरूप जाहिर होता है । उस दिन के बाद दोनों का रास्ता अलग हो जाता है । मालती सक्रिय राजनीति में उतर गई और जग्गीबाबू अपनी बेटी को लेकर दूर चले गए ।

इसके बाद मालती के जीवन में अनेक मोड़ आए । वह सफलताएँ हाँसिल

करती रही । उसने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा । इस सम्बन्ध में उपन्यास के गुरूसरन का कथन सटीक ही है- '' सफलता उनके कदम चूमती चली गई और यह सफलता कुछ इस रफ्तार से आई कि उनकी और जग्गीबाबू की जिन्दगी तोड़ती-छोड़ती निकल गई ।''[९८] जग्गीबाबू ने भी फिर उसके जीवन में पलटकर देखने का प्रयास न किया, क्योंकि जो अपना नहीं उसके बारे में सोचना बेवकूफी है ।

बारह सालों के बाद भी दोनों अपना 'अहं' खोने को तैयार नहीं होते, याने दोनों अपने-अपने स्थान पर अड़िग रहते है । सालों से उपेक्षा की पीड़ा एवं घुटन के शिकार पति जग्गीबाबू के मन का उद्गार तथा पत्नी मालती की अहं एवं सत्ता मोह की अभिव्यक्ति जग्गीबाबू का मालती से हुए संवाद से जाहिर होता है -'' जो रिश्ता कभी था,उसे जो लोग जानते होंगे, वे कम से कम मेरी तरफ से नहीं जान पाएँगे,यह तो मैं कर सकता हूँ....। तुम कब क्या चाहती हो, यह तो शायद मेरे सिवा कुछ और लोग भी समझ सकते हैं, पर तुम जो चाहती हो उसे कैसे चाहती हो, सिर्फ मैं ही समझ सकता हूँ.....मेरा और आपका रिश्ता सिर्फ मैनेजर और मेहमान का है.... अण्डरस्टैण्ड...।''[९९] शायद मालती अपनी करनी पर पछताती होगी, लेकिन वह एक ऐसी नारी है कि सहना भी उसे आता था और पाना भी ।

जब लोगों को उनके सम्बन्धों का पता चला तो जग्गीबाबू मालती की सफलता के लिए अपनी बेटी के साथ भोपाल छोड़ने का निर्णय लेते हैं । खबर पाकर मालती अपनी सफलता के लिए उसे जाने से रोकती है । यहाँ मालती की नहीं बल्कि राजनीतिक मालती की चालाकी एवं चतुरता प्रकट होती है ।

मालती चुनाव जीतती है । होटल गोल्डन सन् में मालती का अभिनन्दन समारोह आयोजित किया जाता है । उस सभा में लिली मालती की ओर बढ़कर ओटोग्राफ माँगती है । अपनी बेटी लिली को आँखों के सामने देखकर ना पहचाननेवाली माँ की नियति के बारे में क्या कहे ? बेचारी लिली भी अपनी जननी को न पहचान पाई । लिली के लिए माँ एक अपरिचित औरत से बढ़कर कुछ भी नहीं थी । जग्गीबाबू अपने जीवन की दुर्गति पर जरूर व्याकुल एवं परेशान थे । मालती ने परिवार से बढ़कर सम्बन्धों और सम्बन्धों से बढ़कर राजनीति को चुन लिया । जग्गीबाबू और लिली की मालती अब सबकी मालतीजी हो जाने पर एक परिवार टूटकर बिखर जाता है ।

कमलेश्वर के 'अम्मा' उपन्यास में शान्ता के देश-प्रेम के कारण पारिवारिक

विघटन की स्थिति पैदा होती है इसका यथार्थ चित्रण किया है। नवीन एक क्रान्तिकारी था। जिसकी अंग्रेज अफ्सर को तलाश थी। शान्ता को अपने क्रान्तिकारी देवर नवीन के प्रति विशेष प्रेम था। यह विशेष लगाव ही शान्ता के पारिवारिक विघटन का कारण बनता है। नवीन हर बार पुलिस से भाग जाने के कारण पुलिस नवीन के भाई प्रवीन को थाने ले जाकर बूरी तरह पिटाई करती है। तब से प्रवीन यह मानता है कि नवीन के कारण ही पुलिस ने इस के साथ दरिन्दगी की है। प्रवीन पुलिस की मार से नवीन की खूफिया जानकारी दे देता है। प्रवीन की यही बात सुनकर शान्ता क्रोधित हो जाती है। शान्ता को हर वस्तु से बढ़कर अपने देश के प्रति प्रेम था। इसलिए उसे अपने देवर नवीन और उसके आन्दोलन के प्रति विशेष लगाव और सहानुभूति थी।

प्रवीन की दी गई जानकारी के अनुसार पुलिस नवीन के ठिकानों पर धावा बोल देती है। सभी क्रान्तिकारियों को होता है कि हमारे नये ठिकाने का पता किसने दिया होगा ? सभी का इशारा नवीन के प्रति होता है। नवीन इस बात का पता लगाने के लिए अपनी भाभी के नाम एक पत्र भेजता है। शान्ता वह पत्र पढ़कर अपने ब्लाऊज में छिपा देती है। प्रवीन यह देख लेता है। दोनों में इस बात को लेकर बहस होती है। प्रवीन शान्ता को दबोच कर जमीन पर गिरा कर उसकी छाती पर बैठकर मारने लगता है, जिस तरह पुलिस के जवान उसे जमीन पर पटककर बेरहमी से पीटते थे वैसे शान्ता को पीटने लगता है।

शान्ता और प्रवीन के बीच मतभेद नवीन को लेकर हो जाते हैं। शान्ता को पति होने के नाते प्रवीन पर दया आ जाती है लेकिन दूसरे ही पल देश के प्रति कि गई उनकी गद्दारी याद आ जाती तो उनका खून क्रोध से उबल पड़ता था। इस प्रकार देश-प्रेम से ओत-प्रोत शान्ता अपने पति से वैचारिक मतभेद के कारण दूर हो जाती है।

'तीसरा आदमी' उपन्यास में भी लेखक ने पारिवारिक विघटन की स्थिति का वर्णन किया है। नरेश चित्रा को लेकर दिल्ली चला जाता है। दिल्ली महानगर में आर्थिक अभाव तथा घर की समस्याओं में संघर्षशील नरेश अपने भाई सुमन्त के एक कमरेवाले घर में रहने को बाध्य हो जाता है। यहाँ से शक की वजह से चित्रा और नरेश के बीच पारिवारिक विघटन होता है। नरेश चित्रा को छोड़कर भोपाल चला जाता है। चित्रा सुमन्त की सहायता से हायर सेकन्डरी स्कूल में नौकरी प्राप्त करती है। नरेश चित्रा को नौकरी छोड़कर भोपाल आने के लिए कहता है परन्तु चित्रा अपने निर्णय पर अड़िग है। यहाँ लेखक ने स्त्री और पुरुष के बीच के अहं को चित्रित किया है। अहं

की वजह से ही नरेश दिल्ली आने के लिए तैयार नहीं है । जीवन में व्याप्त अहं की वजह से पति-पत्नी सम्बन्ध में दरार पैदा होती है । अहं की वजह से आज के युग में भी पारिवारिक विघटन देखा जाता है, इसका यथार्थ चित्रण इस उपन्यास में लेखक ने किया है ।

(५) समसामयिक राजनीति का चित्रण :

'काली आँधी' उपन्यास में कमलेश्वर ने मालती नामक महत्त्वकांक्षी नारी के जरिए समसामयिक राजनीति की पोल उखाड़ने का प्रयास किया है । मालती के पिता उसे विदेश भेजकर उसका भविष्य बनाना चाहते थे, लेकिन उससे बढ़कर वह भारत में शादी करके रहना चाहती है । मालती के मन में पिता की बातें दब जाती है और फिर महत्त्वकांक्षा के रूप में उभर आती है । पहले मालती पति की प्रेरणा एवं सहायता से पहला चुनाव लड़कर जीतती है फिर वह पति की भावनाओं को तोड़-तोड़कर आगे बढ़ती जाती है और जीत हाँसिल करती रहती है । मालती अपनी महत्त्वकांक्षा की पूर्ति की पहली सीढ़ी चढ़ने के लिए पति से होटल बन्द करने की सलाह देती है । महत्त्वकांक्षा के आगे सब कुछ अप्रधान है, चाहे वह पति हो या बेटी या अन्य सम्बन्ध । मालती सक्रिय राजनीति में उतरकर तरह-तरह के मुखौटे धारण करती रहती है । कभी भी पब्लिक के बीच भाषण नहीं करती । वह महिलाओं की मीटिंग में अपने सुखी वैवाहिक जीवन का जय घोष करती है । यहाँ पर मालती की कथनी और करनी में अन्तर हो जाता है । सफलता की लड़ाई लड़ते-लड़ते एक दिन वह मिनिस्टर बन जाती है ।

मालती की राजनीति की नीति तो 'वक्त, जरूरत और जीत' थी । वह इन तीनों बातों पर अमोघ टिकी हुई थी । यह नीति ही उसकी जीत की अमोघ शस्त्र रही । मालती ने भोपाल में लोकल सामाजिक एवं राजनीतिक लोगों को अपने कब्जे में लाने के लिए हर एक कदम अत्यन्त सावधानी के साथ बढ़ाया । मालती में चुनाव क्षेत्र की हर एक गतिविधियों को अति सूक्ष्मता एवं कुशलता से देख समझकर उसके अनुसार कार्य करने की अद्‌भूत क्षमता थी । मालती शत्रुओं में भी प्रभाव डालने की अद्‌भूत क्षमता रखती थी । समकालीन राजनीति छल-कपट का चित्र लेखक ने उभारा है - ''राजनीति का यह नशा ! सफलता का नशा ! सफलता की दौड़ में कोई थकता नहीं .... इस दौड़ का कोई पड़ाव या मंजिल होती नहीं... सफल व्यक्ति सिर्फ दौड़ता रहता है ...और दौड़ना ही उसकी सफलता बन जाती है । क्योंकि दौड़ते-दौड़ते वह भूल जाता है कि उसने दौड़ना क्यों शुरु किया था । सफलता की मंजिल सिर्फ सफलता है ।

राजनीति में जो सबसे बड़ा छल है वह यही है कि दौड़नेवाला हंमेशा कहता है कि हम तुम्हारे लिए दौड़ रहे हैं।''[१००] मालती राजनीति की चालें चलाने में सिद्ध हस्त है, बाधा पहुँचाने वालों का सर्वनाश ही उसकी नीति है। वह बाधाओं को जड़ से उखाड़कर ही सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ती रहती है।

मालती चुनाव के दौरान गोल्डन सन होटल में रहती है जहाँ के मैनेजर स्वयं उसके पति जग्गीबाबू है। तब भी वह पति-पत्नी सम्बन्ध को बनाए रखना चाहती है। वह अपने उल्टे सम्बन्ध के जरिए अपनी जीत को साबित करने का प्रयत्न करती है। उसके व्यक्तिगत जीवन को लेकर विपक्षी दल ने जो बेहूदी बातें छपवाकर पेश की तो उसका जवाब वह अदालत के बदले जनता की अदालत में पेश करके शत्रुओं को भी मित्र बनाती है। लेखक के मत में मालती भूचाल का सामना करने के लिए भी अपनी पूरी राजनीति के साथ तैयार थी, लेकिन उसके पति जग्गीबाबू उस जलील राजनीति से दूर रहना चाहते थे। उन्होंने मालती से राजनीति के सम्बन्ध में अपना मत खूल्लम-खूल्ला व्यक्त कर दिया था। जग्गीबाबू ने राजनीति की भर्त्सना की थी लेकिन मालती ने उस जलील राजनीति से लड़कर सफलता हाँसिल करने के लिए जग्गीबाबू का ही इस्तेमाल किया। वह चुनाव की उल्टी हवा को अपनी वाक्‌पटुता एवं क्षमता से अपने पक्ष में कर के चुनाव जीत लेती है। सफलता हाँसिल हो जाने पर लोगों के साथ के उसके व्यवहार में बदलाव आ जाता है। राजनीति की रीति तो सिर्फ वायदे देना है निभाना नहीं, मालती भी बेचारे गाँववालों को जूठे वायदे देती है। राजनीति में काम करते-करते वह पूर्णतः राजनीति की हो चूकी है। इसलिए ही वह हर चीज को अपनी सफलता के लिए इस्तेमाल करती है और उसके बाद छोड़ देती है। ऐसी व्यक्ति को बन्धनों से कोई वास्ता नहीं। उसके लिए नैतिकता, आदर्श , ईमानदारी, सच्चाई और जीवनमूल्य नगण्य है, उसमें केवल सफलता की ही अदम्य भूख बनी रहती है। लेखक ने मालती के जरिए युगीन राजनीतिक चालों का सफल चित्रांकन किया है।

कमलेश्वर ने 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ ' उपन्यास में स्वातन्त्र्योत्तर कालीन भारत के बरसाती छातों की तरह पनपने वाले अवरसरवादी नेताओं के आंतरिक जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत किया हैं। मैनपुरी कस्बे में हर साल मेला लगता है। उस मेले में नाच-गाना,सरकस,नाटक कंपनी तो नाम के लिए होते हैं परन्तु उस मेले में बेरोकटोक जुए के अड्डे चलते है, वे भी राजनीतिक नेताओं की मदद से। इस उपन्यास का शिवराज गरीब लोगों को चुसनेवाले कार्निवल के जुए के अड्डे को उठवाने के लिए मुहल्लेवालों का साथ देता है। सरकार की ओर से कार्निवल के जुए के अड्डेवालों को एक नोटिस भी मिल जाती है,पर काँग्रेस का नेता मुत्सद्दीलाल कार्निवल जुए के

अड्डेवालों की सिफारिश करते हैं । नेताओं की साँठ-गाँठ के कारण जुए के अड्डेवाले पर इस नोटिस का कोई असर नहीं होता । आज के समय में भी जिसे नेताओं की सिफारिश होती है उसका कोई कुछ नहीं कर सकता । इस प्रकार युगानुरूप राजनीति का सफल अंकन 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' उपन्यास में पाया जाता है ।

जातीयता की प्रवृत्ति ने स्वाधीनता के पश्चात जड़े जमाई है । आज व्यक्ति के गुण-अवगुण नहीं देखे जाते बल्कि उसकी जाति देखी जाती है । पाठशाला के अध्यापक की नियुक्ति से लेकर चुनाव के उम्मीदवारों की सूची बनाने और पाठशाला संस्थाओं को मंजूरी देने का आधार तक जातीगत प्रवृत्ति को ही आधार माना जाता है । 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ ' उपन्यास में कमलेश्वर ने इन सबका सजीव और मार्मिक चित्रण किया है ।

इस प्रकार कमलेश्वर ने 'काली आँधी ' और 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' उपन्यास में राजनीति में पनप रहे भाई-भतीजावाद का भी चित्रण किया है । समसामयिक राजनीतिका यथार्थ चित्रण लेखक ने 'काली आँधी' उपन्यास के द्वारा किया है ।

(६) भ्रष्ट राजनीति :

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त देश का नक्शा बदल गया था । परतंत्र भारत में गाँधी देश के आदर्श रहे और करोड़ों उनके अनुयायी बने थे । लेकिन आजादी के बाद ऐसे जनसेवक नेताओं की संख्या कम होती गई । स्वतन्त्रता के बाद जिन्होनें शासन की बागडोर संभाली उन्होंने वायदे तो किए पर स्वतन्त्रता का सही अर्थ जनता को नहीं दे पाए । 'लोकतन्त्र' का सपना केवल सपना रह गया । राजनीतिक मूल्यों का तेजी से विघटन हुआ और बुज़ुर्ग पीढ़ी अपने आश्वासनों को पूरा करने में असमर्थ रही । देश की आजादी की लड़ाई में जिस चरित्र का साथ मिला था, गांधी के रूप में जो दृष्टि मिली थी वह धीरे-धीरे ओझल होती गई । गाँधीवादी आदर्शों के पतन की अभिव्यक्ति कमलेश्वर के 'रेगिस्तान' उपन्यास में हुई है । स्वतन्त्रता के पहले नवयुवक व्यक्तिगत सुख-दुःख की चिन्ता न करके राष्ट्र के लिए अपनी जान समर्पित करते थे । वे खादी, नशाबन्दी और राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचारक बनकर देश के कोने-कोने में घूमते थे । 'रेगिस्तान' उपन्यास के 'विश्वनाथ' ने आजादी मिलने के बाद अपने गाँव में हिन्दी भाषा की दुःखद स्थिति को देखकर हिन्दी मन्दिर बनाया, इसके लिए उसे अनेक कठिनाइयों को सामना करना पड़ा । लेकिन खेद की बात यह है कि हिन्दी मन्दिर में

रखने के लिए उसको गाँधीजी की तस्वीर बहुत ढूँढने के बाद ही मिलती है । इसके बारे में तस्वीर बेचनेवाले दुकानदार का कथन है कि - '' ऐसी तस्वीरें तो देवी के मेले के बखत मिलेगी । कौन खरीदता है अब । इधर तो ये सिनेमावाली ही चलती है ।''[१०१] विश्वनाथ ने विवाह नहीं किया तथा घरवालों ने उसके बारे में सोचा भी नहीं । वह सोचता है कि हम तो गाँधी आदर्शवादी है, गाँव-गाँव, शहर-शहर भटकते हैं शादी करके क्या करेंगे । स्वतन्त्र भारत में ऐसे गाँधीवादी आदर्श परायण युवकों को हास्य व्यंग्य की वस्तु बना दिया गया है । विश्वनाथ हिन्दी मन्दिर के लिए जमीन माँगने जब एम.एल.ए. से मिलने गया तब उन्होंने विश्वनाथ का उपहास किया । विश्वनाथ तन-मन से हारकर आत्महत्या करने की सोचता है, लेकिन ऐसा करके अपने लक्ष्य से मुँह मोड़ने को वह तैयार नहीं होता है । जीवनभर गाँधीजी के आदर्शों के पीछे चलनेवाले को स्वतन्त्र भारत में अजनबी बन कर रहना पडा ।

कमलेश्वर ने 'रेगिस्तान' उपन्यास में आज की भ्रष्ट राजनीति का चित्रण किया है । विश्वनाथ को हिन्दी मन्दिर के लिए जगह नहीं मिलती, पर कई जमीन पर गैर कायदेसर बड़ी-बड़ी बिल्डींगें बन जाती है । लेखक ने यहाँ भ्रष्टाचार पर व्यंग्य भी किया है ।

'काली आँधी' की मालती पद लिप्सा से ग्रस्त है । इसके लिए वह सब परम्परागत मान्यताओं को तोड़ने को तैयार होती है । उसके पति जग्गीबाबू उसकी राजनीतिक चालों से परेशान है तथा नफरत भी करता है । जग्गीबाबू का कथन है कि- ''यह तो तुम्हारी दुनिया की बाते हैं , तुम बेहतर जानती होगी ! मुझे तो मालूम नहीं कि तुम्हारी दुनिया के क्या-क्या उसूल है ।''[१०२] कमलेश्वर ने भ्रष्ट अवसरवादी राजनीति पर व्यंग्य किया है ।

कमलेश्वर ने 'काली आँधी', 'रेगिस्तान', 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' आदि उपन्यासों में प्रवर्तमान भ्रष्ट राजनीति का वर्णन किया है । आज देश में भाई-भतीजावाद,अवसरवादिता आदि के कारण सरकारी कार्यों मे बाधा उत्पन्न होती है । 'काली आँधी' की मालती नेता होने के कारण जो चाहती है वह कर सकती है, पर 'रेगिस्तान' के विश्वनाथ की सरकार में कोई जान-पहचान न होने से मन्दिर के लिए सरकारी जमीन भी नहीं मिल सकती ।

(७) वोट की राजनीति :

स्वतन्त्र भारत के नविन संविधान ने देश के समस्त नागरिकों को वयस्क मताधिकार दिया । जातीयता,भाषा, प्रान्तीयता एवं विभिन्न परम्पराओं के कारण परस्पर विभाजित शिक्षित समुदाय को राजनीति ने बनाया भी और बिगाड़ा भी है । वयस्क मताधिकार ने 'स्वत्व' की पहचान बनाई है । भारत की राजनीतिक जिन्दगी की विशेषता यह है कि चाहे काँग्रेस हो या जनसंघ, कम्युनिस्ट हो या सोसलिस्ट सभी के निर्णय जाति के आधार पर होते हैं । स्वातन्त्र्योत्तर भारत में राजनीति मात्र सत्ता की राजनीति रह गई है जिसका आधार चुनाव और लक्ष्य सत्ता की प्राप्ति है । चुनाव जीतने के लिए दलगत चेतना, दलों के उत्कर्ष और स्वार्थसिद्धि की भूमिका महत्त्वपूर्ण है । चुनाव को राजनेता और जनता के बीच का संपर्क सूत्र माना जाता है । जीतना चुनाव का लक्ष्य बन गया है, कैसे जीता जाए, यही हर पार्टी सोचने लगी है ।

स्वतन्त्र भारत में कई बार चुनाव हुआ है, लेकिन साधारण मत दाता विभिन्न पार्टियों के हाथ की कठपूतली बनकर अपने मताधिकार का होम कर रहा है । शाम,दाम,दण्ड, भेद की नीति चुनाव के समय उचित मानी जाती है । कमलेश्वर के 'काली आँधी' उपन्यास में मालती के लोकसभा चुनाव एवं उससे सम्बन्धी गतिविधियों का पर्दाफाश किया गया है । मालती चुनाव जीतने के लिए जातीय भेद-भाव पर बल देते हुए कहती है कि- '' देखिए, इस चुनाव क्षेत्र में बनियों की असलियत है । खास तौर से शहरी इलाके में । गाँव में जो इलाके हमारे क्षेत्र में हैं उनके गरीब किसानों को भी यही बनिए जरूरत पर श्रपिया वगैरह कर्ज देते हैं । यानी उन इलाकों में भी इनकी बाँहें फैली हुई है । इसलिए जरूरी है कि बनियों के बीच से भी कोई कैण्डीडेट इस चुनाव मे खड़ा हो ।''[१०३] इस प्रकार मालती ने जीत हाँसिल करने के लिए अत्यन्त कुशलता से हर एक कदम बढ़ाया है ।

कमलेश्वर ने देश के शासक वर्ग एवं अन्य अधिकारी गण जो जन सेवा का पर्दा ओढ़कर जनद्रोह कर रहे हैं तथा हर दिन नये-नये अवसरों के इन्तजार में ऐशो आराम से बैठे हुए है उस पर व्यंग्य किया है । लेखक ने राजनीतिज्ञों की पदलोलूपता तथा उनका भ्रष्टाचार अपने साहित्य में चित्रित करके जनजागृति का प्रयास किया है ।

(८) गाँधी आदर्शों का पतन :

स्वतन्त्रता पूर्व की आदर्शोंन्मुख राजनीतिक व्यवस्था और बाद की राजनीति

में भारी अन्तर है । गाँधीजी की हत्या के बाद गाँधीवादी मूल्यों का विघटन आरम्भ हुआ । गाँधीजी की दूरदर्शी दृष्टि ने राजनीतिक कार्यक्रमों के साथ ही सामाजिक,सांस्कृतिक मूल्यों की संतुलित संयोजना की थी । गाँधीजी का विश्वास जनता में था, लेकिन आज गाँधीजी के ये आदर्श केवल सत्ताप्राप्ति के साधन मात्र रह गए हैं । इसके फल स्वरूप कथनी और करनी में भेद बढ़ता गया । सत्ता की स्थिति बुराई से विशिष्ट समझौता करनेवाली निकली है । आम जनता इसको समझने में अभी असमर्थ है ।

कमलेश्वर ने 'रेगिस्तान' उपन्यास में स्वतन्त्र भारत में 'गाँधी आदर्शों ' के पतन की ओर संकेत किया है । एक जमाना ऐसा था, लोग अपना सब कुछ त्याग कर देश के लिए अपनी जान तक न्योछावर करने को तैयार थे, लेकिन आजादी के बाद दल बदलती राजनीति ने सब पानी फेर दिया । लेखक ने विश्वनाथ के जरिए इस तथ्य को उभारा है ।

विश्वनाथ हाईस्कूल की पढ़ाई के बाद गाँधीजी के आदेशानुसार हिन्दी प्रचार के लिए घरबार सबकुछ छोड़ देता है । इसके लिए उसे भारी किंमत चुकानी पड़ी । एकमात्र पुत्र के सहारे जीने को इच्छुक विधुर पिता तड़प-तड़प कर मर गए । उसकी अन्त्येष्ठी भी वह न कर सका । उनके मनमें केवल एक ही विचार था कि- '' देश निरक्षर है...ऐसे देश कैसे आगे बढ़ेगा ! भविष्य कैसे बनेगा.... अपनी भाषाएँ नहीं आएगी तो .... अपनी भाषा, अपना देश, अपना राज, अपना वेश ! यह कैसे हो ? ''[१०४]

उस समय सब कुछ 'अपना' था । भारत आजाद हो गया तो सब कुछ एक दम बदल गया । आजादी मिलने तक हर नेता जनता की भाषा में बात करता था, पर सत्ता मिलने पर सब कुछ हेर-फेर हो गया । विश्वनाथ को लगा कि- ''हिन्दी की गणेश पूजा करके अंग्रेजी को चलाए रखने की यह कैसी चाल है ?''[१०५] उसे इस पर पछतावा हुआ । उसे लगने लगा कि क्या जीवनभर का दिया हुआ वचन झूठा पड़ जाएगा ।

आजादी मिलने के सालों बाद विश्वनाथ अपने गाँव लौट आता है, जहाँ से वह हिन्दी प्रचारक बन कर निकल गया था । लेकिन अब वहाँ पहुँचने पर उसे धक्का सा लगा, क्योंकि विश्वनाथ जैसे हिन्दी प्रचारक की जीवनभर की मेहनत मिट्टी में मिल गई ,साथ ही गाँधीजी का आदर्श भी । इसलिए उसके मुँह से हताशा भरी आवाज निकली कि- ''जहाँ हिन्दी थी पहले,वहाँ भी हिन्दी नहीं रही ....कहाँ है ....अपनी

भाषाएँ ? कहाँ है हिन्दी ? लौग वैसे ही गूँगे बैठे हैं .... उसी तरह पड़े हुए है । ....सब भाषाओं को जोड़ने के लिए हिन्दी आ जाए....पूरे देश को अपनी आवाज मिल जाए....यही तो गाँधीजी ने सोचा था ।''[१०६] इस प्रकार विश्वनाथ सोचता है कि आजादी के बाद लोगों के जीवनस्तर में कोई अन्तर नहीं आया । गाँधीजी के विचारों का पतन भी हो गया सबका श्रम व्यर्थ हो गया ।

इन सब हेर-फेर के बावजूद भी ध्येयनिष्ठ विश्वनाथ हारने को तैयार नहीं होता । वह अपने ही गाँव में हिन्दी मन्दिर खोलने का प्रबन्ध करने लगा । उस वक्त उसे चारों ओर से अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । जमीन से लेकर हिन्दी मन्दिर के लिए आवश्यक सामग्रियों को जूटाना था, परन्तु लोगों का उपेक्षा भाव देखकर एक बार आत्महत्या का विचार आया पर मन हारने को तैयार नहीं था । उसने सोचा कि वह नहीं हारेगा,हिन्दी मन्दिर बनाके रहेगा, जरूरत पड़ी तो छोटा-मोटा आन्दोलन, भूख-हड़ताल, सत्याग्रह, अफसरों से लड़ाई आदि करेगा पर विदेशी भाषा नहीं चलने देगा । यहाँ बुढ़ापे की अवस्था में भी उसमें अपने आदर्शों को बनाए रखने की अदम्य इच्छा प्रकट होती है । वह जमीन के लिए तहसील तक कई बार गया लेकिन उसकी बात सुननेवाला कोई नहीं था । आखिर जिले के एम.एल.ए. के पास गया तो वहाँ उसे बेइज्जती के सिवा कुछ न मिला । जिन्होनें अपनी जान तक कुरबान कर के आजादी हाँसिल की है, उस आजाद भारत के सत्ताधारी उन्हीं के मुँह पर थूंकते है । यह तो आजाद भारत के राजनीति मूल्यों के पतन का द्योतक है ।

आखिर सुशीला भाभी की सहायता से हिन्दी मन्दिर बन जाता है, जिसका उद्‌घाटन बाकर मिस्त्री से करवाना पड़ता है । हिन्दी मन्दिर, हिन्दी प्रचारक एवं हिन्दी भाषा की ओर लोगों की उपेक्षा एवं असारता को देखकर बाकर मिस्त्री ने विश्वनाथ की कड़वी आलोचना की है । अब विश्वनाथ को अड़सठ वर्ष की अवस्था में पहुँचकर अपनी कुरबानी व्यर्थ महसूस होती है । इस वृद्धावस्था में वह भी अपनी जान से प्रिय हिन्दी के स्थान पर अंग्रेजी बोलने लगता है । जिन सुन्दर सपनों को साकार बनाने के लिए विश्वनाथ जैसे लोगों ने अपना सबकुछ समर्पित कर दिया था, अब सालों बाद सब कुछ निरर्थक साबित हुआ । इस प्रकार कमलेश्वर ने विश्वनाथ के द्वारा गाँधीवादी आदर्शों के पतन पर प्रकाश डाला है । आधुनिक मनुष्य की नियति है जीवन के विभिन्न मोर्चों पर संघर्ष करना और आगे बढ़ने के लिए स्वयं रास्ता भी तैयार करना । यह तो अत्यंन्त दुष्कर काम है । मनुष्य की मनःस्थिति का अवलोकन करते हुए डॉ. इन्दु रश्मि का विचार है - ''आधुनिक मनुष्य को सबसे पहले अपने परिवेश से लड़ना पड़ता है ।....दूसरी तरफ उसे पुरातन समाज व्यवस्था से लड़ना पड़ता है

....फिर अपने जीवन के अभावों से लड़ना पड़ता है । इस चहुँ तरफा लड़ाई में वह बहुत बार निराश भी होता है । अपने आसपास के दम घोटू वातावरण से वह ऊबता है और इस तरह से उसके भीतर निराशा की मनःस्थिति पैदा हो जाती है ।''[१०७] लेखक ने विश्वनाथ के द्वारा ऐसी ही निराशा का चित्रण किया है ।

(९) अंग्रेजों के अत्याचारों का चित्रण :

कमलेश्वर ने 'सुबह दोपहर शाम' उपन्यास में अंग्रजों की क्रूरता एवं अत्याचार का यथार्थ चित्रण किया है । सन् १८५७ में हुए पहले स्वतन्त्रता संग्राम में बड़े दादा अंग्रेजों की गोली का शिकार बन गये । उसके बाद अंग्रेजों का शासन वहाँ जम गया । अपने विरूद्ध आवाज उठानेवालों की जबान सदा के लिए बन्द करने तथा करवाने की नीति ये अपनाते रहे । शान्ता के ससुरालवालों को इनकी क्रूरता का सदा शिकार होना पड़ा, क्योंकि उसका देवर क्रान्तिकारी था । नवीन तथा उसके साथी अंग्रजों के विरूद्ध लड़ाई लड़ रहे थे । नवीन को जिन्दा पकड़ने का आदेश दिया गया तो ये गोरे लोग नवीन के घरवालों का जीना दूभर बना देते हैं । वे उनके त्यौहार, मेला, विवाह आदि अवसरों में दखल देकर भंग कर देते हैं, साथ ही घरवालों को पीड़ित भी करते हैं ।

अंग्रेजों ने नवीन के भाई प्रवीन की शादी में बारात वाली गाड़ी में घूसकर नवीन को ढूँढा तथा उसके भाई और पिता को धमकियाँ दी कि-'' टुमारा बेटा अंग्रेज बहादुर का तख्ता पलटना चाहता है न ... .हम उसे फाँसी के तख्ते पर लटकाएगा ! समझा टुम !''[१०८]

सरकारी खजाना लूटनेवालों में नवीन शामिल होने की वजह से प्रवीन को थानेदार साहब ने बुलाकार पूछताछ की । नवीन की वजह से बाबूजी का पेन्शन भी बन्द कर दिया गया । फिर कई साल बाद होली के दिन नवीन की उपस्थिति की खबर पाकर अंग्रेज इन्स्पेकटर अपनी गारद लेकर घर में घूसते हैं, लेकिन शान्ता की कुशलता से नवीन बच जाता है । इसके लिए घरवालों को अंग्रेज की क्रूरता का शिकार होना पड़ा । अंग्रजों ने थाने में बुलाकर प्रवीन और बाबूजी की खूब पिटाई की । अंग्रेजों के अत्याचार का वर्णन करते हुए उपन्यासकार लिखते है कि- '' इन्स्पेकटर बारूद की तरह धमक रहा था । एक हवालदार हाथ में भीगा बेंत लिए सट्‌ाक-सट्‌ाक मार रहा था ।... एक और सन्तरी हाथ में चिमटा लिए प्रवीन के नाखूनों को खींचता था ।....जैसे उस छोटे से कमरे में एक मशीन चल रही थी ...। एक झापड़ बाबूजी को पड़ा

था ।....हम टुमारा चमड़ी उधेड़ के रख देगा और टुमारा बहु का इधर लाके हवालात में सीधू करेगा !... हम तुमारी औरत को भी नहीं छोड़ेगा ।''[१०९] यों बार-बार कहकर मारता हुआ इन्स्पेकटर बाबूजी को बाहर घसीट लाया था । इस प्रकार लगातार अंग्रेजों के अत्याचारों से पीड़ित नवीन के परिवार के चित्रण द्वारा अंग्रेजों की अमानवीयता का नग्न चित्र लेखक ने प्रस्तुत किया है ।

इस प्रकार कमलेश्वर के साहित्य में व्यक्त राजनीतिक चेतना का अवलोकन करने पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि उनकी चेतना नीर-क्षीर विवेक द्वारा भारतीय राजनीति की अच्छाइयों और बुराइयों को अभिव्यक्ति करने में सफल रही है । वह बड़ी तटस्थता एवं इमानदारी से पक्षपात किये बिना भले को भला और बूरे को बूरा साबित करते हुए समस्याओं की जड़ तक पहुँचे हैं । इतना ही नहीं राजनीति में फैले हुए रक्त बीजों को मार भगाने एवं जन को जाग्रत करने का राष्ट्र हित भी किया है । उनकी समग्र चेतना राष्ट्र हित के लिए समर्पित थी । आज की राजनीति में बदलते मानदण्डों के कारण ही जनता का उस पर से विश्वास उठ गया है । इस लिए तत्कालीन परिवेश के सार्थक बदलाव पर उन्होंने अधिक बल दिया है । राजनीतिक विसंगतियों, अधिकारों के दुरूपयोग एवं अकर्मण्यता को दूर करने से ही यह परिवर्तन संभव है । राजनीतिक परिवेश के प्रत्येक स्तर के यथार्थ को उद्घाटित करने का कमलेश्वर का साहस एवं अभियान अपने आप में चुनौती भरा है, जिसे कमलेश्वर ने बड़ी सहजता और सजगता से अपने उपन्यासो में स्पष्ट किया ।

(क) आर्थिक चेतना :

'समाज का विकास अर्थ पर आधारित है ' यह एक सर्व सामान्य सत्य है,लेकिन सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन में अर्थ को जितना महत्त्व इस युग में प्राप्त हुआ है उतना पहले कभी नहीं हुआ होगा । आज 'अर्थ ' के बिना व्यक्ति का अस्तित्त्व सम्भव नहीं है । इस सम्बन्ध में सुशीला मीत्तल के मतानुसार - '' अर्थ आधुनिक युग की रीढ़ की हड्डी है । समाज और व्यक्ति के जीवन से अर्थ निकाल दीजिए, समूचा ढाँचा धराशायी हो जाएगा ।''[११०] स्वतन्त्रता के पश्चात् घटित परिवर्तनों के फल स्वरूप निम्न एवं मध्यवर्गीय लोगों का जीना दूभर बन गया तथा दिन-ब-दिन वे लोग आर्थिक अभाव के नागपाश में जकड़ते रह गए । मध्य वर्गीय परिवारों में सम्बन्धों का विघटन अधिकांशतः आर्थिक कमी के कारण ही होता है, क्योंकि उन्हें जीवन में कभी-कभी दूसरों की सहायता लेनी पड़ती है और इन दूसरों की वजह से ही फिर सम्बन्धों में अलगाव आ जाता है ।

स्वातन्त्र्योत्तर भारत में यदि कोई चेतना महत्त्वपूर्ण रही है तो वह आर्थिक चेतना है । इस काल के अधिकतर उपन्यासों का परिवेश मध्य वर्ग की आर्थिक स्थिति से जुड़ा है । सन् १९५० के बाद हिन्दी उपन्यासों में बदलती हुई आर्थिक स्थिति और परिवेश का प्रभावी चित्रण होने लगा । इस दृष्टि से कमलेश्वर के उपन्यास महत्त्वपूर्ण है । कमलेश्वर ने अपनी रचनाओं में बदलती हुई आर्थिक स्थितियों का जो चित्र प्रस्तुत किया है, उसी के माध्यम से वर्तमान अर्थतंत्र, चुनाव और लोकतंत्र आदि को मार्मिकता से व्यक्त किया है । कमलेश्वर उन उपन्यासकारों में से एक हैं जिन्होंने स्वातन्त्र्योत्तर काल के बदलते आर्थिक परिवेश को उपन्यास में चरित्र के माध्यम से स्वाभाविक और सहज निरूपित किया है । कमलेश्वर ने आर्थिक परिवेश का चित्रण जिन उपन्यासों में किया है उनमें प्रमुख 'डाक बंगला' ,'तीसरा आदमी','समुद्र में खोया हुआ आदमी',और 'आगामी अतीत' महत्त्वपूर्ण हैं । इन रचनाओं में मध्य वर्गीय समाज की परिवर्तित आर्थिक स्थितियों और जीवनमूल्यों का प्रभावशाली चित्रण हुआ है । इन रचनाओं में ह्रासोन्मुखी मध्य वर्ग की विविध समस्याओं की ओर रचनाकार का ध्यान गया है । वर्तमान स्थितियों में चाहे चुनाव हो या नौकरी का प्रश्न हो, सभी कुछ अर्थतंत्र पर निर्भर करता है । सामान्यतः मध्य वर्ग की सबसे बड़ी समस्या 'अर्थ ' ही रहती है । मध्य वर्ग को भीतर से खोखला करनेवाली भीषण आर्थिक समस्याओं की परिणति किस प्रकार होती है, यह कमलेश्वर के उपन्यासों में देखा जा सकता है ।

कमलेश्वर के 'डाक बंगला' उपन्यास में अर्थ वर्तमान जीवन में किस प्रकार से जीवन का केन्द्र बिन्दु बनता जा रहा है इसका निरूपण हुआ है । इस उपन्यास की नायिका 'इरा' अपने जीवन में अनेक पुरुषों के सहवास में आती है, जिसका मूलकारण न तो उसका यौवन है न ही वासना, अपितु उसका मूल कारण उसका आर्थिक परिवेश ही है । कमलेश्वर ने स्वातन्त्र्योत्तर काल में बढ़ती हुई आर्थिक महत्ता के कारण जीवन कैसे परिवर्तित होता है, इसका बड़ा मार्मिक चित्रण 'डाक बंगला' में किया है । विषम आर्थिक स्थितियों में रहकर जीवन के मूल्य किस प्रकार से बदल जाते हैं, यह 'तीसरा आदमी' उपन्यास में देखने को मिलता है । इसी प्रकार 'आगामी अतीत' उपन्यास का नायक कमलबोस आज की सामन्तवादी तथा पूँजीवादी समाज के स्पर्धामूलक परिवेश में पड़कर सफलता प्राप्त करने के लिए गलत एवं घातक रास्तों को अपना लेता है और अपने निजी वर्ग से भी कट जाता है । इस उपन्यास की नायिका को आर्थिक विषमता के कारण ही वेश्या जीवन को अपनाना पड़ता है ।

आर्थिक असमतुला एवं कश्मकश आम आदमी की शाश्वत समस्या है । अर्थाभाव व्यक्ति को जर्जर बना देता है, जीवित होते हुए भी मुरदा बन जाता है ।

समकालीन भारतीय जीवन की असमानताओं को कमलेश्वर ने अपने साहित्य में अभिव्यक्त किया और तद्जनित समाधान के प्रयास भी किये ।

(१) आर्थिक अभाव का चित्रण :

कमलेश्वर ने 'तीसरा आदमी' उपन्यास में महानगरीय मध्य वर्गीय परिवार के आर्थिक अभाव एवं दीन-हीन अवस्था का चित्रण किया है । आर्थिक अभाव के कारण ही नरेश पत्नी के संग रिश्ते के भाई के यहाँ रहने को मजबूर हो जाता है । पहले दोनों नए जीवन के प्रति उत्साह और उमंग से भरे हुए हैं, लेकिन बदले परिवेश के घेरे में फँसकर वे लँगड़ाते है । इससे मुक्त होना चाहते है,लेकिन महानगरीय परिवेश में उसकी सीमित आय,बढ़ती महँगाई के कारण अलग घर लेकर रहना असम्भव था । नरेश महानगर दिल्ली की चकाचौंध भरी जिन्दगी की तुलना उसके रहन-सहन के साथ करता हुआ कहता है कि-'' सीली हुई दीवारें.....सड़े अनाज की तरह महकता हुआ बिस्तर ...कोने से आती हुई लाशन की गन्ध..... मैले कपड़ों की भभक और उसमें से फूटती हुई चित्रा के बालों में पड़े तेल और बँधी हुई वेणी की बू....उसका तन पसीजने लगता और उस मिली-जुली गंध के ज्वार में हम डूब जाते ।''[१११] इस प्रकार घूटन भरी परिस्थितियों में जीवन बिताने को ये मजबूर हो जाते हैं ।

स्वतन्त्रता के पश्चात् देश की प्रगति एवं विकास तथा लोगों की खुशहाली के लिए अनेक योजनाएँ बनाई गई । महँगाई दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी थी । आबादी एवं बेरोजगारी महँगाई का एक कारण है । एकाएक बाजार से चीजें गायब हो जाती थी और जब मिलती तो पहले से अधिक दामों में । यह महँगाइ सम्पन्न वर्ग के पूँजी कमाने का एक खेल के सिवा कुछ नहीं था । इन सबका शिकार आम जनता बन जाती है । महानगरों में कम आय प्राप्त लोगों के जीवन दिन-ब-दिन बढ़ती महँगाई से दूभर हो जाता था । कमलेश्वर ने इसका अंकन 'तीसरा आदमी' उपन्यास में किया है । नरेश का तबादला दिल्ली में हो जाने पर सोच में पड़ जाता है, क्योंकि इतनी तनख्वाह में दिल्ली में गुजारा करना मुश्किल है । बढ़ती हुई महँगाई मध्य वर्गीय परिवार का जीना दूभर कर देती है । इस सम्बन्ध में नरेश कहता है कि-'' दिन-ब-दिन जीना दूभर होता जा रहा था । जरा-जरा सी चीजें की किल्लत थी ।....कमरे का किराया और महिने के खर्चे भी बढ़ते जा रहे थे । आमदनी वही थी,बढ़ती हुई महँगाई के कारण लगता कि हर महिने तनख्वाह कम होती जा रही है । बड़ी खींच-तान रहती । ''[११२] उपन्यासकार ने महानगर में सीमित आय में जीने को विवश मध्य वर्गीय परिवार की आर्थिक मजबूरियों का चित्रण नरेश के परिवार के जरिए उद्घाटित किया है ।

आर्थिक अभाव का चित्रण लेखक ने 'समुद्र में खोया हुआ आदमी ' उपन्यास में किया है । श्यामलाल अपनी जर्जर आर्थिक दशा में बदलाव लाने के लिए इलाहाबाद से दिल्ली आते है । श्यामलाल सिन्धी ट्रान्सपोर्ट कम्पनी की दिल्ली ब्रान्च में बुकिंग क्लर्क की नौकरी करते थे । एक दिन वहाँ से सामान चोरी हो जाने से श्यामलाल को नौकरी से बर्खास्त कर दिया जाता है । श्यामलाल नौकरी से निकाल दिये जाते है तब से उनके परिवार की हालात बहुत बिगड़ने लगती है । वह तरह-तरह के धन्धें ढूँढते हैं,पर उसे किसी धन्धें में सफलता नहीं मिलती । श्यामलाल मध्य वर्गीय संस्कारों से पीड़ित बाप है । इस लिए तारा और समीरा का बाहर जाकर नौकरी करना भी उसे पसन्द नहीं है ।

कमलेश्वर ने 'समुद्र में खोया हुआ आदमी ' उपन्यास में श्यामलाल के परिवार द्वारा चित्रित किया है कि आर्थिक अभाव के कारण कई सम्बन्ध बनते हैं और कई मिट भी जाते हैं ।

कमलेश्वर ने 'डाक बंगला' उपन्यास में भी आर्थिक अभावों का चित्रण किया है । इरा अपने प्रेमी विमल के साथ शादी कर लेती है । शादी के बाद इरा और विमल दिल्ली में ही स्थायी रंगमंच स्थापित करने का प्रयास करते है । आर्थिक अभाव के कारण वे सफल नहीं हो पाते । दिल्ली जैसे महानगर में रहते विमल आर्थिक अभाव को महसूस करता है । आर्थिक कठिनाइयाँ इरा और विमल के सहवास को सुखी नहीं बना पाती । विमल आर्थिक गुत्थियाँ सूलझाने के लिए इरा को महेन्द्र बतरा के यहाँ नौकरी दिलवाता है ।

कमलेश्वर के 'डाक बंगला' उपन्यास में आर्थिक संघर्ष करते पात्र उस स्थिति तक पहुँच जाते है जहाँ उनके लिए सिर्फ निरर्थकता का बोध ही बच जाता है । नायिका इरा को आर्थिक संघर्ष की प्रक्रिया के परिणाम स्वश्चप ऐसी-ऐसी स्थितियों से गुजरना पड़ता है,जहाँ से जीवन की सार्थकता से दूर चली जाती है ,जिसे पकड़ना असम्भव है । कमलेश्वर के अधिकांश उपन्यासों में निम्न मध्यवर्ग का टूटन तथा बिखराव आर्थिक विषमताओं से ही सम्बन्धित है । लेखक ने इस उपन्यास में निम्न मध्यवर्ग की आर्थिक स्थिति का एवं उसके फल स्वश्चप जीवन के बदलते मूल्यों का चित्रांकन प्रभावी ढंग से किया है । लेखक ने जो देखा,परखा और भोगा है उसे उपन्यासों के माध्यम से अभिव्यक्त भी किया है ।

(२) आर्थिक अभाव से टूटते परिवार :

वर्तमान समाज में अर्थतन्त्र हावी हो गया है । आजकाल पारिवारिक सम्बन्धों को बनाए रखने एवं बिगाड़ने वाली चीज 'अर्थ ' ही है । कमलेश्वर ने 'समुद्र में खोया हुआ आदमी ' उपन्यास में आर्थिक अभाव से टूटते परिवार का चित्रण किया है । श्यामलाल अपनी पत्नी को 'अर्थ 'के महत्त्व को समझाते हुए कहते है कि- ''यह शहर ऐसा है कि बिना पैसे के यहाँ कोई पहचानता ही नहीं । पैसे पास है तो दुनिया अपनी है, नहीं तो कोई साला...।''[११३] 'अर्थ ' बहन-बहन के रिश्तों में भी अलगाव पैदा करता है । समीरा सोच रही थी कि जब से तारा काम करने लगी है तब से - '' तारा के बक्से में अब ताला बन्द रहने लगा था ...उसके कपड़े सब से अलग टाँगे जाते थे । उसकी चप्पलें आलमारी में रखती थी और घर में जब उसे कोई काम करना होता था तब सब बेकार हो जाते थे । उसके नहाने के लिए सबको इन्तजार करना पड़ता था... उसके तैयार होने के वक्त कोई और नहीं होता था । उसका हर काम सबसे जरूरी हो गया था ।''[११४] आर्थिक संकट के नागपाश में बूरी तरह फँस जाने से ही एक ओर श्यामलाल को हरबंस का सहारा लेना पड़ा । हरबंस का सहारा एक हद तक पारिवारिक विघटन का कारण बना तो दूसरी ओर श्यामलाल और रम्मी बेटे की मौत को मंजूर कर उसका मुआवजा स्वीकारने को विवश हो गए । हरबंस उन्हें अपने बेटे की लाश पर मकान और बाकी भविष्य की तस्वीर बनाने की सलाह देता है । रम्मी को मुआवजे के लिए अपने पति को छोड़ना पड़ा तथा बेटी समीरा को होस्टेल में दाखिल कराना पड़ा । कमलेश्वर के विचारानुसार- '' रिश्ते और रिश्तों के श्रुख बदल गए हैं । ...सब लोग व्यक्तियों में बदल गए है...वे अपने को और अपने बाद को पहचानने में लगे हुए हैं । खून के रिश्ते से अलग संघर्ष के रिश्ते कायम हो गए हैं । इसलिए दुःख और सुख, हँसना-रोना बहुत मामूली चीज रह गई है । इनका कोई वजूद अब नहीं रह गया है...।''[११५] रम्मी को बेटे का मुआवजा हाँसिल करने के लिए सब कुछ खोना पड़ा । श्यामलाल का सकुशल परिवार अन्त में बोरों में भरकर हरबंस के घर की परछत्ती पर पहुँच जाता है अर्थात् एक परिवार नामक पुरानी इकाई अतीत की चीजें हो जाती है और यहाँ से व्यक्तियों का संधर्ष आरम्भ हो जाता है । खून के रिश्ते खोखले पड़ जाते हैं ।

असल में समुद्र में खोए हुए आदमी वीरन नहीं श्यामलाल हैं । वह भीषण आर्थिक असमानताओं के समुद्र में खो गये है । श्यामलाल सिर से एड़ी तक कर्ज में डूबे हुए है । वह स्वयं और उसका परिवार महानगर की भीड़ के सैलाब में कहीं खो गए हैं । यह निम्न मध्यवर्ग एवं मध्य वर्गीय घरों की कहानी है । इस प्रकार कमलेश्वर

ने आर्थिक अभाव से महानगर रूपी महासागर में टूटकर बिखरनेवाले मध्य वर्गीय परिवार का यथार्थ अंकन किया है ।

(३) पूँजीपति व्यवस्था का चित्रण :

'आगामी अतीत' उपन्यास में पूँजीपति व्यवस्था के प्रति अपना प्रतिशोध लेखक चाँदनी के जरिए प्रकट करते है । असल में यह शोषित मध्य वर्गीय समाज का आक्रोश है । कमलबोस ने धन-सम्पत्ति की लालसा से जीवन में सच्चा प्रेम,प्रेमिका, पत्नी सब खो दिया था । चाँदनी जब उसके ग्राहक कमलबोस के निष्क्रिय व्यवहार से अतृप्त होकर जाने लगती है तो कमलबोस कहता है कि तुम्हें पैसे से मतलब है वह तुम्हें पेशगी दे चुका है । तब चाँदनी अपनी सफाई के लिए पचास रुपये का नोट कमलबोस के सामने फेंककर पूँजीवादी समाज व्यवस्था के प्रति अपना आक्रोश प्रकट करती हुई कहती है कि- ''पूँजीवादी समाज व्यवस्था में तो 'हराम के पैसे ' ही विषमता की जड़ होते है । ......न बाबा, न मुझे नहीं चाहिए ये हराम के पैसे ।''[११६] चाँदनी के मुँह से ऐसी बातें सुनकर कमलबोस स्तब्ध रह जाता है तथा उसे धक्का सा लगता है । चाँदनी की जिज्ञासा यह है कि कमलबोस के पास इतना पैसा कहाँ से आया । पूँजीवादी समाज व्यवस्था का असली प्रतिनिधि कमलबोस इसका उत्तर देने में अपने आप को असमर्थ पाता है । उस वक्त चाँदनी अपनी अम्मा की बातों के जरिए महेनत करनेवाले लोगों का सही चित्र प्रस्तुत करती है -''अम्मा कहती थी, ईमानदार लोग हमेशा गरीब रहते है । गरीबी इस बात का सबूत है कि हम ईमानदार है । यह सच है ।''[११७] चाँदनी के दिल में झुठी सामाजिक व्यवस्था के प्रति घृणा है । इसलिए ही वह अपनी अम्मा की बातों को आदर्श मानकर उसीके भरोसे जीवन बिताती है ।

कमलेश्वर ने 'वही बात' उपन्यास में भी पारिवारिक तनाव का एवं अकेलेपन का वर्णन किया है । प्रशांत बाँध बनाने वाली कम्पनी में चिफ इंजीनियर के पद पर काम करता है । एक प्रोजेक्ट के सिलसिले में उसकी पत्नी समीरा को बम्बई से दूर पहाड़ियों में ले जाता है । वहाँ जाकर प्रशांत अपने काम में डूब जाता है । पहले वह समीरा को फोन करके बात कर लेता था पर ज्यादा काम बढ़ जाने से फूरसद मिलती नहीं थी ।

प्रशांत के काम में डूब जाने से अकेलेपन से तंग आकर समीरा नकूल की और आकर्षित होती है । लेखक ने यहाँ पूँजीपति व्यवस्था का विरोध किया है । प्रशांत परिवार को महत्त्व देने के बजाय पैसे को महत्त्व देता है । समाज में ऐसे अनेक परिवार

है, जो पैसे के वजह से या तो अकेलेपन की वजह से टूट जाते है । लेखक ने प्रशांत के माध्यम से पूँजीपति व्यवस्था का चित्रण किया है ।

(४) हर एक धन्धें की मान्यता :

कमलेश्वर ने 'आगामी अतीत' उपन्यास में कस्बे की वेश्याओं की जिन्दगी को अत्यन्त सूक्ष्मता तथा यथार्थता से प्रस्तुत किया है । चाँदनी संसारभर की वेश्याओं का प्रतिनिधित्त्व करती हैं । चाँदनी का मन उजला और निर्मल है । वह अपना वेश्या का धन्धां भी ईमानदारी से करना चाहती है । चाँदनी वेश्यावृत्ति से अपना जीवनयापन करती है इसलिए ही उसकी दृष्टि में यह वृत्ति हेय नहीं है । वेश्यावृत्ति के सम्बन्ध में उसकी मान्यता है कि इस धन्धें की दुनिया बूरी नहीं है । उसने जीवन की वास्तविकता को स्वीकार कर लिया है । चाँदनी सोचती है कि जीने के लिए हर कोई जो धन्धां अपनाता है उसे न्याय दिखाना है । चाँदनी औरत होते हुए भी नारी सहज भावनाओं से वंचित है । इसका कारण तो उसका पेशा ही है । कमलबोस चाँदनी को जीवन के मुख्य पथ पर ले आना चाहता है लेकिन उसके लिए वह तैयार नहीं होती । चाँदनी अपने धन्धें के बारे में कहती है कि- ''मैं औरत नहीं हूँ। मुझे क्या मालूम,औरतें क्या करती है ? हाँ तवायफ,तवायफ होती है । वह और कुछ नहीं होती ।''[११८] चाँदनी जीवनभर वेश्या रहकर ही जीने का दृढ संकल्प लेती है । चाँदनी की वाणी में कृत्रिमता नहीं हैं । अब उसका दृढ संकल्प यह है कि निरावरण शरीर ही जीवन का आधार है तो उसे ढँकने से क्या फायदा ।

आर्थिक संकट के कारण विवश चाँदनी चाहती तो कमलबोस के साथ जाकर सम्पन्न जिन्दगी व्यतीत कर सकती थी, लेकिन अपनी अम्मा की जीवन की त्रासदी को वह अभी तक नहीं भूली थी । इसलिए वह अपने व्यवसाय को हेय नहीं मानती है ।

(५) यान्त्रीकरण से गाँव कस्बे में आए परिवर्तन :

स्वतन्त्रता के बाद हुए यान्त्रीकरण के फल स्वरूप गाँव-कस्बे में आए परिवर्तन की ओर भी कमलेश्वर ने इशारा किया है । कमलेश्वर ने 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ ' उपन्यास में यान्त्रीकरण से कस्बाई जीवन की उथल-पुथल का वर्णन किया है । मैनपुरी कस्बे की जिन्दगी शोर एवं उमंग भरी थी । रंगीला ने बंसिरी से यहीं-कहीं से सुनी हुई खबर दी कि - '' सुना है सरकार सब मोटर बसों को अपने कब्जे में ले

रही हैं । सरकारी देख-रेख में इन अड्डो से बसें चलेगी । डिराइवर -क्लीनर सब सरकारी ही आएँगे ,पता नहीं इन डिराइवरों का क्या होगा ? ''[११९] बंसिरी को अड्डा और सड़क सब कुछ निर्जीव-सा लगता है । सरनाम के लिए मोटर बसों का राष्ट्रीयकरण 'लटकती हुई तलवार' जैसा प्रतीत होता है । सरनाम असमंजस में पड़ जाता है । उसने सोचा कि इस लाइन पर सरकारी बसें कैसे चलेगी ? शायद यह झूठी खबर है इस पर सरकारी बसें नहीं चल सकती ।

प्रस्तुत उपन्यास में बसों के राष्ट्रीयकरण से होनेवाली बेकारी की समस्याओं का चित्रण भी किया है । सरकारी बसों के आगमन से बस्ती के लोगों की जिन्दगी बरबाद हो जाएगी । सरनाम यान्त्रीकरण से होनेवाली कस्बे की हालात के बारे में सोचता है कि-'' इस लाइन के मोटरों के राष्ट्रीयकरण की खबरें जोर पकड़ती जा रही है । अपनी बसें चलाकर पिछले दिनों सरकार को बहुत फायदा हुआ है ,वह अपना फायदा देखती है मजदूर का पेट नहीं । आखिर क्या इन्तजाम होगा, इन ड्राइवरों और क्लीनरों का जो बेकार होकर बैठ जाएँगे । सरकारी ड्राइवर आएँगे, तब इन्हें कहाँ काम मिलेगा भला ।''[१२०] मोटर मालिकों की युनियन की बैठक रोज सुबह से शाम तक होती थी । मोटर मालिकों की ओर से कुछ लोगों ने लखनऊ जाकर परिवहन मन्त्री से मुलाकात की,उनके साथ एक एम.एल.ए. भी गए । परन्तु सरकार ने बसों का राष्ट्रीयकरण करना तय कर लिया था । इस लिए युनियन की बातों पर ध्यान नहीं दिया गया । वापस आकर सरनाम के मोटर मालिक ने कहा कि हम लोगों ने बहुत कोशिश की पर कुछ हुआ नहीं । मेरा बस चलता तो अपने एक भी आदमी को बेकार न होने देता , अब तो लाचारी है । आखिर कस्बे में सरकारी बसें चलनी लगी और बस्ती वीरान हो गई ,साथ ही यान्त्रीकरण से बस्ती का जीवन उजड़ गया । मोटर बसों के साथ जूड़े हुए कई परिवारों का जीना दूभर हो गया । एक ओर यान्त्रीकरण से बस्ती में रोनक आ गई तो दूसरी ओर बस्ती वीरान एवं अंधकारमय बन गई ।

महानगर यान्त्रीक सभ्यता की वजह से विकसीत है, गाँव में विकास का अभाव है । लेकिन गाँव और नगर दोनों के बीच पड़े हुए कस्बे में परिवर्तन की गति अति तीव्र है अर्थात् ये कस्बे ही आधुनिक मूल्य परम्पराओं के प्रत्यक्ष भोक्ता रहे हैं । कस्बाई मनोवृत्ति में गाँव और महानगर दोनों का मिलाव दृष्टिगत है । फिर भी गाँव-गाँव है, कस्बा-कस्बा है, महानगर -महानगर है । गाँव और शहर दोनों के सम्बन्ध के बारे मे डॉ. रामदरश मिश्र बताते है -'' अपने अपने परिवेश में शहर और गाँव दोनों के सम्बन्ध बदले हैं, मूल्य टूटे है, संक्रान्तियाँ आई है , दृष्टियाँ बदली है, बौद्धिकता ने अनेक विश्वास तोड़े हैं और परिस्थितियों मे काफी अन्तर आया है किन्तु

कुल मिलाकर अभी गाँव-गाँव है, कस्बा-कस्बा है नगर-नगर है और महानगर-महानगर है।''[१२१]

इस प्रकार कमलेश्वर ने यान्त्रीकरण से बेकारी की समस्या पर प्रकाश डाला है। लेखक का उद्देश्य इस समस्या का समाधान भी करना है। इसलिए वह बंसिरी के जरिए शिवराज को कहलवाते है कि पढ़-लिख लिया है, तुम्हें कुछ करना है जजी-कलकटरी में नौकरी की तलाश करो। इसप्रकार बेकारी की समस्या का समाधान भी करते है।

(६) महानगरीय मध्य वर्गीय जीवन की विसंगति :

कमलेश्वर ने 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' उपन्यास में महानगरीय मध्य वर्गीय जीवन की विसंगति को खूब उभारा है। कमलेश्वर ने इसमें एक मध्य वर्गीय परिवार को एक बदलते हुए परिवेश में आर्थिक विषमताओं के कारण टूटकर बिखरती हुई जिन्दगी का सहज चित्रण संवेदनात्मक धरातल पर किया है।

आधुनिक युग में हर व्यक्ति अपने-अपने अस्तित्त्व को सुरक्षित रखने तथा सुख-सुविधाओं की खोज में रत है। जब उसे ये सुख-सुविधाएँ अपने कस्बे,शहर में नहीं मिलती तब वह महानगरों की ओर भागता है, साथ ही उसे लगता है महानगर में काम के अवसर अधिक है। श्यामलाल भी सपरिवार इसी भरोसे के बल पर दिल्ली आ गए थे। लेकिन नियति ने उसका साथ न दिया। जब घर में किसी दूसरे की बात सुनी जाने लगी तब परायेपन का अहेसास होता है। जब व्यक्ति का हक उससे छीन लिया जाता है तब व्यक्ति फालतू बन जाता है। इस भाव को महसूस करते श्यामलाल सोचते है कि - ''वह सिर्फ एक फालतू चीज की तरह रह गए है, जिसे फेंका नहीं जा सकता, सिर्फ बर्दाश्त किया जाता है। जिसे सहेजा भी नहीं जाता, सिर्फ होने को महसूस किया जाता है।''[१२२] श्यामलाल घर को अकेले चलाने का दम्भ रखते है, लेकिन बदलता परिवेश ऐसा होने न देता है। अपनी लड़कियों के सम्बन्ध में भी वे उन पुरानी मान्यताओं के गुलाम है। इसलिए तारा का नौकरी पर जाना उसे पसन्द नहीं है। श्यामलाल के मन में 'पुराने' के लिए वह सम्मान आदर है जो नए महानगरीय संस्कृति मे खोखला तथा व्यर्थ हो चुका है। इस बदलती हुई स्थिति को वे महसूस करते थे लेकिन स्वीकार नहीं कर पाते थे अर्थात् यंत्र-सभ्यता द्वारा सदा अकेले किए जा रहे व्यक्ति की सत्ता को सहन नहीं कर रहे थे।

महानगरों का पहला दबाव परिवार पर पड़ता है, जिसके कारण घर-परिवार टूटने लगता है तथा भावात्मक सम्बन्धों को व्यावहारिक सम्बन्धों में बदल देता है। श्यामलाल का एक मात्र स्वप्न बीरन था। परिवार में आपसी सम्बन्ध मे अलगाव आ जाने पर श्यामलाल को लगा कि वह करोड़ों की भीड़ में घिर गए हैं, जहाँ कोई किसी को नहीं पहचानता है। महानगरीय जीवन के दबाव के नीचे सारे रिश्ते जिन्हें हम कलेजे से लगाए जीते रहे बिखर जाते है और खून के रिश्ते तब बदलने लगते है। यहाँ आकर हर व्यक्ति अकेला हो जाता है। जब श्यामलाल का परिवार परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजर रहा था उस समय नौ सेना में काम करता बीरन लापता हो जाता है।

श्यामलाल अब बिल्कुल अकेले हो गए है, क्योंकि उस महानगर में ऐसा कोई नहीं है जो उन्हें सहारा दे सके या किसी किनारे तक पहुँचा सके। पारिवारिक सम्बन्धों में आए बदलाव को श्यामलाल महसूस करते है। श्यामलाल की परिस्थिति को देखते हुए लेखक कहते है कि -''हजारो....लाखों ...करोड़ों...की आवाज में वे बिलकुल तन्हा और फालतु हो गए हैं ...किसी को उनकी जरूरत नहीं.... कोई ऐसा नहीं जो उसको सूने। पति के रूप में वे बस पतिभर रह गए है एक जबरदस्ती का बोझ और पिता के रूप में सिर्फ पिता इन दोनों का कोई अर्थ उन्हें नहीं दिखाई दे रहा था। सदियों से आसुओं, दया, मर्यादा परिवार जैसी भावनाओं ने इन रिश्तों को जिन्दा रखने की कोशिश की है।''[१२३] महानगरीय सभ्यता के दबाव से हमारे मध्य वर्गीय परिवार चरमरा कर टूट तो जाते है, पर नई व्यवस्था को मंजूर नहीं कर सकते। उनके संस्कार और सदियों के विश्वास आड़े आते है। इस प्रकार लेखक ने महानगरीय विसंगतियों में जीने को विवश श्यामलाल के परिवार के द्वारा महानगरीय मध्य वर्गीय जीवन की मजबूरियों का परिचय दिया है।

कमलेश्वर ने 'तीसरा आदमी' उपन्यास में वर्तमान, आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर मध्य वर्गीय व्यक्ति चेतना के बदलते रूप का चित्रांकन किया है। लेखक ने इस उपन्यास को छोटी-छोटी स्थितियों के माध्यम से मध्य वर्गीय जीवन की विषमताओं का चित्र प्रस्तुत किया है।

नरेश को विवाह के बाद इलाहाबाद शहर छोटा लगने लगता है। उसके मनमें महानगर का आकर्षण निर्माण होता है। उसे लगता है कि छोटे शहर में अब प्रगति नहीं हो पायेंगी। इसलिए दिल्ली में तबादला करवा लेने की बात सोचता है। वह अपनी आय को देखकर दिल्ली जैसे महानगर में गुजारा कैसे करेगा यह भय भी उसके दिल में होता है। दिल्ली जैसे महानगर में आर्थिक अभाव एवं आवास की

समस्या में जीवन की साधारण आवश्यकता की पूर्ति भी नहीं हो पाती है । नरेश और चित्रा नवविवाहित जीवन दिल्ली में आकर स्वतन्त्रता से व्यतीत नहीं कर पाते है । दोनों कस्बाई वातावरण में पले होने के कारण महानगर के जीवन में अनुकूल नहीं हो पाते हैं । छोटे कस्बे का व्यक्ति महानगर में आते ही टूटकर बिखर जाता है ,यह नरेश के माध्यम से लेखक ने चित्रित किया है । नरेश की दिल्ली मे आकर कस्बाई महत्त्वकाक्षाओं की पूर्ति लगातार खण्डित होती है । निम्न मध्यवर्गीय परिवार आर्थिक विषमता के कारण टूटकर बिखर जाता है । वर्तमान युग में मध्य वर्ग ही एक ऐसा वर्ग है जो आर्थिक विषमता से पिसता जा रहा है । ऐसी आर्थिक विषमता का शिकार नरेश का परिवार भी है ।

(७) वर्गगत भेदभाव :

वर्तमान समाज में आर्थिक दृष्टि से लोगों को तीन वर्गों में या तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया हैं - उच्च वर्ग ,मध्य वर्ग, एवं निम्न वर्ग । स्वातन्त्र्योत्तर कहानियों के समान उपन्यासों में भी समाज के आर्थिक स्तम्भ तीन वर्गों विभाजित है । आर्थिक स्तम्भ की विशिष्टताओं एवं विवशताओं से आर्थिक चेतना प्रकट होती है । कमलेश्वर के उपन्यासों में इन तीनों वर्गों का चित्रण है लेकिन अधिकांश उपन्यास मध्य वर्ग पर आधारित है । उच्च वर्ग एवं मध्य वर्ग के बीच का संघर्ष एवं भेदभाव और असमानता पर लेखक ने अपने उपन्यासों में प्रकाश डाला है । कमलेश्वर के 'आगामी अतीत' में उच्च वर्ग की आर्थिक मनोवृत्ति तथा मध्य वर्ग के प्रति अधिक लगाव उच्च वर्ग में देख सकते हैं । उच्च वर्ग के लोग मध्य वर्ग के अकलमंद एवं कुशल नौजवानों को खरीदकर हाथ का खिलौना बनाकर अपने स्वार्थ कार्य के लिए इस्तेमाल करते हैं । यह तो असल में उनका शोषण है । इसका सशक्त चित्रण 'आगामी अतीत' में हुआ है । कमलबोस डॉक्टरी परीक्षा में प्रथम आया तो मानसी कैमिकल्स कम्पनी के चन्द्रमोहन सेन ने सुन्दर वायदे देकर अपनी बेटी निरूपमा रूपी जाल फेंककर उसे फँसाया । चन्द्रमोहन सेन के उक्त कथन से उच्च वर्ग की आदत जाहिर होती है -''तूम्ही सोचों..... क्या मिलेगा तुम्हें डॉक्टरी करके ? अपने कस्बे में डिस्पेन्सरी खोलोगे तो कितनी आमदनी हो जाएँगी ? और फिर पैसा ही तो भविष्य नहीं है ...आदमी को मान-सम्मान और नाम भी तो चाहिए । मैं तुम्हें अपना पूरा कारखाना देता हूँ । मैं यह नहीं कहता बेटे कि निरूपमा दुनिया में सबसे अच्छी लड़की है , पर इतना जरूर है कि जिस दुनिया में तुम कदम रख रहे हो, जिस दुनिया को तुम्हें जीतना है, उसमें पत्नी एक बड़ा आधार और शक्ति है ।''[१२४] इसप्रकार चन्द्रमोहन सेन भौतिक सुखों की बात करके जिन्दगी का सुझाव भी देता है ।

उच्च वर्ग जो कुछ करता है, वहाँ सही या गलत का सवाल नहीं उठता है। उनकी दृष्टि में सब सही है और गलत है तो उसे सही बनाने एवं साबित करने की क्षमता एवं शक्ति उनमें है। लेकिन मध्य वर्ग ईमानदार होते हैं। वे गलत को गलत और सही को सही मानते है तथा हेरफेर के लिए तैयार नहीं होते हैं। इस वर्गगत भेदभाव का उल्लेख 'आगामी अतीत' में हुआ है। कमलबोस के आत्मगत से यह स्पष्ट होता है कि- '' अच्छा और बूरा, गलत और सही के पैमाने को लेकर कमलबोस और निरूपमा के बीच इतना फर्क होगा यह कमलबोस ने कभी नहीं सोचा था। कमलबोस तो यही समझते थे ,हर गलत को हर आदमी गलत मानेगा ही नहीं समझेगा भी .... पर निरूपमा का चरित्र वे नहीं समझ पा रहे थे। चन्द्रसेन को भी नहीं समझ पाए थे। जो कुछ कमलबोस को गलत लगता था, उसे गलत मानना तो दूर वे गलत समझते भी नहीं थे। बहुत बार कमलबोस ने अपने को टटोला ...कि देखे यह दोष कहाँ पर है.... पर समझ नहीं पाए...सिवा इसके कि यह भेद आदमी-आदमी के पैमानों का नहीं... यह चरित्र दोष आदमी और आदमी के माहौल का है।''[१२५] उच्च वर्ग और मध्य वर्ग के आर्थिक अन्तर की अभिव्यक्ति कमलबोस और चाँदनी की बातों में भी स्पष्ट झलकती है। उच्च वर्ग मेहनत न करके कमाते है और निम्न मध्यवर्ग मेहनत करने पर भी न कमा सकते है। चाँदनी हराम के पैसे कमाना बेईमानी समझती है और मरने के बाद ईश्वर के यहाँ जवाब देना पड़ता है ऐसा महसूस करती है।

स्वतन्त्र भारत में गरीब और अमीर के बीच की खाई बढ़ती जा रही है। भविष्य में इसके बढ़ने की संभावना को नकारा नहीं जा सकता। देश की आंतरिक स्थिति और अर्थनीति निरन्तर बिगड़ती जा रही है। इस विषमता को कोई अनुभव करे या न करे साहित्यकार अवश्य अनुभव करता है। इतना ही नहीं अपने अनुभव किये हुए संसार को रचनाओं में अभिव्यक्त भी करते है। यही कारण है कि कमलेश्वर ने स्वयं गरीबी के दंश को झेला है। यही कारण है कि कमलेश्वर ने आर्थिक संकट से उत्पन्न विवशताओं, पारिवारिक और सामाजिक सम्बन्धों मे आये तनावों और स्वार्थपरायणता को अपने साहित्य में प्रतिबिम्बित किया है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था ने मध्य वर्ग को जबरदस्त प्रभावित किया है। आर्थिक दबावों से वह खोखला और जर्जर होता जा रहा है। निम्न मध्यवर्गीय जीवन को दिन-प्रतिदिन गहराते जाते आर्थिक संकट ने अत्याधिक तोड़ा है। अभावों से घिरे वातावरण में गरीबों की जिन्दगी दम तोड़ती नजर आने लगती है और उनके बीच जूझते टूटते पात्र अभाव के दर्द को चुपचाप पीने के लिए मजबूर हो जाते है। संघर्ष करने का साहस उनमें नहीं रहता। यही कारण है कि भारतीय जनजीवन असमानताओं से भरा हुआ है। गरीबी और जहालता इस देशकी पहचान बन गई है।

कमलेश्वर के साहित्य में स्पंदित आर्थिक चेतना का अवलोकन करने के पश्चात् निःसंकोच यह कहा जा सकता है कि कमलेश्वर की चेतना अपने युग की आर्थिक परिस्थितियों के सदर्भ में अभिव्यक्त हुई है । कमलेश्वर ने समकालीन आर्थिक गहमा-गहमी के सत्य को, अर्थ प्रधान युग की त्रासदी को, आर्थिक शोषण की विडम्बना को, पूँजीपतियों की शतरंजी चाल को बड़ी सूक्ष्मता से व्याख्यायित किया है ।

(ड) सांस्कृतिक चेतना :

मानवता के पुजारी कमलेश्वर भला विघटन के इस संक्रमण युग में चुप कैसे रह सकते है । उनकी तो कलम ही भारतीय संस्कृति के सरकंडे से बनी हुई है । उन्होंने खोई हुई तथा भटकी हुई मानवीयता एवं संस्कृति की पुनः स्थापना के लिए भगीरथ प्रयत्न किया, जिसे हम उनके साहित्य में निहार सकते हैं । कमलेश्वर का प्रयत्न मानव को संकीर्णता से परे असीम भाव लोक के उन्मुक्त गगन में ले जाकर उसे सुसंस्कृत बनाने का रहा है । मानव की आंतरिक समृद्धि में सबसे बड़ा योगदान साहित्य का होता है,सर्जक अपनी रचना के द्वारा संस्कृति के प्रतिगामी तत्त्वों का निषेध करके क्रियाशील और जीवंत तत्त्वों का समर्थन करता है । साहित्यकार की विवेकशील सांस्कृतिक चेतना ही मानवजाति के सौंदर्य और मूल्य बोध को सुरक्षित रखने एवं उन्नति प्रवण बनाने में समर्थ होती है । भारतीय संस्कृति के पक्षधर कमलेश्वर भी मानव जीवन की आंतरिक प्रगति के लिए संस्कृति और साहित्य को आवश्यक मानते है, क्योंकि इसके अभाव में मानव जाति का आंतरिक सौंदर्य और मूल्य बोध सुरक्षित रह पाना असंभव है ।

भारतीय संस्कृति का उद्देश्य मानव का शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक शक्ति का विकास करना रहा है । कमलेश्वर भी विकासोन्मुखी संस्कृति का समन्वय करते हुए मनुष्य की आन्तरिकता पर बल देते है ।

(१) कपटी आध्यात्मिकता :

आज पाखण्ड धर्म पर छा गया है । धार्मिक आचार्य अपनी महानता का सिक्का जमाने के लिए जनता को तरह-तरह के पाखण्डों में फँसा कर लूटते रहते है, जनता भी उनके बहकावे में आकर बहक जाती है । जनता धर्म के मूल अर्थ को समझ

नहीं पाती । इसलिए पूजा-पाठ, धार्मिक क्रियाएँ और तरह-तरह के अनुष्ठान करती है, जिससे उसकी समस्याएँ और भी बढ़ जाती है ।

कमलेश्वर ने 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ ' उपन्यास में आश्रम तथा साधुलोगों में हो रही हीन-वृत्तियों का पदार्फाश किया है । उपन्यास के आरम्भ में सदानन्द आश्रम का उल्लेख है, जहाँ प्रमुख अवसरों पर मर्द और औरतें सम्मिलित होते हैं । दस साल पहले मैनपुरी में गुरु सर्वदानन्द ने सदानन्द आश्रम की स्थापना की, उसके बाद आश्रम की ख्याति बढ़ी । भक्तों ने अपने आवारा लड़कों को गुणवान बनाने के लिए आश्रम को अर्पित करना आरम्भ किया । इस प्रकार तेरह साल का शिवराज आश्रमवासी बन गया । स्वामीजी स्नेह और दुलार से शिवराज को पढ़ाते थे, लेकिन शिवराज के पिता की मृत्यु के बाद उनके रवैये में अन्तर दिखाई दिया । शिवराज आश्रम के व्यवहार के बारे में कहता है कि- ''यह आश्रम अब उसके लिए अनाथालय-सा हो गया । स्वामीजी की पुचकार और स्नेह चुक गया । अब घर से दान-दक्षिणा जो नहीं आती ! पहलीबार पिताजी दो बोरी गेहूँ,, एक बोरी गुड पहुँचा गए थे । एकाध कपड़े बनवा गए थे ,लेकिन अब यह सब कहाँ ? रात में बाहर चबूतरें पर लेटता । रात में स्वामीजी के पैर दबाने की 'डयूटी 'उसी की थी '' [१२६] शिवराज पिताजी के कहने पर आश्रम में रहता था । आश्रम की असलियत का पता लगने पर तथा आश्रम की जिन्दगी से तंग आकर वहाँ से निकल जाता है , फिर लौटकर नहीं आता ।

कलकी अवतार के दिन जिले भर के साधु वैरागी धर्मशाला में एकत्रित हो गये थे । अवतार दर्शन के लिए सब खड़े हुए थे तो कहा गया कि अवतार पुरुष को देखने का सौभाग्य केवल नारियों को प्राप्त है । कृष्णमंण्डली में हो रहे असभ्य व्यवहार से सरनाम आदि बिगड़ गए । धार्मिक रिवाजों की आड़ में अनैतिक व्यवहार ही हो रहे थे । गेंदा कवि जो बड़ा भक्त एवं कवि लेखक था । बस्तीवालें भी उनका आदर करते थे । वह कभी-कभी बस्ती में दिखाई पड़ता था । उसका धन्धां तो गाँजा तथा नारियों का व्यापार था । गेंदा कवि के व्यापार के बारे में मगन मिस्त्री का मत है - '' बड़ा घड़ियाल व्यापारी है ! पंजाब तक व्यापार करता है....पचासों निकाल दी । एक से एक अव्वल लाता है ...किस्मत जबर है, इन्द्र का अवतार कविराज ! हर वक्त दरबार भरा रहता है कहता था मेनका है मेनका ।''[१२७] गेंदा कवि ही बंसिरी को बिकने के लिए सराय में ले आया और पांच सौ में बेच दिया । वह आया तो गेरूवा वस्त्र, गले में कण्ठी और हाथ में चिमटा था , फिर भी अफिन के नशे में मस्त था । इस प्रकार 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ ' उपन्यास में लेखक ने साधु सन्तों तथा आश्रम एवं अवतारों के आयोजन में हो रही हीन वृत्तियों का खुलकर उद्घाटन किया है ।

स्वतन्त्रता के बाद सर्वतोन्मुखी प्रगति के फल स्वरूप लोगों की सोचने, समझने की क्षमता क्षीण हो गई है । अब लोग भले बूरे की चिन्ता किये बिना अपने स्वार्थलाभ एवं पूँजी कमाने की चिन्ता से सब काम करते है, साधु सन्त भी इसके अपवाद नहीं है । इसलिए धार्मिक केन्द्र एवं संस्थान भ्रष्टाचार तथा पापाचार का केन्द्र बन गया है । इसकी सफल अभिव्यक्ति कमलेश्वर के 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ ' उपन्यास में धर्मशाला के अन्दर 'कलकी अवतार कृष्ण' को देखने के अवसर पर हो रहे धर्म के प्रति असभ्य व्यवहार से की गई है । वहाँ धर्म के नाम पर असभ्य व्यवहार हो रहे थे । पहले लोग धर्मात्मा को ईश्वर का प्रतिरूप मानते थे । उनका न घर होता न जाति होती है न धर्म होता है न धन-दौलत होती है । वे सदा सबकी भलाई चाहते थे । लेकिन आज धर्मात्मा सत्ता-लोलुप एवं सुखों में आसक्त दिखाई देते है ।

'लौटे हुए मुसाफिर ' का जुम्मन साई जातीय भेदभाव एवं संकुचित मनोभाव रखनेवाला धर्मात्माओं का सच्चा प्रतीक है । चिकवों की शान्त सुन्दर बस्ती में हिन्दू-मुसलमानों के बीच साम्प्रदायिक नफरत की आग फैलाने में तथा उसके बच्चों के प्रति उनका रवैया इसका उदाहरण है । कमलेश्वर ने इन उपन्यासों के द्वारा आजकल के धर्मात्माओं की पौल खोलने का प्रयास किया है ।

(२) मानवीय मूल्यों के महत्त्व का चित्रण :

भारतीय संस्कृति उन शाश्वत एवं चिरंतन मूल्यों के सिद्धान्तों का समुदाय है, जिनके द्वारा मानव आन्तरिक उन्नति करके सन्मार्ग में प्रवृत्त होकर समाज को उन्नतिशील बनाता है । अखण्ड मानवता एवं वसुधैव कुटुम्बकम तथा शाश्वत चिन्तन हमारी भारतीय संस्कृति का प्रयोजन रहा है ।

कमलेश्वर ने 'लौटे हुए मुसाफिर ' उपन्यास में साम्प्रदायिकता से बढ़कर मानवीय मूल्यों एवं मानवता को महत्त्व दिया है । मूल्यों के लुप्त होते इस युग में इस उपन्यास के प्रमुख पात्र नसीबन के द्वारा ममता, स्नेह, सहानुभूति, दया ,करूणा आदि मानवीय मूल्यों को बनाए रखने का प्रयास किया है । नसीबन न मुसलमान है, न हिन्दू बल्कि मनुष्य है अर्थात् वह जातीयता से परे मनुष्य को मनुष्य के रूप में माननेवाली ममता की मूर्ति है । सब के साथ समान रूप से पेश आनेवाली नसीबन को , कभी-कभी ओरों से कड़वी घूँट भी पीना पड़ा, फिर भी अपनी कथनी एवं करनी को एक-सा बनाकर सबसे लड़ती रही । वह मुसलमान होकर बच्चन की अनुपस्थिति में उसके बच्चों का पालन-पोषण करती है । आहत एवं बेसहारा सत्तार को रहने की जगह

देती है। साई, मकसूद, यासीन तथा पुलिस की नजरों से बच्चन को सदा बचाती रहती है। बच्चन के बच्चों को लेकर स्वयं सेवक संघ की धमकियों की परवाह न करके उन्हें भटका कर घर से निकालती है। वह विभाजन के विरूद्ध अपना मत भी निड़र होकर प्रकट करती है। बच्चन के बच्चों को वापस भेजते वक्त सत्तार से कहे उक्त कथन से नसीबन का एक जिम्मेदार एवं ममतामयी माँ का रूप उभर आता है –'' सत्तार तू अपनी जिम्मेदारी पर इन बच्चों को कल सौंप आ नहीं तो मुझे कभी चैन नहीं आएगा।''[१२८] साथ ही वह कठिनाइयों में ओरों की सहायता करने में सदा तैयार है। नसीबन अफवाहों एवं औरों की बातों की परवाह नहीं करती। नसीबन को भला-बूरा कहनेवाले साई से भी उसके मन में द्वेष नहीं है। उसके प्रति उसके मन में केवल सहानुभूति है। उपन्यास के अन्त में जब वहाँ पातालतोड़ कुएँ खोदने के लिए मजदूर बनकर आए उन बस्ती के बच्चों को देखकर वह आत्मविभोर हो जाती है। अपनी आयु की परवाह किए बिना अपनी औलादों के लिए खाने तथा रहने के प्रबन्ध में जुट जाती है। इस प्रकार उपन्यास के आरम्भ से अन्त तक जीवनमूल्यों को बनाये रखने के प्रयास में लगी नसीबन नारी जाति का मान है।

(३) मानवीय मूल्यों का पतन :

कमलेश्वर का समग्र साहित्य मानवतावाद पर केन्द्रित है। मानवता भारतीय संस्कृति का मूलाधार रही है। सर्वत्र बढ़ती हुई व्यक्तिगत स्वार्थ-साधना, बेईमानी, चोर-बाजारी, घूसखोरी इत्यादि असामाजिक प्रवृत्तियों ने मानवता एवं मानव मूल्यों के सम्मुख प्रश्न चिह्न लगा दिए हैं। जिससे मानवीय तत्त्व नष्ट हो गये और मानवीयता गायब। भारतीय संस्कृति को जड़-मूल से हिलाकर उखाड़ देने में पाश्चात्य संस्कृति भी जिम्मेदार है। अंग्रेजों ने सिर्फ देश को लूटा ही नहीं वरन् यहाँ की संस्कृति को खोखला करके अपनी सभ्यता लादने की कोशिश भी की। परिणामस्वरूप संपूर्ण भारतीय जन-जीवन पाश्चात्य संस्कृति की चपेट में आ गया, हाट बाजार से लेकर घर परिवार तक सब जगह परिवर्तन ही परिवर्तन नजर आने लगा।

कमलेश्वर ने 'डाक बंगला' उपन्यास में मानवीय मूल्यों का पतन दर्शाया है। इसके प्रमुख पात्र इरा में कोई मूल्य शेष न रहे। इरा की सारी भटकनों के मूल में उसका परिवार से कट जाना ही है। इरा को माँ के अभाव में नौकरों के साथ जीवन बिताना पड़ा क्योंकि पिता मिलट्री में थे। बच्चों को सही राह माँ ही दिखाती है, लेकिन इरा उससे वंचित रही। पिता से वह आत्मीयता न रख सकी। वह सपनों में जीवन बिता-बिताकर बड़ी बन गई। उसने यौवनावस्था में प्राप्त सपनों के राजकुमार को

अपनाया । इसके लिए अपना परिवार त्यागना पड़ा , यो वह परम्परा से कट गई । फिर विमल की होकर जीने में आर्थिक कठिनाइयाँ आई तो उसने बतरा के यहाँ नौकरी की । उसके बाद अकेली हो जाने पर उसका पैर बार-बार फिसलता रहा । फलस्वरूप इरा के जीवन में नए-नए मोड़ एवं नए-नए घाव आते रहे । इरा के जीवन में कई पुरुष आये-विमल, बतरा ,चन्द्रमोहन, तिलक , सोलंकी आदि । इरा परम्परागत पत्नी रूप को त्यागकर मुक्त भोग करनेवाली केवल नारी के रूप में गिर गई । यहाँ स्वीकृत परम्परागत जीवन मूल्य निरस्त हो जाते है, उसके स्थान पर नए जीवन मूल्यों की स्थापना का प्रयास है ।

इरा इतने व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध जोड़कर भी अन्त में अकेली रहती है । वह उसके जीवन में आनेवाले हर व्यक्ति से फरेब करती रही और उसे कहती रही कि वह उसकी जिन्दगी में पहला है । अन्त में इरा सोचती है कि उसका भी एक घर,परिवार हो । परन्तु पाश्चात्य संस्कृति का अंधा अनुकरण करनेवाली इरा अन्त में भारतीय संस्कृति के विचारों को अपनाना चाहती है । पाश्चात्य संस्कृति के अनुकरण के कारण ही उनका जीवन बिखर जाता है । लेखक ने दिन-ब-दिन घटते मानवीय मूल्यों का वर्णन इरा के माध्यम से किया है ।

(४) परम्परागत रीति-रिवाजों का अंकन :

कमलेश्वर को अपनी मिट्टी, अपनी संस्कृति एवं अपने लोगों से अधिक संपृक्ति रही है । इसलिए वे संस्कृति को खोखली करनेवाली प्रवृत्तियों के प्रति चिन्तित रहे है, धार्मिक रूढ़ियों और मिथ्याडम्बरों का शिकार सिर्फ अशिक्षित ही नहीं शिक्षित भी हुए है । इसका चित्रण कमलेश्वर ने 'सुबह दोपहर शाम' उपन्यास में किया है ।

कमलेश्वर ने 'सुबह दोपहर शाम' उपन्यास में परमम्परागत रीति-रिवाजों को बनाए रखने का प्रयास किया है । साथ ही पारिवारिक सम्बन्धों को भी महत्त्व दिया है । लेखक ने शादी की जो परम्परागत रस्में है उसीके अनुसार शान्ता की शादी कराकर गाँव में चले आ रहे रिवाजों का खूब परिचय दिया है । मैनपुरी की माटी की महक का अहेसास हर वक्त होता रहता है । यह तो लेखक के व्यक्तित्त्व की खूबी है । नवीन क्रान्तिकारी होकर भी अपने परिवार वालों से जुड़ने की चाह खून के रिश्ते की पवित्रता एवं दृढता का सूचक है । लेखक ने विभक्त परिवार के इस युग में संयुक्त परिवार की गरिमा एवं महिमा को भी दर्शाया है ।

(५) साम्प्रदायिकता का चित्रण :

स्वतन्त्रता के बाद भारत में व्याप्त साम्प्रदायिक संघर्षों के प्रति चेतावनी देने का प्रयास भी लेखक ने 'काली आँधी ' उपन्यास में किया है । साम्प्रदायिक विचार को लेखक मालती के द्वारा चुनाव के दौरान दिए भाषण के जरिए प्रकट करते है- ''अगर हम हिन्दू और मुसलमान की तरह सोचते रहे तो यह मूल्क गारत हो जाएगा ।''[१२९] मालती की जाति के नाम पर चुनाव लड़नेवाले लाला दिनानाथ की आलोचना द्वारा लेखक जाति एवं धर्म के प्रति अपना विरोध प्रकट करते है । कमलेश्वर का विचार है कि -''दुःख होता है लाला दिनानाथ जैसे आदमी को इस स्वरूप में देखकर जो अपनी जाति का झण्डा लेकर खड़े हुए है, जाति का भी नहीं कास्ट का ।''[१३०] मालती जातीयता एवं साम्प्रदायिकता से परे मिली-झुली लड़ाई लड़ने का आह्‌वान देती है । इसलिए ही वह कहती है कि यह मिली-झुली लड़ाई सबकी है । इसलिए हमें साम्प्रदायिकता, फिरका परस्ती और हर तरह के जातिवाद का विरोध करना है । एक ओर लेखक साम्प्रदायिक संघर्ष की ओर चेतावनी देते है तो दूसरी ओर मालती जैसे व्यक्तियों की राजनीतिक चाल की ओर इशारा करते है । आजकल जीत हाँसिल करने के लिए उम्मीदवार जाति या धर्म को हथियार के रूप में इस्तेमाल करते आ रहे हैं । इसका खुलकर विरोध कमलेश्वर ने 'काली आँधी ' उपन्यास में किया है ।

कमलेश्वर ने 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ 'उपन्यास में भी साम्प्रदायिकता का चित्रण किया है । लेखक ने सरनाम के जरिए वहाँ की असमानता का चित्रण करते है । इस असमानता का चित्रण करता हुआ सरनाम कहता है कि- '' इन धर्म मण्डलीयों से लड़िए.....जो यहाँ के महेनत कश लोगों को सोचने समझने का मौका नहीं देता , इन ओझा और पाखण्डियों से लड़िए जो मजदूर के पसीने की कमाई चाट जाते हैं, इन ऊँची जात के कहेजाने वालें से लड़िए जो आदमी को आदमी नहीं बनने देते । इन मण्डिवालों से लड़िए जो मुनाफे के लिए बरसात में गल्ले को गोदामों में बन्द करके बाहर भेजने के लिए रोक रखते है....कितनी लड़ाइयाँ है, डॉक्टर साहब । आँखों खोलकर देखिए !......हर गली में इन लड़ाइयों का मुकाम है ।''[१३१] इसके द्वारा लेखक ने आदमी-आदमी के बीच की असमानता का वर्णन किया है ।

संस्कृति के क्षेत्र में मान्धाता और जगत् गुरु माना जानेवाला भारत आज संस्कृति की दृष्टि से श्रीहीन नजर आ रहा है । यह सांस्कृतिक विघटन इतना व्यापक है कि धर्म, दर्शन, ज्ञान विज्ञान, कला-साहित्य, भाषा सभी को आच्छादित किये है । परिणामस्वरूप एक विचित्र प्रकार की विसंगतियाँ उत्पन्न हुई । इस मानसिकता के

कारण न तो हम पूरी तरह से विदेशी संस्कृति से जुड़ पाये और न भारतीय संस्कृति से । हमारी सांस्कृतिक नीति सम्मोहन ग्रस्त, धुरिहीनता की स्थिति में अनिश्चय की घाटियों मे भटक रही है ।

अतीत और वर्तमान के बीच समतुला न हो पाने के कारण अंधेरी खाई दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई है । शोषण, दमन, निरंकुशता और शासकों की नृशंसता की जिन बर्बर गलियों से होकर हम वर्तमान युग में पहुँचे थे, उस दरम्यान हम अपने को भूल गये कि कभी हम बुलंदी पर थे । खोखली संस्कृति को पुनःस्थापित कर नवीन मूल्यों की स्थापना करने के लिए उन जीवन मूल्यों को त्यागना आवश्यक है , जो समाज व्यवस्था और भारतीय संस्कृति को विकृत बना रहे हैं । परन्तु उसके मूल में दया, ममता, प्रेम, करुणा, सहानुभूति के जो काल निरपेक्ष मूल्य थे उन्हें अपनाना भी जरूरी है,बिना उसके हम आत्माविहीन होते जा रहे है, जैसे कि यंत्र बन गये हैं ।

इस प्रकार कमलेश्वर की सांस्कृतिक चेतना परम्परा समृद्ध और आस्थामयी है । आस्था ही उनकी सांस्कृतिक चेतना की आंतरिक ऊर्जा है जो घोर अन्धकार में भी किसी न किसी तरह से मानव के लिए आशा का क्षितिज खोज निकालती है । उसे बीहड़ रास्ते पर चलने की शक्ति देती है, निराश नहीं करती ।

(च) निष्कर्ष :

साहित्य समाज को अभिव्यक्ति प्रदान करने का महत्त्वपूर्ण उपादान है । वह यथार्थ सामाजिक जीवन का हमें दिग्दर्शन कराता है । पर यहीं उसके दायित्वों की इतिश्री नहीं हो जाती । वह युगीन जीवन, एवं युग-चेतना के साथ ही हमारे जीवन की दिशा का निर्धारण एवं निर्देश भी करता है । यही कारण है कि साहित्यकार एक व्यक्ति न रहकर, एक युग का बोध बन जाता है ।

हिन्दी उपन्यास साहित्य के इतिहास में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक इस स्थितियों और परिवेश का चित्रण जिन रचनाकारों ने किया है उनमें कमलेश्वर सबसे अधिक सचेत और सजग रहे है । उनके उपन्यासों में परिवर्तित सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक मूल्यों का सही चित्रण हुआ है । पिछले तीस साल में जो उपन्यास लिखे गए है, उनके विषय में कहा जाता है कि उपन्यासकार अपने दायित्व को निभाते हुए रचना के प्रति प्रतिबद्ध हो और इस दृष्टि से कमलेश्वर निःसंशय दायित्व बोध से जुड़े हुए प्रतिबद्ध रचनाकार है । कमलेश्वर अपनी रचनाओं

में युग सत्य को उद्घाटित करने में काफी सफल रहे हैं । उनके लघु उपन्यासों में बड़ी सूक्ष्मता और सांकेतिकता के साथ नये सामाजिक यथार्थ को निरूपित किया गया है । सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से यदि कमलेश्वर के उपन्यासों का अध्ययन किया जाए तो स्पष्ट होगा कि उनके उपन्यासों में एक विशिष्ट प्रकार का कस्बाई तथा महानगरीय जीवनचित्र चित्रित हुआ है । इस कस्बाई जीवन को कमलेश्वर ने निकट से देखा है । शहर और कस्बे की सारी स्थिति को,वहाँ के लोगों को उनके दुःख-दर्द को और उनकी आशा-निराशाओं को उन्होंने न केवल देखा है बल्कि समझा भी है । कस्बाई जिन्दगी की सारी यथार्थ स्थितियों को उन्होंने रोचक ढंग से अभिव्यक्त किया है ।

कमलेश्वर ने जिन चरित्रों को लेकर अपने उपन्यासों का चित्रण किया है उनमें एक आम आदमी के जीवन की अच्छाइयाँ और बुराइयाँ है । यही कारण है कि उनके चरित्र रचनाओं में कहीं पर भी अस्वाभाविक नहीं लगते । अपने उपन्यासों को उन्होंने एक निश्चित जीवन और वर्ग को केन्द्र मानकर लिखा है । शहरों और कस्बों में रहनेवाला मध्य वर्ग और निम्न मध्यवर्ग उसकी रचनाओं का मुख्य प्रतिपाद्य है । रोजमर्रा के कस्बाई जीवन को, उसकी असंगतियों को, उसके शोषण और अभावों को कमलेश्वर ने अपना लक्ष्य बनाया है । प्रगतिशील विचारधारा का प्रभाव अत्यधिक रहने से कमलेश्वर ने ऐसा किया है, पर उसका अर्थ यह कदापि नहीं की उनकी प्रगतिशीलता मात्र राजनीतिक स्वार्थ के लिए है । उनकी विचारधारा पर मध्य वर्गीय बुद्धिजीवियों के संघर्ष का तथा मानसिक द्वन्द्व का गहरा प्रभाव है । कमलेश्वर ने शिक्षित मध्य वर्ग की जिसकी वित्तीय स्थिति नाजुक है इसका वर्णन भी अपने उपन्यासों मे किया है । उनकी रचनाओं में भारत के आम आदमी की जिन्दगी आधुनिक सभ्यता और राग-रंग के नाम पर केवल जगमगाते नाइटक्लब, सजे हुए केरीडोर और बियर बार के शोर-शराब से पूरी जिन्दगी का चित्रण नहीं है, जो यथार्थ से बहुत दूर है । उन्होंने अपने उपन्यासों में युग-सत्य को उद्घाटित करते हुए युग बोध को अपना माध्यम बनाया और उसी के माध्यम से आधुनिक चेतना को व्यक्त किया ।

सर्व सामान्य व्यक्ति के जीवन को ही कमलेश्वर ने अपनी कलम से चित्रित किया है । उनकी रचनाओं में आम आदमी के दैनिक जीवन की समस्याएँ जैसे-रोजी रोटी और मजदूरी एक ओर है तो दूसरी ओर प्रेम,अनास्था,कलह आदि का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है । सत्य तो यह है कि कमलेश्वर ने जो भी कहा वह अत्यन्त स्पष्ट और बेधड़क कहा । कमलेश्वर जैसे स्पष्ट व्यक्तित्त्व बहुत कम उपन्यासकारों में देखने को मिलता है । जीवन के प्रति अत्यन्त स्पष्ट दृष्टि होने के कारण ही कमलेश्वर में यह

साफगोई आई है । वे हर समस्या को अपने ढंग से समझाकर और निहायत सफाई से अपने पाठकों के सामने रखते हैं । जिन्दगी को खुली आँख से देखनेवाले यह रचनाकार अपनी अनुभूति और अभिव्यक्ति के अंतराल में कहीं भीतर गहरी चोट करता है ।

बहुचर्चित उपन्यासकार कमलेश्वर ने जिस समय उपन्यास के क्षेत्र में प्रवेश किया, उस समय सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवेश तथा स्थितियों में बड़ी तेजी से परिवर्तन हो रहा था । ऐसे समय में उन्होंने अपने औपन्यासिक यात्रा में आये संघर्ष को बड़ी सूक्ष्मता एवं ईमानदारी से देखा है । स्वातन्त्र्य प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी उपन्यासों मे महत्त्वपूर्ण मोड़ आये और अनेक गतिविधियों को दिशा-निर्देश करने में कमलेश्वर का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है । यह सजग कलाकार अपनी रचनाओं में सदा अपने युग की कोई-न-कोई समस्या लेकर चला है । उनकी रचनाएँ जन साधारण के बहुत निकट है, उन्होंने मात्र कुण्ठाग्रस्त स्थितियों, यौन विकृतियों या मनोवैज्ञानिक विश्लेषणों का चित्रण नहीं किया बल्कि जीवन के यथार्थ को बड़े ही सहज और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है । सच तो यह है कि कस्बाई जीवन अत्यन्त सटीक और सच्चाई का चित्रण कमलेश्वर के उपन्यासों में पहली बार हुआ है । संघर्ष के जिस दौर से कमलेश्वर गुजरे है,उससे उनकी प्रतिभा और भी अधिक निखरी है ।

उपन्यासकार कमलेश्वर सदैव अपने युग की समस्याओं के मानवीय पक्षों को अपनी कथाकृतियों का आधार बनाते आये हैं । उन्होंने अपने उपन्यासों में युगीन सत्य को उद्‌घाटित करने में अधिक सफलता प्राप्त की है । उनकी मानवी मन की पकड़ बहुत मजबूत है । इनके उपन्यासों में वास्तविकता का स्वर उभरा है और उसमें रोमांस की भूल-भूलैया को कहीं भी स्थान नहीं है । कमलेश्वर की कथाकृतियों में मनोविज्ञान अपना अलग महत्त्व रखता है । कमलेश्वर के उपन्यास के पात्र अचेतन जगत में जीते जरूर है लेकिन सामाजिकता को नकारते नहीं है ।

कमलेश्वर की रचनाओं में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध पूर्ववर्ती उपन्यासकारों की तुलना की दृष्टि से पूर्णतः निराले रूप में चित्रित हुए है । हिन्दी के अधिकांश उपन्यासों में अस्वाभाविक सत्रांस तथा पीड़ा से भरे हुए और कुण्ठा से ग्रस्त मनोवृत्ति का चित्रण हुआ है, लेकिन कमलेश्वर के उपन्यासों में यह स्थिति बदलती-सी अंकित हुई है । कमलेश्वर के उपन्यासों की नायिका प्रतिकूल परिस्थिति का डटकर संघर्ष करते दिखाई देती है । वह जीवन से हताश होकर आत्महत्या करनेवाली कमजोरी नारी नहीं है ।

नारी वर्ग को आधार बनाकर स्वतन्त्रता से पूर्व भी उपन्यासों की रचना होती रही थी । स्वातन्त्र्योत्तर आन्दोलन काल में समाज सुधारकों एवं राजनीतिज्ञों ने नारी-सुधार की ओर ध्यान दिया । सती प्रथा के उन्मुलन के साथ नारी की सामाजिक मुक्ति का महायज्ञ जो प्रारम्भ हुआ तो वह अबाध गति से आगे कूच करता रहा । आज साहित्य, विज्ञान तथा आगे अन्य क्षेत्रों में भी महिलाएँ आगे बढ़ी एवं अहं भूमिकाएँ निभा रही है । नारी चेतना का सीधा प्रतिबिंब इन उपन्यासों में देखने को मिलता है । वह गृहलक्ष्मी की जंजीरो में जकड़ी दुनिया से मुक्त हो रही है । यद्यपि उसकी मुक्ति की लड़ाई अभी पूर्ण नहीं हुई है । आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबन की प्राप्ति एवं पुरूषाश्रित समाज व्यवस्था की रूढ़ मान्यताओं को ठुकराकर वह घर की चार दीवारी से बाहर निकल रही है । इस प्रकिया में कई उतार-चढ़ाव से गुजरना स्वाभाविक है । वह कहीं दृढतापूर्वक आगे बढ़ती दिखती है तो कही फिसलती हुई । कमलेश्वर के उपन्यासों में यह दृष्टि स्पष्टता से व्यक्त होती है । कमलेश्वर ने 'सुबह दोपहर शाम', 'अम्मा','पति-पत्नी और वह', समुद्र में खोया हुआ आदमी 'आदि उपन्यासों मे रूढ़ियों से जकड़ी परम्परागत मान्यताओं से बँधी नारी का चित्रण किया है । आजादी के इतने सालो के पश्चात् भी यह समाज नारी को गृहस्थी का भार ढोने और मनोरंजन के उपादान के रूप में देखता है ।

स्त्रियाँ सामाजिक क्षेत्र में पदार्पण कर राजनीतिक जगत को प्रभावित करने में भी आज पुरूषों से पीछे नहीं रह गई है । युग-बन्दिनी नारी आज बाहर निकल गई है । सामाजिक कार्यो से लेकर विधान सभा, लोक सभा तक वह पहुँच चुकी है । ऐसा ही वर्णन कमलेश्वर ने 'काली आँधी' की मालती और 'सुबह दोपहर शाम' की शान्ता के द्वारा किया है ।

कमलेश्वर के उपन्यासों में मध्य वर्गीय वस्तुस्थिति एवं चेतना का विकास अपेक्षाकृत अधिक हुआ है । इसका एक कारण यह है कि कमलेश्वर मध्य वर्ग से आये है और उन्होंने मध्य वर्ग की त्रासदी को स्वयं भोगा है और उसकी पीड़ा आन्तरिक रूप से अनुभवित की है । उनके 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ ' उपन्यास में भी समाज के मध्य वर्गीय जीवन के आर्थिक, सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवन का अंकन हुआ है । रोजी-रोटी, पति-पत्नी का कलह और प्रेम शंकाएँ, आस्था और निराशा आदि सब कुछ अपने यथार्थ रूप में ही आते है । लेखक इसमें आर्थिक वैषम्य चित्र खींचते है । उनके उपन्यास 'तीसरा आदमी' में वर्तमान आर्थिक और सामाजिक आधार पर मध्य वर्गीय व्यक्ति की अवधारणा की गई है । मध्य वर्ग में जन्में परिवार के हर सदस्य का अपना स्वतन्त्र अस्तित्त्व नहीं होता ।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक,सांस्कृतिक व्यक्ति चेतना को वाणी दी है । उनकी रचनाओं में जीवन के विविध पक्ष अपने यथार्थ रूप में प्रस्तुत हुए हैं । उनकी प्रस्तुति युग सापेक्ष है ऐसा हम निसंकोच कह सकते है ।

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

क्रम	संदर्भ ग्रन्थ		पृष्ठ नंबर
१	एक सड़क सत्तावन गलियाँ -	कमलेश्वर	०३
२.	एक सड़क सत्तावन गलियाँ -	कमलेश्वर	२५
३.	एक सड़क सत्तावन गलियाँ -	कमलेश्वर	९९
४.	एक सड़क सत्तावन गलियाँ -	कमलेश्वर	१२०
५.	एक सड़क सत्तावन गलियाँ -	कमलेश्वर	७९
६.	कमलेश्वर 'शब्दाकार' -	संपादक-मधुकरसिंह	१८७
७.	डाक बंगला -	कमलेश्वर	३३-३४
८.	डाक बंगला -	कमलेश्वर	४४
९	डाक बंगला -	कमलेश्वर	८९-९०
१०.	डाक बंगला -	कमलेश्वर	९०
११.	डाक बंगला -	कमलेश्वर	९१
१२.	डाक बंगला -	कमलेश्वर	५६
१३.	हिन्दी लघु-उपन्यास -	घनश्याम मधुप	१०७
१४.	लौटे हुए मुसाफिर -	कमलेश्वर	०३
१५.	लौटे हुए मुसाफिर -	कमलेश्वर	०४
१६.	कमलेश्वर 'शब्दाकार' -	संपादक-मधुकरसिंह	२१७
१७.	समुद्र में खोया हुआ आदमी -	कमलेश्वर	११
१८.	समुद्र में खोया हुआ आदमी -	कमलेश्वर	१४
१९.	समुद्र में खोया हुआ आदमी -	कमलेश्वर	११३
२०.	काली आँधी -	कमलेश्वर	१६
२१.	काली आँधी -	कमलेश्वर	१०
२२.	काली आँधी -	कमलेश्वर	१०
२३.	हिन्दी लघु-उपन्यास -	डॉ.अमरप्रसाद जायसवाल	२३७
२४.	तीसरा आदमी -	कमलेश्वर	१६
२५.	तीसरा आदमी -	कमलेश्वर	२४
२६	तीसरा आदमी -	कमलेश्वर	८४
२७.	तीसरा आदमी -	कमलेश्वर	८८
२८.	हिन्दी लघु-उपन्यास -	डॉ.अमरप्रसाद जायसवाल	२३३
२९.	आगामी अतीत -	कमलेश्वर	२३

क्रम	संदर्भ ग्रन्थ		पृष्ठ नंबर
३०.	आगामी अतीत –	कमलेश्वर	२७–२८
३१.	आगामी अतीत –	कमलेश्वर	२९
३२.	आगामी अतीत –	कमलेश्वर	४२–४३
३३.	आगामी अतीत –	कमलेश्वर	९२
३४.	आगामी अतीत –	कमलेश्वर	९६
३५.	आगामी अतीत –	कमलेश्वर	१११
३६.	वही बात –	कमलेश्वर	२०–२१
३७.	वही बात –	कमलेश्वर	३९
३८.	वही बात –	कमलेश्वर	०५
३९.	वागर्थ –	संपादक–प्रभाकर क्षोत्रिय भारतीय भाषा परिषद	२४
४०.	रेगिस्तान –	कमलेश्वर	१९
४१.	रेगिस्तान –	कमलेश्वर	१६–१७
४२.	रेगिस्तान (तालिका से) –	कमलेश्वर	
४३.	सुबह दोपहर शाम –	कमलेश्वर	१०
४४.	सुबह दोपहर शाम –	कमलेश्वर	६६
४५.	सुबह दोपहर शाम –	कमलेश्वर	१५९
४६.	कितने पाकिस्तान –	कमलेश्वर	०३–०४
४७.	कितने पाकिस्तान –	कमलेश्वर	३१
४८.	उद्‌भावन पत्रिका –	संपादक–अजेयकुमार झिलमिल–दिल्ली	८९
४९.	हंस पत्रिका –	संपादक–राजेन्द्रकुमार यादव	८७
५०.	नया साहित्य –	संपादक–विश्वनाथ	०५
५१.	अनबीता व्यतीत –	कमलेश्वर	०८
५२.	अनबीता व्यतीत –	कमलेश्वर	२७
५३.	अनबीता व्यतीत –	कमलेश्वर	६३
५४.	अनबीता व्यतीत –	कमलेश्वर	७९
५५.	पति पत्नी और वह –	कमलेश्वर	११८
५६.	पति पत्नी और वह –	कमलेश्वर	१३१
५७.	पति पत्नी और वह –	कमलेश्वर	१३४
५८.	पति पत्नी और वह –	कमलेश्वर	१५४
५९.	पति पत्नी और वह –	कमलेश्वर	२१७

क्रम	संदर्भ ग्रन्थ		पृष्ठ नंबर
६०.	पति पत्नी और वह –	कमलेश्वर	२३५
६१.	अम्मा –	कमलेश्वर	१३
६२.	अम्मा –	कमलेश्वर	५९
६३.	अम्मा –	कमलेश्वर	७३
६४.	आगामी अतीत –	कमलेश्वर	१००
६५.	डाक बंगला –	कमलेश्वर	३९
६६.	डाक बंगला –	कमलेश्वर	३९
६७.	डाक बंगला –	कमलेश्वर	६४–६५
६८.	अम्मा –	कमलेश्वर	७७
६९.	पति पत्नी और वह –	कमलेश्वर	२३५
७०.	एक सड़क सत्तावन गलियाँ –	कमलेश्वर	६३
७१.	एक सड़क सत्तावन गलियाँ –	कमलेश्वर	६३
७२.	एक सड़क सत्तावन गलियाँ –	कमलेश्वर	६३
७३.	आगामी अतीत –	कमलेश्वर	९६
७४.	आगामी अतीत –	कमलेश्वर	९७
७५.	डाक बंगला –	कमलेश्वर	३९
७६.	डाक बंगला –	कमलेश्वर	५४–५५
७७.	डाक बंगला –	कमलेश्वर	६१
७८.	पति पत्नी और वह –	कमलेश्वर	११८
७९.	तीसरा आदमी –	कमलेश्वर	३६
८०.	आगामी अतीत –	कमलेश्वर	१०२
८१.	तीसरा आदमी –	कमलेश्वर	६३
८२.	डाक बंगला –	कमलेश्वर	३५–३६
८३.	डाक बंगला –	कमलेश्वर	३८
८४.	हिन्दी कहानी मे युग बोध –	डॉ.मंजूलता सिंह	१४२
८५.	सुबह दोपहर शाम –	कमलेश्वर	१२३
८६.	सुबह दोपहर शाम –	कमलेश्वर	११०
८७.	डाक बंगला –	कमलेश्वर	९९
८८.	एक सड़क सत्तावन गलियाँ –	कमलेश्वर	७३
८९.	एक सड़क सत्तावन गलियाँ –	कमलेश्वर	७४
९०.	एक सड़क सत्तावन गलियाँ –	कमलेश्वर	७३–७४

क्रम	संदर्भ ग्रन्थ		पृष्ठ नंबर
९१.	डाक बंगला -	कमलेश्वर	९९
९२.	आधुनिक हिन्दी कथा साहित्यः मूल्यों से प्रयाण-	शकुन्तला सिन्हा रघुवीर सिन्हा	६३
९३.	कमलेश्वर का कथा साहित्य-	माधुरी शाह	११४
९४.	लौटे हुए मुसाफिर-	कमलेश्वर	०१
९५.	लौटे हुए मुसाफिर -	कमलेश्वर	६८
९६.	लौटे हुए मुसाफिर -	कमलेश्वर	१०२
९७.	काली आँधी -	कमलेश्वर	०७
९८.	काली आँधी -	कमलेश्वर	१४
९९.	काली आँधी -	कमलेश्वर	४९-५०
१००.	काली आँधी -	कमलेश्वर	३५
१०१.	रेगिस्तान -	कमलेश्वर	०७
१०२.	काली आँधी -	कमलेश्वर	८०
१०३.	काली आँधी -	कमलेश्वर	१७
१०४.	रेगिस्तान -	कमलेश्वर	१९
१०५.	रेगिस्तान -	कमलेश्वर	५१
१०६.	रेगिस्तान -	कमलेश्वर	१७
१०७.	नयी कहानी का स्वरूप विवेचन -	डॉ.इन्दु रश्मि	७४
१०८.	सुबह दोपहर शाम -	कमलेश्वर	९३
१०९	सुबह दोपहर शाम -	कमलेश्वर	१५०-१५१
११०	आधुनिक हिन्दी कहानी में नारी की भूमिकाएँ -	सुशिला मीत्तल	११३
१११.	तीसरा आदमी -	कमलेश्वर	३३
११२.	तीसरा आदमी -	कमलेश्वर	८७
११३.	समुद्र में खोया हुआ आदमी -	कमलेश्वर	४३
११४.	समुद्र में खोया हुआ आदमी -	कमलेश्वर	१०
११५.	समुद्र में खोया हुआ आदमी -	कमलेश्वर	८८
११६.	आगामी अतीत -	कमलेश्वर	९७
११७.	आगामी अतीत -	कमलेश्वर	८८
११८.	आगामी अतीत -	कमलेश्वर	१०२
११९.	एक सड़क सत्तावन गलियाँ -	कमलेश्वर	८९

क्रम	संदर्भ ग्रन्थ		पृष्ठ नंबर
१२०.	एक सड़क सत्तावन गलियाँ -	कमलेश्वर	११२
१२१.	हिन्दी कहानी अंतरंग पहचान -	डॉ.रामदरश मिश्र	६१
१२२.	समुद्र में खोया हुआ आदमी -	कमलेश्वर	०८
१२३.	समुद्र में खोया हुआ आदमी -	कमलेश्वर	५७
१२४.	आगामी अतीत -	कमलेश्वर	५६
१२५.	आगामी अतीत -	कमलेश्वर	५८
१२६.	एक सड़क सत्तावन गलियाँ -	कमलेश्वर	२७-२८
१२७.	एक सड़क सत्तावन गलियाँ -	कमलेश्वर	६१
१२८.	लौटे हुए मुसाफिर -	कमलेश्वर	९९
१२९.	काली आँधी -	कमलेश्वर	३८
१३०.	काली आँधी -	कमलेश्वर	३८
१३१.	एक सड़क सत्तावन गलियाँ -	कमलेश्वर	७३

उपसंहार

कालजयी व्यक्तित्त्व के धनी सर्वतोमुखी प्रतिभा सम्पन्न एवं मजबूत इरादोंवाले कमलेश्वर ऐसे शलाका पुरूष रहे है, जिनका साहित्य 'युग साहित्य' है । उसका कलाकार व्यक्तित्त्व हाथीदाँत की मीनारों मे छिपकर बैठने का हिमायती नहीं था । वे आद्यान्त युग की ज्वलंत समस्याओं से जूझते हुए पदच्यूत साधारण जन को प्रतिष्ठित करने में लगे रहे । अपने युग को बारिकी से देखने और परखने के कारण ही उनके साहित्य में राग-विराग, आस्था-अनास्था, विषाद-हर्ष, घृणा-ऊब, आशा-निराशा, भावना और वासना का समन्वय, भय, आक्रोश, अंधकार और प्रकाश, जीवन के अंतर और बाह्य संदर्भ एवं युग त्रासदी और उससे उत्पन्न विभिन्न मनः स्थितियों का यथार्थ एवं विश्वसनीय अंकन हुआ हैं । कमलेश्वर गुणवत्ता और वैविध्य दोनों दृष्टियों से स्वातन्त्र्योत्तर रचनाकारों में अग्रणी रहे हैं । ऐसी कौन-सी साहित्यक विधा और कौन-सी समसामयिक परिस्थितियाँ है जो उसकी अभिव्यक्ति से अछूती रही हो । कहानी, उपन्यास, नाट्य रूपान्तर, आलोचना, पत्रकारिता, सम्पादक,संस्मरण, यात्रा-साहित्य, फिल्म जगत आदि जिन रंग रेखाओं को उनकी लेखनी ने जिस रूप में सँवारा, वे मानक मौलिक और युगान्तकारी बन गयी । 'राजा निरबंसिया','कितने पाकिस्तान', 'हिन्दोस्ताँ हमारा', 'चारूलता', 'नई कहानी की भूमिका', 'मेरा पन्ना : समान्तर सोच', 'संकेत','दैनिक जागरण','दैनिक भास्कर','जो मैंने जिया', 'कश्मीर : रात के बाद','चन्द्रकान्ता','आँधी','मौसम' इत्यादि रचनाएँ इसकी गवाह हैं, जिसने हिन्दी साहित्य ही नहीं समग्र विश्व को चौंका दिया हैं । इतना ही नहीं इन रचनाओं में विशिष्ट प्रकार की ऊर्जस्विता भी निहित है जो सारे भारतीय समाज और विश्व मानव को नैसर्गिक तंदुरस्ती प्रदान करती हैं ।

कमलेश्वर के साहित्य में निहित विविध विषयक युगीन चेतनाओं का अवलोकन करने पर लगा कि उनकी युग चेतना कबीराई अंदाज लिए हुए 'सत्यम शिवम् संन्दरम्' की ओर उन्मुख रही है । कमलेश्वर ने जन की मुक्ति के लिए,न्याय के लिए,सृजन के लिए, मानव मूल्यों की पुनःस्थापना के लिए वर्तमान जीवन में व्याप्त विकृतियों को जहाँ देखा वहाँ उनकी चेतना पूरी तिव्रता के साथ भयावह नागिन की तरह फूफकार उठी । उनकों समाज पर करूणासक्ति होने की वजह से ही वे सृजन की थकान भूलकर अधूरी, अधबनी धरा को सँवारने के लिए सतरंगी सपने बूनने लगे । इसी विश्वास के बल पर कमलेश्वर ने व्यापक अध्ययन, प्रखर विश्लेषण, गंभीर चिन्तन एवं मौलिक विवेचना द्वारा सामाजिक, राजनीतिक,आर्थिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र की उन तमाम विषमताओं एवं विषाक्तताओं को अनावृत करने का प्रयत्न किया, जो मनुष्य के विकास को अवरूद्ध किये हुए थी । वे विचार और अभिव्यक्ति के स्तर पर प्रयोगशील होने के बावजूद उनकी चेतना अपने आप को सतत परिष्कृत और संशोधित

करती हुए गतिशील यथार्थ की पहचान कराने में समर्थ रही है । कमलेश्वर के साहित्य में विचारों की न जाने कितनी गहन बीथियाँ, संवेदना के बारीक रेशे एवं अन्वेषण की अनेक दिशाएँ देखने को मिलती है । समय की गंध को परखने वाले कमलेश्वर की सभी रचनाएँ मर्मानुभूति की मिशाल कायम करती है । कमलेश्वर समकालीन साहित्यकारों से अलग ध्रुव तारे की तरह अपनी पहचान बनाये हुए है ।

कमलेश्वर संक्रान्ति काल के सर्जक थे । ऐसे समय में साहित्यकार को नये और पुराने मूल्यों का संघर्ष झेलना पड़ रहा था । जब दोनों ही गलती के दो ध्रुवों पर हो, तब कलाकार को अपनी विवेक बुद्धि और पारदर्शी दृष्टि से प्रगतिशील विचारों एवं नये मूल्यों की स्थापना के लिए अदम्य उत्साह के साथ, सतत प्रयत्नशील रहकर अपना उत्तरदायित्त्व निभाना पड़ता हैं । जहाँ तक कमलेश्वर का प्रश्न है वे अपने युग की जटिलता और दायित्त्व से भली-भाँति परिचित थे । युगीन परिवेश की गहराई में जाकर सूक्ष्म विवेचन एवं विश्लेषण द्वारा विकृतियों को निर्मूल करने का मार्ग निकालना कमलेश्वर का प्रकृत गुण था । जीवन के बहु आयामी पक्षों को उद्धाटित की अपार क्षमता, सूक्ष्म ग्राहिता, संवेदनशीलता और मानव को बेहतर बनाने की प्रबल आकांक्षा ने ही उन्हें साहित्य सृजन के लिए प्रेरित किया ।

कमलेश्वर का आक्रोश किसी व्यक्ति विशेष पर नहीं, अविवेक के प्रति रहा है । वे जानते थे कि ठग कोई व्यक्ति नहीं प्रवृति होती है । इसलिए कमलेश्वर ठगों को हटाने का प्रयत्न करते रहे जिससे मुसाफिर को रास्ता मिल सके । युग की जटिलताओं ने ही उनके व्यक्तित्त्व को गंभीर बना दिया, परिणाम स्वरूप वे अविवेक की खाई को पार कर विवेक की पगदण्डी निर्मित कर सके । युग परिवेश की विद्रुपता और कहराते मानव की पीड़ा ने उन्हें झंझावातों से झूझने की शक्ति दी जिससे कमलेश्वर की चेतना अपने आसपास के परिवेश की अभेद चट्टानों को भेदकर मानव मूल्य का प्रदेश निर्मित कर सकी । युग की धड़कती साँसों को पहचान कर स्वर रचना करने में कमलेश्वर माहिर रहे हैं । परिवेश गत अनुभवों से कमलेश्वर की प्रगतिशील दृष्टि इस कलात्मकता और साहसिकता से पुरवार करती है कि उनकी रचनाएँ बिना किसी विवाद के सामान्य मानव का पक्षधर बन जाती है । जनतंत्र का जागरूक सर्जक होने के कारण साहित्यकार की स्वतंत्रता के महत्त्व को वे अच्छी तरह जानते थे इसलिए अपनी बुद्धि और हृदय पर किसी का भी आवरण चढ़ने नहीं दिया । उनके रचनात्मक व्यक्तित्त्व ने बड़ी बारिकी से बुझते हुए पुरानी आत्मप्रवंचनाओंको, रूढ़िगत संस्कारोंको, पूँजीपतियों की अमानुषिकता को, विज्ञान के बढ़ते हुए आतंक एवं साम्प्रदायिकता को अपने साहित्य में बेनकाब करते रहे । कमलेश्वर की युग चेतना की यह विशेषता रही है कि वह सामाजिक विद्रुपता,आर्थिक

विषमता,राजनीतिक अराजकता,चारित्रिक अवमूल्यन एवं अनैतिकता के बावजूद 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' की सच्चाई लिए हुए है ।

कमलेश्वर ने मध्य वर्ग के जीवन की विसंगतियों को जिस तीखे स्वर में मुखरित किया है, वैसा कदाचित ही किसी ने मुखरित किया हो । कमलेश्वर ने कस्बाई जीवन की विषम स्थिति का, मध्य वर्ग की असंगति एवं सामाजिक असमानता का चित्रण बड़ी मार्मिकता से अपने उपन्यासों में किया हैं । इसलिए हम निसन्देह कह सकते है कि कस्बाई जीवन का सही मुहावरा कमलेश्वर ने ढूँढा है । कमलेश्वर के प्रायः सभी उपन्यास निम्न एवं मध्य वर्गीय समाज के सामाजिक,राजनीतिक,आर्थिक तथा वैयक्तिक जीवन से सम्बद्धित हैं । उन्होंने अपने सभी उपन्यासों मे मानवीय पक्ष को संवेदना के धरातल पर सहजता और कलात्मकता से रूपायित किया है ।

भारतीय समाज अंध विश्वास, कर्मकाण्डों,रूढ़िगत रीत-रिवाजों, जर्जरित परम्पराओं,जाति-पाँति, ऊँच-नीच इत्यादि अनेक सामाजिक समस्याओं से जूझता हुआ अभिशप्त जीवन जी रहा था । सामाजिक जकड़ बंदियों की दीवारें ढहना तो दूर और भी मजबूत होती जा रही थी । सामाजिक गठन की विभीषिकाओं का जीता जागता उदाहरण कमलेश्वर की कहानियाँ और उपन्यास है, जिनमें मध्य वर्ग का समाज बिलबिला रहा है । कमलेश्वर मध्य वर्ग की उन रूढ़ियों,संस्कारों,सामाजिक विकृतियों एवं खोखली मर्यादाओं को एक के बाद एक खोलते जाते हैं, जिसमें निम्न मध्यवर्ग छटपटाता रहा है । कहीं पर जाति-पाँति के भेदभाव का शिकार शिवराज है,तो कहीं अनमेल विवाह के कारण अनैतिकता का वरण करनेवाली इरा है । कहीं संस्कारों से दबा मूक पीड़ा सहता हुआ ईमानदार नरेश और रूढ़िग्रस्त पढ़े-लिखे कमलबोस । कहीं पवित्रता की दुहाई देने वाला गुनाहों के चक्र में फँसा युवराज जयसिंह है तो कहीं समाज के अगुवा की पाशविक वृत्ति की शिकार बनी हुई चाँदनी है । अंधश्रद्धा से वशीभूत सास द्वारा प्रताड़ित नरक की यातना भोगने वाली शान्ता तो कहीं बीमार मनःस्थिति में जीने एवं खोखले सबंधों को ढोनेवाले श्यामलाल है । अकेलेपन की पीड़ा भोगनेवाले जग्गीबाबू सामाजिक विडम्बनाओं के कारण नारकीय जीवन बिताते हैं । कमलेश्वर के 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ','डाक बंगला','तीसरा आदमी','अनबीता व्यतीत','आगामी अतीत','अम्मा','समुद्र में खोया हुआ आदमी','काली आँधी' जैसे उपन्यासों के चरित्र न उच्च वर्ग के है न निम्न वर्ग के,उनके यहाँ परम्पराएँ और मर्यादाएँ भी इतनी जर्जरित और विषाक्त है कि व्यक्ति यंत्र मात्र रह गया है । उसके उदार और ऊँचे सपनें खत्म हो गये हैं, एक अजीब सी जड़ता उन पर छा गई है । यहीं वजह है कि कमलेश्वर के चरित्र सामाजिक समस्याओं के आसुरी रूप की भयावहता

से उत्पन्न पीड़ा को भोगते, आक्रोश से छटपटाते, भीतर के तनाव से ग्रस्त,मजबूरी और लाचारी में जीवन जीने के लिए विवश है । उनका जीवन निराशा, कुण्ठा, अनास्था, क्षोभ एवं घुटन से भरा हुआ है । कमलेश्वर ने इन चरित्रों को अपने उपन्यासों में कमजोरियों और क्षमताओं के साथ प्रस्तुत किया है । रंगीला ही इस समाज की सच्चाई है , जो साहस और दायित्त्व के अभाव में कहते कुछ है और करते कुछ और है । मिथ्यापूर्ण आचरण ही उनके जीवन की विडम्बना है ।

कमलेश्वर ने 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ ' में अपने कस्बे मैनपुरी की जिन्दगी को विभिन्न परिप्रेक्ष्य में रखकर प्रस्तुत किया है । इसमें वहाँ के नौटंकी कलाकारों के जीवन की विसंगति एवं विडम्बनाओं, नारी शोषण, आजादी के बाद कस्बे में यातायात की सुविधा के लिए सरकारी बसों के आगमन से कस्बे की जिन्दगी में उत्पन्न उथल-पुथल, वर्गगत शोषण एवं कपटी आध्यात्मिकता आदि का उल्लेख हुआ है ।

'वही बात ' कमलेश्वर की सहज सरल व स्वाभाविक कृति है । इसमें लेखक ने सफलता प्राप्त करने की मानवीय प्रवृत्ति का सफल निरूपण किया है । उपन्यास का पात्र प्रशांत जीवन में नाम कमाना, सफलता प्राप्त करना तथा उच्चतम पद को प्राप्त करना अपने जीवन का उद्देश्य स्वीकार कर लेता है । जीवन के यही उद्देश्य के कारण पारिवारिक सम्बन्ध टूटकर बिखर जाते है । इसमें लेखक ने आज के मशीनीकरण का चित्र अंकित किया हैं ।

कमलेश्वर ने 'अनबीता व्यतीत ' उपन्यास में पंछियों के व्यापार का चित्र अंकित किया है । मासूम पंछियो को मारा या पकड़ा जाता है और विदेशो में इसका व्यापार किया जाता है इसी यथार्थ का अंकन प्रस्तुत उपन्यास में हुआ है । लेखक ने इसके द्वारा सामन्तशाही एवं सामन्ती अहंवादिता का वर्णन किया है ।

' पति-पत्नी और वह ' कमलेश्वर का सिने उपन्यास है । इसमें लेखक ने 'तीसरा आदमी' उपन्यास की तरह तीसरे की उपस्थिति से पति-पत्नी के जीवन में कैसे कटुता आ जाती है इसका चित्रण किया है । रंजीत रंगीन मिजाज का शादीशूदा युवक है लेकिन उसके जीवन में आनेवाली सेक्रेटरी की वजह जीवन में कैसी कैसी समस्याएँ उत्पन्न होती है इसका सजीव चित्रण किया हैं ।

'अम्मा' भी कमलेश्वर का सिने उपन्यास है । लेखक ने इसमें क्रान्तिकारीयों के माध्यम से देशप्रेम का वर्णन किया है । साथ ही लेखक ने एक नारी के विविध रूप

को भी अंकित किया है । सती प्रथा, अत्याचार, नारी पीड़न, शोषण आदि समस्याओं को भी लेखक ने वाचा दी है परन्तु कुन्दनलाल के द्वारा सतीप्रथा समस्या का समाधान भी किया है ।

समाज की झूठी नैतिकता,विवाह का खोखलापन, धार्मिक पारुण्डता, जनसाधारण की साहसहीनता,विपरीत परिस्थितियों में जी रहे मनुष्यों की जिजीविषा परिस्थितियों के आगे झूक जाने की विवशता इत्यादि प्रवृत्तियों को कमलेश्वर की सामाजिक चेतना ब्योरेवार उजागर करती है । कमलेश्वर उन साहित्यकारों में से नहीं है जो सिर्फ सुन्दरम् को ही चित्रित करते हैं । वे उस अथाह पानी की ओर भी हमारा ध्यान केन्द्रित करते है जहाँ मौत है, अँधेरा है, कीचड़ है,गंदकी है । कमलेश्वर जीवन की सच्चाई को दिखाकर संकेत देते है कि दूसरा रास्ता बनाओं नहीं तो डूब जाओगें । साहसहीनता के अभाव में नैतिकता और ईमानदारी की दुहाई देने वाले नरेश, कमलबोस और रंगीला जैसे चरित्र जीवनभर कोल्हू के बैल की तरह चक्कर लगाते रहते हैं । कमलेश्वर सर्जक के रूप में सामाजिक दायित्त्व के प्रति पूरी तरह सचेत और सजग रहे है । यहीं वजह है कि विसंगतियों से उत्पन्न घिनौनेपन के बावजूद उनकी सामाजिक चेतना भविष्य के प्रति आस्थावान रही है । इस आस्थारूपी बल पर ही व्यक्ति अपने जीवन को बदल सकता है । आज के अविश्वास,अनास्था एवं टूटते-रिश्तें जीवनमूल्यों के बीच आस्था,विश्वास एवं उष्मा फैलाती हुई कमलेश्वर की सामाजिक चेतना मानवीयता की उच्च भाव भूमि निर्मित करती है । कमलेश्वर एक ऐसी समाज व्यवस्था की कल्पना करते है, जिसमें जाति, वर्ण,वर्ग -भेद, सड़ी-गली ,जर्जरित रूढ़ियाँ न हो, मानव की आत्मा कुण्ठित न हो, बल्कि उसका सहज सरल मानवीय स्तर पर विकास हो ।

कमलेश्वर अपने युग की राजनीतिक गतिविधियों के प्रति अधिक जागरूक और संवेदनशील रहे है । आजादी मिलने के बाद जब उन्होंने देखा की हमारे स्वप्नों का भारत यह नहीं है, तो उनकी चेतना राजनीतिक षड़यंत्रों का पर्दाफाश करने एवं जनता को उसके अधिकारों के प्रति सजग करने के लिए तड़प उठी । कमलेश्वर ने राजनीति के बदलते प्रतिमानों, स्वार्थ में आकंठ डूबे सत्तालोलूप नेताओं की अवसरवादिता, खोखली नारेबाजी,चुनावी हथकंडे,नेताओं की भाषायी नीति,शिक्षण और साहित्य पर हावी होती जाती आज की भ्रष्ट राजनीति के किसी भी दाँवपेंच को नजर अंदाज नहीं किया बल्कि बड़ी तटस्थता और साहसिकता से राजनीति के अन्तर्विरोधों को उजागर किया है । 'काली आँधी',' रेगिस्तान','लौटे हुए मुसाफिर',आदि उपन्यास राजनीति के प्रमाणिक आलेख है । राजनीतिक दमन चक्र की बेचैनी से उत्पन्न ये उपन्यास केवल

समसामयिक परिस्थितियों का लेखा-जोखा ही प्रस्तुत नहीं करते बल्कि लोकतन्त्र पर प्रश्नचिह्न भी लगाते है। कोई भी नेता ऐसा नहीं है जो भ्रष्टाचार की बैसाखी का सहारा लिए बिना एक कदम भी आगे बढ़ सके। हर शासक झण्ड़े की आड़ लेकर समस्याओं के दहकते रेगिस्तान में मृगजल का स्वप्न दिखाकर जनता को गुमराह किये हुए हैं। जनतन्त्र होते हुए भी जन ज्यों-का-त्यों दास बना हुआ है।

कमलेश्वर ने अपने राजनीतिक उपन्यासों में समकालीन राजनीतिक समस्याओं तथा देश विभाजन की विभीषिका पर प्रकाश डाला है। 'काली आँधी' उपन्यास में उन्होंने उच्च वर्ग एवं मध्य वर्ग के राजनीतिक, सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवन का अत्यन्त सूक्ष्म चित्रण किया है। इसकी नायिका हमारी पूँजीवादी व्यवस्था की उन गलत महत्त्वकांक्षाओं का प्रतीक है जो अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए साधन हीन सामान्य जनों को बहकाने, फुसलाने या उनका इस्तेमाल करने से परहेज नहीं करती। वह सफलता के उच्च शिखर पर पहुँचने की होड़ में अपने परिवार को ठुकरा देती है। समकालीन राजनीति कितनी घिनौनी, स्वार्थपरक, झूठ और फरेब से पूर्ण, क्रुर एवं यातनादायक होती है, इसका सफल चित्रण किया है। पति, पत्नी से समझौता करने को भी तैयार नहीं होता क्योंकि वह उच्च वर्ग की खोखली, झूठी, छद्म और आड़म्बर पूर्ण जिन्दगी बिताने के बदले उससे अपेक्षा रखता है। उपन्यासकार ने वर्ग संघर्ष की सुन्दर झाँकी 'काली आँधी' में प्रस्तुत की है। साथ ही नारी जीवन की सबसे बड़ी बिडम्बना का चित्रण भी इसमें मिलता है।

स्वन्त्र भारत में गाँधीवादी आदर्शों का जो घोर पतन हुआ उसकी अभिव्यक्ति 'रेगिस्तान' उपन्यास में हुई है। लेखक ने गाँधीवादियों के निरर्थक जीवन का पर्दाफाश भी इसमें किया है। 'सुबह दोपहर शाम' में अंग्रेजी सत्ता के विरूद्ध देश में हुए क्रान्तिकारी आन्दोलन का जिक्र किया गया गया है। अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ लड़कर अपने परिवार एवं मातृभूमि के मान की रक्षा के लिए जान की बाजी लगानेवाली शान्ता नामक वीरांगना के जरिए कमलेश्वर ने नारी के सबल व्यक्तित्त्व को उजागर किया है।

कमलेश्वर का 'लौटे हुए मुसाफिर' देश विभाजन का उपन्यास है। देश के बँटवारे से जूड़े साम्प्रदायिक दंगे के दुष्परिणामों के शिकार हुए चिकवों की बस्ती के निरीह लोगों का चित्र 'लौटे हुए मुसाफिर' प्रस्तुत करता है। चिकवों के लोग बँटवारे के पहले अपनी रोजी-रोटी के लिए संघर्षरत थे पर साम्प्रदायिक की भीषण धारा में

पड़कर वे चूर-चूर हो गए। वे न तो पाकिस्तान जा सके न ही वापस जन्मभूमि लौटकर आ सके, यहाँ भी वर्गगत भेद देखा जा सकता है।

कमलेश्वर का 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास विश्व साहित्य को नया दृष्टिकोण प्रदान करता है। इसमें लेखक ने इतिहास और संस्कृति के माध्यम से अनेक जटिल सवालों से हमारा साक्षात्कार कराया हैं। यह उपन्यास वर्तमान, धार्मिक, उन्माद, वैमनस्य, विवेकहीनता, युद्ध, लोलुपता आदि पर एक प्रश्नचिह्न है। 'कितने पाकिस्तान ' केवल हिन्दी साहित्य में ही नहीं बल्कि विश्वसाहित्य में प्रसिद्ध उपन्यास है।

कमलेश्वर का राजनीतिक विद्रुपताओं के प्रति आक्रमक रवैया रहा है। उन्होंने सत्ता के बदलते मापदंड, तेजी से फैलते भ्रष्टाचार तथा दम्भी राजपुरूषों की खोखली नारेबाजी और कृत्रिम व्यवस्था पर कुठाराघात किया है। समकालीन राजनीति का प्रतिबद्धता से परे उनका तटस्थ मूल्यांकन रहा है। उनकी रचनाओं में व्यवस्था विरोधी स्वर जगह-जगह साफ सुनाई पड़ता है। कमलेश्वर को राजनीतिक विसंगतियों, प्रशासन की असफलताओं, राजनीतिज्ञों के दोहरे व्यक्तित्त्व को निर्भयता पुर्वक बयान करने में कभी हिचकिचाहट नहीं हुई। कमलेश्वर की राजनीतिक चेतना उत्पीड़ित जनता से जुड़ी है। कमलेश्वर जन के प्रति सम्पूर्ण रूप से प्रतिबद्ध होने के कारण ही वे स्वार्थान्ध राजपुरूषों एवं दुषित राजनीतिक के घिनौने षड़यंत्रों पर कुठाराघात कर सके है। उनकी जनवादी राजनीतिक चेतना सम्पूर्ण आक्रोश एवं तीखे तेवरों के साथ व्यक्त हुई है।

कमलेश्वर आज की शोषण मूलक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था से भी पूरी तरह परिचित थे। वे आर्थिक परिवेश की विसंगतियों के प्रत्यक्ष भोक्ता होने की वजह से उनकी चेतना अर्थव्यवस्था की तह में जाकर आर्थिक विषमताओं से उत्पन्न विकृतियों को तलाश कर सकी है। कमलेश्वर के समग्र साहित्य में पूँजीवादी व्यवस्था की अमानुषिक यंत्रणा से क्षत-विक्षत हुई मानवता को पुनः उबारने की छटपटाहट प्रवर्तमान है। उन्हें जनता के अस्मिताहीन आचरण को लेकर बेहद खीज और आक्रोश है , जो मुठ्ठीभर दाने के लिए पूरी मानवता को बेचने के लिए तैयार हो जाते है। आर्थिक व्यवस्था का विरोध उनके साहित्य में उग्रता के लिए नहीं है, बल्कि आर्थिक विषमता उत्पन्न करने वाले तत्त्वों के प्रति झुँझलाहट लिए हुए है।

कमलेश्वर ने देखा कि पूँजीवाद के बढ़ते वर्चस्व के कारण निम्न मध्यवर्ग

का जीवन बद-से-बदतर होता जा रहा है। आर्थिक विषमता की चक्की में पिसता हुआ यह वर्ग अपना स्तर बनाये रखने की चिन्ता में परेशान और बेहाल है। पूँजीपतियों के अधिकार और आधिपत्य की पिशाची तृषा ने मध्य वर्ग की चेतना को जड़वत बना दिया है। आर्थिक विपन्नता व्यक्ति को निष्प्राण,संकीर्ण और कुण्ठीत कर देती है। यांत्रिक युग की जड़ता, भौतिकवाद की पराकाष्ठा एवं आड़म्बर वादिता ने मध्य वर्ग को और भी खोखला बना दिया है।

कमलेश्वर के 'डाक बंगला' उपन्यास एक असाधारण नारी 'इरा' के जरिए एक साधारण नारी की नियति और उसके अंतर्बाह्य संघर्षो को उजागर करता है। इसमें शिक्षित नारी जीवन के मोड़ पर अकेली हो जाने पर अपने अस्तित्त्व को बनाये रखने और जिन्दा रहने के लिए उसे किन-किन रास्तों से गुजरना पड़ता है, कितनों के लिए सेज बिछाना पड़ता है, कितनों की अंकशयिनी बनना पड़ता है इसको खूल्लम-खूल्ला वर्णित किया हैं। इसके साथ पूँजीवादी व्यवस्था के उन्मूलन एवं समाजवाद की स्थापना का आह्वान भी इसमें प्रकट है अर्थात् उपन्यासकार की वामपंथी सोच का परिणाम यहाँ जाहिर होता हैं।

'समुद्र में खोया हुआ आदमी' में लेखक ने महानगर के बदलते हुए परिवेश में आर्थिक विषमता के कारण टूटकर बिखरता हुआ मध्यवर्गीय परिवार के जीवन का अत्यन्त संवेदनपूर्ण एवं स्वाभाविक चित्रण किया है। इसमें जीवन संघर्ष का चित्रण बेहतर ढंग से और बड़े पैमाने पर हुआ है क्योंकि इसमें परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने-अपने ढंग से संघर्ष में जूट जाता है तथा जिन्दगी के अभावों से लड़ता हुआ उसे किसी प्रकार थोड़े अंशो में ही सही बेहतर बनाकर जीने की कोशिशें करता है। यह कथा उस घुटते, परेशान होते और टूटकर बिखरते परिवार का चित्र प्रस्तुत करने और उसके माध्यम से वर्तमान समाज में बदलते हुए व्यक्तिगत पारिवारिक तथा सामाजिक सम्बन्धों को प्रत्यक्ष करने का प्रयास करती है। प्रस्तुत उपन्यास आज का मध्यवर्गीय व्यक्ति किस प्रकार अपनी अर्थवत्ता खोकर आधुनिक सभ्यता की भीड़ के एक महत्त्वहीन अंश में रूपान्तरित होता जा रहा है उसका ज्वलंत उदाहरण है।

कमलेश्वर ने ' तीसरा आदमी ' उपन्यास में पति-पत्नी के बीच कोई तीसरे की उपस्थिति से उत्पन्न समस्याओं को खूब उभारा है। पति-पत्नी के बीच तीसरे के आगमन से उभरते मानसिक द्वन्द्व, तनाव एवं मनःस्थितियों को अत्यन्त बारीक और रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। साथ ही महानगरीय जीवन की आवास की समस्या, संत्रास, घुटन,अजनबीपन, अकेलापन, आर्थिक अभाव आदि का उल्लेख भी

हुआ है अर्थात् इस उपन्यास में पारिवारिक सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं को अंकन करने में कमलेश्वर ने कोई कसर नहीं छोड़ी है ।

'आगामी अतीत ' में कमलेश्वर ने आज की जटील और विषम सामाजिक परिस्थितियों में आर्थिक पक्ष को महत्त्व और उसके कटु यथार्थ को अनावृत्त किया है । अपनी आर्थिक विपन्नताको सम्पन्नता में बदलने के लिए इसके नायक कमलबोस को पूँजीवादी शक्तियों से समझौता ही नहीं अपने वर्ग को भी छोड़ना पड़ा । आक्रोश साम्यवाद की स्थापना की चाह, बस्ती के लोगों के दुःख-दर्द, आशा, आकांक्षा, अभाव आदि का सफल अंकन हुआ है । इस होड़ में उसे अपना सर्वस्व बलिदान करना पड़ता है । साथ ही समाज की कुरता पर तीखा व्यंग्य भी किया है ।

आर्थिक दृष्टि से खोखले निम्न मध्यवर्गीय समाज की कोई गंदगी और किचड़ कमलेश्वर से छिपा नहीं है । कमलेश्वर ने आर्थिक विषमता में पिसते समाज की पर-दर-परत को अपने साहित्य में इस तरह खोला है, जैसे लेखक का भोगा हुआ यथार्थ और प्रमाणिक अनुभूति हो । उनके प्रहार से आर्थिक तन्त्र को खोखला करनेवाली कोई बुराई बच नहीं पायी है । उनकी आर्थिक चेतना आर्थिक परिवेश की दानवी लीला को बड़ी बारीकी से उभारती है । कमलेश्वर में मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए मानव मूल्यों की रक्षा के लिए आर्थिक विपन्नता के कारण सम्बन्धों में पडी दरार को भरने की बेचैनी है । इसलिए कमलेश्वर संघर्ष,साहस और आस्था को बल देते हैं ।

कमलेश्वर की सांस्कृतिक चेतना भारतीय परिवेश से रची-पची रही है । उनके साहित्य में भारतीय जन जीवन में व्याप्त स्वस्थ जीवन धर्मी गतिशील परम्पराओं एवं विचारधारओं का वह उदात्त स्वरूप परिलक्षित होता है,जिनका सम्बन्ध मानवीय मूल्यों से रहा है । कमलेश्वर भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था रखते हुए भी समन्वयवादी दृष्टिकोण के आधार पर नये दिशा और नये साहित्यिक मूल्यों को मानवीय संदर्भ में प्रतिष्ठित करने में निरन्तर तत्पर रहे है । सामाजिक जीवन को भयावह और भयानक बनानेवाली धार्मिक कट्टरता,अन्ध विश्वास एवं रूढ़िगत परम्पराओं का खण्डन करके उनके स्थान पर मानवीय मूल्यों की स्थापना करना कमलेश्वर की रचनाधर्मिता का मुख्य लक्ष्य रहा है ।

कमलेश्वर ने अपने साहित्य में पाश्चात्य सभ्यता की नकल करनेवाले अंग्रेजी परस्त लोगों की ओर व्यंग्य कसा है । अंग्रेजी परस्त लोगों द्वारा भारतीय संस्कृति की अवहेलना को देखकर उन्होंने अनुभव किया की हम सत ही राजनीति, आधुनिकता,

बौद्धिक प्रदर्शन प्रियता और रोमान्स के भ्रमजाल में बहुत कुछ ऐसा खोते जा रहे हैं , जो हमारे जीवन को सौन्दार्यानुभूति देता था । पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से धीरे-धीरे भारतीय जन अपनी मिट्टी, अपने लोग, अपनी भाषा और अपनी संस्कृति से कटता गया । कमलेश्वर को सदैव चिन्ता थी कि इस देश से इसकी भाषा, इसके संस्कार,इसकी अस्मिता,इसकी परम्परा छिननेवाले ये मुट्ठीभर लोग कौन है ? भारतीय संस्कृति के प्रति विशेष लगाव के कारण कमलेश्वर ने सभी उपन्यासों में मानवीय मूल्यों का चित्रण किया है । 'लौटे हुए मुसाफिर ' उपन्यास में नसीबन साम्प्रदायिकता से परे मानवीयता को महत्त्व देती है । मानवीयता को उसकी पूर्णता में प्रतिष्ठित करने का संकल्प करनेवाले कमलेश्वर का यह दावा रहा है कि विवेकशील दायित्त्वपूर्ण सांस्कृतिक चेतना से पुनः नये युग का गंगावतरण हो सकता है ।

कमलेश्वर के उपन्यासों में समसामयिक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्थितियों में आए बदलाव से उत्पन्न मध्यवर्ग के जीवन संघर्ष को अत्यन्त ईमानदारी के साथ प्रस्तुत किया गया है अर्थात् मध्य वर्ग के जीवन की त्रासदी का चित्रण ही उनकी रचनाओं का ध्येय है । आस-पास के परिचित परिवेश के छोटे-छोटे ब्योरे एवं बारिक रेशे भी उनके सूक्ष्म नेत्रों से छूट नहीं पाए हैं । सामाजिक दायित्त्व का निर्वाह एवं साद्देश्यता उनके कथा साहित्य की और एक उपलब्धि है ।

कमलेश्वर ने अपने कथा साहित्य में समसामयिक चेतना का सफल और सार्थक अंकन किया है । उनका चिन्तन एक ऐसे बुद्धिजीवी का चिन्तन है जो जन सामान्य की चिन्ता से अद्भूत जनवादी चिन्तन है । वे अपनी रचनाओं में जिस मानवीय पक्ष को उदघाटित करते है वह हमारा होता है । उन्होंने अपने उपन्यासों में समसामयिक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक,सांस्कृतिक क्षेत्रों मे हुए उलट-फेर को अत्यन्त सहजता एवं सतर्कता के साथ अनावृत किया है । कमलेश्वर ने अपनी रचनाओं में 'समसामयिक चेतना' को हमेंशा प्राथमिकता दी है ।

किसी भी रचनाकार की रचनाओं का अध्ययन करते समय इस बात का ध्यान रखना जरूरी हो जाता है कि समसामयिक चेतना और सामाजिक दायित्त्व से वह रचनाकार कितना जुड़ा हुआ है । कमलेश्वर के कथा साहित्य का विस्तृत अध्ययन एवं विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि वे सामाजिक दायित्त्व एवं समसामयिक चेतना से गहरे जुड़े है । उनके समस्त उपन्यासों का रचना संसार मध्यवर्गीय समाज है । वर्तमान मध्यवर्ग एक ओर आधुनिक मूल्यों की बातें करता है तो दूसरी ओर परम्परा और रूढ़ियों से जकड़ा हुआ है । विसंगति से परिपूर्ण जीवन को जीते हुए भी वह

महत्त्वकांक्षी है । अपने युग को निसन्देह कमलेश्वर ने समकालीन लेखकों से ज्यादा अनुभूत किया है अर्थात् कमलेश्वर एक प्रतिबद्ध कथाकार है । प्रतिबद्ध लेखक जीवन को जिस रूप में जीता है और भोगता है, उसे उसी रूप में चित्रित करता है । कमलेश्वर ने कथाओं में समसामायिक चेतना और समय सम्पृक्ति को अधिक महत्त्व दिया है । अतः कमलेश्वर के कथा साहित्य के विश्लेषण के उपरान्त यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने अपनी रचनाओं में जहाँ तक सम्भव हो सका है जीवन के कटु सत्यों को लेकर जीनेवाले यथार्थ चरित्रों का उद्‌घाटन किया है । कमलेश्वर सदा अपने भीतर के रचनाकार के प्रति सजग और ईमानदार रहे हैं । उनके चरित्र किसी ढोंग या पाखण्ड से परिचालित नहीं है । परिस्थिति एवं परिवेश के अनुरूप समय और काल के अनुसार उचित-अनुचित के विवेक को अपनाकर जीने की कोशिश करते है ।

समग्रतः विचार करने पर यह स्पष्ट होगा कि कमलेश्वर आधुनिक हिन्दी कथासाहित्य के सशक्त हस्ताक्षर हैं । एक सच्चे वामपंथी की कथनी और करनी की ईमानदारी उनकी रचनाओं से जाहिर होती है । देश के नक्शे को भी बदलने की क्षमता रखनेवाली उनकी रचनाएँ असल में हिन्दी कथासाहित्य की अमूल्य निधि ही हैं ।

परिशिष्ट

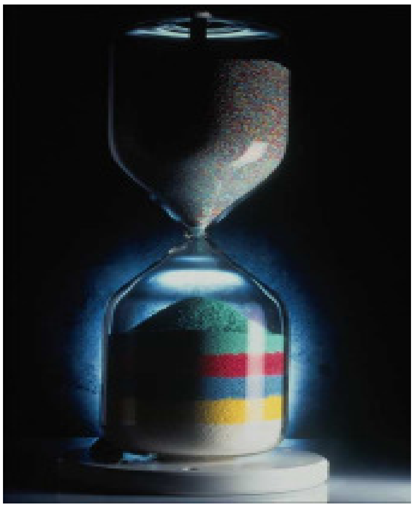

परिशिष्ट

१. आधार ग्रन्थ

कमलेश्वर की साहित्यिक रचनाएँ

उपन्यास साहित्य :

क्रम	उपन्यास	प्रकाशक	वर्ष
१.	'एक सड़क सत्तावन गलियाँ'	राजपाल एण्ड सन्स-दिल्ली	१९५७
२.	'डाक बंगला'	राजपाल एण्ड सन्स-दिल्ली	१९६२
३.	'लौटे हुए मुसाफिर'	लोकभारती प्रकाशन-इलाहाबाद	१९६३
४.	'समुद्र में खोया हुआ आदमी'	राजपाल एण्ड सन्स-दिल्ली	१९६५
५.	'काली आँधी'	राजपाल एण्ड सन्स-दिल्ली	१९७४
६.	'तीसरा आदमी'	राजपाल एण्ड सन्स-दिल्ली	१९७६
७.	'आगामी अतीत'	शब्दकार प्रकाशन-नई दिल्ली	१९७६
८.	'वही बात'	शब्दकार प्रकाशन-नई दिल्ली	१९८०
९.	'रेगिस्तान'	राजपाल एण्ड सन्स-दिल्ली	१९८८
१०.	'सुबह दोपहर शाम'	राजपाल एण्ड सन्स-दिल्ली	१९९२
११.	'कितने पाकिस्तान'	राजपाल एण्ड सन्स-दिल्ली	२०००
१२	'अनबीता व्यतीत'	लोकभारती प्रकाशन-इलाहाबाद	२००४
१३.	'पति पत्नी और वह'	राजकमल प्रकाशन प्रा.लि-नई दिल्ली	२००६
१४	'अम्मा'	राजकमल प्रकाशन प्रा.लि-नई दिल्ली	२००६

कहानी साहित्य :

क्रम	कहानी संग्रह	प्रकाश	सं.वर्ष
१	'राजा निरबंसिया'	लोकभारती प्रकाशन-इलाहाबाद	१९८९
२	'कस्बे का आदमी'	शब्दकार प्रकाशन-नई दिल्ली	१९९५
३	'खोई हुई दिशाएँ'	शब्दकार प्रकाशन-नई दिल्ली	१९८६
४	'माँस का दरिया'	शब्दकार प्रकाशन-नई दिल्ली	१९८६
५	'बयान'	शब्दकार प्रकाशन-नई दिल्ली	१९८४
६	'मेरी प्रिय कहानियाँ'	राजपाल एण्ड सन्स-दिल्ली	१९९५

क्रम	कहानी संग्रह	प्रकाशक	स.वर्ष
७	'जिन्दा मुर्दे'	राजपाल एण्ड सन्स-दिल्ली	१९६९
८	'इतने अच्छे दिन'	राजपाल एण्ड सन्स-दिल्ली	१९८९
९	'कथा -प्रस्थान'	राजपाल एण्ड सन्स-दिल्ली	१९९२
१०	'कोहरा'	राजपाल एण्ड सन्स-दिल्ली	१९९४
११	'कमलेश्वर की समग्र कहानियाँ' (दो खण्डों में)	राजपाल एण्ड सन्स-दिल्ली	२०००
१२	'कमलेश्वर की पच्चीस कहानियाँ' (देश-परदेश)	भारतीय ज्ञानपीठ-दिल्ली	२००५

पत्रकार और सम्पादक :

क्रम	सम्पादित रचना	प्रकाशन वर्ष
१	'संकेत' (बृहद साहित्यिक संकलन)	१९५५
२.	'नईधारा' (समकालीन कहानी विशेषांक)	१९६५
३.	'समान्तर-१'	१९७०
४.	'मेरा हमदम मेरा दोस्त'	१९८०
५.	'गर्दिश के दिन'	१९८०
६.	'आद्य कथाकार'	१९८१
७.	'मराठी कहानियाँ' (दो खण्ड)	१९८६
८.	'तेलुगु कहानियाँ'	१९८७
९.	'पंजाबी कहानियाँ'	१९८८
१०.	'उर्दू कहानियाँ' (दो खण्ड)	१९८९

पत्र-पत्रिका संपादन :

क्रम	पत्र-पत्रिका संपादन	प्रकाशन वर्ष
१.	'विहान'	१९५४
२.	'इंगित' (साप्ताहिक)	१९६१-६३
३.	'नई कहानियाँ' (मा)	१९६३-६६
४.	'सारिका' (मा / पा)	१९६७-७८

क्रम	पत्र-पत्रिका संपादन	प्रकाशन वर्ष
५.	'कथा यात्रा' (मा)	१९७८-७९
६.	'श्री वर्षा '(सा)	१९७९-८०
७.	'गंगा' (मा)	१९८४-८८
८.	'दैनिक जागरण'	१९९०-९२
९.	'दैनिक भास्कर'	१९९७

नाट्य साहित्य :

क्रम	नाट्य संग्रह
१	'अधूरी आवाज'
२	'बाल नाटकों के चार संग्रह'
३	' रेत पर लिखें नाम'
४	'हिन्दोस्ताँ हमारा'

नाट्य रूपान्तर :

क्रम	नाट्य रूपान्तर	आधारित
१	'चारूलता'	रवीन्द्रनाथ ठाकुर कृत 'नष्टनीड़ 'आधारित
२	'खड़िया का घेरा'	ब्रेस्ट लिखित

आलोचना साहित्य :

क्रम	आलोचना साहित्य	प्रकाशन
१	'नई कहानी की भूमिका'	अक्षर प्रकाशन प्रा.लि.-१९६६
२	'नई कहानी के बाद'	शब्दकार प्रकाशन-दिल्ली
३	'मेरा पन्ना : समान्तर सोच' (दो खण्ड)	दिल्ली-१९६७

यात्रा विवरण :

क्रम	यात्रा- साहित्य
१	'खण्डित -यात्राएँ'
२	'कश्मीर : रात के बाद'

आत्म परक संस्मरण :

क्रम	संस्मरण	प्रकाशक	वर्ष
१	'जो मैंने जिया' (आधार शिलाएँ-१)	राजपाल एण्ड सन्स-दिल्ली	१९९२
२	'यादों के चिराग' (आधार शिलाएँ-२)	राजपाल एण्ड सन्स-दिल्ली	१९९७
३	'जलती हुई नदी' (आधार शिलाएँ-३)	राजपाल एण्ड सन्स-दिल्ली	१९९९

विविध रचनाएँ :

क्रम	विविध रचनाएँ	प्रकाशक	वर्ष
१	'देश देशान्तर '(डायरी)		
२	'घटना चक्र'	सामयिक प्रकाशन-दिल्ली	१९९७
३	'सिलसिला थमता नहीं'	सामयिक प्रकाशन-दिल्ली	१९९९
४.	'आखों देखा पाकिस्तान '	राजपाल एण्ड सन्स-दिल्ली	२००५
५.	'तुम्हारा कमलेश्वर'	राजपाल एण्ड सन्स-दिल्ली	२००१

२. सहायक (हिन्दी) संदर्भ ग्रन्थ :

क्रम	पुस्तक का नाम	लेखक	प्रकाशन/वर्ष
१.	अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या	डॉ.रामस्वरूप चतुर्वेदी	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन-वाराणसी-१९६८
२.	अस्तित्ववाद और नयी कविता	डॉ. लालचन्द गुप्त	शोध-प्रबन्ध प्रकाशन-दिल्ली १९७८
३.	अद्यतन हिन्दी उपन्यास	बिन्दु भट्ट	पार्श्व प्रकाशन अहमदाबाद-१९९३
४.	अज्ञेय का कथा साहित्य	डॉ. ओम प्रभाकर	नेशनल पब्लिशिंग हाउस-दिल्ली-१९६६

क्रम	पुस्तक का नाम	लेखक	प्रकाशन/वर्ष
५.	अज्ञेय साहित्यः प्रयोग और मूल्यांकन	केदारनाथ मिश्र	अनुपम प्रकाशन- जयपुर-१९६९
६.	आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य	डॉ. हरदयाल	आदर्श साहित्य-दिल्ली
७.	आधुनिक हिन्दी उपन्यासः उद्भव और विकास	डॉ. बेचेन उग्र	सन्मार्ग प्रकाशन-दिल्ली १९७२
८.	आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण	डॉ. रमेश कुन्तल मेघ	अक्षर प्रकाशन- नई दिल्ली-१९७३
९.	आधुनिकता और समकालीन रचना संदर्भ	डॉ. नरेन्द्र मोहन	दि. मैकमिलन कंपनी ऑफ इन्डिया प्रा.लि. दिल्ली-१९७७
१०.	आधुनिक परिवेश और नव लेखन	डॉ.शिवप्रसाद सिंह	संजय बुक सेन्टर वाराणसी-१९९०
११.	आधुनिक मूल्य और प्रयोग	डॉ.बैजनाथ सिंहल	संजय प्रकाशन दिल्ली-१९८७
१२.	आधुनिक हिन्दी कहानी परिपार्श्व	डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	साहित्य भवन इलाहाबाद-१९६६
१३.	उपन्यास और लोकजीवन	रैल्फ फोक्स	पीपुल्स पब्लिशिंग हाउससं-१९८५
१४.	कमलेश्वर	मधुकरसिंह	शब्दकार प्रकाशन-दिल्ली
१५	कमलेश्वर का कथा साहित्य	माधुरी शाह	साहित्य रत्नालय कानपुर-१९८२
१६.	कमलेश्वर के उपन्यासों में मनोविज्ञान	डॉ.रेखा शर्मा	मिलिन्द प्रकाशन हैदराबाद-१९९१
१७.	कहानीकार कमलेश्वर संदर्भ और प्रकृति	डॉ.रणसुभे	पंचशील प्रकाशन जयपुर-१९७७
१८.	काव्य के रूप	बाबू गुलाबराय	आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली-१९७०

क्रम	पुस्तक का नाम	लेखक	प्रकाशन/वर्ष
१९	गद्यपथ	सुमित्रा नन्दन पन्त	साहित्य भवन प्रा.लि. इलाहाबाद-१९५३
२०	द्विवेदी युगीन साहित्य समीक्षा	संकठा प्रसाद मिश्र	अन्नपूर्णा प्रकाशन गांधीनगर-१९७८
२१	द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास	लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली-१९८२
२२	नई कहानी का स्वरूप	डॉ. इन्दु रश्मि विवेचन	सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली-१९९२
२३	नई कहानी	मीरा सीकरी	पराग प्रकाशन दिल्ली-१९८४
२४	नयी समीक्षा : नये संदर्भ	डॉ.नगेन्द्र	नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली-१९७४
२५.	नई कहानी की भूमिका	कमलेश्वर	शब्दकार प्रकाशन -दिल्ली
२६.	प्रेमचन्द की प्रासंगिकता	अमृतराय	हंस प्रकाशन इलाहाबाद-१९८५
२७.	विवेक के रंग	देवीशंकर अवस्थी	पंचशील प्रकाशन जयपुर-१९८०
२८.	शैक्षिक समाजशास्त्र	डॉ.सीताराम जायसवाल	हिन्दी समिति सुचना मंत्रालय-लखनऊ सं-१९६५
२९.	समकालीन कहानी युगबोध का संदर्भ	डॉ.पुष्पपालसिंह	नेशनल पब्लिशिंग हाउस,दिल्ली,-१९८६
३०.	साहित्य और आलोचना	डॉ.नामवरसिंह	वाणी प्रकाशन दिल्ली

क्रम	पुस्तक का नाम	लेखक	प्रकाशन/वर्ष
३१	साहित्य का उद्देश्य	मुन्शी प्रेमचन्द	भारतीय ग्रंथ निकेतन दिल्ली,-१९९२
३२	साहित्यालोचन	श्यामसुन्दर दास	इन्डियन प्रेस इलाहाबाद-१९८१
३३	सातवें दशक के हिन्दी उपन्यास	डॉ.रमणभाई पटेल	आस्था प्रकाशन-भोपाल-१९९९
३४.	सिक्का बदल गया	नरेन्द्र मोहन	सीमान्त पब्लिकेशन्स -१९७५
३५.	स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी	कृष्णा अग्निहोत्री कहानी	इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन दिल्लीं-१९८३
३६.	स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासः मूल्य संक्रमण	डॉ.हेमेन्द्र कुमार पानेरी	संधी प्रकाशन जयपुर-१९७४
३७.	स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि	डॉ.स्वर्णलता	विवेक पब्लिशिंग हाउस जयपुर -१९७५
३८.	संस्कृति के चार अध्याय	रामधारीसिंह 'दिनकर'	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्लीं-२०००
३९.	हिन्दी साहित्य का प्रवृतिगत इतिहास	प्र.ना.टंडन	विवेक प्रकाशन लखनऊ-१९६५
४०.	हिन्दी उपन्यास : सिद्धान्त और समीक्षा	मक्खनलाल शर्मा	प्रभात प्रकाशन दिल्ली-१९७४
४१.	हिन्दी साहित्य की युगीन प्रवृतियाँ	डॉ.नामदेव उतकर	चन्द्रलोक प्रकाशन कानपुर-२००२
४२.	हिन्दी उपन्यास	सुषमा प्रियदर्शिनी	राधाकृष्ण मूल्यांकन माला-

क्रम	पुस्तक का नाम	लेखक	प्रकाशन/वर्ष
४३.	हिन्दी साहित्य उद्‌भव और विकास	हजारी प्रसाद द्विवेदी	राजकमल प्रकाशन दिल्ली-१९९२
४४.	हिन्दी उपन्यास : उद्‌भव और विकास	डॉ.हेमराज निर्मम	संजय प्रकाशन दिल्ली-१९८७
४५.	हिन्दी उपन्यास	शिवनारायण श्रीवास्तव	सरस्वती मन्दिर वाराणसी-२००७
४६.	हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा	डॉ. रामदरश मिश्र	राजकमल प्रकाशन दिल्ली-१९६९
४७.	हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ.गिरिधर प्रसाद शर्मा	इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन दिल्ली-१९७८
४८.	हिन्दी लघु उपन्यास	डॉ.अमर प्रसाद जायसवाल	अन्नपूर्णा प्रकाशन गांधीनगर-१९८४
४९.	हिन्दी लघु उपन्यास	घनश्याम मधुप	राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली-१९७१
५०.	हिन्दी कहानी में युगबोध	डॉ. मंजुलतासिंह	पराग प्रकाशन दिल्ली-१९९४
५१.	हिन्दी उपन्यास युगचेतना एवं पाठकीय संवेदना	डॉ.मुकुन्द द्विवेदी	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद-१९७०
५२.	हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन	ब्रजभूषणसिंहल 'आदर्श'	रचना प्रकाशन इलाहाबाद-१९७०
५३.	हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद	डॉ. त्रिभुवनसिंह	हिन्दी पुस्तकालय-वाराणसी-१९६५
५४.	हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ	शशीभूषण सिंहल	विनोद पुस्तक मन्दिर,आग्रा-१९८८

क्रम	पुस्तक का नाम	लेखक	प्रकाशन/वर्ष
५५.	हिन्दी के बहु चर्चित उपन्यास एवं उपन्यासकार	डॉ.अमरप्रसाद जायसवाल	विद्याविहार गांधीनगर-१९६४
५६.	हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास	डॉ.सुरेशसिन्हा	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद-१९७२
५७.	हिन्दी उपन्यास : समाजशास्त्रीय विवेचन	डॉ.चण्डीप्रसाद जोशी	अनुसंधान प्रकाशन कानपुर-१९६२
५८.	हिन्दी रामकाव्य का स्वरूप और विकास : बदलते युगबोध के परिप्रेक्ष्य में	प्रेमचन्द महेश्वरी	वाणी प्रकाशन दिल्ली-१९८३
५९.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ.माधव सोनटके	विकास प्रकाशन कानपुर-२०००
६०.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुकल	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी-२०१९

२. सहायक (संस्कृत) संदर्भ ग्रंथ

१.	मनुस्मृति	राजवीर शास्त्री

२. सहायक (अंग्रेजी) संदर्भ ग्रंथ

1	Encyclopeedia of Social Science-The President Crisis of faith	Dr.S.Radha krishanan
2	The Oxford Dictionary	Vol-12

३. शब्दकोश

क्रम	शब्दकोश	संपादक/लेखक	प्रकाशन
१.	आदर्श हिन्दी शब्दकोश	आर.सी.पाठक	भागर्व बुक डिपो-वाराणसी
२.	बृहद् हिन्दी शब्दकोश	कालिका प्रसाद	ज्ञानमण्डल लि.-वाराणसी
३.	लोकभारती बृहत् प्रामाणिक हिन्दी शब्दकोश	आचार्य रामचन्द्र वर्मा	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद
४.	हिन्दी पर्यायवाची कोश	भोलानाथ तिवारी	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
५.	भगवद् गो मण्डल कोश	महाराजा भगवतसिंहजी	प्रवीण प्रकाशन राजकोट

४. पत्र-पत्रिकाएँ एवं लेख

क्रम	पत्रिका एवं लेख का नाम	लेखक/प्रकाशन/विशेषांक
१.	अणिमा	अक्टुबर-दिसम्बर-१९६५
२.	आजकल	द्रोणवीर कोहली फरवरी-१९८०
३.	उद्भावना	अजेय कुमार झिलमिल दिल्ली, वर्ष-१७, २००१
४.	कल्पना	डॉ.बच्चनसिंह-नवलेखन विशेषांक
५.	धर्मयुग	१६-३१ अगस्त
६.	नया साहित्य	संपादक-विश्वनाथ

क्रम	पत्रिका एवं लेख का नाम	लेखक/प्रकाशन/विशेषांक
७.	परिशोध	१७ अक्टुबर-१९७२
८.	योजना	२ जनवरी-१९७०
९.	सम्मेलन पत्रिका	साहित्य संस्कृति भाषा विशेषांक, चैत्र-शक-१८९४
१०.	संचेतना	महिपसिंह-उपन्यास विशेषांक-दिसम्बर-१९७१
११.	हंस	संपादक-राजेन्द्रकुमार यादव, जुन-२०००
१२.	दा जर्मन आइडियोलोजी	मार्क्स ऐंगल्स
१३.	दैनिक ट्रिब्युन	संपादकीय-१० मार्च-१९९१